हरिवंश-पुराण

(द्वितीय खण्ड)

सम्पादक

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारो वेद, १०८ उपनिषद्, षट् दर्शन
२० स्मृतियां और अठारह पुराणों के,
प्रसिद्ध भाष्यकार ।

प्रकाशक

संस्कृति-संस्थान,

ख्वाजाकुतुब (वेदनगर) बरेली
(उत्तर-देश)

प्रथम संस्करण) १९६८ (मूल्य ७ रु०

डा० चमनलाल गौतम
संस्कृति संस्थान,
ख्वाजा कुतुब (वेद नगर)
बरेली। (उ० प्र०)

※

सम्पादक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

※

※

प्रथम संस्करण
१९६८

※

मुद्रक :
जगदीश भरतिया
बम्बई भूषण प्रेस,
मथुरा।

※

मूल्य :
७ रु०

दो शब्द



हरिवंश पुराण के दूसरे खण्ड मे मुख्य चार बडे-बडे उपाख्यान है। (१) प्रद्युम्न-प्रभावती-मायावती उपाख्यान, अनिरुद्ध-उषा की कथा, पौड्रक का अहङ्कार और वध तथा हंस डिम्भक उपाख्यान। इन कथाओ से यह विदित होता है कि भगवान कृष्ण के नेतृत्व मे यदुवंशियो ने कैसी प्रगति की और अधिकांश अहङ्कारी और युद्धलिप्सु राजाओ को हराकर साम्राज्यवादियो के मनसूबे नष्ट कर दिये। यद्यपि इन कथाओ को रोचकता की दृष्टि से बहुत बढा-चढाकर वर्णन किया गया है, तो भी इनसे यह अवश्य अनुमान किया जा सकता है कि उस काल मे हमारा देश छोटे-बडे अनेक राजाओ के शासनाधिकार मे विभाजित हो गया था और ये लोग प्राय अपनी महत्ता प्रकट करने के लिए युद्ध छेडते रहते थे। इससे देश मे अशान्ति फैली रहती थी और इसका सबसे अधिक कुफल साधारण जनता को ही भोगना पडता था।

भगवान कृष्ण जैसे जन-नायक को यह अवस्था असहनीय प्रतीत हुई और उन्होने छोटी अवस्था से ही आततायियो के विनाश और सत्पुरुषो के संरक्षण का संकल्प कर लिया। उन्होने अपना कार्यक्रम कंस जैसे घोर महत्त्वाकांक्षी और क्रूर शासक के विरुद्ध विद्रोह करके आरम्भ किया और शीघ्र ही जरासंध जैसे भारत-सम्राट बनने का स्वप्न देखने वाले शासक की शक्ति को छिन्न-भिन्न करके साम्राज्यवाद की जड पर कुठाराघात किया। इस सम्बन्ध मे उन्होने आर्य और अनार्य के बीच भी भेदभाव नही किया, क्योंकि अत्याचारी शासन चाहे गोरो का हो और चाहे कालो का, जनता के लिये तो वह शोषण और दमन का पुरस्कार ही प्रदान कर सकता है। इसलिये श्रीकृष्ण ने जिस प्रकार जरासंध, पौण्ड्रक तथा हंस डिम्भक जैसे क्षत्रिय नरेशो की उद्दण्डता का प्रतिफल दिया वैसे ही शम्बरासुर, वाणासुर, वज्रनाभ जैसे अनार्य नरेशों की

सत्ता का भी अन्त कर दिया । उनके इन युद्धो के गूढ आशय पर किया जाय तो मालूम होता है कि वे आरम्भ से ही देशव्यापी प्रजातन्त्रो की वृद्धि के इच्छुक थे और उसकी जो योजना उन्होने अपने मस्तिष्क में रखी थी उसकी पूर्ति के लिये वे एक-एक करके सैनिक शक्ति के मदमातेओ को कुचलते रहते थे । इस प्रकार जब उन्होने अधिक उद्दण्ड और उच्छ्र... का खात्मा कर लिया तो फिर शेष सबके सामूहिक विनाश के लि... की रचना की और एक ही बार मे निरकुश राज-शक्ति की जड ही ... डाली । इसी तथ्य के आधार पर गाधारी ने श्रीकृष्ण को ही महाभारत का ... बतलाया था और शाप दिया था ।

जैसा प्राचीन काव्य-ग्रन्थो का नियम है यद्यपि हरिवशकार ने भी प्रत्येक युद्ध मे दो-करोड सैनिक और लाखो रथ तथा हाथी, घोडो का ही वर्णन किया है, पर इसको अधिक महत्त्व देना अनावश्यक है । इसी प्रकार बार-बार भयंकर शस्त्रो से शरीरो का कटते रहना, मर्मभेदी चोट खाते रहना और फिर दूसरे दिन जैसा का तैसा बना रहना भी प्रशसा और उत्साह की वृद्धि की दृष्टि से ही माना जा सकता । यो तो यादव-सेना की सख्या ही ५६ करोड बतलाई गई है और प्रत्येक राजा के पास करोडो ही सेना बतलाई गई है, पर सौ-सौ, दो-दो सौ कोस या इससे कम परिमाण वाले राज्यो मे इतनी सेना का होना आबादी की निगाह से ही सम्भव नही । सेना की सख्या कुछ भी रही हो पर हरिवंश की कथाओ से यह अवश्य प्रकट होता है कि उस समय के राजाओ ने अपना मुख्य कार्य लडते रहना और सैन्य-शक्ति बढाते रहना ही निश्चय कर लिया था और इससे प्रजातन्त्र की दुर्दशा होती थी, जिसका उद्धार अन्त मे भ० श्रीकृष्ण की योजना से ही हुआ और इस प्रकार उनकी 'परित्राणाय साधूनाम विनाशाय च दुष्कृताम्' वाली प्रतिज्ञा सत्य सिद्ध हुई ।

कथा-वस्तु की दृष्टि से हरिवश वास्तव मे बडी विशेपताओ से युक्त है। इसके कथानक अन्य पुराणो मे नही मिलते और इस दृष्टि से इसे 'महाभारत का खिल' (पूर्ति करने वाला) कहना यथार्थ ही है ।

—प्रकाशक

श्री हरिवंश पुराण

(दूसरे खण्ड की)

विषय-सूची

भूल-सुधार—

प्रेस-कर्मचारियों की असावधानी से पृष्ठ ३८५ पर ७५ वें अध्याय का शीर्षक 'श्रीकृष्ण द्वारा पौण्ड्रक वध' छप गया है। वास्तव में यह 'विप्र जनार्दन की द्वारका यात्रा' होना चाहिये था। इसी भूल के कारण अगले तीन पृष्ठ ३८७-३८९ और ३९१ के ऊपर भी अध्याय का नाम गलत छाप दिया गया है।

श्री हरिवंशपुराण

(द्वितीय खण्ड)

।। निकुम्भ का वध ।।

तेपा क्रीडाप्रसक्ताना यदूना पुण्यकर्मणाम् ।
छिद्रमासाद्य दुर्बु द्धिर्देवशत्रु दु रासद ।।१
कन्या भानुमती नाम भानोर्दु हितर नृप ।
जहारात्मवधाकाक्षी निकुम्भो नाम दानव ।।२
अन्तर्हितो मोहयित्वा यदूना प्रमदाजनम् ।
मायावी मायया राजन्पूर्ववैरमनुस्मरन् ।।३
भ्रातुर्हि वज्रनाभस्य तस्य कन्या प्रभावती ।
प्रद्यु म्नेन हृता वीर वज्रनाभस्तथा हत ।।४
भानोरेव तथाऽरण्ये वसत्यवसरेण हि ।
अस्वाधीने दुराधर्षे छिद्रज्ञो दानवाधम ।।५
कन्यापुरे महानाद सहसा समुपस्थित ।
तस्या ह्रियन्त्या कन्यायां रुदन्त्या समितिजय ।।६
वसुदेवाहुकौ वीरौ द शितौ निर्गताव् भौ ।
आर्तनादमुपश्रु त्य मानो- कन्यापुरे तदा ।।७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! पुण्यात्मा यादवों को क्रीडामत्त देख कर निकुम्भ नामक दैत्य ने अपनी माया के बल से भानु की कन्या भानुमती को हर लिया ।।१-२।। इसके पूर्व उस दुरात्मा निकुम्भ के भाई वज्रनाभ को प्रद्युम्न ने मार दिया था और उसकी पुत्री प्रभावती को बलात् हरण करके ले आये

थे, उसी का बदला लेने के लिये निकुम्भ ने भानुमती का हरण कर लिया ॥३-४॥ वह दुरात्मा दानव भानु के उद्यान में रहा करता था। एक समय पुरी को सूनी देख कर उसने उस कन्या का अपहरण किया तब उसके रोने और स्त्रियों की आर्त पुकार से अन्तःपुर गूँज उठा ॥ ५-६ ॥ भानु के अन्तःपुर में चीख-चिल्लाहट को सुन कर वसुदेवजी और उग्रसेनजी कवच धारण एवं शस्त्रास्त्र ग्रहण पूर्वक उधर आये ॥७॥

न दृष्टिगोचरो तौ तु ददृशातेऽपकारिणम् ।
तथैव दर्शितौ यातौ यत्र कृष्णो महाबलः ॥८
श्रुतार्थः स्वं विमानं तदारुरोह जनार्दनः ।
पार्थेन सहितस्तार्क्ष्यं नागशत्रुमरिंदमः ॥९
रथी त्वमनुगच्छेति संदिश्य मकरध्वजम् ।
त्वरेति गरुडं वीरः संदिदेश च काश्यपम् ॥१०
वज्रं नगरमायान्तं निकुम्भं रणदुर्जयम् ।
पार्थकृष्णौ महात्मानावासेदतुररिंदमौ ॥११
प्रद्युम्नश्च महातेजा मायिना प्रवरो नृप ।
निकुम्भश्चाथ तान्दृष्ट्वा त्रिधाऽऽत्मानमथाकरोत् ॥१२
तान्सर्वान्योधयामास निकुम्भः प्रहसन्निव ।
बहुकण्टकगुर्वीभिर्गदाभिरमरोपमः ॥१३
सव्येनालम्ब्य हस्तेन कन्यां भानुमतीं नृप ।
दक्षिणेनाथ हस्तेन गदया प्राहरत्पुनः ॥१४
कन्यार्थं न च कृष्णो वा कामो वा नृपसत्तम ।
निर्दयं प्रहरन्ति स्म निकुम्भे च महासुरे ॥१५

परन्तु, उस समय उन्हें कुछ भी दिखाई नहीं दिया, तब अपने कर्तव्य का निश्चय न कर पाने के कारण वे दोनों श्रीकृष्ण के पास पहुँचे ॥८॥ उस वृत्तान्त को सुन कर भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन के सहित गरुड पर विराजमान हुए और प्रद्युम्न को रथ के द्वारा पीछे-पीछे आने का आदेश देकर गरुड से बोले कि शीघ्रता-

पूर्वक चलो, तब गरुड उन्हें लेकर चल दिया ॥९-१०॥ जिस समय वह दुर्जय दैत्य निकुम्भ अपने वज्रपुर मे घुस रहा था, उसी समय कृष्ण और अर्जुन ने वहाँ पहुँच कर उस पर आक्रमण किया ॥११॥ घोर मायावी निकुम्भ ने अपने तीन रूप धारण किये और उन तीनो रूपो से ही युद्ध करने लगा। उसने बाँयी बाँह मे भानुमती को दबा रखा था और दाँये हाथ मे काँटो से युक्त गदा ले रखी थी, उसी गदा से वह इन तीनों पर प्रहार करने लगा। परन्तु, कन्या को आघात न पहुँचे, इस भय से इन तीनो ने कुछ देर तक उस पर प्रहार नही किये ॥१२-१५॥

समर्थास्ते महात्मान: शत्रुं हन्तु दुरासदा: ।
निशश्वसुर्न रणे दयाभारावपीडिता ॥१६
श्रेष्ठो धनुष्मतां पार्थ सर्वथा कुशलो युधि ।
नागोष्ट्रविधिना दैत्य शरपक्त्या जघान ह ॥१७
ते नु वैतस्तिकैर्बाणैर्विविधान्दानवान्युधि ।
न कन्या कलया युक्त्या शिक्षया च महीपते ॥१८
तत स कन्यया सार्द्धं तत्रैवान्तरधीयत ।
आसुरीमाश्रितो माया न च ता वेत्ति कश्चन ॥१९
स कृष्णी रौक्मिणेयश्च पृष्ठतोऽनुययुस्तदा ।
हारित. शकुनो भूत्वा तस्यावय महासुर ॥२०
त बाणै. पुनरेवाथ वीरो भूयो धनञ्जय ।
वैतस्तिकैर्मर्मभिद्भि: कन्या रक्षन्नताडयत ॥२१
स इमा पृथिवी कृत्स्ना सप्तद्वीपा महासुर. ।
बभ्रामानुगतश्चैव तैर्वी रैररिमर्दन. ॥२२

यद्यपि निकुम्भ को मारने मे वे पूर्ण समर्थ थे, फिर भी भानुमती की रक्षा का ध्यान रखते हुए उन्होने प्रहार नही किया और क्रोधपूर्वक दीर्घ श्वास छोड़ने लगे ॥१६॥ अर्जुन मे असाधारण वीरता थी, परन्तु सर्प द्वारा ऊँट को लपेट लिये जाने पर सर्प को इस प्रकार मारा जाता है, जिससे ऊँट को चोट न

लग जाय, उसी प्रकार उन्होंने अत्यन्त सावधानी से निकुम्भ पर अपने बाणों को छोड़ा ॥ १७ ॥ इस प्रकार इन तीनो ने अपने वैतस्तिक बाणो का प्रयोग करते समय इसका प्रयत्न किया कि भानुमती के देह से बाणो का स्पर्श न हो पावे ॥१८॥ तभी उस कन्या के सहित निकुम्भ अपनी माया के प्रभाव से ऐसा अदृश्य हुआ कि कोई भी यह न समझ पाता था कि वह कहाँ गया ? ॥१९॥ फिर बहुत खोज करने पर उन्होंने उसे हारीत पक्षी का रूप धारण किये वहीं बैठा हुआ देखा ॥२०॥ जैसे ही यह दिखाई दिया, वैसे ही अर्जुन ने अपने मर्मभेदी वैतस्तिक बाणों को कन्या का बचाव करते हुए चलाया ॥२१॥ तब वह दैत्य इस सम्पूर्ण पृथिवी का चक्कर काटने लगा और इन तीनो ने भी द्रुत वेग से उसका पीछा किया ॥२२॥

गोकर्णस्योपरिष्टात्तु पर्वतस्य महासुरः ।
पपता वेलां गङ्गायाः पुलिने सह कन्यया ॥२३
न देवा नासुराश्चापि लङ्घयन्ति तपोधनाः ।
गोकर्णं तेजसा गुप्तं महादेवस्य भारत ॥२४
एतदन्तरमासाद्य प्रद्युम्नः शीघ्रविक्रमः ।
कन्यां भानुमतीं भैमो जग्राह रणदुर्जयः ॥२५
असुरः सोऽर्दितो राजन्कृष्णाभ्यां निशितैः शरैः ।
त्यक्त्वाऽथोत्तरगोकर्णं निकुम्भो दक्षिणा दिशम् ।
जगाम पृष्ठतो यातौ कृष्णौ तार्क्ष्यगतौ तदा ॥२६
विवेश षट्पुरं चैव ज्ञातीनामालयं तदा ।
तत्र वीरौ गुहाद्वारि कृष्णौ रात्रौ तदोपतुः ॥२७
रौक्मिणेयोऽपि कृष्णेन संदिष्टो द्वारकां पुरीम् ।
अनयद्भानुतनयां प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥२८
नयित्वा चाययौ रात्रौ षट्पुरं दानवाकुलम् ।
ददर्श च गुहाद्वारि कृष्णौ भीमपराक्रमौ ॥२९
ऊपतुर्द्वारमाक्रम्य षट्पुरस्य महाबलौ ।
कृष्णौ प्रद्युम्नसहितौ निकुम्भवध[illegible]

इस प्रकार चक्कर काटने काटते जब वह दैत्य गोकर्ण पर्वत को लाँघ रहा था, तभी उस कन्या के साथ चेल गंगा के किनारे आ गिरा ।।२३।। क्योंकि उस गोकर्ण पवन पर भगवान् शंकर का निवास था और उनके प्रतापवश कोई भी दत्य अथवा देवता उस पवत को लांघने मे समर्थ न होता था ।।२४।। जैसे ही उस पवत को लाँघता हुआ वह दैत्य गिरा वैसे ही प्रद्युम्न ने शीघ्रता पूर्वक वहाँ जाकर भानुमती को उससे छीन लिया ।।२५।। तभी श्रीकृष्ण और अर्जुन ने अपने तीक्ष्ण बाणो की उस पर भीषण वर्षा की, तब वह अत्यन्त पीडित हुआ दैत्य उत्तर में स्थित उस गोकर्ण पवत को छोड कर दक्षिण की ओर भागा। यह देख कर कृष्ण और अर्जुन भी गरुड पर चढ कर उसका पीछा करने लगे ।।२६।। तब वह दत्य पृथिवी के विवर मे होकर अपने षटपुर मे चला गया उस समय रात्रि होने कारण कृष्ण और अर्जुन को कन्दरा के द्वार पर ही टिकना पडा ।।२७।। इधर प्रद्युम्न ने अपने पिता का आदेश पाकर भानुमती को साथ लिया और द्वारका को चले गये ।।२८।। वहाँ भानुमती की रक्षा का प्रबन्ध करने के बाद प्रद्युम्न फिर वहीं लौट आये और उन्होने वहाँ कृष्ण और अर्जुन को निकुम्भ का द्वार रोक, रात्रि के समाप्त होने की प्रतीक्षा करते हुए देखा ।।२९।। तब प्रद्युम्न भी उस दैत्य के मारने की अभिलाषा में तत्पर हुआ ।।३०।।

ततोऽनन्तरमेतस्माद्विनादतिबलस्तदा ।
निर्जगाम बली योद्धु निकुम्भो भीमविक्रम ।।३१
तस्य निर्गच्छतस्तस्माद्बिलात्पार्थो विशाम्पते ।
रुरोध सर्वतो मार्गं शरैर्गाण्डीवनि सृतै ।।३२
सोऽभिसृत्य गदा घोरामुद्यम्य बहुकण्टकाम् ।
शिरस्यताडयत्पार्थ निकुम्भो बलिना वर ।।३३
अदृष्टे नाहतो वीर शिरस्यथ मुमोह स ।
गदयाऽभिहते पार्थे रक्त वमति मुह्यति ।
हसित्वा सोऽसुरो हृष्टो रौक्मिणेयमताडयत् ।।३४
त प्राड्मुखमुख वीर मायिना वरम् ।
अदृष्टे नाहतो वीर शिरस्यथ मुमोह स ।।३५

तथागतौ तु दृष्ट्वा तौ मुह्यमानौ सुताडितौ ।
अभिदुद्राव गोविन्दो निकुम्भ क्रोधमूर्छित ।।३६
कौमोदकी समुद्यम्य गदपूर्वोद्भवो गदाम् ।
तावन्योन्य दुराधर्षौ गर्जन्तावभिपेततु ।।३७

कुछ कालोपरान्त दैत्यराज निकुम्भ युद्ध करने की इच्छा से गुफा में बाहर आया ।।३१।। उसको निकलता देखते ही अर्जुन ने अपने गाण्डीव से उस पर भीषण बाण-वर्षा करते हुए उसे बींध दिया ।।३२।। तब निकुम्भ ने अपनी काँटों वाली गदा से अर्जुन के मस्तक पर भीषण प्रहार किया, जिससे रुधिर वमन करते हुए अर्जुन मूर्छित होगये । उनकी इस दशा पर हँसते हुए निकुम्भ ने प्रद्युम्न के मस्तक पर भी उसी गदा से आघात किया, जिससे प्रद्युम्न को भी मूर्छा आ-गई ।।३३-३४।। अर्जुन और प्रद्युम्न की ऐसी दुर्दशा हुई देख कर श्रीकृष्ण अत्यत क्रोधित हुए और अपनी गदा लेकर निकुम्भ की ओर तेजी से दौड़े । यह देख कर निकुम्भ भी उनकी ओर दौड़ पड़ा और तब उन भीषण गर्जन करते हुए वीरों ने एक दूसरे पर गदा प्रहार किया ।।३६-३७।।

ऐरावतगत शक्र सर्वैर्देवगणै सह ।
ददर्श तन्महायुद्ध घोर देवासुर तदा ।।३८
दृष्ट्वा देवान्हृषीकेशश्चित्रं युद्धैररिंदम ।
इयेष दानव हन्तु देवाना हितकाम्यया ।।३९
स मण्डलानि चित्राणि दर्शयामास केशव ।
कौमोदकी महाबाहुर्गदायुद्धकोविद ।।४०
सर्वेषामुरमुख्योऽपि गदा ता बहुकण्टकाम् ।
शिक्षया भ्रामयाणोऽथ मण्डलानि चचार ह ।।४१
वृषभाविव गर्जन्तौ वृंहिताविव कुञ्जरौ ।
दर्पितान्तरमासाद्य क्रुद्धौ शालामृगाविव ।।४२
आजघान निकुम्भस्तु गदया गदपूर्वजम् ।
अष्टाष्टपण्ट्या वीर नाद मुखरार्जितदारुणम् ।।४३

तत्कालमेव कृष्णोऽपि भ्रामयित्वा महागदाम् ।
निकुम्भमूर्द्ध नि तदा पातयामास भारत ॥४४
अवष्टभ्य मुहूर्तं तु हरिः कौमोदकी गदाम् ।
तस्थौ जगद्गुरुर्धीमान्मुमोह पतितः क्षितौ ॥४५
हाहाभूत जगत्सर्वं तत्कालमभवत्तदा ।
तथा गते वासुदेवे नरदेव महात्मनि ॥४६

उधर देवेन्द्र सभी देवताओं के सहित वहाँ आकर उस भीषण संग्राम को देखने लगे ।।३८।। उन्हे देख कर भगवान् कृष्ण ने उस दैत्य को मारने की इच्छा से कौमोदकी गदा चलाते हुए पैतरा बदला ।।३६-४०।। तब वह दैत्य भी अपनी काँटो वाली गदा लेकर उनके चारो ओर घूमने लगा ।।४१।। तब गर्जन-शील बैलो, चिंघाडने वाले हाथियो या क्रोधित हुए शृगालो के समान दोनो ही चक्कर काटने लगे । तब निकुम्भ ने श्रीकृष्ण पर अपनी गदा से आघात किया और श्रीकृष्ण भी भयकर सिंहनाद करके आगे बढ़े तथा उन्होने अपनी कौमोदकी गदा उसके मस्तक पर दे मारी ।।४२-४४।। उसके बाद वह कुछ देर तक तो निश्चेष्ट खड़े रहे और फिर मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़े, इससे समस्त ससार मे हाहाकार होने लगा ।।४५-४६।।

आकाशगङ्गातोयेन शीतेन च सुगन्धिना ।
सिषेचामृतमिश्रेण कृष्णं देवेश्वरः स्वयम् ॥४७
नूनमात्मेच्छया कृष्णस्तथा चक्रे सुरोत्तम ।
को हि शक्तो महात्मान युद्धे मोहयितु हरिम् ॥४८
कृष्णः प्रत्यागतप्राणश्चक्रमुद्यम्य भारत ।
प्रतीच्छेति दुरात्मानमुवाच रिपुनाशनः ॥४९
निकुम्भोऽप्यतिमायावी उत्पपात दुरासदः ।
शरीरं तत्परित्यज्य न तु त वेत्ति केशवः ॥५०

श्रीकृष्ण की ऐसी स्थिति देख कर इन्द्र ने तुरन्त ही उनके मुख पर आकाश गगा का अमृतमय जल छिड़क दिया ।।४७।। स्वय श्रीकृष्ण ने ही मूर्छित होने का

भाव धारण किया था अन्यथा संसार में उन्हें मूर्छित करने वाला कौन हो सकता है ? ॥४८॥ कुछ भी हो, उन्हें चेत आगया और वे तुरन्त ही अपना चक्र लेकर निकुम्भ से बोले—अरे पापात्मन् ! सावधान हो जा ॥४९॥ श्रीकृष्ण की गदा के आघात से वह भी मूर्छित हुआ पड़ा था, परन्तु उसने अपने उस शरीर को छोड़ कर दूसरा देह धारण किया और वह देह वहीं पड़ा रहा ॥५०॥

मुमूर्षति मृतो वायमिति मत्वा जनार्दन ।
ररक्ष स्मरमाणोऽथ वीरो वीरव्रत विभो ॥५१
अथ प्रद्युम्नकौन्तेयावागतौ लब्धचेतनौ ।
स्थितौ नारायणाभ्याशे निकुम्भवधनिश्चितौ ॥५२
प्रद्युम्नोऽप्यथ मायावी विदित्वा कृष्णमब्रवीत् ।
निकुम्भस्तात नास्त्यत्र गतः क्वापि सुदुर्मतिः ॥५३
प्रद्युम्नेनैवमुक्ते तु तन्ननाश कलेवरम् ।
प्रजहासाथ भगवानर्जुनेन सह प्रभुः ॥५४
तदाऽयुतसहस्राणि निकुम्भानां जनाधिप ।
ददृशुस्ते ततो घोरा क्षितौ दिवि च सर्वतः ॥५५
सहस्राण्येव कृष्णं तु तथा पार्थमरिंदम ।
रौक्मिणेयं तथा वीर तदद्भुतमिवाभवत् ॥५६

श्रीकृष्ण ने युद्ध में पतित हुए शत्रु पर प्रहार करना उचित न समझ कर उसके उठने की प्रतीक्षा की, इतने में ही अर्जुन और प्रद्युम्न भी स्वस्थ होकर उनके पास आगये तथा निकुम्भ को मारने की इच्छा करने लगे ॥५१-५२॥ फिर प्रद्युम्न ने निकुम्भ की माया को समझ लिया और उन्होंने श्रीकृष्ण से कहा—हे तात ! निकुम्भ इस समय इस देह को त्याग कर कहीं अन्यत्र चला गया है ॥५३॥ प्रद्युम्न अभी इतना ही कह पाये थे कि तभी वह देह भी अदृश्य होगया, यह देख कर कृष्ण और अर्जुन अट्टहास कर उठे ॥५४॥ तभी निकुम्भ के दस हजार शरीर पृथिवी और आकाश पर घूमते हुए दिखाई दिये ॥५५॥ फिर हजारों कृष्ण, अर्जुन और प्रद्युम्न भी प्रकट होकर विचरण करने लगे, यह देख कर सब [अत्यन्त विस्मय हुआ ॥५६॥

पाण्डवस्य धनु केचित्केचिदस्य महाशरान् ।
अन्येऽस्य जगृहुर्हस्तावन्ये पादौ महासुरा ॥५७
एव ग्रहाय त वीरमगमस्ते विहायसि ।
पार्थानामपि कोटयस्तु गृहीताना तदाऽभवन् ॥५८
नान्त ददर्श कृष्णश्च कार्ष्णिश्च रिपुनाशनौ ।
विच्छिद्य तौ शरैर्जोरौ निकुम्भ पार्थवर्जितौ ॥५९
एकैकस्तु द्विधाच्छिन्नो द्वैधा भवति भारत ।
दिव्यज्ञानस्तदा कृष्णो भगवाननुदृष्टवान् ॥६०
निकुम्भ तत्त्वतश्चापि ददर्श मधुसूदन ।
प्टार सर्वमायाना हर्तार फाल्गुनस्य च ॥६१
स चक्रेण शिरस्तस्य चकर्त्ताऽसुरसूदन ।
पश्यता सर्वभूताना भूतभव्यभवो हरि ॥६२

तदनन्तर उन निकुम्भ शरीरो में से किसी ने अर्जुन का धनुष, किसी ने बाण, किसी ने दोनो हाथ और किसी ने दोनो पाव पकडे और उन्हे आकाश मार्ग मे ले उडे । तभी एक साथ करोडो अर्जुन प्रकट होगये ॥ ५७ ५८ ॥ तब कृष्ण और प्रद्युम्न ने उस दैत्य को खोजा परन्तु उसका कहीं भी पता न चला । फिर उन्होने निकुम्भ को बाणो से काट-काट कर दो दो टुकडे किये तो वे सभी टुकडे निकुम्भ बनने लगे । यह देख कर श्रीकृष्ण ने दिव्य दृष्टि का सहारा लिया तो उन्हे ज्ञात हुआ कि निकुम्भ द्वारा अर्जुन का अपहरण किया जारहा है ॥५९-६१॥ यह जानते ही उन्होने अपने सुदर्शन चक्र के द्वारा उसके मस्तक के दो टुकडे कर डाले ॥६२॥

स मुक्त्वा फाल्गुन राजञ्छिन्ने शिरसि भारत ।
पपातासुरमुख्योऽथ च्छिन्नमूल इव द्रुम ॥६३
अथाकाशगत पार्थं पतमान विहायस ।
कृष्णवाक्येन जग्राह कार्ष्णिर्वियति मानद ॥६४
निकुम्भे पतिते भूमौ समाश्वास्य धनञ्जयम् ।

जगाम द्वारकां देवः पार्थकामसमन्वितः ॥६५
सम्मियाय दशार्होऽथ द्वारकां मदितो विभुः ।
नारदं च महात्मानं ववन्दे यदुनन्दनः ॥६६
नारदोऽथ महातेजा भानुं यादवमब्रवीत् ।
भानो मा कार्षीर्मन्युं त्वं श्रूयतां भैमनन्दन ॥६७
क्रीडन्त्या रैवतोद्याने दुर्वासाः कोपितोऽन्यया ।
स शशाप ततो रोषान्मुनिर्दुहितरं तव । ६८
अतिदुर्ललितैं कन्या शत्रुहस्तं गमिष्यति ।
सुतार्थे ते मया सार्द्धं मन्निभिः स प्रसादितः ॥६९
बाला व्रतवती कन्यामनागसमिमां मुने ।
शप्तवानसि धर्मज्ञ कथं धर्मभृतां वर ।
अनुग्रहं विप्रस्त्वात्र वयं विज्ञापयामहे ॥७०

हे राजन् ! तब उस दैत्य ने अर्जुन को छोड़ दिया और मूल में से कटे हुए वृक्ष के समान वह स्वयं आकाश से गिर कर धराशायी होगया ।।६३।। इधर अर्जुन को गिरता हुआ देख कर प्रद्युम्न ने उन्हें बीच में ही सम्भाल लिया, जिससे उन्हें कोई चोट नहीं लगी ।।६४।। इस प्रकार निकुम्भ के मारे जाने पर अर्जुन को साथ लेकर भगवान् द्वारका में लौट आये ।।६५।। वहाँ आकर प्रसन्न हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने नारदजी को देखा और उनके चरणों में प्रणाम किया ।।६६।। उसके पश्चात् देवर्षि नारद ने यादव श्रेष्ठ भानु से कहा—हे यदुवंशियों में श्रेष्ठ ! तुम अपनी कन्या के विषय में किसी प्रकार की शंका मत करो ।।६७।। एक समय जब वह रैवतोद्यान में बालक्रीड़ा कर रही थी तभी उनके किसी अपराध पर महर्षि दुर्वासा क्रोधित होगए और उन्होंने उसे शाप दे दिया कि तू इस चंचलता के दोष से अपने शत्रु के हाथ में पड़ेगी । तब मैं अन्यान्य ऋषियों के साथ महर्षि दुर्वासा के पास गया और तुम्हारी कन्या को शाप से मुक्त करने के लिये उनसे अनुनय विनय करने लगा । मैंने कहा कि—हे धार्मिकों में श्रेष्ठ महर्षे ! यह बालिका भानुमती अभी नितान्त अबोध और चंचल स्वभाव की है, इसलिये इस-

वे अपराध पर आप रुष्ट न हो। जिस प्रकार भी सभव हो सके आप उसे क्षमा करके शाप से छुड़ा दें ॥६८-७०॥

अस्माभिरेवमुक्तस्तु दुर्वासा भैमनन्दन।
उवचाधोमुखो भूत्वा मुहूर्तं कृपयाऽन्वित. ॥७१
यदवोचमहं वाक्यं तत्तथ. न तदन्यथा।
रिपुहस्तमवश्यं हि गमिष्यति न सशय ॥७२
अदूषितानुधर्मेण भर्तारमुपलप्स्यति।
बहुपुत्रा बहुधना सुभगा च भविष्यति ॥७३
सुगन्धगन्धा च सदा कुमारी च पुन पुन।
न च शोकमिमं घोरं तन्वङ्गी धारयिष्यति ॥७४
एव भानुमती वीर सहदेवाय दीयताम्।
श्रद्धानः स शूरश्च धर्मशीलश्च पाण्डव ॥७५
ततो भानुमती भानुर्ददौ माद्रीसुताय वै।
सहदेवाय धर्मात्मा नारदस्य वच. स्मरन् ॥७६
आनीत सहदेवश्च प्रेषितश्चक्रपाणिना।
विवाहे च तदा वृत्ते सभार्यं स पुरी गत ॥७७
इम कृष्णस्य विजय य पठेच्छृणुयादपि।
विजय सर्वकृत्येषु श्रद्धानो लभेन्नर ॥७८

हे यादव श्रेष्ठ ! हमारी बात सुन कर महर्षि दुर्वासा नीचा मुख किये हुए कुछ देर तक सोचते रहे। फिर उन्होने दयापूर्वक कहा कि मेरा वचन तो कभी मिथ्या नही हो सकता, इसे शत्रु के हाथ मे तो अवश्य जाना होगा, परन्तु वह उससे किसी प्रकार दूषित न हो सकेगी और जब उसके पास से लौटेगी तब अपने पति को प्राप्त होती हुई महान् वैभव, पुत्र, और सौभाग्य श्री को प्राप्त करेगी ॥७१-७३॥ उसके देह से सदैव सुगन्ध निकलेगी और उसे जिस शाप की प्राप्ति हुई है, उसके कारण उसे किसी प्रकार का शोक नहीं होगा ॥७४॥ हे वीर ! अब तुम अपनी शाप से मुक्त हुई इस कन्या को सहदेव को दे दो, क्योंकि

वह श्रद्धालु धार्मिक और वीर पाण्डुपुत्र है ॥७५॥ हे राजन् ! देवर्षि नारदजी के वचनों पर विश्वास करते हुए यादवों ने इसका अनुमोदन किया और तब श्रीकृष्ण ने सहदेव को हस्तिनापुर से बुलवा कर भानु की कन्या भानुमती का विवाह उनसे करा दिया। विवाह कार्य के सम्पन्न होने पर सहदेव अपनी वधू को लेकर हस्तिनापुर लौट गये ॥७६-७७॥ भगवान् श्रीकृष्ण की इस विजय-कथा का जो कोई मनुष्य श्रद्धा सहित पाठ अथवा श्रवण करता है, उसे अपने सभी मनोरथों में विजय की प्राप्ति होती है ॥७८॥

॥ वज्रनाभ को वरदान ॥

हन्त ते वर्तयिष्यामि वज्रनाभवधं नृप ।
विजयं चैव साम्बस्य सात्यकेश्च भारत ॥१
मेरौ मानौ नरपते तपश्चक्रे महासुरः ।
वज्रनाभ इति ख्यातो निश्चितः समितिंजयः ॥२
तस्य तुष्टो महातेजा ब्रह्मा लोकपितामहः ।
वरेण च्छन्दयामास तपसा परितोषितः ॥३
अवध्यतां स देवेभ्यो वव्रे दानवसत्तमः ।
पुरं वज्रपुरं चापि सर्वरत्नमयं शुभम् ॥४
स्वच्छन्देन प्रवेशश्च न वायोरपि भारत ।
अचिन्तितेन कामानामुपपत्तिर्नराधिप ॥५
शाखानगरमुख्यानां सबाहानां शतानि च ।
नगरस्याप्रमेयस्य समन्ताज्जनमेजय ॥६
तथा तदभवत्तस्य वरदानेन भारत ।
उवास वज्रनगरे वज्रनाभो महासुरः ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! अब मैं वज्रनाभ-वध तथा साम्ब और प्रद्युम्न की विजय गाथा तुमसे कहता हूँ उसे सुनो ॥१॥ एक वज्रनाभ नामक प्रसिद्ध दानव ने सुमेरु पर्वत की गुफा में जाकर घोर तप किया ॥२॥ इस प्रकार दीर्घ काल तक कठिन तपस्या करने पर ब्रह्माजी प्रसन्न हुए और उसके सामने

प्रकट होकर उन्होंने उससे वर माँगने को कहा ।।३।। तब उसने देवताओं द्वारा अवध्य होने, अत्यन्त सुन्दर वज्रपुर नामक नगर के निर्मित होने, उसमें सभी सुख साधनों के होने, पुर के चारों ओर उपनगरों और सैंकड़ों सुरम्य उपवनों के बनने तथा पुर में वायु तक के बिना आज्ञा प्रवेश न कर सकने आदि का वर उनसे माँगा ।।४-५ ६।। तब ब्रह्माजी 'ऐसा ही होगा' कह कर वहीं अन्तर्धान होगये। उनसे वर प्राप्त होने पर उसकी सभी इच्छाएँ पूरी हुईं तथा वह अत्यत आनन्दपूर्वक अपने उस वज्रपुर में रहने लगा ।।७।।

कोटिशो वरलब्ध तमसुरा परिवार्य ते ।
ऊपुर्वज्रपुरे राजन्सवाहेपु तथैव च ।।८
शाखानगरमुख्येषु रम्येषु च नराधिप।
हृष्टपुष्टप्रमुदिता नृप देवस्य शत्रव ।।९
वज्रनाभोऽथ दुष्टात्मा वरदानेन दर्पित ।
पुरेऽस्य चात्मनश्चैव जगद्बाधितुमुद्यत ।।१०
महेन्द्रमब्रवीद्गत्वा देवलोक विशापते ।
अहमीशितुमिच्छामि त्रैलोक्य पाकशासन ।।११
अथवा मे प्रयच्छस्व युद्ध देवगणेश्वर ।
सामान्य हि जगत्कृत्स्न काश्यपाना महात्मनाम् ।।१२
स बृहस्पतिना सार्द्धं मन्त्रयित्वा महेश्वर ।
वज्रनाभ सुरश्रेष्ठ प्रोवाच कुरुनन्दन ।।१३
सत्रेषु दीक्षित सौम्य कश्यपो न पिता मुनि ।
तस्मिन्वृत्ते यथा न्याय्य तथा स हि करिष्यति ।।१४

फिर सब ओर से करोड़ो दैत्य वहाँ आकर उसके आश्रय में बस गये । कुछ असुर उपनगरों में और कुछ उपवनों में निवास करने लगे। वे सभी दैत्य विशालकाय प्रसन्न मुख और हृष्टपुष्ट थे ।।८ ९।। इस प्रकार सभी दानव आनद पूर्वक निवास कर रहे थे, तब वह दैत्य ब्रह्माजी के वर से गर्वीला होकर ससार को दुःख देने में तत्पर हुआ ।।१०।। उस दैत्य ने एक बार स्वर्ग में जाकर इन्द्र

से कहा कि—हे महेन्द्र ! अब मैं तीनों लोकों पर राज्य करना चाहता हूँ इसलिये तुम मेरी इस बात को नहीं मानना चाहते तो मुझसे युद्ध करलो। वैसे इस विश्व पर राज्य करने का अधिकार हम कश्यप वंश वालों को ही है ॥ ११-१२ ॥ तब इन्द्र ने अपने गुरु बृहस्पतिजी से परामर्श करके उसे उत्तर दिया कि —हे सौम्य ! हमारे पिता कश्यपजी ने यज्ञ की दीक्षा ले रखी है जब उनका यज्ञ पूर्ण हो जायगा तब उनके आदेशानुसार ही सब निर्णय हो सकेगा ।१३-१४।

तत स पितरं गत्वा कश्यपं दानवोऽब्रवीत् ।
यथोक्तं देवराजेन तमुवाचाथ कश्यप ॥१५
सत्रे वृत्ते करिष्यामि यथान्याय भविष्यति ।
त्वं तु वज्रपुरे पुनर्वस गच्छ समाश्रित । १६
एवमुक्ते वज्रनाभ स्वमेव नगरं गत ।
महेन्द्रोऽपि ययौ देवो द्वारकां द्वारशालिनीम् । १७
गत्वा चार्न्तहितो देवो वासुदेवमथाब्रवीत् ।
वज्रनाभस्य वृत्तांत तमुवाच जनार्दन ॥१८
शौरेरुपस्थितो देव वाजिमेधो महाक्रतु ।
तस्मिन्वृत्ते वज्रनाभ पातयिष्यामि वासव ॥१९
तत्रोपाय प्रवेशे तु चिंतयाव सता गते ।
नानिच्छया प्रवेशोऽस्ति तत्र वायोरपि प्रभो ॥२०

फिर उस दैत्य ने अपने पिता कश्यपजी के पास जाकर उन पर अपना अभिप्राय प्रकट किया । तब वे उससे बोले—हे बेटा ! अभी जब तक मैं यज्ञ के अनुष्ठान में लगा हू, तब तक तुम आनन्द से वज्रपुर में निवास करो, जब यज्ञ सम्पूर्ण हो जायगा, तब इस पर विचार करूँगा ॥१५ १६॥ पिता की बात सुन कर दैत्य अपने पुर को चला गया और इधर इन्द्र ने द्वारका जाकर श्रीकृष्ण को सब वृत्तांत बताया । तब श्रीकृष्ण ने उनसे कहा—हे देवेन्द्र ! महात्मा वसुदेवजी शीघ्र ही अश्वमेध यज्ञ आरंभ करने वाले हैं, उस यज्ञ के अवसर पर ही मैं उसका वध कर डालूँगा ॥ १७ १८ १९ ॥ परन्तु ब्रह्माजी के वर के कारण उसके

पुर मे वायु भी उसकी आज्ञा के बिना नही घुस सकता, इसलिये कोई ऐसा उपाय सोचना चाहिये कि ब्रह्माजी के वचन का भी उल्लघन न हो पावे और पुर मे भी प्रवेश हो सके ॥२०॥

ततो गतो देवराजो वासुदेवेन सत्कृत ।
वाजिमेधे च सप्राप्ते वसुदेवस्य भारत ॥२१
तस्मिन्यज्ञे वर्तमाने प्रवेशार्थं सुरोत्तमौ ।
चिंतयामासतुर्वीरौ देवराजाच्युतावुभौ ॥२२
तत्र यज्ञे वर्तमाने सुनाट्येन नटस्तदा ।
महर्षीस्तोषयामास भद्रनामेति नामत ॥२३
त वरेण मुनिश्रेष्ठाश्छन्दयामासुरात्मवान् ।
स वव्रे तु नटो भद्रो वर देवेश्वरोपम ॥२४
देवेन्द्रकृष्णच्छन्देन सरस्वत्या प्रचोदित
प्रणिपत्य मुनिश्रेष्ठानश्वमेधे समागतान् ॥२५
भोज्यो द्विजाना सर्वेषा भवेय मुनिसत्तमा ।
सप्तद्वीपा च पृथिवी विचरेयमिमामहम् ॥२६
प्रसिद्धाकाशगमन शक्तुवश्च विशेषत ।
अवध्य सर्वभूताना स्थावरा ये च जङ्गमा ॥२७
यस्य यस्य च वेषेण प्रविशेयमह खलु ।
मृतस्य जीवतो वापि भाव्येनोत्पादितस्य वा ॥२८
सतूर्यस्तादृश स्या वै जरारोगविवर्जित ।
तुष्येयुमु नयो नित्यमन्ये च मम सर्वदा ॥२९

इस प्रकार के वार्तालाप के पश्चात् भगवान के द्वारा सत्कार को प्राप्त हुए देवराज स्वर्ग लोक को चले गये और इधर कुछ समय मे ही वसुदेवजी का यज्ञ आरम्भ होगया ॥२१॥ इसी अवधि मे श्रीकृष्ण और इन्द्र दोनो ही दैत्यराज के वज्रपुर मे घुसने के उपाय पर विचार करने लगे ॥२८॥ जिस समय वसुदेवजी का यज्ञ निर्विघ्न रूप से सम्पन्न होने को था, तभी भद्र नामक एक नट ने

नाभ की पुत्री प्रभावती के समान सौ दर्यमयी कन्या तीनों लोको मे कही भी नही है उसकी मुख कान्ति चन्द्रमा के समान है ॥३८॥ सुना गया है कि उसकी माता को उसकी प्राप्ति भगवती पार्वतीजी के वरदान से हुई थी। अब उसके बधुओ ने इसका स्वयवर करना स्थिर किया है। वह कन्या स्वेच्छापूवक जिस पुरुष को चाहेगी, उसे वरण कर लेगी ॥३९-४०॥ इसलिये, तुम्हे उस बावली मे रहते हुए उस कन्या के आगे प्रद्युम्न के रूप, शील तथा गुणो का वर्णन करते रहना है ॥४१॥ वज्रनाभसुता प्रभावती जब प्रद्युम्न के रूप को प्रति आसक्त हो जाय, तब उसकी सूचना मुझे यहाँ आकर देना ॥४२॥

॥ प्रद्युम्न आदि का वज्रपुर प्रस्थान ॥

ते वासववच श्रुत्वा हसा वज्रपुर ययु ।
पूर्वोचित हि गमन तेषा तत्र जनाधिप ॥१
ते दीर्घिकासु रम्यासु निपेतुर्वीर पक्षिण ।
पद्मोत्पलैरावृतासु काञ्चनं स्पर्शनक्षमें ॥२
ते वै नदन्तो मधुर सस्कृतापूवभाषिण ।
पूर्वमप्यागतास्ते तु विस्मय जनयन्ति हि ॥३
अन्त पुरोपभोग्यासु चेरुर्वापीषु ते नृप ।
दृष्टास्ते वज्रनाभस्य त्रिविष्टपनिवासिन ॥४
आलपन्त सुमधुर धार्तराष्ट्रा जनेश्वर ।
स तानुवाच दैतेयो धार्तराष्ट्रानिद वच ॥५
त्रिविष्टपे नित्यरता भवन्तश्चारुभाषिण ।
यदैवेहोत्सवोऽस्माक भवद्भिरवगम्यते ॥६
आगन्तव्य जालपादा स्वमिद भवता गृहम् ।
विस्रब्ध च प्रवेष्टव्य त्रिविष्टपनिवासिभि ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! इन्द्र की बात सुन कर सभी हसगण उस वज्रपुर मे जा पहुँचे, जहाँ से वे पूर्व परिचित थे ॥१॥ वहाँ जाकर उन्होंने

एक अत्यन्त रमणीक बावली में निवास किया ॥२॥ इससे पहिले भी वे मधुर स्वर मे कलरव करते हुए घूमते थे, तब उन्हें देख कर वहाँ के निवासी बडे प्रसन्न होते थे। इसलिये, इस समय भी वे उसी प्रकार कल-रव करते करते हुए अन्त पुर की बावलियो मे घूमने लगे। उन्हें देख कर वज्रनाभ ने स्नेह प्रदर्शित करते हुए उनसे कहा—हे हसगण ! तुम स्वेच्छापूर्वक स्वर्ग मे रहते हो तो रहो, परन्तु, मेरे यहाँ किसी उत्सव के अवसर पर अवश्य आजाया करो। तुम इसे अपना घर समझ कर चाहे जब आने के लिये स्वतन्त्र हो ॥३-७॥

ते तथोक्ता शकुनयो वज्रनाभेन भारत ।
तथेत्युक्त्वा हि विविशुर्दानवेन्द्रनिवेशनम् ॥८
चक्रु परिचय ते च देवकार्यव्यपेक्षया ।
मानुपालापिनस्ते तु कथाश्चक्रु पृथग्विधा ॥९
वशवद्धा काश्यपाना सर्वकल्याणभागिनाम् ।
स्त्रियो रेमुर्विशेषेण शृण्वन्त्यस्य सङ्गता कथा. ॥१०
विचरन्तस्ततो हसा ददृशुश्चारुहासिनीम् ।
प्रभावती वरारोहा वज्रनाभसुता तदा ॥११
हसा परिचिता चक्रुस्ता ततश्चारुहासिनीम् ।
सखी शुचिमुखी चक्रे हसी राजसुता तदा ॥१२
सा ता कदाचित्पप्रच्छ वज्रनाभसुता सखीम् ।
विश्रम्भिता पृथक्सूक्तैराख्यानकशलैर्वराम् ॥१३
त्रैलोक्यसुन्दरी वेद्मि त्वामह हि प्रभावति ।
रूपशीलगुणैर्देवि किंचित्त्वा वक्तुमुत्सहे ॥१४
व्यतिक्रामति ते भीरु यौवन चारुहासिनि ।
यद्तीत पुनर्नैति गत स्रोत इवाम्भस ॥१५

हे राजन् ! वज्रनाभ की बात सुन कर हसो ने 'जो आज्ञा' कह कर उसे स्वीकार किया और पुरी मे पहुँच कर देवताओ का कार्य सिद्ध करने के लिये वहाँ की सब वस्तुओ को देखने लगे। उनके कलरव से अन्त पुर की स्त्रियो को

वहाँ आकर अपना नृत्य दिखलाया, जिससे यज्ञ मे उपस्थित सभी ऋषिगण अत्यन्त प्रसन्न होकर उससे वर माँगने को कहने लगे। देवताओ के समान उस नट ने जैसे ही वर माँगना चाहा, वैसे ही श्रीकृष्ण और इन्द्र की प्रेरणा से सरस्वतीजी ने उसके कठ पर अधिकार कर लिया। इसलिये वह नट उन ऋषियो से बोला ॥२३-२६॥ आकाश भ्रमण मे मेरी अबाध गति हो, स्थावर-जंगम किसी भी प्राणी के द्वारा मैं मर न सकूँ, मैं अपनी इच्छा से मरे हुए, जीवित अथवा भविष्य मे होने वाले शरीर धारियो का रूप धारण करके जहाँ जाना चाहूँ, वही चला जाऊँ, वृद्धावस्था मेरा स्पर्श न कर सके और सभी मुनि आदि मुझ पर सदैव प्रसन्न रहे। बस, मेरी यही कामना है, इसलिये ऐसा ही वर मुझे प्रदान कीजिये ॥२७-२८-२९॥

एवमस्त्विति सप्रोक्तो ब्राह्मणैर्नपते नट ।
सप्तद्वीपा वसुमती पर्यटत्यमरोपम ॥३०
पुराणि दानवेन्द्राणामुत्तराश्च कुरू स्तथा ।
भद्राश्वान्केतुमालाश्व कालाभ्र द्वीपमेव च ॥३१
पर्वणीषु तु सर्वासु द्वारका यदुमण्डिताम् ।
आयाति वरदत्त स लोकवीरो महानटः ॥३२
ततो हसान्धार्तराष्ट्रान्देवलोकनिवासिन ।
उवाच भगवाञ्शक्र सान्त्वयित्वा सुरेश्वर ॥३३
भवन्तो भ्रातरोऽस्माक काश्यपा देवपक्षिण ।
विमानवाहा देवाना सुकृतीना तथैव च ॥३४
देवानामस्ति कर्तव्य कार्यं शत्रुवधान्वितम् ।
तत्कर्तव्य न मन्त्रश्च भेत्तव्यो व. कथंचन ॥३५

मुनियो ने 'ऐसा ही होगा' कह कर उसे वर प्रदान किया और तब वह नट इस सप्तद्वीपा पृथिवी पर अपनी इच्छानुसार विचरण करने लगा ॥ ३० ॥ इस प्रकार वह दैत्यो की सभी पुरियो मे, उत्तरकुरु मे तथा केतुमाल और कालाभ्र द्वीपादि स्थानों मे घूमने लगा ॥३१॥ फिर वह यादवों की द्वारकापुरी में

भी प्रत्येक पर्व अथवा महोत्सव के अवसर पर जाने लगा ॥३२॥ इसी अवसर पर इन्द्र ने स्वर्ग लोक मे ही निवास करने वाले हंसो को बुला कर उनसे कहा कि—हे हंसगण ! आप महात्मा कश्यपजी के वंशज होने के कारण मेरे भी भाई हो और स्वर्ग मे निवास करते हुए तुम देवताओ अथवा अन्य पुण्यात्माओ के यानो का भी तुम स्वेच्छानुसार उपभोग कर सकते हो ॥३३-३४॥ इस समय शत्रुओ के मारन विषयक देवताओ का एक कार्य उपस्थित होगया है, उसे तुम ही पूरा कर सकने हो । परन्तु मैं तुम्हें जो कहता हूँ, उस रहस्य को किसी पर प्रकट मत कर देना ॥३५॥

न कुर्वता देवताज्ञामुग्रो दण्ड पतेदपि ।
सर्वत्राप्रतिषिद्ध वो गमन हससत्तमा ।।३६
गत्वाऽप्रवेश्यमन्येषा वज्रनाभपुरोत्तमम् ।
इतोऽन्त पुरवापीपु चरध्वमुचित हि व. ।।३७
तस्यास्ति कन्यारत्न हि त्रैलोक्यातिशय शुभम् ।
नाम्ना प्रभावती नाम चन्द्राभेव प्रभावती ।।३८
वरदानेत सा लब्धा मात्रा किल वरानना ।
हैमवत्या महादेव्या सकाशादिति न श्रुतम् ।।३९
स्वयवरा च सा कन्या बन्धुभि स्थापिता सती ।
आत्मेच्छया पति हसा वरयिष्यति शोभना ।।४०
तद्भवद्भिर्गुणा वाच्या प्रद्युम्नस्य महात्मन: ।
सद्भूता कुलरूपस्य शीलस्य वयसस्तथा ।।४१
यदा सा रक्तभावा च वज्रनाभसुता सती ।
तस्या सकाशात्सदेशो नयितव्य समाधिना ।।४२

हे हस श्रेष्ठो ! देवताओं की आज्ञा का उल्लंघन करने वालो को सदा दण्ड भय उपस्थित रहता है । तुम सभी स्थानों पर जाने मे समर्थ हो, इसलिये मैं उस देवकार्य को तुमसे कहता हूँ, सुनो—तुम तुरन्त ही वज्रनाभ की सुरक्षित नगरी में जाकर वहाँ की बावली मे निवास करो ॥३६-३७॥ दानवराज वज्र-

बडा आनन्द आने लगा ॥८-१०॥ फिर उन्होने सुन्दर मुसकान वाली अत्यत रूपवती वज्रनाभसुता प्रभावती को देखा तो एक-एक हस ने उससे परिचय प्राप्त कर लिया और उनमे जो एक शुचिमुखी हसी थी, उससे तो उसका सहेली भाव ही होगया ॥११-१२॥ तदनन्तर एक दिन उस हसी और प्रभावती के मध्य विविध वार्त्तायें छिड गईं और तब अवसर पाकर हसी ने उससे कहा—हे सखी ! तुम रूप, गुण, स्वभाव आदि मे तीनो लोको मे सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी हो। मैं देखती हूँ कि तुम्हारी यौवनावस्था व्यतीत होती जारही है। जैसे जल का प्रवाह पीछे को नही लौटता, वैसे ही गया हुआ यौवन पुन नही आता ॥१३-१५॥

कामोपभोगतुल्या हि रतिर्देवि न विद्यते ।
स्त्रीणा जगति कल्याणि सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥१६
स्वयवरे च न्यस्ता त्व पित्रा सर्वाङ्गशोभने ।
न च कांश्चिद्वरयसे देवासुरकुलोद्भवान् ॥१७
व्रीडिता यान्ति सुश्रोणि प्रत्याख्यातास्त्वया शुभे ।
रूपशौर्यगुणैर्युक्तान्सदृशास्त्व कुलस्य हि ॥१८
आगतान्नेच्छसे देवि सदृशान्कुलरूपयो ।
इहैष्यति किमर्थं त्वा प्रद्युम्नो रुक्मिणीसुत ॥१९
त्रैलोक्ये यस्य रूपेण सदृशो न कुलेन वा ।
गुणैर्वा चारुसर्वाङ्गि शौर्येणाप्यति वा शुभे ॥२०
देवेषु देव सुश्रोणि दानवेषु च दानव ।
मानुषेष्वपि धर्मात्मा मनुष्य स महाबल ॥२१
य सदा देवि दृष्ट्वा हि स्रवन्ति जघनानि हि ।
आपीनानीव धेनूना स्रोतांसि सरितामिव ॥२२

स्त्रियो के लिये भोग के समान आनन्दप्रद कोई वस्तु नही है यह मैं सत्य कहती हूँ ॥१६॥ मैं हँसी नही कर रही हूँ तुम्हारे पिता ने तुम्हे स्वेच्छापूर्वक पति वरण करने का अधिकार दिया है, परन्तु तुम दैत्यवश अथवा देववश के किसी भी पुरुष को पसद नही कर रही हो ॥१७॥ जो भी तुम्हारे वश, रूप,

गुण, बल आदि में समान युवक यहाँ आये, वे सब तुम्हारी अस्वीकृति के कारण लज्जा से सिर झुका कर यहाँ से चले जाते हैं ॥१८॥ जब तुम अपने अनुरूप सभी युवकों को लौटा चुकी तो अब कौन तुमसे तिरस्कृत होना चाहेगा ? मैं एक और राजकुमार को बताती हूँ—वे रुक्मिणीजी के पुत्र प्रद्युम्न हैं, उनके समान रूप, गुण, वंश और वीरता में कोई भी पुरुष संसार में नहीं है ॥१९-२०॥ जो देवताओं में देवता माने जाते हैं, असुरों में असुर और मनुष्यों में पराक्रमी मनुष्य समझे जाते हैं ॥२१॥ जिनका एक बार दर्शन कर लेने पर स्त्रियाँ कामासक्त हो जाती हैं ॥२२॥

न पूर्णचन्द्रेण मुखं नयने वा कुशेशयैः ।
उत्सहे नोपमातुं हि मृगेन्द्रेणाथ वा गतिम् ॥२३
जगतः सारमुद्धृत्य पुत्रः स विहितः शुभे ।
कृत्वाऽनङ्गं दरं साङ्गं विष्णुना प्रभविष्णुना ॥२४
हृतेन शम्बरो बाल्ये येन पापो निबर्हितः ।
मायाश्च सर्वाः सम्प्राप्ता न च शील विनाशितम् ॥२५
यान्यान्गुणान्पृथुश्रोणि मनसा कलयिष्यसि ।
एष्टव्यांस्त्रिषु लोकेषु प्रद्युम्ने सर्व एव ते ॥२६
रुच्या वह्निप्रतीकाशः क्षमया पृथिवीसमः ।
तेजसा सूर्यसदृशो गाम्भीर्येण ह्रदोपमः ।
प्रभावती शुचिमुखी स्मितोह्योवाच भामिनी ॥२७

जिनका मुख पूर्ण चन्द्रमा के समान, आँखें कमल के समान और चाल हाथी के समान थ्या, उससे भी बढ़ कर है ॥२३॥ जिन्होंने अपने बालकपन में ही शम्बरासुर को मार दिया, जो सब प्रकार की मायाओं को जानते हैं, जो सदैव निष्कपट स्वभाव वाले हैं और जिन्हें भगवान् विष्णु ने अपने पुत्र रूप में ही उत्पन्न किया है ॥२४-२५॥ जो अग्नि के समान दीप्ति वाले, पृथिवी के समान क्षमाशील, सूर्य के समान तेजोमय और समुद्र के समान गम्भीर हैं। इन गुणों के अतिरिक्त भी जिन गुणों की तुम कल्पना कर सकती हो, वे सभी श्रेष्ठ गुण

उनमे विद्यमान हैं। परन्तु तुम्हारे द्वारा यदि राजकुमारो का इस प्रकार तिरस्कार होता रहा तो प्रद्युम्न को यहाँ किस प्रकार लाया जा सकेगा ? इसी यह कह कर चुप होगई ॥२६ २७॥

विष्णुर्मानुपलोकस्थ श्रुत सुबहुशो मया ।
पितु कथयत सौम्य नारदस्य च धीमत ॥२८
शत्रु किल स दैत्याना वर्जनीय सदाऽनघे ।
कुलानि किल दैत्याना तेन दग्धानि मानिनि ॥२९
प्रदीप्तेन रथाङ्गेन शार्ङ्गेण गदया तथा ।
शाखानगरदेशेषु वसन्ति किन येऽसुरा ॥३०
प्रद्युम्न स्याद्यथा भर्त्ता स मे वृष्णिकुलोद्भव ।
अत्यन्तवैरी दैत्यानामुद्वेजनकरो हरि ॥३१
असुराणा स्त्रियो वृद्धा कथयन्त्यो मया श्रुता ।
प्रद्युम्नस्य तथा जन्म पुरस्तादपि मे श्रुतम् ॥३२
यथा च तेन निहतो बलवान्कालशम्बर ।
हृदि मे वर्तते नित्य प्रद्युम्न खलु सत्तमे ॥३३
हेतु स नास्ति स्यात्तेन यथा मम समागम ।
दासी तवाह सख्याहं दूत्ये त्वां च विसर्जये ॥३४
पण्डिताऽसि वदोपाय मम तस्य च सङ्गमे ।
ततस्ता सान्त्वयित्वा सा प्रहसन्तीदमब्रवीत ॥३५

तब प्रभावती ने कहा—हे सखी ! महर्षि नारदजी और अपने पिताजी के द्वारा इस समय भगवान् विष्णु के मर्त्यलोक मे होने की बात मैं सुन चुकी हूँ ॥२८॥ दैत्यो के परमशत्रु उन विष्णु के चक्र धनुष और गदा के द्वारा हमारे दैत्यवंश का बडा अपकार हुआ है—यह बताते हुए मेरे पिता सभी दैत्यो को उन से बचने को कहते रहते हैं ॥२९ ३०॥ तब यह बताओ कि जब प्रद्युम्न के पिता श्रीकृष्ण दैत्यो के परमशत्रु हैं तो प्रद्युम्न के साथ मेरा विवाह किस प्रकार हो ? ॥३१॥ प्रद्युम्न के जन्म लेने और उनके द्वारा शम्बरासुर के मारे जाने का सब

वृत्तान्त मैं वृद्धाओं के मुख से सुन चुकी हूँ, तभी से मेरा चित उनके प्रति आसक्त होगया है ॥३२-३३॥ परन्तु, उनके साथ मिलने का कोई भी उपाय दिखाई नहीं देता, इसलिये यदि तुम इस विषय मे मेरी संदेश वाहिका बन सको तो बडी कृपा होगी ॥३४॥ तुम सब कार्यों मे अत्यन्त कुशल हो, इसलिये तुम ही कोई उपाय बताओ। यह सुन कर हंसी ने सान्त्वना भरे शब्दों में उससे कहा ॥३५॥

तत्र दूती गमिष्यामि तवाहं चारुहासिनि ।
इमां भक्ति तवोदारां प्रवक्ष्यामि शुचिस्मिते ॥३६
तथा चैव करिष्यामि यथैष्यति तवान्तिकम् ।
साक्षात्कामेन सुश्रोणि भविष्यति सकामिनी ॥३७
इति मे भाषितं नित्यं स्मरेथा शुचिलोचने ।
कथाकुशलता पित्रे कथयस्वायतेक्षणे ॥३८
समरस्व तत्र मे देवि हित सम्प्रक्रपतस्यसे ।
इत्युक्ता सा तथा चक्रे यत्तस्या तामथ ब्रवीत् ॥३९
दानवेन्द्रश्च तां हंसी पप्रच्छान्तःपुरे तदा ।
प्रभावत्या समाख्याता कथाकुशलता तव ॥४०
तत्त्वं शुचिमुखि ब्रूहि कथा योग्यतया वरे ।
किं त्वया दृष्टमाश्चर्यं जगत्युत्तमपक्षिणि ॥४१

शुचिमुखी हंसी बोली—हे सुन्दर मुसकान वाली सखी ! मैं तुम्हारी संदेश-वाहिका बन कर अभी वहाँ जाती हूँ और प्रद्युम्न को तुम्हारे प्रेम का संदेश देकर उन्हें यहाँ लाने का भी प्रयत्न करूँगी। यदि तुम्हारा यह कार्य बन गया तो फिर तुम साक्षात् कामदेव की भार्या बन जाओगी ॥३६-३७॥ हे सुन्दर नयन वाली ! तुम मेरे वचन की स्मरना करो तो भविष्य मे देखोगी, परन्तु अभी तो तुम अपने पिता के पास जाकर मेरे वाक्-चातुर्य के विषय में उनसे कहो ॥३८॥ मेरा विश्वास है कि तुम्हारी कामना अवश्य पूरी होगी। शुचिमुखी की बात सुन कर प्रभावती उसी समय अपने पिता के पास गई और उसने उन्हें हंसी के वाक्-चातुर्य की बात बताई ॥३९॥ दैत्यराज ने अपनी पुत्री के मुख से हंसी की यह

विशेषता सुनी तो वह तुरन्त ही उसके पास जाकर बोला—हे हंसी ! प्रभावती ने मुझे तुम्हारे वाक् चातुर्य के विषय मे बताया था, जिससे प्रभावित होकर ही मैं तुम्हारे पास आया हूँ ॥ ४० ॥ इस समय मैं यही पूछना चाहता हूँ कि क्या तुमने इस जगत् मे शुभ अशुभ युक्त अथवा अभूतपूर्व किसी आश्चर्य उत्पन्न करने वाली घटना को देखा है ? यदि देखा हो तो उसे भले प्रकार मुझसे कहो ॥ ४१ ॥

अदृष्टपूर्वमन्यैर्वायोग्यायोग्यमनिन्दिते ।
सोवाच वज्रनाभ तु हंसी वरनरोत्तम ॥४२
श्रूयतामित्यथामन्त्र्य दानवेन्द्र महाद्युतिम् ।
दृष्टा मे शाण्डिली नाम सध्वी दानवसत्तम ।
आश्चर्य कर्म कुर्वन्ती मेरपार्श्वे मनस्विनी ॥४३

सुमनाश्चैव कौशल्या सर्व भूतहिते रता ।
कथचिद्वरशाण्डिल्या शैलपुत्र्या शुभा सखी ॥४४
नटश्चैव मया दृष्टो मुनिदत्तवरे शुभ ।
कामरूपी च भोज्यश्च नं लोक्ये नित्य समत ॥४५

कुरून्यात्युत्तरान्वीर कालाम्रद्वीपमेव च ।
भद्राश्वान्केतुमालाश्च द्वीपानन्यास्तथानघ ॥४६
देवगन्धर्वगेयानि नृत्यानि विविधानि च ।
स वेत्ति देवान्नृत्येन विस्मापयति सर्वथा ॥४७

हे राजन् ! दैत्यराज की बात सुन कर हंसी ने उसे अभिवादन किया और कहने लगी—हे राजन् ! जो मैं कहती हूँ, उसे सुनो । सुमेरु पर्वत के निकट शाण्डिली नाम की मनस्विनी तथा सब प्राणियो का हित करने वाली एक साध्वी के विस्मयजनक कार्यों को मैंने देखा है ॥४२ ४३॥ उसकी एक परम सखी कौशल्या नाम की मनस्विनी है । उसके अतिरिक्त मैंने एक ऐसे नट को भी देखा है जो मुनियो के वरदान के कारण अपनी इच्छानुसार रूप धारण करने वाला, नृत्य और अभिनय मे कुशल तथा सब का प्रिय है । वह कभी उत्तर कुरु, कभी कालाम्र द्वीप, कभी भद्राश्व, कभी केतुमाल अथवा अन्यान्य स्थानो में जाता

हुआ तीनों लोकों में विचरण करता रहता है ॥४४-४५-४६॥ उसके देवताओं और गंधर्वों के समान नृत्य को देख कर और गायन को सुन कर देवताओं को भी आश्चर्य होता है ॥४७॥

श्रुतमेतन्मया हंसि न चिरादिव विस्तरम् ।
चारणानां कथयतां सिद्धानां च महात्मनाम् ॥४८

कुतूहलं ममाप्यस्ति सर्वथा पक्षिनन्दिनि ।
नटे दत्तवरे तस्मिन्सत्त्ववस्तु न विद्यते ॥४९
सप्तद्वीपान्विचरति नटः स दितिजोत्तम ।
गुणवन्तं जनं श्रुत्वा गुणकार्यं स सर्वथा ॥५०

तव चेच्छृणुयाद्वीर सद्भूतं गुणविस्तरम् ।
नटः तदागत विद्धि पुरं तव महासुर ॥५१
उपायं सृजतां हंसि येनेह स नटः शुभे ।
आगच्छेन्मम भद्रं ते विषयं पक्षिनन्दिनि ॥५२

ते हंसा वज्रनाभेन कार्यहेतोर्विसर्जिता ।
देवेन्द्रायाथ कृष्णाय शशंसुः सर्वमेव तत् ॥५३
अधोक्षजेन प्रद्युम्नो नियुक्तस्तत्र कर्मणि ।
प्रभावत्याश्च संसर्गे वज्रनाभवधे तथा ॥५४

वज्रनाभ बोला—हे हंसी ! कुछ दिन पहिले सिद्धों और चारणों ने उस नट के विषय में मुझे बहुत कुछ बताया था ॥४८॥ मैं भी उसे देखने के लिये अत्यन्त उत्सुक हूँ, परन्तु उसे बुलाने के लिये किसी प्रकार का निहोरा न करके ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि वह मेरी प्रशंसा सुन कर स्वयं ही यहाँ आजाय ॥४९॥ इस पर हंसी ने कहा—हे दैत्यराज ! वह नट सभी द्वीपों में भ्रमण करता रहता है । वह लोग गुण को ग्रहण करने वाले होते हैं, वे जहाँ पर गुण का होना सुनते हैं, वहीं स्वयं पहुँच जाते हैं ॥५०॥ जब वह आपके परम गुणों को सुनेगा, तब यहाँ अवश्य ही आकर उपस्थित हो जायगा ॥५१॥ हंसी के यह कहने पर वज्रनाभ बोला—हे हंसी ! तुम उसे मेरे नगर में बुलाने के लिये कोई उपाय

करो ।।५२।। यह कह कर दैत्यराज ने उन सभी हंसो को वहाँ से जाने की अनुमति प्रदान कर दी। हे राजन्! यद्यपि वे हंस वज्रनाभ के कार्य से गये थे, परन्तु उन्होने वहाँ से स्वर्ग मे जाकर इन्द्र को और द्वारका जाकर श्रीकृष्ण को सब वृत्तान्त सुना दिया ।।५३।। तब श्रीकृष्ण ने प्रभावती के साथ विवाह करने और वज्रनाभ को मारने विषयक सभी कार्य प्रद्युम्न पर छोड दिया ।।५४।।

दैवी माया समाश्रित्य सविधाय हरिर्नटम् ।
नटवेषेण भैमाना प्रेषयामास भारत ।।५५
प्रद्युम्न नायकं कृत्वा साम्बं कृत्वा विदूषकम् ।
पारिपार्श्वे गदं वीरमन्यान्भैमास्तथैव च ।।५६
वारमुख्या नटीं कृत्वा तत्तयँसदृशास्तदा ।
तथैव भद्र भद्रस्त सहायाश्च तथाविधान् ।।५७
प्रद्युम्नविहितं रम्यं विमानं ते महारथाः ।
जग्मुरारुह्य कार्यार्थं देवानामभितौजसाम् ।।५८
एकैकस्य समा रूपे पुरुषा पुरुषस्य ते ।
स्त्रीणा च सदृशा सर्वे ते स्वरूपैर्न राधिपा ।।५९
ते वज्रनगरस्याथ शाखानगरमुत्तमम् ।
जग्मुर्दानवसंकीर्णं स्वपुरं नाम नामत ।६०

फिर उन्होने दिव्य माया के द्वारा यादवो का नट वेश बनाया और उन्हे वज्रनाभ पुर जाने का आदेश दिया ।।५५।। उस नट मण्डली के नायक प्रद्युम्न हुए तथा साम्ब ने विदूषक का वेश बनाया और गद आदि अन्यान्य यादवगण तथा अनेको वार वधू नटी के वश मे सुसज्जित की गई। इस प्रकार श्रीकृष्ण के द्वारा नट वेश मे सुसज्जित यादवगण प्रद्युम्न के आदेशानुसार रथारूढ होकर देवताओ का कार्य करने के लिये वहाँ से चले ।।५६-५७ ५८। उन नट वेश वाले यादवो का अद्वितीय रूप था, उनका कठ-स्वर और देहगत लावण्य स्त्रियो को भी मोहित करने वाला था ।।५९। इस प्रकार नट वेशधारी वे यादव दानवो से भरे वज्रनाभ पुर के उपनगर स्वपुर मे जा पहुँचे ।।६०।।

।। प्रद्युम्न-प्रभावती मिलन ।।

ततः सुपुरवासीनामसुराणां नराधिप ।
ददावाज्ञां वज्रनाभो दीयतां गृहमुत्तमम् ।।१
आतिथ्य क्रियतामेषां बहुरत्नमुपायनम् ।
वासांसि सुविचित्राणि सुखाय जनरञ्जनम् ।।२
भर्तुराज्ञां समालभ्य तथा चक्रुश्च सर्वशः ।
पूर्वं श्रुतो नटः प्राप्तः कौतूहलमजीजनत् ।।३
नटस्याथ ददुर्दैत्याः सत्कारं परया मुदा ।
पर्यायार्थं ददुश्चापि रत्नानि सुबहून्यथ ।।४
ततः स ननृते तत्र वरदत्तो नटस्तथा ।
स्वपुरे पुरवासीनां परं हर्षं समादधत् ।।५
रामायणं महाकाव्यमुद्देश्य नाटकीकृतम् ।
जन्म विष्णोरमेयस्य राक्षसेन्द्रवधेप्सया ।।६

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन्! उन नटों के आगमन से सभी नगर निवासी उत्सुक हो उठे और वज्रनाभ ने दैत्यों को उनके ठहरने के लिये उत्तम स्थान देने का आदेश दिया ।।१।। उनका उचित सत्कार किया जाय तथा उपहार स्वरूप विविध रत्न, वस्त्रादि उन्हें दिये जाँय—इस आज्ञा के मिलते ही दानवों ने तुरन्त ही वैसी व्यवस्था करदी। उन नटों की प्रसिद्धि भी वहाँ पहिले से ही होरही थी ।।२-३।। इसलिये सभी दानवों ने उन नटों का भले प्रकार अतिथि-सत्कार कर उन्हें सुसज्जित होने के लिये अनेक प्रकार के रत्न प्रदान किये ।।४।। फिर जब उन नटों के नायक ने नृत्य आरम्भ किया तब तो नागरिकों में अमोमित आनन्द छागया ।।५।। नृत्य के पश्चात् रामायण महाकाव्य पर आधारित अभिनय प्रारम्भ हुआ, उसमें रावण को मारने के लिये राम का जन्म होने का दृश्य दिखाया जारहा था ।।६।।

संस्कराभिनयौ तेषां प्रस्तावाना च धारणम् ।
दृष्ट्वा सर्वे प्रवेशं च दानवा विस्मयं गताः ।।७

ते रक्ता विस्मयं नेदुरसुगाः परया मुदा।
उत्थायोत्थाय नाटयस्य विषयेषु पुन पुन ॥८
ददुर्वस्त्राणि तुष्टाश्च ग्रैवेयवलयानि च।
हारान्मनोहरांश्चैव हेमवैदूर्यभूषितान् ॥९
ततो हंसी प्रभावत्या सखी प्राह प्रभावतीम्।
गताऽस्मि द्वारकां रम्यां भैमगुप्तामनिन्दिते ॥१०
प्रद्युम्नश्च मया दृष्टो विविक्ते चारुलोचने।
भक्तिश्च कथिता तस्य मया तव शुचिस्मिते ॥११
तेन हृष्टेन कालश्च कृतः कमललोचने।
अद्य प्रदोषसमये त्वया सह समागमे ॥१२

उनकी अभिनय कुशलता और प्रस्तावना आदि कार्यों को देख कर सभी उपस्थित दैत्य बडे विस्मित हुए और जब नाटक का एक एक दृश्य अभिनीत होकर बदलने लगा तब तो वे आनन्द के कारण कोलाहल करने लगे। साथ ही उन्होंने उन अभिनेताओं को श्रेष्ठ रत्न, कंठ हार, वैदूर्य आदि मणियो से जडी हुई माला आदि तथा श्रेष्ठ वस्त्रादि भेंट किये ॥७-८-९॥ इसी अवसर पर शुचिमुखी हंसी प्रभावती के पास गई और उससे कहने लगी—हे राजकुमारी ! मैं यादवो की द्वारका पुरी मे गई थी और वहां प्रद्युम्न से एकान्त मे मिल कर तुम्हारे प्रेम का वृत्तान्त उन्हे सुना दिया, इस पर उन्हे बडी प्रसन्नता हुई और आज ही सायंकाल मे तुम्हारे पास आने का उन्होने वचन दिया है ॥१०-११-१२॥

तदद्य रुचिरश्रोणि तव प्रियसमागमः।
न ह्यात्मवति भाषन्ति मिथ्या भैमकुलोद्भवाः ॥१३
ततः प्रभावती हृष्टा हंसी तामिदमब्रवीत्।
उषिताऽसि मयाऽऽवासे स्वप्तुमर्हसि सुन्दरि। १४
त्वयाऽहं सहिताऽऽवासे द्रष्टुमिच्छामि केशविम्।
निःसाध्वसा भविष्यामि त्वया सह विहङ्गमे ॥१५
हंसी तथेति चोवाच सखीं कमललोचनाम्।
आरुरोह च तद्धर्म्यं प्रभावत्या विहङ्गमा ॥१६

विश्वकर्मकृते तत्र हर्म्यपृष्ठे प्रभावती ।
सविधानं चकाराशु प्रद्युम्नागमनक्षमम् ॥१७

इसलिये आज तुम्हारा अपने प्रिय से मिलना अवश्यभावी है, क्योकि यदु-वंशी कभी मिथ्या भाषण नही करते ॥१३॥ तब प्रभावती बडी हर्षित हुई और वह हर्ष से बोली—हे सखी ! तुम बहुत काल से मेरे घर मे रहती हो, इसलिये आज रात्रि मे भी तुम्हे यहाँ रहना होगा ॥१४॥ क्योकि कृष्णपुत्र प्रद्युम्न को मैं तुम्हारे सामने ही देखना चाहती हूँ उस समय तुम यहाँ रहोगी तो मुझे कोई भय नही रहेगा ॥१५॥ राजकुमारी के प्रस्ताव से सहमत हुई हुई हसी उसके साथ ही एक विश्वकर्मा निर्मित प्रासाद पर चढ कर प्रद्युम्न के सत्कार-योग्य वस्तुओ को इकट्ठा करने लगी ॥१६-१७॥

॥ प्रद्युम्न प्रभावती विवाह ॥

आविष्टेयं मया बाला सर्वथेत्यवगम्य तु ।
कार्ष्णिर्हृष्टेन मनसा हंसीमिदमुवाच ह ॥१
दैत्येन्द्रतनया प्राप्तमवगच्छस्व मामिह ।
षट्पदैः सह षट्पादो भूत्वा माल्ये निलीय हि ॥२
विधेयोऽस्मि प्रभावत्या यथेष्ट मयि वर्तताम् ।
इत्युक्त्वा दर्शयामास सुरूपो रूपमात्मन ॥३
तद्धर्म्यपृष्ठं प्रभया द्योतितं तस्य धीमत ।
अभिभूता प्रभा चैव राजश्चन्द्रोद्भवा शुभा ॥४
प्रभावत्यास्तु तं दृष्ट्वा ववृधे काममागर ।
चन्द्रस्येवोदये प्राप्ते पर्वण्या सरिता पति ॥५
सलज्जावीमुखी किञ्चिन्निर्वर्णयन्ती तिर्यगवेक्षिणी ।
प्रभावती तदा तस्यौ निश्चल कमलेक्षणा ॥६
करेणाथ प्रदेशे ता चारुभूषणभूषिताम् ।
स्पृष्ट्वाऽऽसन वरारोहा रोमाञ्चितनूरुस्तत ॥७

मनोरथशतैर्लब्धं किं पूर्णेन्दुसमप्रभम् ।
अधोमुखं मुखं कृत्वा न मां कञ्चित्प्रभाषसे ।।८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! श्रीकृष्ण-पुत्र प्रद्युम्न ने प्रभावती को अपने ऊपर आसक्त जान कर हंसी से कहा कि तुम दैत्यपति वज्रनाभ की पुत्री से कह दो कि मैं भौंरों मे मिल कर माला के साथ ही उनके यहाँ आकर उपस्थित होगया हूँ ।।१-२।। इस समय मैं प्रभावती का अनुगत हूँ, और जैसा वह कहे वैसा ही करने को तत्पर हूँ, यह कहते हुए प्रद्युम्न अपने यथार्थ रूप मे वहाँ प्रकट हो-गये ।।३।। उनके रूप की आभा से सम्पूर्ण महल जगमगा उठा और चन्द्रमा की चाँदनी भी फीकी पडगई ।।४।। जैसे पूर्णिमा के चन्द्रमा को देख कर समुद्र उमडने लगता है, वैसे ही प्रद्युम्न के दर्शन करते ही, प्रभावती के हृदय का प्रेम रूपी समुद्र उमड पड़ा ।।५।। परन्तु वह पद्माक्षी लज्जा से सिर झुकाये हुए और कभी-कभी उनकी ओर देखती हुई मौन भाव से बैठी रही ।।६।। तब प्रद्युम्न ने उसकी ठोडी को ऊपर की ओर करते हुए कहा कि मैं घोर परिश्रम करने के पश्चात् तुम्हारे चन्द्रमुख को देख सका हूँ, फिर तुम सिर झुकाये हुए क्यों बैठी हो ? ।।७ ८।।

प्रमोपमर्दं मा कार्षीर्वदनस्य वरानने ।
साध्वसं त्यज्यतां भीरु दासं साध्वनुगृह्यताम् ।।९
न कालमिव पश्यामि भीरु भीरुत्वमुत्सृज ।
याचाम्येषोऽञ्जलिं कृत्वा प्राप्तकालं निबोध मे ।।१०
गान्धर्वेण विवाहेन कुरुष्वानुग्रहं मम ।
देशकालानुरूपेण रूपेणाप्रतिमा सती ।।११
उपस्पृश्य ततो धीमो मणिस्थं जातवेदसम् ।
जुहाव समये वीर पुष्पैर्मन्त्रानदीरयन् ।।१२
जग्राहाथ करे तस्या वराभरणभूषितम् ।
चक्रे प्रदक्षिणं चैव तं मणिस्थं हुताशनम् ।।१३
प्रजज्वाल स तेजस्वी मानयन्नच्युतात्मजम् ।
भगवाञ्जगतः साक्षी शुभस्याथाशुभस्य च ।।१४

उद्दिश्य दक्षिणा वीरो विप्राणा यदुनन्दन ।
उवाच ह सी द्वारस्था तिष्ठावा रक्ष पक्षिणि ॥१५

हे श्रेष्ठ मुख वाली ! तुम भयभीत न हो और जब मैं तुम्हारा अनुगत यहाँ उपस्थित हूँ तो भय का कोई कारण है भी नही ॥९॥ मैं तुम्हे किंचित् भी भयभीत नही देखना चाहता, इसलिये तुम भय को बिल्कुल ही छोड दो और इस समय गाधर्व विवाह करने की मुझे अनुमति दो ॥१०-११॥ यह कह कर प्रद्युम्न ने मन्त्रो का उच्चारण कर मणि मे स्थित अग्नि को स्पर्श करके आहुति प्रदान की ॥१२॥ फिर श्रेष्ठ आभूषण वाली प्रभावती का पाणिग्रहण करके मणि मे स्थित अग्नि की परिक्रमा करने लगे ॥१३॥ तभी सम्पूर्ण विश्व के शुभ-अशुभ कर्मों के द्रष्टा अग्नि देवता प्रद्युम्न के सम्मानार्थ प्रज्वलित हो उठे ॥१४॥ इस प्रकार विवाह होने के उपलक्ष मे ब्राह्मणो को दक्षिणा सकल्प करके उन्होने हंसी को रक्षा के लिये द्वार पर नियुक्त किया ॥१५॥

वज्रनाभस्य तु भ्राता सुनाभो नाम विश्रुत ।
दुहितृद्वय च नृपतेस्तस्य रूपगुणान्विनम् ॥१६
एका चन्द्रवती नाम्ना गुणवत्यथ चापरा ।
प्रभवात्यालय ते तु व्रजत खलु नित्यदा ॥१७
ददृशाते तु ते तत्र रतिसक्ता प्रभावतीम् ।
परिपप्रच्छतुश्चैव विस्रम्भोपगता सतीम् ॥१८
सोवाच मम विद्याऽस्ति याऽधीना वाञ्छित पतिम् ।
ररयर्थ साऽऽनयत्याशु सौभाग्य च प्रयच्छति ॥१९
देव वा दानव वापि विवश मद्य एव हि ।
साऽहं रमामि कान्तेन देवपुत्रेण धीमता ॥२०
दृश्यता मत्प्रभावेण प्रद्युम्न सुप्रियो मम ।
ते दृष्ट्वा विस्मय याते रूपयौवनसम्पदम् ॥२१

दैत्यराज वज्रनाभ का सुनाभ नामक एक भाई था । उसकी दो पुत्रियाँ चन्द्रवती और गुणवती नाम की थी । वे दोनों सुन्दरी प्रभावती के भवन में प्रति

का पाणिग्रहण कर लिया। उनमें गद का चन्द्रवती में और साम्ब का गुणवती से विवाह हुआ ॥३२-३३॥ फिर वे इन्द्र और श्रीकृष्ण के आदेश प्राप्ति की प्रतीक्षा करते हुए उन दानव पुत्रियों के साथ आनन्द पूर्वक दिन काटने लगे ॥३४॥

॥ श्रीकृष्ण द्वारा शिवजी की स्तुति ॥

जगतश्चक्षुपि ततो मुहूर्ताभ्युदिते रवौ ।
प्रादुरासीद्धरिर्देवस्ताक्ष्येणोरगशत्रु णा ॥१
हृ सवायुमनोभिश्च सुशीघ्रतरग भग ।
तस्थौ वियति शक्रस्य समीपे कुरुनन्दन ॥२
समेत्य च यथान्याय कृष्णो वासवसन्निधौ ।
पाञ्चजन्य हरिर्दध्मौ दैत्याना भयवर्द्धनम् ॥३
त श्रु त्वाऽभ्यागतस्तत्र प्रद्युम्नो वरवीरहा ।
वज्रनाभ जहीत्युक्त केशवेन त्वरेति च ॥४
ताक्ष्यमारुह्य गच्छेति पुनरेव प्रणोदित ।
चकार स तथा वीर प्रणिपत्य सुरोत्तमौ ॥५
स मनोरहसा वीर ताक्ष्येणाशु ययौ नृप ।
अभ्यास वज्रनाभस्य महाद्वन्द्वस्य भारत ॥६
ततस्ताक्ष्यंगतो वीरस्ततर्द रणमूर्द्धनि ।
वज्रनाभ स्थिरो भूत्वा सर्वास्त्रविदनिन्दित ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! फिर सूर्योदय होने के उपरान्त जब छः दण्ड दिन चढ गया, तब भगवान् श्रीकृष्ण गरुड पर चढ कर वज्रपुर मे आये ॥१॥ उस समय गरुड वायु से भी अधिक वेग से चले और आकाशमार्ग मे स्थित हुए इन्द्र के पास आकर ठहर गये ॥२॥ इस प्रकार जब इन्द्र और उपेन्द्र श्रीकृष्ण की भेंट हुई तब श्रीकृष्ण ने दैत्यों को भयभीत करने वाले अपने पाञ्चजन्य शख की ध्वनि की ॥३॥ उस शख ध्वनि को सुनते ही प्रद्युम्न श्रीकृष्ण के समक्ष आकर उपस्थित हुए। उस समय श्रीकृष्ण ने उनसे कहा—हे पुत्र ! तुम

तुरंत गरुड पर चढ कर दैत्यराज वज्रनाभ को मार डालो ।।४।। पिता का आदेश सुन कर प्रद्युम्न उन्हे और इन्द्र को प्रणाम किया तथा मन के से वेग वाले गरुड पर चढ कर वज्रनाभ के सामने जा पहुँचे । ५ ६।। फिर शस्त्र विद्या मे पारगत प्रद्युम्न ने युद्ध क्षेत्र मे जाकर अपने अत्यंत पैने वाणो से वज्रनाभ पर प्रहार किया ।।७।

तेन तार्क्ष्यगतेनैव गदया कृष्णसूनुना।
उरस्यभ्याहतो वीरो वज्रनाभो महात्मना ।।८
स तेनाभिहतो वीरो दैत्यो मोहवश गत
चक्षार च भृश रक्त बभ्रामैव गतासुवत् ।।९
आश्वसेत्यथ त कार्ष्णिरुवाच रणदुजय ।
लब्धसज्ञ स वीरस्तु प्रद्युम्नमिदमब्रवीत् ।।१०
साधु यादव वीर्येण श्लाघ्यो मम रिपुर्भवान् ।
प्रतिप्रहारकालोऽय स्थिरो भव महाबल ।।११
एवमुक्त्वा महानाद मुक्त्वा मेघशतोपमम् ।
गदा मुमोच वेगेन सघण्टा बहुकण्टकाम् ।।१२
तया ललाटेऽभिहत प्रद्युम्नो गदया नृप ।
उद्वमन्रुधिर भूरि मुमोह यदुनन्दन ।।१३
त दृष्ट्वा भगवान्कृष्ण पाञ्चजन्य जलोद्भवम् ।
दध्मावाश्वासनकर पुत्रस्य रिपुनाशन ।।१४
त पाचजन्यशब्देन प्रत्याश्वस्त महाबलम् ।
दृष्ट्वा प्रमुदिता लोका विशेषेणेन्द्रकेशवौ ।।१५

थोडे ही समय म उन गरुड वाहन प्रद्युम्न के गदा प्रहार से हृदय पर आघात को प्राप्त हुआ वज्रनाभ रुधिर वमन करता हुआ मूर्च्छित होगया ।।८ ९।। फिर जब उसे चेत हुआ, तब प्रद्युम्न उससे बोले—हे दैत्येन्द्र ! धीरज रखो । इस पर वज्रनाभ ने कहा—हे यदुकुमार ! अवश्य ही तुम महाबली और प्रशंसा के योग्य हो। परन्तु अब मेरे प्रहार को सहन करने के लिये संभल जाओ ।।१०•

दिन जाती थी ॥१६ १७॥ उन दोनो ने जब प्रभावती को भोगो मे आसक्त हुई देखा, तब उन्होने परिहासपूर्वक उसका कारण पूछा ॥१८॥ इस पर प्रभावती बोली कि मुझे एक विद्या सिद्ध है, जिसके प्रभाव से देवता, दैत्य अथवा जिस अन्यान्य युवक को पति रूप मे मान कर उसकी कामना की जाय तो वह तुरन्त ही आजाता है। वह देखो, मैंने उसी विद्या के प्रभाव से प्रद्युम्न पति मान कर यहाँ बुला लिया है। उसके सकेत पर उन दोनो ने प्रद्युम्न को यहाँ देखा तो वे दोनों ही चौंक पडी ॥१९-२१-२१॥

पुनरेवाब्रवीत्ते तु भगिन्यौ चारुहासिनी ।
प्रभावती वरारोहा कालप्राप्तमिद वच ॥२२
देवा धर्मरता नित्य दम्भशीला महासुरा ।
देवास्तपसि रक्ता हि सुखे रक्ता महासुरा ॥२३
देवा सत्ये रता नित्यमनृते तु महासुरा ।
धर्मस्तपश्च सत्य च यत्र तत्र जयो ध्रुवम् ॥२४
देवपुत्रो रयता पतो िद्या ददाम्यहम् ।
उचितो मत्प्रभावेण सद्य एवोपलप्स्यथ ॥२५
ता तथेत्यूचतुर्हृष्टे भगिन्यौ चारुलोचनाम् ।
परिपप्रच्छ भैम च कार्य तत्पतिमानिनी ॥२६
स पितृव्य गद वीर साम्ब चाथाब्रवीत्तदा ।
रूपान्विती च सुशीलौ च शूरौ च रणकर्मणि ॥२७
परितुष्टेन दत्ता मे विद्या दुर्वाससा पुरा ।
परितुष्टेन सौभाग्य सदा कन्यात्वमेव च ॥२८
देवदानवयक्षाणा य ध्यास्यसि स ते पति ।
भवितेति मया चैव वीरोऽयमभिकाक्षित ॥२९

तब उस श्रेष्ठ मुसकान वाली प्रभावती ने उनसे कहा—देवता सदा धार्मिक कार्यो को और दानव दम्भ के कारण बुरे कर्मो को करते रहते हैं। देवता सदा सत्य बोलने और दैत्य मिथ्या भाषण मे तत्पर रहते हैं। परन्तु जहाँ

तप और धर्म है, वही सत्य और विजय है ॥२२-२३-२४॥ इसलिये मैं तुम्हे भी उस विद्या को बताती हूँ, तुम भी दो देवताओं की पति रूप मे अभिलाषा करो तो वे तुम्हारे सामने तुरन्त ही आजायंगे ॥२५॥ यह सुन कर चन्द्रवती और गुणवती दोनो ने उसकी बात मान ली, तब प्रभावती ने प्रद्युम्न से सब समाचार कह कर अब क्या करना चाहिये—यह पूछा ॥२६॥ तब प्रद्युम्न ने अपने पितृव्य गद और भाई साम्ब के विषय मे कहा कि वे दोनो ही अत्यन्त सुन्दर, गुणी, सुशील तथा युद्ध-कुशल हैं ॥२७॥ यह जान कर प्रभावती ने उन दोनों को जाकर बताया कि महर्षि दुर्वासा ने इस विद्या के प्रदान पूर्वक मुझ से कहा था कि देवता, दैत्य, यक्ष आदि मे से तुम जिसे भी अपना पति बनाने की इच्छा करोगी, वही तुम्हारा पति हो जायगा । इसीलिये मैंने प्रद्युम्न को अपना पति बनाया है ॥२८-२९॥

गृह्णीतं तदिमां विद्या सद्यो वा प्रियसङ्गमः ।
ततो जगृहतुर्हृष्टे तां विद्या भगिनीमुखात् ॥३०
दध्यतुर्गदसाम्बौ च विद्यामभ्यस्य ते शुभे।
तौ प्रद्युम्नेन सहितौ प्रविष्टौ भैमनन्दनौ ३१
प्रच्छन्नौ मायया वीरौ कार्ष्णिना मायिना नृप ।
गान्धर्वेण विवाहेन तावप्यरिवलार्दनौ ॥३२
पाणि जगृहतुर्वीरौ मन्त्रपूर्वं सता प्रियौ ।
चन्द्रवत्या गदः साम्बो गुणवत्या च कैशविः ॥३३
रेमिरेऽसुरकन्याभिर्वीरास्ते यदुपुङ्गवाः ।
मार्गमाणास्त्वनुज्ञां ते शक्रकेशवयोस्तदा ॥३४

इसलिये, तुम भी इस विद्या को सीख कर शीघ्र ही प्रिय के मिलन का सुख प्राप्त करो । यह सुन कर दोनो बहिनो ने प्रभावती से उस विद्या को प्राप्त करके गद और साम्ब की कामना की तो वे दोनो यादव कुछ देर मे ही वहाँ आगये ॥३०-३१॥ परन्तु मायावी प्रद्युम्न की माया के प्रभाव से उन यान का किसी को पता न लग सका । फिर मन्त्रोच्चारण पूर्वक उन दोनों ने, दोनों कन्याओं

११।। यह वह क्रूर वज्रनाभ ने अपनी घण्टा और काँटो से युक्त गदा को भीषण गर्जन पूर्वक प्रद्युम्न पर चलाया ।।१२।। गदा लगते ही प्रद्युम्न बुरी तरह घायल होकर मुख से रक्त वमन करने लगे और उन्हे मूर्च्छा आगई ।।१३।। उनकी यह दशा देख कर श्रीकृष्ण ने अपने पाञ्चजन्य शंख की ध्वनि की, जिसे सुन कर प्रद्युम्न को चैतन्यता आगई, यह देख कर इन्द्र और कृष्ण को अत्यन्त हर्ष हुआ ।। १४-१५ ।।

तस्य चक्र करे यात कृष्णचछन्देन भारत ।
क्षुरनेमिसहस्रार दैत्सयघकुलातकम् ।।१६
तन्मुमोचाच्युतसुतस्तस्य नाशाय भारत ।
नमस्कृत्वा सुरेन्द्राय कृष्णाय च महात्मने ।।१७
वज्रनाभस्य तःकायादुच्चकर्त शिरस्तदा ।
नारायणसुनोन्मुक्त दैत्यानामनुपश्यताम् ।।१८
गद सुनाभमवधीद्यतमान रणाजिरे ।
हर्म्यपृष्ठे जिघासन्त रणदृप्त भयानकम् ।।१९
साम्ब समरमध्यस्थानसुरानरिमर्दन ।
निनाय निशितैर्वाणै प्रेताधिपपरिग्रहम् ।।२०
निकुम्भोऽपि हते वीरे वज्रनाभे महासुरे ।
जगाम षट्पुर वीरो नारायणभयार्दितम् ।।२१

इसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण का दानव वंश विध्वंसक सुदर्शन चक्र प्रद्युम्न के हाथ मे पहुँच गया ।।१६।। चक्र के हाथ मे आते ही प्रद्युम्न ने श्रीकृष्ण और सुरेन्द्र को प्रणाम करके उस चक्र को वज्रनाभ के संहारार्थ प्रेरित किया ।।१७।। तब उस प्रेरित हुए चक्र ने वज्रनाभ के मस्तक को सब दैत्यो के देखते-देखते छिन्न भिन्न कर धरती पर गिरा दिया ।।१८।। वज्रनाभ के भाई रणदत्त और सुनाभ अपने भवनो पर चढे हुए यादवो को लक्ष्य बना कर मार रहे थे, उन दोनो को गद ने बाणो के प्रहार से मार डाला ।।१६।। तदनन्तर साम्ब ने रणक्षेत्र मे उपस्थित सभी दानवो को अपने सुतीक्ष्ण बाणो से वध कर-करके उन्हे यम सदन को प्राप्ति कराई ।।२०।। हे राजन् ! महादानव वज्रनाभ की मृत्यु का

समाचार मिलते ही भगवान् कृष्ण से भयभीत होकर निकुम्भ अपने नगर षट्पुर को चला गया था ॥२१॥

निर्वाहिते देवरिपौ वज्रनाभे महासुरे ।
अवतीर्णौ महात्मानौ हरी वज्रपुरं तदा ॥२२
लब्धप्रशमनं चैव चक्रतु सुरसत्तमौ ।
सान्त्वयामासतुश्चैव बालवृद्धं भयार्दितम् ॥२३
इन्द्रोपेन्द्रौ महात्मानौ मन्त्रयित्वा महाबलौ ।
आयत्या च तदात्वे च बृहस्पतिमनानुगौ ॥२४
वज्रनाभस्य तद्राज्यं चतुर्द्धा चक्रतुर्नृप ।
विजयस्य चतुर्भागं जयन्ततनयस्य वै ॥२५
प्रद्युम्नस्य चतुर्भागं रौक्मिणेयसुतस्य च ।
चन्द्रप्रभस्य ददतुश्चतुर्भागं जनेश्वर ॥२६
कोटयश्चतस्रो ग्रामाणामधिकास्ता विशांपते ।
शाखापुरसहस्रं च स्फीतं वज्रपुरोपमम् ।
चतुर्द्धा चक्रतुस्तत्र सहृष्टौ शक्रकेशवौ ॥२७

इसके पश्चात् श्रीकृष्ण और इन्द्र दोनों ही वज्रपुर में जाकर प्रकट होगये। उनके आने से भय-विस्मित हुए दानव बालकों, वृद्धों आदि को उन्होंने सान्त्वना दी ॥२२-२३॥ फिर वज्रपुर का शासन-प्रबन्ध ठीक प्रकार से चल सके, इसके लिये उन्होंने देवगुरु बृहस्पतिजी से मन्त्रणा करके वज्रपुर को चार खण्डों में विभक्त कर दिया। उनमें से एक खण्ड जयन्त पुत्र विजय को, दूसरा प्रद्युम्न पुत्र अनिरुद्ध को, तीसरा खण्ड साम्ब के पुत्र को और चौथा खण्ड गद के पुत्र चन्द्रप्रभ को प्रदान किया ॥२४-२६॥ वज्रपुर के चारों ओर जो चार करोड़ गाँव और वज्रपुर के समान हजारों उपनगर थे, वे तथा कम्बल, चर्म, वस्त्र, रत्नादि विविध द्रव्यों में भी चार भाग करके उन्हीं में बाँट दिये ॥२७-२८॥

।। शम्बरासुर द्वारा प्रद्युम्न का अपहरण ।।

य एष भवता पूर्वं शम्बरघ्नेत्युदाहृत. ।
प्रद्युम्न स कथ चघ्ने शम्बरं तद्ब्रवीहि मे ।।१
रुक्मिण्या वासुदेवस्य लक्ष्म्या कामो धृतव्रत. ।
शम्बरान्तकरो जज्ञे प्रद्युम्न कामदर्शन. ।
सनत्कुमार इति य. पुराणे परिगीयते ।।२
त सप्तरात्रे सपूर्णे निशीथे सूतिकागृहात् ।
जहार कृष्णस्य सुत शिशु वै कालशम्बर ।।३
विदित तस्य कृष्णस्य देवमायानुवर्तिन ।
ततो न निगृहीत स दानवो युद्धदुर्मद. ।।४
स मृत्युना परीतायुर्मायया सजहार तम् ।
दोर्भ्यामुत्क्षिप्य नगर स्व निनाय महासुर ।।५
अनपत्या तु तस्यासीद्भार्या रूपगुणान्विता ।
नाम्ना मायावती नाम मायेव शुभदर्शना ।।६
ददौ त वासुदेवस्य पुत्र पुत्रमिवात्मजम् ।
तस्या महिष्या मायिन्या दानव. कालचोदित ।।७

राजा जनमेजय ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आपने प्रद्युम्न को शम्बरासुर का मारने वाला बताया है, तो कृपया वह कथा मुझे सुनाइये कि प्रद्युम्न ने उसे कैसे मारा ? ।।१।। वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्ण की रुक्मिणी नाम की भार्या ने प्रद्युम्न को जन्म दिया था। वे प्रद्युम्न कामदेव के अवतार और पूर्वकाल में सनत्कुमार नाम से विख्यात थे ।।२। जन्म होने से सात दिन व्यतीत होने पर आधी रात के समय सूतिकागृह से ही शम्बरासुर ने प्रद्युम्न को हरण कर लिया था ।।३।। यद्यपि माया के जानने वाले भगवान् को यह सब विषय ज्ञात था, फिर भी उन्होंने शम्बरासुर को मारने का कोई यत्न नहीं किया ।।४।। इसी-लिये काल के वशीभूत हुआ वह दैत्य प्रद्युम्न को उठा कर अपने पुर मे ले गया ।।५।। माया के समान ही मायावती नाम की उसकी पत्नी थी, अभी तक उसके

कोई पुत्र नहीं हुआ था, इसलिये शम्बरासुर ने प्रद्युम्न को मायावती को दे दिया ।। ६-७ ।।

मायावती तु तं दृष्ट्वा सम्प्रहृष्टतनूरुहा ।
हर्षेण महता युक्ता पुनः पुनरुदैक्षत ।।८
अथ तस्या निरीक्षन्त्याः स्मृतिः प्रादुर्बभूव ह ।
अयं स मम कान्तोऽभूत्स्मृत्वैव चान्वचिन्तयत् ।।९
अय स नाथो भर्ता मे यस्यार्थेऽहं दिवानिशम् ।
चिन्ताशोकार्णवे मग्ना न विन्दामि रतिं क्वचित् ।।१०
अयं भगवता पूर्वं देवदेवेन शूलिना ।
खेदितेन कृतोऽनङ्गो दृष्ट्वा जात्यन्तरे मया ।।११
कथमस्य स्तनं दास्ये मातृभावेन जानती ।
भर्तुर्भार्या त्वहं भूत्वा वक्ष्ये वा पुत्र इत्युत ।।१२
एवं संचिन्त्य मनसा धात्र्यास्तं सा समर्पयत् ।
रसायनप्रयोगैश्च शीघ्रमेव व्यवर्धयत् ।।१३
धात्र्याः सकाशात्स च तां शृण्वन्रुक्मिणिनन्दनः ।
मायावतीमविज्ञानान्मेने स्वामेव मातरम् ।।१४
सा च तं वर्द्धयामास कार्ष्णिं कमललोचनम् ।
मायाश्चारमै ददौ सर्वा दानवी काममोहिता ।।१५

प्रद्युम्न को देखते ही मायावती पुलकित हो उठी और अत्यन्त हर्षित होकर उसे बारम्बार देखने लगी ।।८।। फिर उसे पूर्वजन्म का स्मरण हुआ कि यह तो मेरे पति ही थे । वह सोचने लगी कि मैं इन्ही की प्राप्ति के लिये इतनी व्यथित रहती थी ।।९-१०।। मायावती को यह भी याद आगई कि शिवजी ने क्रोध करके इसे देह-रहित कर दिया था ।।११।। इसलिये मैं इन्हे स्तन पान कैसे करा सकूँगी और पुत्र भी कैसे कहूँगी ? ।।१२।। यह सोच कर उसने प्रद्युम्न के लिये एक धाय की नियुक्ति की और रसायन आदि के प्रयोग से वह उनकी शीघ्रता से वृद्धि कराने लगी ।।१३।। रुक्मिणी पुत्र प्रद्युम्न ने धाय के कहने से मायावती

को ही अपनी माता समझा ॥१४॥ फिर जैसे जैसे प्रद्युम्न की देह-वृद्धि होने लगी, वैसे-वैसे ही कामासक्त हुई मायावती उन्हे विविध दानवी मायाएँ सिखाने लगी ॥ १५ ॥

स यदा यौवनस्थस्तु प्रद्युम्नः कामदर्शनः ।
चिकीर्षितज्ञो नारीणां सर्वास्त्रविधिपारगः ॥१६
तं सा मायावती कान्तं कामयामास कामिनी ।
इङ्गितैश्चापि वीक्षन्ती प्रालोभयत सस्मिता ।
प्रसज्जन्तीं तु तां देवीं बभाषे चारुहासिनीम् ॥१७
मातृभावं व्यतिक्रम्य किमेवं वर्तसेऽन्यथा ।
अहो दुष्टस्वभावाऽसि स्त्रीत्वे चपल मानसा ॥१८
या पुत्रभावमुत्सृज्य मयि लोभात्प्रवर्तसे ।
न तु तेऽहं सुत: सौम्ये कोऽयं शीलविपर्ययः ॥१९
तत्त्वमिच्छाम्यहं देवि कथितं को त्वयं विधिः ।
विद्युत्सम्पातचपलः स्वभावः खलु योषिताम् ॥२०
या नरेषु प्रसज्जन्ते नगाग्रेषु घना इव ।
यदि तेऽहं सुतः सौम्ये यदि वा नात्मजः शुभे ॥२१
कथितं तत्त्वमिच्छामि किमिदं ते चिकीर्षितम् ।
एवमुक्ता तु सा भीरु कामेन व्यथितेन्द्रिया ॥२२
प्रियं प्रोवाच वचनं विविक्ते केशवात्मजम् ।
न त्वं मम सुतः कान्त नापि ते शम्बरः पिता ॥२३

इस प्रकार युवावस्था मे प्रवेश करते हुए प्रद्युम्न माया और अस्त्रविद्या में पारगत होकर स्त्रियो के हाव-भाव समझने लगे। उस समय उनके रूप पर मोहित हुई मायावती विविध प्रकार के कामप्रद हाव भावो का प्रदर्शन करने लगी, इससे प्रद्युम्न ने मायावती का अपने ऊपर कामासक्त होना समझ लिया और उससे कहने लगे कि हे देवि ! तुम माता होकर भी इस प्रकार के विपरीत और दुष्टतापूर्ण भावों को क्यो प्रदर्शित करती हो ? जान पड़ता है कि दुष्टा होने से

कारण ही तुम इस प्रकार के चचल मन वाली हो ॥१६-१६। मैं तुम्हारे इस स्वभाव का कारण जानने का इच्छुक हो उठा हूँ। वैसे तो स्त्रियाँ स्वभाव से ही विद्युत् के समान चचला होती है और मेघो के पर्वतशिखर पर जाने के समान ही स्त्रियो का मन पुरुषो की ओर आकर्षित रहता है। चाहे मैं तुम्हारा पुत्र हूँ अथवा नही, परन्तु तुम मेरे प्रति विपरीत भाव से क्यो आर्पित हो ? यह मुझे बताओ। यह सुन कर मायावती प्रद्युम्न को एकान्त मे लिवा लेगई और मीठे शब्दो मे कहने लगी—हे प्रिय ! तुम मेरे पुत्र नही हो और यह शम्बरासुर भी तुम्हारा पिता नहीं है ॥२०-२३॥

रूपशानसि विक्रान्तस्त्वं जात्या वृष्णिनन्दन ।
पुत्रस्त्ववासुदेवस्य रुक्मिण्यानन्दवर्द्धन ॥२४
दिवसे सप्तमे बालो जातमात्रोपवाहितः ।
सूतिकागारमध्यात्व शिशुरुत्तानशायितः ॥२५
मम भर्ता हृतोऽसि त्व बलवीर्यप्रवर्तिना ।
पितुस्ते वासुदेवस्य धर्षयित्वा गृहं महत् ॥२६
पाकशासनकल्पस्य हृतस्त्व शम्बरेण ह ।
सा च ते करुणं माता त्वां बालमनुशोचती ॥२७
अत्यर्थं तप्यते वीर विवत्सा सौरभी यथा ।
सोऽपि शक्रादपि महान्पिता ते गरुडध्वजः ॥२८
इह त्वा नाभिजानाति बालमेवोपवाहितम् ।
कान्त वृष्णिकुमारस्त्व न हित्व शम्बरात्मज. ॥२९

तुम यादवो में श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा रुक्मिणीजी के गर्भ से उत्पन्न हुए हो ॥२४॥ तुम्हारे जन्म के सातवें दिन ही यह असुर तुम्हारा हरण कर लाया है ॥२५॥ मेरे पति शम्बरासुर ने इस प्रकार इन्द्र जैसे तेज वाले श्रीकृष्ण का घर तुम्हारे बिना सूना कर दिया और तुम्हारी माता बछड़े से बिछुड़ी हुई गौ के समान सदा रोती होगी ॥२६-२८॥ परन्तु श्रीकृष्ण को यह पता नहीं है कि शम्बरासुर ने तुम्हे हर लिया है। इस प्रकार तुम शम्बर के नहीं, श्रीकृष्ण के पुत्र हो ॥२६॥

वीर नैवंविधान्पुत्रान्दानवा जनयन्ति हि ।
अतोऽहं कामयामि त्वा न हि त्वं जनितो मया ॥३०
रूपं ते सौम्य पश्यन्ती सीदामि हृदि दुर्बला ।
यन्मे व्यवसितं कान्त यत्तु मे हृदि वर्तते ॥३१
तन्मे मनसि वार्ष्णेय प्रतिसन्धातुमर्हसि ।
एष ते कथितः सर्वः सद्भावस्त्वयि यो मम ॥३२
यथा न मम पुत्रस्त्वं न पुत्रः शम्बरस्य च ।
श्रुत्वैतमखिलं सर्वं मायावत्या प्रभाषितम् ॥३३
चक्रायुधात्मजः क्रुद्धः शम्बरं स समाह्वयत् ।
सर्वमायास्वभिज्ञोऽसौ नाम विश्राव्य चात्मनः ॥३४
अहो दानवदुष्टात्मा केशवस्यात्मजं शिशुम् ।
हरते निर्भयश्चैव भयमद्य करोम्यहम् ॥३५

हे वीर ! दैत्यो के वश मे तुम्हारे जैसे रूपवान् पुत्र कभी जन्म नही लेते। मैं तुम्हारी माता न होने के कारण ही तुम पर अनुरक्त हुई हूँ ॥३०॥ तुम्हारे अद्वितीय सौंदर्य ने मेरे चित्त को विह्वल कर दिया है। मैंने अपने अनुराग का यथार्थ कारण तुम्हें बता दिया और इसी सद्भाव के कारण इस रहस्य को भी खोल दिया है, अब तुम मेरी इच्छा को पूर्ण करो ॥३१३-२। हे राजन् ! मायावती से सम्पूर्ण वृतान्त जान कर श्रीकृष्ण पुत्र प्रद्युम्न के नेत्र क्रोध से रक्त वर्ण होगये और उन्होने तुरन्त ही शम्बरसुर के पास जाकर उसे ललकारते हुए अपना नाम बताया ॥३३-३४॥ और उससे कहा कि तूने श्रीकृष्ण के मुग्ध बालक का अपहरण करते हुए किंचित् भी भय नही माना, अब मैं ही तुझे भयभीत करूँगा ॥ ३५ ॥

॥ प्रद्युम्न द्वारा शम्बर की सेना का संहार ॥

ततः प्रवृत्तं युद्धं तु तुमुलं लोमहर्षणम् ।
शम्बरस्य तु पुत्राणां रुक्मिण्या नन्दनस्य च ॥१

तत क्रुद्धा महादैत्या शरशक्तिपरश्वधान् ।
चक्रतोमरकुन्तानि भुशुण्डीमुसलानि च ॥२
युगपत्पातयन्ति स्म प्रद्युम्नोपरि वेगिता ।
कार्ष्णायनिस्तु सक्रुद्ध सर्वाख्रनुषश्च्युतै ॥३
एकैक पञ्चभि क्रुद्धश्चिच्छेद रणमूर्द्धनि ।
पुनरेवासुरा क्रुद्धा सर्वे ते कृतनिश्चया ॥४
ववृपु शरजालानि प्रद्युम्नवधकाङ्क्षया ।
तत प्रकुपितोऽनङ्गो धनुरादाय सत्वर ॥५
शम्बरस्य जघानाशु दश पुत्रान्महौजस ।
ततोऽपरेण भल्लेन कुपित केशवात्मज ॥६
चिच्छेदाशु शिरस्तस्य चित्रसेनस्य वीर्यवान् ।
ततस्ते हतशेषास्तु समेत्य समयुद्धयन ॥७
शरवर्षं विमुञ्चन्तो ह्यभ्यधावञ्जिघांसितुम् ।
तत सन्धाय बाणास्ते विमुञ्चन्तो रणोत्सुका ॥८
क्रीडन्निव महातेजा शिरांस्येषा न्यपातयत् ।
निहत्य समरे सर्वाञ्छतमुत्तमधन्विनाम् ॥९
प्रद्युम्न समराकाङ्क्षी तस्थौ संग्राममूर्धनि ।
हत पुत्रशत श्रुत्वा शम्बर क्रोधमादधे ॥१०

वैशम्पायनजी बोले— हे राजन् ! इसके पश्चात् रुक्मिणीसुत प्रद्युम्न और शम्बरासुर के मध्य घोर संग्राम उपस्थित हुआ ॥१॥ दैत्यो ने अत्यन्त क्रोधपूर्वक बाण, शक्ति परश्वध, चक्र, तोमर, कुन्त, भुशुण्डी और मूसल आदि के द्वारा सब ओर से प्रद्युम्न पर प्रहार किया, तब प्रद्युम्न ने भी पाँच पाँच बाणो को धनुष पर चढा कर दैत्यो के सब शस्त्र छिन्न भिन्न कर डाले। इस पर वे दैत्य पहिले से भी अधिक बलशाली होकर प्रद्युम्न को मारने की इच्छा से सब ओर से बाणो को बरसाने लगे। तभी प्रद्युम्न ने एक अन्य धनुष ग्रहण करके शम्बरासुर के दस पुत्रो का वध कर दिया और फिर भाले के प्रहार से चित्रसेन का सिर काट दिया। यह देख कर शेष रहे दैत्यो ने एक साथ मिल कर उन पर भीषण प्रहार

आरम्भ किया ।।२-७।। उस समय सभी दानव प्रद्युम्न को मारने के लिये कटिबद्ध हो गये और सावधानी से अपने अस्त्रों को छोड़ने लगे। इधर प्रद्युम्न ने लीला पूर्वक ही सौ दैत्यों को मार डाला और युद्ध करने के लिये मैदान में ही खड़े रहे। अपने सौ पुत्रों की मृत्यु का वृत्तान्त सुन कर शम्बरासुर को अत्यन्त क्रोध हुआ ।। ८-१० ।।

।। प्रद्युम्न को नारद का परामर्श ।।

शम्बरस्तु ततः क्रुद्धः सूतमाह विशांपते ।
शत्रुप्रमुखतो वीर रथं मे वाहय द्रुतम् ।।१
यावदेनं शरैर्हन्मि मम विप्रियकारकम् ।
ततो भर्तुर्वचः श्रुत्वा सूतस्तत्प्रियकारकः ।।२
रथं सञ्चोदयामास चामीकरविभूषितम् ।
तं दृष्ट्वा रथमायान्तं प्रद्युम्नः फुल्ललोचनः ।।३
सदधे चापमादाय शरं कनकभूषितम् ।
तेनाहनत्सुसंक्रुद्धः कोपवञ्छम्बरं रणे ।।४
दये ताडितस्तेन देवशत्रुः सुविक्लवः ।
रथशक्तिं समाश्रित्य तस्थौ सोऽथ विचेतनः ।।५
स चेतनां पुनः प्राप्य धनुरादाय शम्बरः ।
विव्याध कार्ष्णिं कुपितः सप्तभिर्निशितैः शरैः ।।६
तान्प्राप्तान्शरान्सोऽथ सप्तभिः सप्तधाऽच्छिनत् ।
शम्बरं च जघानाथ सप्तत्या निशितैः शरैः ।।७
पुनः शरसहस्रेण षड्दक्षिणवाससा ।
अहनच्छम्बरं क्रोधाद्धाराभिरिव पर्वतम् ।।८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! उत्तेजित हुए शम्बरासुर ने अपने सारथी को बुला कर कहा—हे सूत ! तुम मेरे रथ को शीघ्र ही शत्रु के सामने ले चलो ।।१।। मेरा अपकारी शत्रु को अब मैं शीघ्र ही मार देना चाहता हूँ ।

अपने स्वामी का आदेश सुनते ही सारथि ने रथ मे योजित सोने के आभूषणो से सजे हुए भल्लूको को चलाया। शम्बर को रथ के द्वारा आता हुआ देख कर प्रद्युम्न हर्षित होगये और उन्होने अपने धनुष पर बाण चढा कर शम्बरासुर पर प्रहार किया ।।२ ४।। वह बाण उसके हृदय मे जाकर लगा तब चेतना हीन होकर रथ के सहारे ही टिका रहा ।।५।। फिर कुछ क्षणो मे ही चैतन्य होकर उसने अपने सात सुतीक्ष्ण बाणो को धनुष पर चढा कर प्रद्युम्न को लक्ष्य किया ।।६।। परन्तु प्रद्युम्न ने उन बाणो को बीच मे ही काट कर सत्तर बाणो को एक साथ छोड कर दैत्यराज को उनसे बींध डाला ।।७।। फिर उन्होने उस असुर पर इन्द्र द्वारा पर्वतो पर जल-वृष्टि करने के समान ही एक हजार बाणो की वर्षा की ।। ८ ।।

प्रदिशो विदिशश्चैव शरधारासमावृता ।
स दिशो विदिशश्चैव शरधारा समावृणोत् ।।९
अन्धकारीकृत व्योम दिनकर्ता न दृश्यते।
ततोऽन्धकारमुत्सार्य वैद्युतास्त्रेण शम्बर ।।१०
प्रद्युम्नस्य रथोपस्थे शरवर्षं मुमोच ह ।
तदस्त्रजाल प्रद्युम्न शरेणानतपर्वणा ।।११
विच्छेद बहुधा राजन्दर्शयन्पाणिलाघवम् ।
हृते तस्मिन्महावर्षे शराणा कार्ष्णिना तदा ।।१२
द्रुमवर्षं मुमोचाथ मायया कालशम्बर ।
द्रुमवर्षोच्छ्रित दृष्ट्वा प्रद्युम्न क्रोधमूर्च्छित ।।१३
आग्नेयास्त्र मुमोचाथ तेन वृक्षाननाशयत् ।
भस्मीभूते वृक्षवर्षे शिलासघातमुत्सृजत् ।।१४

उस भीषण बाण-वर्षा से सभी दिशाएँ आच्छादित होगई और सर्वत्र अन्धकार छागया, सूर्य भी उसके कारण छिप गये, तब शम्बरासुर ने वैद्युतास्त्र से उस अँधेरे को नष्ट कर दिया और अन्यान्य बाणो की वृष्टि द्वारा प्रद्युम्न के रथ को आच्छादित कर दिया। परन्तु प्रद्युम्न ने अपने हस्त कौशल से उन सभी

बाणो को अपने आनर्तपर्व नामक बाणो से तत्काल काट डाला। जब शम्बरासुर के बाण निष्फल होगये तब वह अपनी माया के प्रभाव से प्रद्युम्न पर वृक्षो की वर्षा करने लगा। यह देख कर प्रद्युम्न भी अत्यन्त क्रोधित हुए ॥९-१३॥ फिर उन्होंने आग्नेयास्त्र के प्रयोग से उन वृक्षो को जला कर भस्म कर दिया। तब शम्बरासुर ने शिलाओ की वर्षा आरम्भ की ॥१४॥

प्रद्युम्नस्तं तु वायव्यैः प्रोत्सारयत संयुगे।
ततो मायां परां चक्रे देवशत्रुः प्रतापवान् ॥१५
सिंहान्व्याघ्रान्वराहांश्च तरक्ष नृक्षवानरान्।
वारणान्वारिदप्रख्यान्हयानुष्ट्रान्विशापते ॥१६
मुमोच धनुरायम्य प्रद्युम्नस्य रथोपरि।
गन्धर्वास्त्रेण चिच्छेद सर्वांस्तान्खण्डशस्तदा ॥१७
शम्बरस्तु ततः क्रुद्धो हतया मायया तदा।
सैंही माया महातेजाः सोऽसृजद्दानवेश्वरः ॥१८
सिंहानापततो दृष्ट्वा रौक्मिणेयः प्रतापवान्।
अस्त्रं गान्धर्वमादाय शरभानसृजत्तदा।
तेऽष्टापदा बलोदग्रा नखदंष्ट्रायुधा रणे १९
सिंहान्विद्रावयामासुर्वायुर्जलधरानिव।
सिंहान्विद्रवतो दृष्ट्वा माययाष्टपदेन वै ॥२०
शम्बरश्चिन्तयामास कथमेनं निहन्मि वै।
अहो मूर्खस्वभावोऽहं यन्मया न हतः शिशुः ॥२१

उन शिलाओं को भी उन्होंने अपने वायव्यास्त्र से दूर कर दिया। यह देख कर उसने अपनी बलवती माया की वृद्धि करके प्रद्युम्न के रथ पर सिंह, व्याघ्र, वराह, तरक्षु, रीछ, बन्दर, हाथी, घोड़े और ऊँट आदि की वर्षा की, परन्तु प्रद्युम्न ने उसकी वह माया भी अपने गंधर्वास्त्र से छिन्न-भिन्न करदी ॥१५-१७॥ इससे क्रोधित हुए शम्बरासुर ने सैंही माया की रचना की, जिससे उत्पन्न हुए सिंहों को अपने पर आक्रमण करते देख कर प्रद्युम्न ने उसकी माया के

विस्तार द्वारा उन सभी सिंहो को जैसे पवन मेघो को उड़ा देता है, वैसे ही भगा दिया। इस प्रकार शरभी माया के द्वारा सिंहो को नष्ट हुए देख कर शम्बरासुर विचार करने लगा कि अब इसका वध किस प्रकार हो ? मैंने इसे इसके बालक-पन मे ही नही मार दिया, यह भारी भूल होगई ॥१८-२१॥

प्राप्तयौवनदेहस्तु कृतास्त्रश्चापि दुर्मतिः ।
तत्कथं निहनिष्यामि शत्रुं रणशिरःस्थितम् ॥२२
मया सा तिष्ठते तीव्रा पन्नगी नाम भीषणा ।
दत्ता मे देवदेवेन हरेणासुरघातिना ॥२३
तां सृजामि महामायामाशीविषसमाकुलाम् ।
तया दह्यंत दुष्टात्मा ह्येष मायामयो बली ॥२४
सा सृष्टा पन्नगी माया विषज्वालासमाकुला ।
तया पन्नगमय्या तु सरथं सहवाजिनम् ॥२५
ससूतं स हि प्रद्युम्नं ववन्ध शरबन्धनैः ।
बध्यमानं तया दृष्ट्वा आत्मानं वृष्णिवंशजः ॥२६
माया सचिन्तयामास सौपर्णीं सर्पनाशिनीम् ।
सा चिन्तिता महामाया प्रद्युम्नेन महात्मना ॥२७
सुपर्णा विचरन्ति स्म सर्पा नष्टा महाविषा ।
भग्नाया सार्पमायाया प्रशंसन्ति सुरासुरा. ॥२८
साधु वीर महावाहो रुक्मिण्यानन्दवर्धन ।
यत्त्वया धर्षिता माया तेन स्म परितोषिताः ॥२९

परन्तु अब यह यौवनावस्था को प्राप्त होता हुआ शास्त्र विद्या मे भी पारगत हो चुका है। इसलिये अब मैं इसे किस प्रकार मार सकता हूँ ? ॥२२॥ परन्तु अभी तो पन्नगी माया शेष रह गई है, वह भगवान् शंकर ने प्रसन्न होकर मुझे प्रदान की थी ॥२३॥ इसलिये अब उसी माया का प्रयोग करना उचित प्रतीत होता है। यह दुरात्मा उस माया की विषाग्नि मे दग्ध होकर मर जायगा ॥२४॥ यह सोच कर शम्बरासुर ने पन्नगी माया का प्रयोग किया। उससे

उत्पन्न हुए सर्पो ने रथ, अश्व और सारथी सहित प्रद्युम्न को जकड लिया। तब उन्होने उद्विग्न होकर सर्पो को नष्ट करने वाली सौपर्णी माया से असख्य गरुडो को प्रकट किया, जिनके कारण समस्त सर्प उसी क्षण अदृश्य होगये और इस प्रकार दैत्यराज की पन्नगी माया के नष्ट होने पर देवता और दैत्य सभी प्रद्युम्न की सराहना करने लगे ॥२५-२८॥ उन्होने कहा कि—हे महाबाहो ! हे रुक्मिणी नन्दन ! तुम्हारा रण-चातुर्य एव माया का नाश करना देख कर हमें बडा हर्ष हुआ है ॥ २९ ॥

हतायां सर्पमायायां शम्बरश्चिन्तयत्पुन ।
अस्ति मे कालदण्डाभो मुद्गरो हेमभूषित. ॥३०
समप्रतिहत युद्धे देवदानवमानवैं ।
पु.रा यो मम पार्वत्या दत्त परमतुष्टया ॥३१
गृहाण शम्बरेम त्व मुद्गर हेमभूषितम् ।
मया सृष्ट स्वदेहे वै तप. परमदुश्चरम् ॥३२
मायान्तरकरण नाम सर्वासुरविनाशनम् ।
अनेन दारवौ रौद्रौ बलिनौ कामरूपिणौ ॥३३
शुम्भश्चैव निशुम्भश्च सगणौ सूदितौ मया ।
प्राणसशयमापन्ने त्वया मोक्ष्य. स शत्रवे ॥३४
इत्युक्त्वा पार्वती देवी तत्रैवान्तरधीयत ।
तदह मुद्गर श्रेष्ठ मोचयिष्यामि शत्रवे ॥३५

परन्तु, शम्बरासुर ने अपनी पन्नगी माया को नष्ट हुई देख कर उन्हें मारने के लिये पुन उपाय सोचा, तब उसे स्मरण हुआ कि एक बार भगवती पार्वतीजी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर मुझे एक स्वर्ण मंडित मुगदर प्रदान किया था। उस कालदण्ड जैसे भयकर मुगदर का नाम मायान्तकरण है। यह सभी देव-दानवो को मारने में समर्थ है। इसी मुगदर के द्वारा मैंने इच्छा रूपधारी शुम्भ-निशुम्भनामक दैत्यों को मारा था। परन्तु, जब तुम्हें अपने प्राण पर सकट उपस्थित हुआ दिखाई दे, तभी इसको प्रयुक्त करना ॥३०-३४॥ यह कह कर पार्वती वहीं अन्तर्धान होगई। अब मुझे मुगदर की सहायता लेनी चाहिये ॥३५॥

तस्य विज्ञाय चित्तं तु देवराजोऽभ्यभाषत ।
गच्छ नारद शीघ्रं त्वं प्रद्युम्नस्य रथं प्रति ॥३६
सबोधय महाबाहुं पूर्वजातिं च मोक्षय ।
वैष्णवास्त्र प्रतच्छास्मै वधार्थं शम्बरस्य च ॥३७
अभेद्यं कवचं चास्य प्रयच्छासुरसूदने ।
एवमुक्तो मघवता नारदः प्रययौ त्वरम् ॥३८
आकाशेऽधिष्ठितोऽवोचन्मकरध्वजकेतनम् ।
कुमार पश्य मा प्राप्तं देवगन्धर्वनारदम् ।
प्रेषितं देवराजेन तव सबोधनाय वै ॥३९
स्मर त्वं पूर्वकं भाव कामदेवोऽसि मानद ।
हरकोपानलाद्दग्धस्तेनानङ्ग इहोच्यते ॥४०
त्वं वृष्णिवंशजातोऽसि रुक्मिण्या गर्भसंभवः ।
जातोऽसि केशवेन त्वं प्रद्युम्न इति कीर्त्यसे ॥४१
आहृत्य शम्बरेण त्वमिहानीतोऽसि मानद ।
सप्तरात्रे त्वसपूर्णे सूतिकागारमध्यतः ॥४२

देवराज इन्द्र ने शम्बरासुर के इस अभिप्राय को जान कर नारदजी से कहा—हे देवर्षि ! आप प्रद्युम्न के पास शीघ्र ही पहुँच कर उन्हें उनकी उत्पत्ति का वृत्तान्त बता कर शम्बरासुर को मारने के लिये अभेद्य कवच और वैष्णवास्त्र दे दीजिये । इन्द्र की बात सुन कर नारदजी ने तुरन्त ही वहाँ से प्रस्थान किया और प्रद्युम्न के पास जाकर आकाश मार्ग में खड़े होते हुए बोले—हे कुमार ! मैं देव-गधर्वों में प्रसिद्ध नारद हूँ, इन्द्र के भेजने से यहाँ आया हूँ । अपने पूर्वजन्म को याद करो, जिसमें तुम कामदेव थे और भगवान् शंकर की क्रोधाग्नि में भस्म होगये थे ॥३९-४०॥ इस जन्म में तुम वृष्णिवंशीय भगवान् श्रीकृष्ण के पुत्र रूप में उत्पन्न हुए हो और तुम्हारा नाम प्रद्युम्न है । जन्म होने के सातवें दिन ही यह शम्बरासुर तुम्हें सूतिकागृह से हरण कर लाया था ॥४१-४२॥

रते॒ सपादनार्थाय प्रेषयत्यनिशं तदा ।
ध्व प्रद्युम्न बुद्ध्वा वै तस भार्या प्रतिष्ठिता ॥४३

हत्वा त्वं शम्बरं वीर वैष्णवास्त्रेण संयुगे ।
गृह्य मायावती भार्यां द्वारकां गन्तुमर्हसि ॥४४
गृहाण वैष्णवं चास्त्रं कवचं च महाप्रभम् ।
शक्रेण तव संगृह्य प्रेषितं शत्रुसूदन ॥४५
शृणु मे ह्यपरं वाक्यं क्रियतामविशङ्कया ।
अस्य देवरिपोस्तात मुद्गरो नित्यमूर्जितः ॥४६
पार्वत्या परितुष्टाया दत्तः शत्रुनिबर्हणः ।
अमोघश्चैव संग्रामे देवदानवमानवैः ॥४७
तदस्त्रविघातार्थं देवीं त्वं स्मर्तुमर्हसि ।
स्तव्या चैव नमस्या च महादेवी रणोत्सुकैः ॥४८
तत्र वै क्रियतां यत्नः संग्रामे रिपुणा सह ।
इत्युक्त्वा नारदो वाक्यं प्रययौ यत्र वासवः ॥४९

आपके पूर्व जन्म की पत्नी रति ही इस समय तुम्हारी सेवा-शुश्रूषा में निरन्तर लगी है। इस प्रकार हे प्रद्युम्न ! इस जन्म में भी यह मायावती तुम्हारी ही भार्या है ॥४३॥ इसलिये, अब तुम इस वैष्णवास्त्र से शम्बरासुर को मार कर मायावती के सहित द्वारका को चले जाओ ॥४४॥ मैं यह महा तेजस्वी कवच और वैष्णवास्त्र तुम्हें दे रहा हूँ, देवराज इन्द्र ने इन्हें तुम्हारे लिये ही भेजा है, अतः ग्रहण करो ॥४५॥ मैं तुम्हें यह भी बताता हूँ कि इस दैत्य के पास जो भयङ्कर मुगदर है, उसे बाधा देने में देवता, दैत्य या मनुष्यों में से कोई भी वीर समर्थ नहीं है, वह मुगदर इसे भगवती पार्वतीजी ने प्रसन्न होकर प्रदान किया था ॥४६-४७॥ इसलिये उस अस्त्र को व्यर्थ करने के लिये तुम भगवती पार्वतीजी का स्मरण कर, नमस्कार पूर्वक उनकी स्तुति करो और फिर अपने युद्ध प्रयत्नों में वेगपूर्वक लग जाओ। यह कह कर देवर्षि नारदजी वहाँ से चल कर इन्द्र के पास जा पहुँचे ॥४९॥

॥ प्रद्युम्न द्वारा शम्बर वध ॥

शम्बरस्तु ततः क्रुद्धो मुद्गरं त समाददे ।
मुद्गर गृह्यमाणे तु द्वादशार्काः समुत्थिताः ॥१
पर्वताश्चलिताः सर्वे तथैव वसुधातलम् ।
उन्मार्गा. सागरा याताः सक्षुब्धाश्चापि देवताः ॥२
गृध्रचक्राकुल व्योम उल्कापातो बभूव ह ।
ववर्ष रुधिरं देव. परुषं पवनो ववौ ॥३
एवं दृष्ट्वा महोत्पातान्प्रद्युम्नः स त्वरान्वितः ।
अवतीर्य रथाद्वीर. कृताञ्जलिपुटः स्थितः ॥४
देवी सस्मार मनसा पार्वती शङ्करप्रियाम् ।
प्रणम्य शिरसा देवी स्तोतुं समुपचक्रमे ॥५
ॐ नमः कात्यायन्यै गिरीशायै नमो नम. ।
नमस्त्रैलोक्यमायायै कात्यायन्यै नमो नम. ॥६
नम. शत्रुविनाशिन्यै नमो गौर्यै शिवप्रिये ।
नमस्ये शुम्भमथनी निशुंभमथनीमपि ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—फिर क्रोधित हुए शम्बरासुर ने उस मुगदर को ग्रहण किया, जिसकी प्रभा देख कर द्वादश आदित्यो के एक साथ उदित होने का आभास होने लगा ॥१॥ सभी पर्वतो के सहित पृथिवी काँप उठी, समुद्रो ने अपनी मर्यादा छोड़ दी और देवताओ मे उद्विग्नता फैल गई ॥२॥ आकाश मे समूह के समूह गृध्र मँडराने लगे, उल्कापात और रक्त की वर्षा होने लगी तथा वायु का वेग बढ़ गया ॥३॥ इन कुलक्षणो को देख कर प्रद्युम्न रथ से उतर कर भगवती पार्वतीजी का स्मरण करने लगे और फिर मन ही मन प्रणाम करते हुए उन्होंने इस प्रकार स्तुति की ॥४-५॥ प्रद्युम्न ने कहा—हे भगवती ! हे कात्यायनि ! हे कार्तिकेयजननी ! आप तीनों लोकों की माया को नमस्कार है ॥६॥ हे मातेश्वरि ! आप शत्रुओ का नाश करने वाली, गौरी, शिववल्लभा और शुम्भ-निशुम्भ का मर्दन करने वाली हैं। आपको मेरा नमस्कार है ॥७॥

कालरात्रि नमस्तुभ्य कौमार्ये च नमो नम ।
कान्तारवासिनी देवी नमस्यामि कृताञ्जलि. ॥८
विन्ध्यवासिनी दुर्गघ्ना रणदुर्गा रणप्रियाम् ।
नमस्यामि महादेवी जया च विजया तथा ॥६
अपराजिता नमस्येऽहमजिता शत्रुनाशिनीम् ।
घण्टाहस्ता नमस्यामि घण्टामालाकुला तथा ॥१०
त्रिशूलिनी नमस्यामि महिषासुरघातिनीम् ।
सिंहासना नमस्यामि सिंहप्रवरकेतनाम् ॥११
एकान शा नमस्यामि गायत्री यज्ञसत्कृताम् ।
सावित्री चापि विप्राहणा नमस्येऽहकृताञ्जलि· ॥१२
रक्ष मा देवि सतत सग्रामे विजय कुर ।
इति कामवचस्तुष्टा दुर्गा सप्रीतमानसा ॥१३
उवाच वचन देवी सुप्रीतेनान्तरात्मना ।
पश्य पश्य महाबाहो रुक्मिण्यानन्दवर्द्धन ॥१४
वर वरय वत्स त्वममोघ दर्शन मम ।
देव्यास्तु वचन श्रुत्वा रोमाञ्चोद्गतमानस ॥१५

आप कालरात्रि रूपिणी को नमस्कार है, आप ही कौमारी एव कान्तार-वासिनी हैं, मैं आपको करबद्ध प्रणाम करता हूँ ॥८॥ हे माता ! आप विन्ध्य पर्वत पर निवास करती हैं, आप दैत्यों के दुर्गों को तोड़ने वाली रणदुर्गा एव रण प्रिया हैं, आप ही जया और विजया हैं, हे महादेवि ! ऐसी आपको मेरा बारबार नमस्कार है ॥६॥ आप कभी पराजित न होने वाली अजिता तथा शत्रुओं का नाश करने वाली हैं, आप घटाहस्ता और घण्टामाला को मेरा नमस्कार है ॥१०॥ आप ही महिषासुर के मारने वाली त्रिशूलिनी है, आप ही सिंहवाहिनी तथा सिंह ध्वज वाली हैं मेरा आपको नमस्कार है ॥११॥ आप एकानशा को नमस्कार है, आप यज्ञो द्वारा सत्कृत गायत्री रूपिणी ब्राह्मणो की सावित्री को मेरा हाथ जोड कर प्रणाम है ॥१२॥ हे देवि ! युद्ध भूमि मे मेरी रक्षा करती हुई मुझे विजय प्रदान करें। इस प्रकार की स्तुति से परम प्रसन्न हुई भगवती

पार्वतीजी ने प्रद्युम्न से कहा—हे महाबाहो ! हे रुक्मिणी के आनन्द की वृद्धि करने वाले वत्स ! देख इधर देख ॥१४॥ मेरा आगमन कभी व्यर्थ नही होता, इसलिये तुझे जो इच्छा हो, वही वर माँगले। यह सुन कर प्रद्युम्न का मन रोमांचित हो उठा ॥१५॥

प्रणम्य शिरसा देवीं विज्ञप्तुमुपचक्रमे ।
यदि त्वं देवि तुष्टाऽसि दीयतां मे यदीप्सितम् ॥१६
वरं च वरदे याचे सर्वामित्रेषु मे जयं ।
यस्त्वया मुद्‌गरो दत्तः शम्बरस्यात्मसंभव ॥१७
एष मे गात्रमासाद्य माला पद्मवती भवेत् ।
तथास्त्विति च साऽप्युक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥१८
प्रद्युम्नस्तु महातेजास्तुष्टो रथमथारुहत् ।
मुद्‌गरं तु गृहीत्वा च शम्बरः क्रोधमूर्च्छितः ॥१९
भ्रामयित्वा स चिक्षेप प्रद्युम्नोरसि वीर्यवान् ।
स गत्वा मदनाभ्याशं माला भूत्वा तु पौष्करी ॥२०
प्रद्युम्नस्य च कण्ठे तु समासक्ता व्यराजत ।
नक्षत्राणां तु मालाया यथा परिवृतो विधुः ॥२१

तब प्रद्युम्न ने भगवती को प्रणाम करके कहा—हे वरदे ! हे मातेश्वरि ! यदि आप यथार्थ में मुझ पर प्रसन्न हुई हैं तो मुझे मेरा इच्छित वर दीजिये ॥१६। हे माता ! मैं अपने सब शत्रुओं को पराजित करना चाहता हूँ। आपकी कृपा से शम्बरासुर को जो मुगदर प्राप्त हुआ है, वह मुगदर मेरे शरीर से लगते ही पद्ममयी माला बन जाय। यह सुनते ही भगवती 'ऐसा ही होगा' कहती हुई वहीं अदृश्य होगई ॥१७-१८॥ तदनन्तर प्रद्युम्न भी अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने रथ पर चढ़ गये। तभी क्रोध से व्याकुल हुए दैत्यराज ने उनके हृदय पर उस भयंकर मुगदर का प्रहार किया। परन्तु उनके हृदय का स्पर्श होते ही वह मुगदर पद्ममयी माला होकर शोभा पाने लगा। उस समय ऐसी शोभा हुई जैसे नक्षत्रों की माला से सुशोभित चन्द्रमा हो ॥१९-२१॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
साधु साध्विति वाचाभिः पूजयन्केशवात्मजम् ॥२२
मुद्गर पुष्पभूतं तु दृष्ट्वा प्रद्युम्नसन्निधौ ।
वैष्णवं परमास्त्रं तु नारदेन वदाहृतम् ॥२३
संदधे चापमानस्य इदं तचनमब्रवीत् ।
यद्यहं रुक्मिणीपुत्रः केशवस्यात्मजो ह्यहम् ॥२४
तेन सत्येन बाणेन जहि त्वं शम्बरं रणे ।
इत्युक्त्वा चापमाकृष्य सन्धाय च महामनाः ॥२५
चिक्षेप शम्बरस्याथ दहँल्लोकत्रयं यथा ।
स क्षिप्तो वृष्णिसिंहेन शरः क्रव्यादमोहनः ॥२६
हृदय शम्बरस्याथ भित्त्वाधरणिमागतः ।
न चास्य मांसं न स्नायुर्नास्थि न त्वङ्न शोणितम् ॥२७
सर्वं तद्भस्मसाद्भूतं वैष्णवस्त्रास्य तेजसा ।
हते दैत्ये महाकाये दानवे शम्बरेऽधमे ॥२८
जहृषुर्देवगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
उर्वशी मेनका रम्भा विप्रचित्तिस्तिलोत्तमा ॥२९
ननृतुर्हृष्टमनसो जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
देवराजस्तु सुप्रीतः सर्वदेवगणैः सह ।
प्रद्युम्नं पुष्पवर्षेण तमभ्यर्च्य प्रहृष्टवत् ॥३०
अथ समरहते तु दैत्यराजे मधुमथनस्य सुतेन वैष्णवा :।
विगतरिपुभयाः सुराश्च जग्मुर्मकरविभूषणकेतनं स्तुवन्तः ॥३१
स च समरपरिश्रमं वहन्वै नगरमुखं प्रविवेश रौक्मिणेयः ।
प्रियतम इव कान्तया प्रहृष्टस्त्वरितपद रतिदर्शनं चकार ॥३२

उस मुद्गर को पुष्पमाला के रूप में देख कर सभी देव, गंधर्व, सिद्ध, परम ऋषि आदि ने प्रद्युम्न की अत्यन्त प्रशंसा की, तब प्रद्युम्न ने देवर्षि नारद प्रदत्त वैष्णवास्त्र को धनुष पर चढ़ा कर कहा—हे शर ! यदि मैं रुक्मिणी से उत्पन्न हुआ भगवान् श्रीकृष्ण का पुत्र हूँ तो तुम तुरन्त ही इस युद्ध क्षेत्र में शम्बरासुर

का सहार कर डालो। यह कह कर उन्होने दैत्यराज पर उस बाण को छोड़ दिया, तब उस बाण के प्रकाश से तीनो लोक जगमगा उठे। उस समय वह बाण आमिष भोजी पशुओ की प्रसन्नता को बढाने वाले शम्बरासुर के हृदय को पार करके पृथिवी पर जा गिरा। उस अस्त्र के तेज से शम्बरासुर के देह मे मास, हड्डी, नाडी चर्म और रुधिर का लेशमात्र भी न बचा और वह जल कर वही भस्म होगया। उस महाकाय दैत्य के इस प्रकार मृत्यु को प्राप्त होने पर देवता और गधर्व अत्यन्त हर्षित हुए और उर्वशी मेनकादि अप्सराएँ नृत्य करने लगी। सम्पूर्ण विश्व निर्भय और सुखी होगया तथा सब देवताओ के सहित इन्द्र भी हर्षित होकर प्रद्युम्न पर पुष्पो की वर्षा करने लगे ॥२२ ३०॥ हे राजन् ! श्री-कृष्ण पुत्र प्रद्युम्न ने जब वैष्णव स्त्र के द्वारा दैत्यराज शम्बरासुर का वध कर दिया तब देवता शत्रु भय से रहित होगये और प्रद्युम्न रूपी कामदेव की स्तुति करते हुए अपने अपने लोक को गये। ३१॥ तथा प्रद्युम्न भी अपनी भार्या जसी विजय लक्ष्मी को प्राप्त होकर उसी वीर वेश मे नगर मे पहुँच कर मायावती रूपिणी रति के पास पहुचे ॥३२।

॥ प्रद्युम्न-मायावती का द्वारका आगमन ॥

समाप्तमायो मायाज्ञा विक्रान्त समरेऽव्यय ।
अष्टम्या निहतो युद्धे मायावी कालश बर ॥१
तमृक्षवन्ते नगरे निहत्यासुरसत्तमम् ।
गृह्य मायावती देवीमागच्छनगर पितु ॥२
सोऽन्तरिक्षगतो भूत्वा मायावी शीघ्रविक्रम ।
आजगाम पुरी रम्या रक्षिता तेजसा पितु ॥३
सोऽन्तरिक्षान्निपतित केशवान्त पुरे शिशु ।
मायावत्या सह तया रूपवानिव मन्मथ ॥४
तस्मिस्तत्रावपतिते महिष्य केशवस्य या ।
विस्मिताश्चैव हृष्टाश्च भीताश्चैवाभवस्तत ॥५
ततस्त कामसकाश कान्तया सह सङ्गतम् ।
प्रेक्षन्त्यो हृ टवदना पिबन्त्यो नयनोत्सवम् ॥६

तं व्रीडितमुखं दृष्ट्वा लज्जमानं पदे पदे ।
अभवन्स्निग्धमद्धुला. सर्वास्ताः कृष्णयोषितः ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! दैत्येश्वर शम्बर के अत्यन्त मायावी होते हुए भी जब उसकी माया समाप्त होगई, तब उसका प्राण अष्टमी तिथि को निकला ॥ १ ॥ इस प्रकार वीरवर प्रद्युम्न शम्बरासुर को मार कर और मायावती को साथ लेकर अपने पिता द्वारा पालित द्वारका पुरी में आकाश मार्ग से जा पहुँचे ॥२-३॥ साक्षात् कामदेव के समान श्रेष्ठ स्वरूप वाले प्रद्युम्न मायावती के सहित आकाश मार्ग से आते हुए सीधे श्रीकृष्ण के अन्तःपुर में पहुँचे ॥४॥ उन्हें वहाँ आया हुआ देख कर कृष्ण की पत्नियों को अत्यन्त प्रसन्नता, भय और आश्चर्य—तीनों की एक साथ प्राप्ति हुई ॥५॥ वे नारियाँ मायावती स्वरूपा रति के सहित कामदेव के समान प्रद्युम्न का रूप-सम्मान करती हुई उन्हें देखने लगीं ॥ ६ ॥ तब उन्हें वह अत्यन्त विनयशील, लज्जावान्, तरुण युवक तथा सब प्रकार श्रीकृष्ण के समान ही दिखाई दिये ॥७॥

रुक्मिणी चैव तं दृष्ट्वा शोकार्ता पुत्रगर्द्धिनी ।
सपत्नीजनमध्यस्था सबाष्पा वाक्यमब्रवीत् ॥८
सारूप्यमो मया दृष्टो नियतायां यौवने गते ।
[illegible] समानीय दत्त साहाय्यमुत्तमम् ॥९
[illegible] सुराराजमिह [illegible] ॥
[illegible] मम [illegible] ॥१०
[illegible] सुरारेणा [illegible] ।
[illegible] प्रविष्टा मम वेश्मनि ॥११
[illegible] रुक्मिणी [illegible] ।
[illegible] ॥१२
[illegible] तदा [illegible] मम ।
[illegible] ॥१३
[illegible] देवी [illegible] ।
[illegible] ॥१४

पुत्र शोक से विह्वल हुई रुक्मिणीजी ने जैसे ही उन्हें देखा, वैसे ही वे अपनी सब सपत्नियों की ओर देखती हुई कहने लगीं ॥८॥ आज रात्रि के समय स्वप्न में मैंने देखा कि भगवान् ने मुझे अंक में लेकर चन्द्र किरणों के तुल्य एक मोतियों का हार मेरे कण्ठ में डाल दिया है ॥ ९ १० ॥ उसके बाद ही श्याम वर्ण की, शुभ्र वेश वाली, सुन्दर केश युक्त एक नारी हाथ में पद्ममाल लिये हुए मेरे भवन में घुस रही है ॥११॥ उसने मुझे श्रेष्ठ शीतल जल से स्नान कराया और मेरे मस्तक को सूँघ कर एक पद्ममाल मेरे कंठ में डाल दी। इस प्रकार अपनी सखियों को देखे हुए स्वप्न की बातें कहती हुई रुक्मिणीजी प्रद्युम्न को देख कर बोली—यह कामदेव के समान प्रिय दर्शन कुमार जिस माता का पुत्र होगा, वह माता यथार्थ में कृतार्थ है ॥१२-१४॥

ईदृश कामसङ्काशो यौवने प्रथमे स्थित ।
जीव पुत्र त्वया पुत्र काऽसौ भाग्यसमन्विता ॥१५
किमर्थं चाबुदश्याम सभार्यस्त्वमिहागत ।
अस्मिन्वयसि सुव्यक्त प्रद्युम्नो मम पुत्रक ॥१६
भवेद्यदि न नीत स्यात्कृतान्तेन बलीयसा ।
व्यक्त वृष्णिकुमारस्त्व न मिथ्या मम तर्कितम् ॥१७
विज्ञातोऽसि मया चिह्नं विना चक्र जनार्दन ।
मुख नारायणस्येव केशा केशान्त एव च ॥१८
ऊरू वक्षो भुजौ तुल्यौ हलिन श्वशुरस्य मे ।
कस्त्व वृष्णिकुल सर्व द्योतयन्वपुषा स्थित ॥१९
अहो नारायणस्येव दिव्या ते परमा तनु ।
एतस्मिन्नन्तरे कृष्ण सहसा प्रविवेश ह ।
नारदस्य वच श्रुत्वा शम्बरस्य वध प्रति ॥२०

हे वत्स ! तुम किस सौभाग्यशालिनी के तनय हो और अपनी पत्नी के साथ यहाँ क्यों आये हो ? यदि मेरा पुत्र काल के गाल से बचा होता तो उसकी भी इतनी ही अवस्था होती। परन्तु मैं समझती हूँ कि तुम भी वृष्णिवंश के ही

कुमार हो, मेरी यह धारणा मिथ्या नहीं हो सकती ॥१५-१७॥ तुम तो मुझे साक्षात् श्रीकृष्ण जैसे ही प्रतीत हो रहे हो, केवल चक्रचिह्न ही तुम्हारे देह पर नहीं है, तुम्हारा मुख और केशों का अगला भाग भी उन्हीं के समान लग रहा है ॥१८॥ तुम्हारा उरदेश बाहुएँ और वक्षःस्थल मेरे ज्येष्ठ बलरामजी के तुल्य लगते हैं परन्तु तुम अपने शरीर के तेज से वृष्णिवंश को तेजस्वी बनाने वाले कौन हो ? ॥१९॥ तुम्हारे गुणों को देख कर तो तुम्हें भगवान् श्रीनारायण कहने मे भी कोई अत्युक्ति नहीं होगी। उसी समय नारदजी से शम्बरासुर की मृत्यु का समाचार सुन कर भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ आगये ॥२०॥

सोऽपश्यत्तं सुतं ज्येष्ठं सिद्धं मन्मथलक्षणैः ।
स्नुषां मायावतीं चैव हृष्टचेता जनार्दनः ।
सोऽब्रवीत्सहसा देवीं रुक्मिणीं देवतामिव ॥२१
अयं स देवि संप्राप्तः सुतश्चापधरस्तव ॥२२
अनेन शम्बरं हत्वा मायायुद्धविशारदम् ।
हता मायास्तु ताः सर्वा याभिर्देवानबाधयत् ॥२३
सती चेयं शुभा साध्वी भार्या वै तनयस्य ते ।
मायावतीति विख्याता शम्बरस्य गृहोषिता ॥२४
मा च ते शम्बरस्येयं पत्नीति भवतु व्यथा ।
मन्मथे तु गते नाशं गते चानङ्गतां पुरा ॥२५
कामपत्नी न कान्तैषा शम्बरस्य रतिप्रिया ।
मायारूपेण तं दैत्यं मोहयत्यसकृच्छुभा ॥२६
न चैषा तस्य कौमारे वशे तिष्ठति शोभना ।
आत्ममायामयं कृत्वा रूपं शम्बरमाविशत् ॥२७
पत्न्येषा मम पुत्रस्य स्नुषा तव वराङ्गना ।
लोकरान्तस्य माहात्म्यं करिष्यति मनोमयम् ॥२८
प्रवेशयैनां भवनं पूज्या ज्येष्ठा स्नुषा मम ।
चिरं प्रणष्टं च सुतं भजस्व पुनरागतम् ॥२९

उन्होंने देखा कि साक्षात् कामदेव के समान प्रद्युम्न और रति के तुल्य मायावती वहाँ खड़े हैं। तब श्रीकृष्ण ने रुक्मिणीजी से कहा—हे देवि ! यह धनुष को धारण किये हुए तुम्हारा ही पुत्र यहाँ उपस्थित है। २१-२२॥ इसी ने मायामय युद्ध में प्रवीण शम्बरासुर को मारा है। वह दैत्य अपनी जिन मायाओं के प्रभाव से देवताओं को सन्तप्त करता रहता था, वे सब मायाएँ इस बालक के द्वारा नष्ट होगई हैं ॥२३॥ यह मायावती तुम्हारे इस पुत्र की पत्नी है, अभी तक यह शम्बरासुर के भवन में निवास करती थी ॥२४॥ किन्तु इसे शम्बरासुर की पत्नी होना मत समझना। यथार्थ में यह कामदेव की पत्नी रति है। जब भगवान् शंकर की कोपाग्नि में भस्म हुआ कामदेव अनंग होगया था, तब से शम्बरासुर के यहाँ रह कर इसने उसे मोहित किया हुआ था ॥२५-२६॥ इसने अपने वास्तविक देह से शम्बरासुर की सेवा नहीं की थी इसकी छायामयी मूर्ति ही उसके साथ रहती थी ॥२७॥ यह मेरे पुत्र की भार्या होने से तुम्हारी पुत्रवधू है, और यह सदैव इसकी सहायता में तत्पर रहेगी ॥२८॥ चिर काल में गया हुआ मेरा यह पुत्र आज मिल गया है, अब इस पुत्र और पुत्रवधू को तुम अपने भवन में ले चलो ॥२९॥

श्रुत्वा तु वचनं देवी कृष्णेनोदाहृतं तदा।
प्रहर्षमतुलं लब्ध्वा रुक्मिणी वाक्यमब्रवीत् ॥३०
अहो धन्यतराऽस्मीति वीरपुत्रसमागमात्।
अद्य मे सफलं कामं पूर्णो मेऽद्य मनोरथः ॥३१
चिरप्रणष्टपुत्रस्य दर्शनं प्रियया सह।
आगच्छ पुत्र भवनं सभार्यः प्रविशेह च ॥३२
ततोऽभिवाद्य चरणौ गोविन्दं मातरं च ताम्।
प्रद्युम्नः पूजयामास हलिनं च महाबलम् ॥३३
उत्थाप्य तं परिष्वज्य मूर्ध्न्युपाघ्राय वीर्यवान्।
प्रद्युम्नं बलिना श्रेष्ठः केशवः परवीरहा ॥३४
स्नुषां चोत्थाप्य तां देवी रुक्मिणी रुक्मभूषणा।
परिष्वज्योपसंगृह्य स्नेहाद्‌गद्‌गदभाषिणी ॥३५

समेत्य भवनं पत्न्या शचीन्द्रमदितिर्यथा ।
प्रवेशयामास तदा रुक्मिणी सुतमागतम् । ३६

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्ण के मुख से इस सम्पूर्ण वृत्तान्त को सुन कर रुक्मिणीजी अत्यन्त प्रसन्नता को प्राप्त होती हुई कहने लगीं—चिरकाल के पश्चात् आज मैं अपने खोये हुए पुत्र को और साथ ही उस की पुत्रवधू को प्राप्त कर पूर्ण काम होगई हूँ। हे पुत्र! अब तुम अपनी इस भार्या के साथ घर के भीतर प्रवेश करो ॥३० ३२॥ रुक्मिणीजी के वचन सुन कर प्रद्युम्न ने अपने पिता, माता और बलरामजी के चरणों में प्रणाम किया ॥३३॥ फिर श्रीकृष्ण ने पुत्र को और रुक्मिणीजी ने पुत्रवधू को गोद में उठा कर उनका मस्तक चूमा और फिर अदिति द्वारा इन्द्र इन्द्राणी को घर में प्रविष्ट कराने के समान ही रुक्मिणीजी अपने पुत्र और पुत्रवधू को अपने भवन में ले गई । ३६॥

॥ बाणासुर का वरदान प्राप्त करना ॥

शृणुष्वावहितो राजन्कृष्णस्यामिततेजस ॥१
मनुष्यलोके बाणेन यथाऽभूद्विग्रहो महान् ।
वासुदेवेन यत्रासौ रुद्रस्कन्दसहायवान् ॥२
बलिपुत्रो रणश्लाघी जित्वा जीवन्विसर्जित ।
यथा चास्य वरो दत्त शङ्करेण महात्मना ॥३
नित्य सान्निध्यता चैव गाणपत्य तथाऽक्षयम् ।
यथा बाणस्य तद्युद्ध जीवन्मुक्तो यथा च स ॥४
यथा च देवदेवस्य पुत्रत्व सोऽनुगो गत ।
यदर्थं च महद्युद्ध तन्मे निगदत शृणु ॥५

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन्! अब मैं तुम्हें उस वृत्तान्त को कहता हूँ जिसमें बाणासुर और श्रीकृष्ण का घोर संग्राम हुआ तथा भगवान् शङ्कर और

स्वामि कार्तिकेयजी ने उसे वर प्रदान किया था और जिस कारण से भगवान् श्रीकृष्ण को उससे युद्ध करना पड़ा था, उसे तुम सावधान होकर सुनो ॥ १ ॥ वह भी बताता हूँ कि उसने किस प्रकार भगवान् शिवजी का पुत्रत्व प्राप्त किया और किस प्रकार स्वयं भगवान् रुद्र और स्वामि कार्तिकेयजी का उसके घर में निवास हुआ तथा किस प्रकार उसे गाणपत्य पद की प्राप्ति हुई और किस प्रकार उसे श्रीकृष्ण ने रणक्षेत्र में हरा कर भी मारा नहीं ॥२-४॥ जिस कारण से इनमें यह घोर युद्ध हुआ था, वह सब तुम्हारे प्रति कहता हूँ, तुम प्रयत्नपूर्वक सुनो ॥ ५ ॥

दृष्ट्वा वपुः कुमारस्य क्रीडतश्च महात्मनः
बलिपुत्रो महावीर्यो विस्मयं परमं गतः ॥६
तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना तपश्चर्तुं सुदुष्करम् ।
रुद्रस्याराधनार्थाय देवस्य स्यां यथा सुतः ।७
ततोऽल्पयदात्मानं तपसा श्लाघते च सः ।
देवश्च परमं तोषं जगाम च सहोमया ॥८
नीलकण्ठः परां प्रीतिं गत्वा चासुरमब्रवीत् ।
वरं वरय भद्रं ते यत्ते मनसि वर्त्तते ॥९
अथ बाणोऽब्रवीद्वाक्यं देवदेवं महेश्वरम् ।
देव्याः पुत्रत्वमिच्छामि त्वया दत्तं त्रिलोचन ॥१०
शंकरस्तु तथेत्युक्त्वा रुद्राणीमिदमब्रवीत् ।
कनीयान्कार्तिकेयस्य पुत्रोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥११
यत्रोत्स्थितो महासेनः सोऽग्निजो रुधिरे पुरे ।
तत्रोद्देशे पुरं चास्य भविष्यति न संशयः ।१२
नाम्ना तच्छोणितपुरं भविष्यति पुरोत्तमम् ।
मयाऽभिगुप्तं श्रीमन्तं न कश्चित्प्रसहिष्यति ॥१३

एक दिन की बात है—शिवजी के पुत्र स्वामि कार्तिकेयजी बालक्रीडा कर रहे थे उसी समय बाणासुर उनके देह के श्रेष्ठ गठन को देख कर अत्यन्त

विस्मय को प्राप्त हुआ ॥६॥ तभी उसके चित्त मे ऐसा विचार हुआ कि मैं भी घोर तपस्या करके भगवान् शिवजी का पुत्र बनूँगा । अपने इस निश्चय के अनुसार वह घोर तप करने लगा ॥७॥ उससे उसका देह सूखने लगा । उसकी कठिन तपस्या को देख कर भगवान् शंकर और भगवती पार्वतीजी—दोनो ही उस पर अत्यन्त प्रसन्न हो गये ॥८॥ उस समय भगवान् शंकर ने परम प्रीतिपूर्वक असुर के सामने होकर कहा—हे भद्र ! तुम अपनी इच्छा के अनुसार वर माँग लो ॥९॥ यह सुन कर बलि के पुत्र बाणासुर ने उनसे निवेदन किया— हे भगवन् ! मैं आपके और भगवती पार्वतीजी के पुत्रत्व की कामना करता हूँ ॥१०॥ भगवान् ने उससे 'ऐसा ही होगा' यह कर फिर पार्वतीजी से कहा—आज से हमने इसे कार्तिकेय से छोटा पुत्र मान लिया है, इसलिये तुम इसे ग्रहण करो ॥११॥ जिस स्थान पर कार्तिकेय की अग्नि से उत्पत्ति हुई थी, वह स्थान शोणितपुर के नाम से प्रसिद्ध होगा । उस पुरी को आक्रमण से बचाने के लिये, मैं स्वयं उसका रक्षक होऊँगा ॥ १२-१३ ॥

तत स निवसन्बाण पुरे शोणितसाह्वये ।
राज्य प्रशासते नित्य क्षोभयन्सर्वदेवता: ॥१४
अवतीर्य मदोत्सिक्तो बाणो बाहुसहस्रवान् ।
अचिन्तयन्देवगणान्युद्धमाकाङ्क्षते सदा ॥१५
ध्वज चास्य ददौ प्रीत कुमारो ह्यग्नितेजसम्
वाहन चैव बाणस्य मयूर दीप्ततेजसम् ॥१६
न देवा न च गन्धर्वा न यक्षा नापि पन्नगा.
तस्य युद्धे व्यतिष्ठन्त देवदेवस्य तेजसा ॥१७
त्र्यम्बकेणाभिगुप्तश्च दर्पोत्सिक्तो महासुर ।
भूयो मृगयते युद्ध शूलिन सोऽभ्यगच्छत ॥१
स रुद्रमभिगम्याथ प्रणिपत्याभिवाद्य च ।
बलिसूनुरिद वाक्य पप्रच्छ वृषभध्वजम् ॥१
असकृन्निर्जिता देवा.ससाध्या. समरुद्गणा
मया मदबलोत्सेकात्ससैन्येन तवाश्रयात् ॥२०

इसके पश्चात् बाणासुर शोणितपुर में रहकर वहाँ का राज्य करने लगा, उसके व्यवहार से सभी देवता उद्विग्न हो उठे ॥१४॥ कुछ कालोपरान्त हजार भुजाओं वाला वह दानव अपने गर्व के कारण देवताओं से युद्ध करने का बहाना ढूंढने लगा ॥१५॥ फिर स्वामि कार्तिकेयजी ने प्रसन्न होकर उसे अग्नि के समान तेजोमय एक ध्वज तथा चढ़ने के लिये एक महा तेजस्वी मोर दिया ॥१६॥ उस समय भगवान् शंकर की कृपा से बाणासुर के सामने कोई भी देवता, गंधर्व, यक्ष और नाग रणक्षेत्र में सामना नहीं कर सकता था ॥१७॥ भगवान् शंकर द्वारा सुरक्षित हुए उस दैत्य को घोर अहंकार हो गया और वह सदा ही युद्ध के लिये छेड़ छाड़ करता रहता था ॥१८॥ उसने एक दिन भगवान् शंकर के समक्ष उपस्थित होकर उनसे कहा—हे प्रभो ! आपकी कृपा से मैंने साध्यगण, मरुद्गण और देवताओं को अनेकों बार ससैन्य परास्त किया है ॥१९-२०॥

इमं देशं समागम्य वसन्ति स्म पुरे सुखम् ।
ते पराजयसन्त्रस्ता निराशा मत्पराजये ॥२१
नाकपृष्ठमुपागम्य निवसन्ति यथासुखम् ।
सोऽहं निराशो युद्धस्य जीवितं नाद्य कामये ॥२२
अयुध्यतो वृथा ह्येषा बाहूनां धारणं मम ।
तद्ब्रूहि मम युद्धस्य कच्चिदागमनं भवेत् ॥२३
न मे युद्धं विना देव रतिरस्ति प्रसीद मे ।
ततः प्रहस्य भगवानब्रवीद्वृषभध्वजः ॥२४
भविता बाण युद्धं वै यथा तच्छृणु दानव ।
ध्वजस्यास्य यदा भङ्गस्तव तात भविष्यति ।
स्वस्थाने स्थापितस्याथ तदा युद्धं भविष्यति ॥२५
इत्येवमुक्तः प्रहसन्बाणस्तु बहुशो मुदा ।
प्रसन्नवदनो भूत्वा पादयोः पतितोऽब्रवीत् ।
दिष्ट्या बाहुसहस्रस्य न वृथा धारणं मम ॥२६
दिष्ट्या सहस्राक्षमहं विजेता पुनराहवे ।
आनन्देनाश्रुपूर्णाभ्यां नेत्राभ्यामरिमर्दनः ।

पञ्चाञ्जलिशतैर्देव पूजयन्नतितो भुवि ॥२७
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ बाहूनामात्मन स्वकुलस्य तु ।
सदृश प्राप्स्यसे वीर युद्धमप्रतिम महत् ॥२८
एवमुक्तस्ततो बाणस्त्र्यम्बकेण महात्मना ।
हर्षेणात्युच्छ्रित शीघ्र नत्वा स वृषभध्वजम् ॥२९
शितिकण्ठविसृष्टस्तु बाण. परपुरञ्जय ।
ययौ स्वभवन तत्र यत्र ध्वजगृह महत् ॥३०

अब वे मुझे हराने मे अपने को सर्वथा असमर्थ मान कर निराशा और उद्विग्नतापूर्वक देवलोक मे रह रहे है, इसलिये अब किसी सग्राम की सभावना प्रतीत नही होती । परन्तु, इस प्रकार युद्ध विहीन रह कर मेरी इन हजार भुजाओ का क्या उपयोग रह गया है ? हे देव ! युद्ध के बिना मेरी सन्तुष्टि किसी अन्य प्रकार स नही हो सकती । इसलिये युद्ध का अवसर अब कब उपस्थित होगा ? यह बताने की कृपा करिये । उसकी इस बात को सुन कर शिवजी ने कहा—हे वत्स ! जब तुम्हारी यह ध्वजा टूट कर पृथिवी पर गिरेगी, तभी तुम्हे अपने ही स्थान बैठे बैठे युद्ध का अवसर हाथ लग जायेगा ॥२१-२५॥ भगवान् शकर के वचनो को सुनकर बाणासुर ने अट्टहास किया और उसके नेत्रों मे हर्ष के आंसू आगये । तब उसने अपने हाथो को जोड कर भगवान् शकर के चरणो मे झुक कर निवेदन किया—हे भगवन् ! अब मुझे अपनी भुजाओ की सार्थकता का सौभाग्य प्राप्त हुआ है और मैं आशा करता हूँ कि अब युद्ध क्षेत्र मे इन्द्र को पछाडने का अवसर मुझे प्राप्त हो जायगा ॥२६-२७॥ हे राजन् ! इस पर भगवान् शकर ने पुन कहा—हे वत्स ! तुम्हारे भुजबल अनुरूप सग्राम की ही तुम्हे प्राप्ति होगी, अब तुम उठ पडो ॥२८॥ शिवजी के वचन सुन कर दैत्य श्रेष्ठ बाणासुर प्रसन्न होता हुआ उठा और उनका पूजन करके उनकी आज्ञा से अपने स्थान को चला गया ॥२९-३०॥

।। उषा की विरह कथा ।।

क्रीडाविहारोपगतः कदाचिदभवद्भवः ।
देव्या सह नदीतीरे रम्ये श्रीमति स प्रभुः ।।१
शतानित तत्राप्सरसां चिक्रीडुश्च समन्ततः ।
सर्वर्तुकवने रम्ये गन्धर्वपतयस्तथा ।।२
कुसुमैः पारिजातस्य पुष्पैः सन्तानकस्य च ।
गन्धोद्दामभिवाकाशं नदीतीरं तु सर्वशः ।।३
वेणुवीणामृदङ्गैश्च पणवैश्च सहस्रशः ।
वाद्यमाने स शुश्राव गीतमप्सरसा तदा ।।४
सूतमागधकल्पैश्चास्तुवन्नप्सरसां गणाः ।
देवदेवं सुवपुं स्रग्विणं रक्तवाससम् ।।५
श्रीमहेशं देवदेवमर्चयन्ति मनोरमम् ।
ततस्तु देव्या रूपेण चित्रलेखा वराऽप्सराः ।।६
भवं प्रसादयामास देवी च प्राहसत्तदा ।
प्रसादयन्तीमीशानं प्रहसन्त्यप्सरोगणाः ।।७
भवस्य पार्षदा दिव्या नानारूपा महौजसः ।
देव्या ह्यनुज्ञया सर्वे क्रीडन्ते तत्र तत्र ह ।।८
अथ ते पार्षदास्तत्र रहस्ये सुविपश्चितः ।
महादेवस्य रूपेण तच्चिह्नं रूपमास्थिताः ।।९

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन्! एक समय की बात है कि भगवान् शंकर अपनी प्रियतमा पार्वतीजी के साथ नदी के परम रमणीक किनारे पर विचरण कर रहे थे ।।१।। तभी सैकड़ो गन्धर्व और अप्सराएँ वहाँ आ उपस्थित हुईं और उनको चारो ओर से घेर कर क्रीडा करने लगी ।।२।। पारिजात और सन्तानक पुष्पों की सुगन्धि से सम्पूर्ण नदी तट सुवासित होगया ।।३।। उस समय भगवान्‌ शिवजी वेणु, वीणा, मृदङ्ग और पणव आदि वाद्यो के सहित अप्सराओ का नृत्य-गान सुनने मे तल्लीन होगये ।।४।। तब वे अप्सरायें रक्ताम्बर धारी

नीलकण्ठ भगवान् शंकर और भगवती पार्वतीजी को अपनी श्रेष्ठ कला के प्रदर्शन से प्रसन्न करने लगी। फिर जैसे सूत, मागध एवं बंदीजन स्तुतियाँ कहते हैं, उस प्रकार वे अप्सराएँ उन दोनो की स्तुति करने लगी ॥५॥ तभी चित्रलेखा नाम की अप्सरा पार्वतीजी का रूप धारण करके शिवजी को प्रसन्न करने लगी। उसके उस कला कौशल पर प्रसन्न हुई पार्वतीजी हँस पड़ी, तभी शिवगणो ने भगवान् शंकर का रूप धारण कर लिया ॥६-९॥

ततो देव्याः सुरूपेण लीलया वचनेन च ।
देवी प्रहासं मुमुचे ताश्चैवाप्सरसस्तदा ।
तत्र किलकिलाशब्दः प्रादुर्भूतः समन्ततः ॥१०
प्रहर्षमतुलं लेभे भवः प्रीतमनास्तदा ।
बाणस्य दुहिता कन्या तत्रोषा नाम भामिनी ॥११
देवं सक्रीडितं दृष्ट्वा देव्या सह नदीगतम् ।
दीप्यमानं महादेवं द्वादशादित्यतेजसम् ॥१२
नानारूपं वपुः कृत्वा देव्याः प्रियचिकीर्षया ।
उषा मनोरथं चक्रे पार्वत्याः सन्निधौ तथा ॥१३
धन्या हि भर्तृसहिता रमत्येवं समागता ।
मनसा त्वथ संकल्पमुषया भावितं तथा ॥१४
विज्ञाय तमभिप्रायमुषाया पर्वतात्मजा ।
प्राह देवी ततो वाक्यमुषां हर्षयती शनैः ॥१५
उषे त्वं शीघ्रमप्येवं भर्त्रा सह रमिष्यसि ।
यथा देवो मया सार्द्धं शङ्करः शत्रुनाशनः ॥१६

यह देख कर पार्वतीजी और अप्सराएँ अत्यन्त हर्षित हुई और उनके अट्टहास से वह समस्त नदी तट गूँज उठा ॥१०॥ उस हँसी को सुन कर शिवजी भी हँस पड़े। उसी समय बाणासुर की पुत्री उषा ने वहाँ आकर शिव-पार्वती को इस प्रकार क्रीडा करते हुए देखा तो उसकी भी क्रीड़ा करने की इच्छा हुई ॥११-१३॥ फिर वह पार्वतीजी के पास जाकर अपने मन मे विचार करने लगी कि

इस प्रकार अपने प्रियतम के साथ क्रीडा करने वाली स्त्रियाँ सब प्रकार से धन्य हैं ॥१४॥ उसके उस मनोभाव को भगवती उमा ने समझ लिया और वे बोली —हे उषे ! जैसे मैं भगवान् शङ्कर के साथ विहार करती हूँ, वैसे ही तुम भी शीघ्र ही अपने अनुरूप वर को प्राप्त होकर आनन्दोपभोग करोगी ॥१५-१६॥

एवमुक्ते तदा देव्या वाक्ये चिन्ताविलेक्षणा ।
उषा भाव तदा चक्रे भर्ता रंस्ये कदा सह ॥१७
तदा हैमवती वाक्य सप्रहस्येदमब्रवीत् ।
उषे शृणुष्व वाक्य मे यदा सयोगमेष्यसि ॥१८
वैशाखे मासि हर्म्यस्था द्वादश्या त्वा दिनक्षये ।
रमयिष्यति य स्वप्ने स ते भर्ता भविष्यति ॥१९
एवमुक्ता दैत्यसुना कन्यागणसमावृता ।
अपाक्रामत हर्षेण रममाणा यथासुखम् ॥२०
तत सखीभिर्हासयन्ती हर्षेणोत्फुल्ललोचना ।
तालिकासन्निपातैश्च ह्यन्योन्यमभ्यवर्तत ॥२१
किन्नर्यो यक्षकन्याश्च नानादैतेयकन्यका ।
अप्सरोगणकन्याश्चा उषाया सखिता गता ॥२२
उक्ता च तत्र ताभिश्च भर्ता तव वरानने ।
भविष्यत्यचिरेणैव देव्या वचनकल्पित ॥२३
न हि देव्या वचो मिथ्या भविष्यति कदाचन ।
रूपाभिजनसपन्न पतिस्ते कल्पितस्तया ॥२४

पार्वतीजी का वचन सुन कर उषा ने ऐसा भाव प्रदर्शित किया जैसे वह अपनी अभिलाषा पूर्ण होने मे कितना विलम्ब है, यह जानना चाहती हो ॥१७॥ तब उसके मनोभाव को जान कर पार्वतीजी ने हँसते हुए कहा—अधिक विलम्ब नही है । वैशाख की द्वादशी के रात्रिकाल मे तू जिस पुरुष की सगति का स्वप्न देखेगी, वही पुरुष तेरा पति होगा ॥१८ १९॥ पार्वतीजी के मुख से इस प्रकार का आश्वासन सुन कर दैत्य-कन्या उषा अत्यन्त हर्षित होकर क्रीडा करने लगी ॥२०॥ उस समय अप्सराओ की किन्नरों की, यक्षों की तथा दैत्यो आदि की जो

कन्याएँ उसकी सहेली थी, वे सब हास-परिहास करती और ताली बजाती हुई बोली—हे सखी ! भगवती पार्वतीजी का वचन सदा सत्य होता है, उनकी कृपा से तुम्हे शीघ्र ही पति की प्राप्ति होगी ॥२१-२४॥

॥ चित्रलेखा का द्वारका गमन ॥

तत्रस्थाः परमा नार्याश्चित्रेण परमाद्भुताः ।
ततो हर्म्ये शयानां तु वैशाखे मासि भामिनीम् ॥१
द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य सखीगणवृतां तदा ।
यथोक्तः पुरुषः स्वप्ने रमयामास तां शुभाम् ॥२
विचेष्टमाना रुदती देव्या वचनचोदिता ।
सा स्वप्ने रमिता तेन स्त्रीभावं चापि लम्भिता ।
शोणिताक्ता प्ररुदती सहसैवोत्थिता निशि ॥३
तां तथा रुदतीं दृष्ट्वा सखी भयसमन्विता ।
चित्रलेखा वचः स्निग्धमुवाच परमाद्भुतम् ॥४
उषे मा भैः किमेवं त्वं रुदती परितप्यसे ।
बलेः सुतसुता च त्वं प्रख्याता किं भयान्विता ॥५
न भयं विद्यते लोके तव सुभ्रु विशेषतः ।
अभयं तव वामोरु पिता देवान्तको रणे ॥६
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते विषादं मा कृथाः शुभे ।
नैवविधेषुवासेषु भयमस्ति वरानने ॥७
असकृद्देवसहितः शचीभर्ता सुरेश्वरः ।
अप्राप्त एव नगरं पित्रा ते मृदितो रणे ॥८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! इसके पश्चात् जब वैशाख की द्वादशी आगई, तब उसी रात्रि को उषा अपनी सखियों के साथ शयन कर रही थी, तभी स्वप्नावस्था में उसे एक सुन्दर पुरुष का संयोग प्राप्त हुआ ॥१-२॥ स्वप्न मे इस प्रकार संयोग होने पर उषा सहसा चीत्कार करती हुई उठी और उसने अपने को स्त्री-भाव में पाया । चीत्कार सुन कर उसकी सखी चित्रलेखा भी चौंक

कर उठ पड़ी और उसने उषा से कहा—हे सखी ! भय मत करो, तुम लोक विख्यात महाराज बाणासुर की सुपुत्री होकर इस प्रकार भयभीत होती हो ? अरे, तुम रो क्यों रही हो ? तुम्हारे पिता के सामने कोई भी वीर युद्धक्षेत्र में नहीं टिक पाता तो तुम्हें भय मानने या रोने का क्या कारण हो सकता है ? ॥३-६॥ इसलिये हे सखी ! तुम मन में उत्पन्न हुए विषाद का परित्याग करो। देखो, देवताओं के अधिपति इन्द्र ने अपनी सेना के सहित जब-जब इस नगर पर आक्रमण किया, तभी-तभी उन्हें परास्त होकर भागना पड़ा है ॥७-८॥

अथ देवसमूहस्य भयदश्च पिता तव ।
महासुरवरः श्रीमान्बलेः पुत्रो महाबलः ॥९
एवं साऽपि हिता सख्या बाणपुत्री यशस्विनी ।
स्वप्ने दृष्टं यथा दृष्टं न्यवेदयदनिन्दिता ॥१०
उषोवाच ।
एवं सम्प्रविना साध्वी कथं जीवितुमुत्सहे ॥११
पितरं किं नु वक्ष्यामि देवशत्रुमरिन्दमम् ।
एवं सदूषणकरी वंशस्यास्य महौजसः ॥१२
श्रेयो हि मरणं मह्यं न मे श्रेयोऽद्य जीवितम् ।
ईप्सितो वा यथा कोऽपि पुरुषो विगतो हि मे ॥१३
जाग्रतीव यथा चाहमवस्थेयं कृता मम ।
कथमेवं कृता नाम कन्या जीवितुमुत्सहे ॥१४
कुलोपक्रोशनकरी कुलाङ्गारी निराश्रया ।
जीवितुं न स्पृहेन्नारी साध्वीनामाग्रतः स्थिता ॥१५

जब देवगण भी तुम्हारे पिता के भय से सदैव डरते रहते हैं, तो फिर तुम्हें भय करने का कोई कारण नहीं है। तुम्हारे पिता महाराज बलि के अत्यन्त पराक्रमी पुत्र तथा सब दैत्यों के स्वामी हैं, यह समझ कर तुम्हें शान्त होना चाहिये ॥९॥ चित्रलेखा के वचन सुन कर उषा ने उसे अपने स्वप्न का सम्पूर्ण विवरण सुनाते हुए कहा—हे सखी ! मैं सती, साध्वी तथा उच्च वंश की कन्या

हूँ, परन्तु इस प्रकार लाञ्छित होकर अब किस प्रकार से जीवित रह सकूँगी ।।१०-११।। शत्रुओं का नाश करने और देवताओं को भी भयभीत करने वाले अपने पिता से मैं इस विषय में क्या कह पाऊँगी ? जब मेरे कारण मेरे पितृकुल पर कलंक लगता है तो मेरी मृत्यु होना ही श्रेयस्कर है। फिर जिस इच्छित पुरुष से संयोग हुआ था, वह भी तो मेरी दुर्दशा करके चला गया है, तब मेरे जीवन से क्या प्रयोजन है ? ।।१२-१५।।

इत्येव बाष्पपूर्णाक्षी सखीजनवृता तदा ।
विललाप चिरं कालमुषा कमललोचना ।।१६
अनाथवत्तां रुदतीं सख्यः सर्वा विचेतसः ।
ऊचुरश्रुपरीताक्षीमुषा सर्वाः समागताः ।।१७
दुष्टेन मनसा देवि शुभं वा यदि वाऽशुभम् ।
क्रियते न च ते सुभ्रु किंचिद्दुष्टं मनः शुभे ।।१८
प्रसभं दैवसंयोगाद्यदि भुक्ताऽसि भामिनि ।
स्वप्नयोगेन कल्याणि व्रतलोपो न विद्यते ।।१९
व्यभिचारेण ते देवि नास्ति कश्चिद्व्यतिक्रमः ।
न च स्वप्नकृतो दोषो मर्त्यलोकेऽस्ति सुन्दरि ।।२०
एवं विप्रर्षयो देवि धर्मज्ञा कथयन्ति वै ।
मनसा चैव वाचा च कर्मणा च विशेषतः ।
दुष्टा या त्रिभिरेतैस्तु पापा सा प्रोच्यते बुधैः ।।२१

हे राजन् ! पद्माक्षी उषा यह कह कर बहुत समय तक रोती रही। उस समय सखियाँ उसके चारों ओर बैठ गई और उसे व्याकुल देख कर वे भी अधीर हो उठीं। फिर उन सखियों ने गद्गद स्वर में उससे कहा—हे सखी ! दूषित चित्त से किये गये कार्य का ही बुरा फल मिल सकता है, परन्तु तुम्हारे मन में कोई बुरा विचार नहीं था ।।१६-१८।। यदि दैवयोग से किसी पुरुष का बलात् संयोग प्राप्त भी हुआ है तो वह स्वप्न की घटना होने के कारण असत्य है, उससे तुम्हारा कौमार्य भंग नहीं हो सकता ।।१९।। यह घटना व्याभिचार नहीं कही जा सकती। फिर मर्त्यलोक में तो स्वप्नावस्था का दोष, दोषों की गणना में ही

नहीं है ।।२०।। धर्म के जानने वालो का कथन है कि मन, वचन और कर्म से पाप करने वाली नारी ही पापिनी हो सकती है ।।२१।।

न च ते दृश्यते भीरु मन प्रचलित सदा ।
कथ त्व दोषसदुष्टा नियता ब्रह्मचारिणी ।।२२
यदि सुभ्रा सती साध्वी शुद्धभावा मनस्विनी ।
इमामवस्था प्राप्ता त्व नैव धर्मो विलुप्यते।।२३
यस्या दुष्ट मन पूर्वं कर्मणा चोपपादितम् ।
तामाहूरसती नाम सती त्वमसि भामिनि ।।२४
कुराजा रूपसपन्ना नियता ब्रह्मचारिणी ।
इमामवस्था नीताऽसि कालो हि दुरतिक्रम ।।२५
इत्येवमुक्ता रुदती वाष्पेणाकुललोचनाम् ।
कुम्भाण्डदुहिता वाक्य परम त्विदमब्रवीत् ।।२६
त्यज शोक विशालाक्षि अपापा त्व वरानने ।
श्रुत मे यदिद वाक्य याथातथ्येन तच्छृणु ।।२७
उपे यदुक्ता देव्याऽसि भर्तार ध्यायती तदा ।
समीपे देवदेवस्य स्मर भामिनि तद्वच ।।२८

जब तुम्हारा मन कभी क्षणभर के लिये भी चचल नही हुआ और जब तुम सदा ब्रह्मचर्य पालन पूवक रही हो तब तुम्हे दुष्टा कैसे कहा जा सकता है ? ।।२२।। स्वप्न काल मे यदि तुम्हारे जैसी शुद्ध भाव वाली सती, साध्वी कुमारी दैवयोग से ऐसी घटना मे फँस जाय तो उसका धर्म कभी भी लुप्त नही होता ।।२३।। जो स्वेच्छाचारिता पूर्वक दुष्कर्मों मे लगी रहती है उसी को असती कहते हैं ।।२४।। तुम रूप, गुण कुल, शील आदि मे सर्वश्रेष्ठ एव सती हो । यह घटना तो काल की गति से ही अनायास घट गई है ।।२५।। इस प्रकार सब सखियो के भाति भाति से समझाने पर भी उषा का मन शात नही हुआ और वह आँसुओं की धारा बहाती हुई रोती रही । उसे इस दशा मे देख कर कुम्भाण्ड नामक मत्री की पुत्री ने उससे कहा—हे विशाल नयनो वाली ! तुम इस शोक का परित्याग

करो। इस विषय मे तुम्हारा किंचित् भी दोष नही है, क्योकि इस समय मुझे जिस बात का स्मरण हुआ है, उससे भी तुम्हारा निरपराध होना सिद्ध होता है ॥२६-२७॥ तुम अपने मन को शान्त करके भगवान् शंकर के समक्ष कहे गये भगवती पार्वती के वचनो का स्मरण करो ॥२८॥

द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य वैशाखे मासि यो निशि ।
हर्म्ये शयाना रुदती स्त्री त्वां समुपनेष्यति ॥२९
भविता स हि ते भर्ता शूरः शत्रुनिबर्हणः ।
इत्युवाच वचो हृष्टा देवी तव मनोगतम् ॥३०
न हि तद्वचनं मिथ्या पार्वत्या यदुदाहृतम् ।
सा त्वं किमिदमत्यर्थं रोदिषीन्दुनिभानने ॥३१
एवमुक्ता तया बाला स्मृत्वा देवीवचस्ततः ।
अभवन्नष्टशोका सा बाणपुत्री शुभेक्षणा ॥३२
स्मरामि भामिनि वचो देव्या क्रीडागते भवे ।
यथोक्तं सर्वमखिलं प्राप्तं हर्म्यतले मया ॥३३
भर्ता तु मम यद्येष लोकनाथस्य भार्यया ।
व्यादिष्टः स कथं ज्ञेयस्तत्र कार्यं विधीयताम् ॥३४
इत्येवमुक्ते वचने कुम्भाण्डदुहिता पुनः ।
व्याजहार यथान्यायमर्थतत्त्वविशारदा ॥३५
न हि तस्याः कुलं देवि न कीर्तिर्नाम पौरुषम् ।
कश्चिज्जानाति तत्त्वेन किमिदं त्वं विमुह्यसे ॥३६

उन्होने कहा था कि वैशाख की द्वादशी को तुम्हारी स्वप्नावस्था मे जिस पुरुष का तुम्हे सयोग प्राप्त होगा, वही तुम्हारा पति बनेगा। इस प्रकार पार्वती-जी ने तुम्हारा मन चाहा वर प्रदान किया था ॥२९-३०॥ भगवती के वचन कभी भी असत्य नही हो सकते, इसलिये अब, जब कि तुम्हारे समक्ष अनुकूल अवसर उपस्थित होगया, तब क्यो रो रही हो ? ॥३१॥ हे राजन् ! मन्त्रीतनया के वचन सुन कर उषा का शोक मिट गया और वह कहने लगी ॥ ३२ ॥ उषा

बोली—हे सखी ! अब मुझे भगवती पार्वतीजी ने क्रीड़ा के समय जो वचन कहे थे, उनकी याद आगई है, परन्तु उनके द्वारा निर्दिष्ट मेरा वह पति कौन है, यह जानने का उपाय होना चाहिये ॥३३-३४॥ उषा की बात सुन कर अर्थ तत्व विशारदा कुम्भाण्डतनया ने कहा—हे सखी ! उस पुरुष के रूप गुण को हम में से कोई भी नहीं जानती तो मन में व्यर्थ ही संतप्त होती हो क्या ?
॥ ३५,३६ ॥

अदृष्टश्चाश्रुतश्चैव दृष्ट: स्वप्ने च य शुभे ।
कथं ज्ञेयो भवेद्वीर सोऽस्माभी रतितस्कर ॥३७
येन त्वमसितापाङ्गि मत्तकाशिनि विक्रमात् ।
रक्षती प्रसभ मुक्ता प्रविश्यान्त पुर सखि ।।३८
न ह्यसौ प्राकृत कश्चिद्य प्रविष्ट प्रसह्यते ।
नगर लोकविख्यातमेक शत्रुनिबर्हण ।।३९
आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ च महौजसौ ।
न शक्ता शोणितपुर प्रवेष्टु भीमविक्रमा ।।४०
सोऽयमेतै शतगुणैर्विशिष्टश्चारिसूदन ।
प्रविष्ट शोणितपुर दाणमानस्य मूर्धनि ।।४१
यस्या नैव विधो भर्ता भवेद्युद्धविशारद ।
कास्तस्या जीवितेनार्थो भोगैर्वास्त्यम्बुजेक्षणे । ४२
धन्यास्यनुगृहीतासि यस्यास्ते पतिरीदृश ।
प्राप्तो देव्या प्रसादेन कन्दर्पसमविक्रम ।।४३
इद तु यत्कार्यतम शृणु त्व तन्मयेरितम् ।
विज्ञेयो यस्य पुत्रो वै यन्नामा यत्कुलश्च स ।।४४

हमने न तो उसे कभी देखा और न कानो से उसके विषय मे कुछ सुना तथा तुम भी केवल स्वप्न मे ही उसे देख सकी हो, तब हम मे से कोई उसे किस प्रकार पहचान पायेगी ? ॥ ३७ ॥ फिर इस लोक प्रसिद्ध नगर मे वह इकला ही अपने पराक्रम से आकर तुमसे मिला, तो अवश्य ही वह कोई अगाधा-

रण पुरुष होगा ॥३८-३६॥ देखो, आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण और अश्विद्वय महायशस्वी होकर भी इस नगर मे प्रवेश नही कर सके ॥४०॥ परन्तु वह पुरुष बाणासुर के शिर पर पाँव रख कर शोणितपुर मे घुस आया था, तो अवश्य ही वह उनसे शतगुणा पराक्रमी होगा ॥४१॥ जिस नारी का पति इतना पराक्रमी न हो उसे भोगो का सुख अथवा जीवन का आनन्द ही उपलब्ध नही हो सकता ॥४२॥ इस प्रकार हे सखी ! तुम धन्या और अनुग्रहीता हो । यदि ऐसा न होता तो पार्वतीजी तुम पर प्रसन्न ही क्यो होती अथवा तुम्हे ऐसे कामोपम पति की प्राप्ति का वर ही क्यो प्रदान करती ? ॥४३॥ अब मैं तुम्हे जो उपाय बताती हूँ, उसे सुन कर वैसा कार्य करो तो तुम्हे उस युवक के पिता, वंश और नाम का पता सुगमता से लग सकता । ४४॥

इत्येवमुक्ते वचने तत्रोषा काममोहिता ।
उवाच कुम्भाण्डसुता कथं ज्ञास्याम्यहं सखि ॥४५

त्वमेव चिन्तय सखि नोत्तरं प्रतिभाति मे ।
स्वकार्ये मुह्यते लोको यथा जीवं लभाम्यहम् ॥४६

उषाया वचनं श्रुत्वा रामा वाक्यमिदं पुनः ।
उवाच रुदती चोषां कुम्भाण्डदुहिता सखी ॥४७

कुशला ते विशालाक्षि सर्वथा सन्धिविग्रहे ।
अप्सरा चित्रलेखा वै क्षिप्रं विज्ञाप्यतां सखि ॥४८

अस्याः सर्वमशेषेण त्रैलोक्यं विदितं सदा ।
एवमुक्ता तदोषा ऽर्पणागतविस्मया ॥४९

तामप्सरसमानाय्य चित्रलेखां सखीं प्रियाम् ।
कृताञ्जलिपुटा दीना उषा वचनमब्रवीत् ॥५०

सा तच्छ्रुत्वा तु वचनमुषायाः परिकीर्तितम् ।
आश्वासयामास सखीं बाणपुत्रीं यशस्विनीम् ॥५१

इस पर काम से मोहित हुई उषा उससे बोली—हे सखी ! अपना कार्य उपस्थित होने पर उसकी चिन्ता मे सभी का चित्त भ्रान्त हो जाता है, इसलिये

मैं भी अपने कर्त्तव्य का निश्चय नहीं कर पा रही हूँ । अतः तुम ही कोई ऐसा यत्न करो जिससे मेरे प्रियतम का पता लग सके ॥४५-४६॥ उषा के वचन सुन कर कुम्भाण्ड-पुत्री ने कहा—हे सखी ! सन्धि-विग्रह की नीति में चित्रलेखा बहुत चतुर है और वह तीनों लोकों के वृत्तान्त को भले प्रकार जानती है, इसलिये इस विषय में उसी से परामर्श करना चाहिये । यह सुन कर उषा को अत्यन्त हर्ष एवं आश्चर्य हुआ ॥४७-४६॥ उसने उसी समय चित्रलेखा को बुला कर उसे सम्पूर्ण वृत्तान्त बता दिया, तब उसकी बात को समझ कर चित्रलेखा ने उसे आश्वासन दिया ॥५०-५१॥

ततः सा विस्मयाविष्टा वचनं प्राह दुर्वचम् ।
चित्रलेखामप्सरसं प्रणयात्ता सखीमिदम् ॥५२
परमं शृणु मे वाक्यं यत्त्वा वक्ष्यामि भामिनि ।
भर्तारं यदि मेऽद्य त्वं नानयिष्यसि मत्प्रियम् ॥५३
कान्तं पद्मपलाशाक्षं मत्तमातंगगामिनम् ।
त्यक्ष्याम्यहं ततः प्राणानचिरात्तनुमध्यमे ॥५४
चित्रलेखाऽब्रवीद्वाक्यमुषां हर्षवती शनैः ।
नैषोऽर्थः शक्यतेऽस्माभिर्वेत्तुं भामिनि सुव्रते ॥५५
न कुलेन न वर्णेन न शीलेन न रूपतः ।
न देशतश्च विज्ञातः स हि चोरो मया सखि ॥५६

फिर आश्चर्य में भरी हुई उषा अपनी सहेली चित्रलेखा से विनीत भाव-पूर्वक बोली—हे सखी ! तुम मेरा अन्तिम निश्चय सुन लो । यदि तुम आज ही मेरे मत्त गजराज जैसे पराक्रमी प्रियतम का पता न लगा सकी तो मेरा यह प्राण नहीं रहेगा ॥५२-५४॥ इस पर चित्रलेखा ने उसे सान्त्वना देकर कहा—मैं इस विषय में कुछ भी नहीं कह सकती, क्योंकि मैं तुम्हारे चित्त को आकर्षित करने वाले पुरुष के रूप, गुण, वंश, शील और देश आदि को किंचित् भी नहीं जानती ॥ ५५-५६ ॥

किन्तु कर्तुं यथाशक्यं बुद्धिपूर्वं मया सखि ।
प्राप्तं च शृणु मे वाक्यं यथा काममवाप्स्यसि ॥५७
देवदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
ये विशिष्टाः प्रभावेण रूपेणाभिजनेन च ॥५८
यथाप्रभावं तान्सर्वानालिखिष्याम्यहं सखि ।
मनुष्यलोके ये चापि प्रवरा लोकविश्रुताः ॥५९
सप्तरात्रेण ते भीरु दर्शयिष्यामि तानहम् ।
ततो विज्ञाय पादस्थं भर्त्तारं प्रतिपत्स्यसे ॥६०
सा चित्रलेखया प्रोक्ता उषा हितचिकीर्षया ।
क्रियतामेवमित्याह चित्रलेखा सखी प्रियाम् ॥६१

फिर भी उसे प्राप्त करने का एक उपाय मैंने सोचा है, उसे कहती हूँ, सुनो ॥५७॥ देवता, दैत्य, यक्ष, गंधर्व, राक्षस, नाग और मनुष्यों में जो-जो पुरुष विख्यात हैं, उन-उन के चित्र बना कर तुम्हें दिखाऊँगी। यह चित्र एक सप्ताह में तुम्हारे सामने आजायेंगे, तब उनमें यदि तुम्हारा इच्छित पुरुष हो तो उसे पहिचान लेना ॥५८-६०॥ चित्रलेखा की बात सुन कर उषा ने कहा—हे सखी ! अब तुम्हें जो उचित प्रतीत हो, वही करो ॥६१॥

ततः कुशलहस्तत्वाद्यथालेख्यं समन्ततः ।
इत्युक्त्वा सप्तरात्रेण कृत्वा लेख्यगतास्तु तान् ॥६२
चित्रपट्टगतान्मुख्यानानयामास शोभना ।
ततः प्रस्तीर्य पट्टं सा चित्रलेखा स्वयं कृतम् ॥६३
उषायै दर्शयामास सखीनां तु विशेषतः ।
एते देवेषु ये मुख्यास्तथा दानववंशजाः ॥६४
किन्नरोरगयक्षाणां राक्षसानां समन्ततः ।
गन्धर्वासुरदैत्यानां ये चान्ये भोगिनः स्मृताः ॥६५
मनुष्याणां च सर्वेषां ये विशिष्टतमा नराः ।
तदेतान्पश्य सर्वांस्त्वं यथैव लिखितान्मया ॥६६

यस्ते भर्ता यथारूपो मयाभिलिखितः सखिः ।
तं त्वं प्रत्यभिजानीहि स्वप्ने यं दृष्टवत्यसि ॥६७

फिर चित्रलेखा नाम की वह अप्सरा अपनी चतुराई से एक सप्ताह मे ही चित्रलेखन कार्य को सम्पूर्ण कर और उषा के पास आकर सब सखियो के सामने चित्रों का प्रदर्शन करती हुई बोली—देवता, दानव, यक्ष, गंधर्व, किन्नर, नाग और मनुष्यो मे जो सर्व श्रेष्ठ समझे जाते हैं, उन सब के चित्र मैंने बना दिये हैं, अब तुम स्वप्न मे देखे हुए अपने उस इच्छित पुरुष को इनमें से पहिचान लो ॥ ६२-६७ ॥

ततः क्रमेण सर्वांस्तान्दृष्ट्वा सा मत्तकाशिनी ।
देवदानवगन्धर्वविद्याधरगणानथ ।
अतीत्य च यदून्सर्वान्ददर्श यदुनन्दनम् ॥६८
तत्रानिरुद्धं दृष्ट्वा सा विस्मयोत्फुल्ललोचना ।
उवाच चित्रलेखां तामयं चौरः स वै सखि ॥६९
येनाहं दूषिता पूर्वं स्वप्ने हर्म्यगता सती ।
सोऽयं विज्ञातरूपो मे कुतोऽयं रतितस्करः ॥७०
चित्रलेखे वदस्वं न तत्त्वतो मम शोभने ।
कुशीनाभिजनतो नाम किं चास्य भामिनि ।
ततः पश्चाद्विधास्यामि कार्यस्यास्य विनिश्चयम् ॥७१
अयं त्रैलोक्यनाथस्य नप्ता कृष्णस्य धीमतः ।
भर्ता तव विशालाक्षि प्राद्युम्निर्भीमविक्रमः ॥७२
न ह्यस्ति त्रिषु लोकेषु सदृशोऽस्य पराक्रमे ।
उत्पाट्य पर्वतानेष पर्वतानेष शातयेत् ॥७३
धन्यास्यनुगृहीतासि यस्यास्ते यदुपुङ्गव ।
त्र्यक्षपरया समादिष्टः सदृशः सज्जनः पतिः ॥७४

इस प्रकार उषा देव, दानव, गंधर्व आदि के चित्रो को देखती हुई जब मनुष्यों के चित्रोंको देख रही थी, तभी सहसा उसकी दृष्टि अनिरुद्ध के चित्र पर

जा पहुँची और उसे देखते ही कह उठी—हे सखी ! यही तो वह चितचोर है ॥६८-६६॥ उस दिन यही मेरी स्वप्नावस्था मे मुझसे मिला था । अब तुम बताओ कि यह कहाँ होगा ? ॥७०॥ इसका कुल, शील, रूप और नाम आदि का यथार्थ पता बताओ, फिर भविष्य का कर्त्तव्य स्थिर किया जायगा ॥७१॥ तब चित्रलेखा ने कहा—हे सखी ! यह भगवान् श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध हैं, इनके पिता का नाम प्रद्युम्न है । तीनो लोको मे इनके समान कोई वीर नही है । यह पर्वतो को उखाड कर उन्ही के प्रहार से अन्यान्य पर्वतो को छिन्न-भिन्न कर डालते हैं ॥७२ ७३॥ अवश्य ही तुम कृत्यकृत्य हो गई हो, यदि यह बात न होती तो भगवती पार्वती तुम्हारे लिये ऐसा श्रेष्ठ पति क्यो प्राप्त कराती ? ॥७४॥

त्वमेवास्य विशालाक्षि योग्या भव वरानने ।
न शक्या हि गतिश्चान्या अगत्या मे गतिर्भव ॥७५
अन्तरिक्षचरा च त्वं योगिनी कामरूपिणि ।
उपायस्यास्य कुशला क्षिप्रमानय मे प्रियम् ॥७६
सर्वथा सस्तुता तेऽहं वाक्यैरमृतसोदरैः ।
कारिता च समुद्योगं प्रियं कान्तैश्च भाषितैः । ७७
एषा गच्छाम्यहं भीरु क्षिप्रं वै द्वारका पुरीम् ।
भर्तारमानयाम्यद्य तव वृष्णिकुलोद्भवम् ।
अनिरुद्धं महाबाहुं प्रविश्य द्वारका पुरीम् ॥७८
सा वचस्तथ्यमशिवं दानवाना भयावहम् ।
उक्त्वा चान्तर्हिता क्षिप्रं चित्रलेखा मनोजवा ॥७९
सखीभिः सहिता ह्युषा चिन्तयन्ती तु सा स्थिता ।
तृतीये तु मुहूर्ते सा नष्टा बाणपुरात्तदा ॥८०
सखीप्रियं चिकीर्षन्ती पूजयन्ती तपोधनान् ।
क्षणेन समनुप्राप्ता द्वारकां कृष्णपालिताम् ॥८१
कैलासशिखराकारैः प्रासादैरुपशोभिताम् ।
ददर्श द्वारका रम्या दिवि तारामिव स्थिताम् ॥८२

नगरे शोणितपुरे बाणो नाम महासुरः ।
तस्य कन्या वरारोहा नाम्नोपेति च विश्रुता ॥७
भगवन्सानुरक्ता च प्राद्युम्नि पुरुषोत्तमम् ।
देव्या वरविसर्गेण तस्या भर्ता विनिर्मितः ॥८
त च नेतुं समायाता तत्र सिद्धि विधत्स्व मे ।
मया नीतेऽनिरुद्धे तु नगर शोणिताह्वयम् । ९
प्रवृत्तिः पुण्डरीकाक्षे त्वयाऽऽख्येया महामुने ।
अवश्य भविता चैव कृष्णेन सह विग्रह ।
बाणस्य सुमहान्सख्ये दिव्यो हि स महासुरः ॥१०

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन्! द्वारका स्थित भगवान् श्रीकृष्ण के भवन-द्वार पर जाकर चित्रलेखा सोचने लगी कि मैं अनिरुद्ध के पास किस प्रकार पहुँच सकती हूँ, जिससे कि उषा का वृत्तान्त उन्हें सुनाया जा सके? ॥१॥ तभी एक जलाशय के किनारे पर बैठे हुए देवर्षि नारद को उसने भगवान् का ध्यान करते हुए देखा ॥२॥ इससे वह बड़ी प्रसन्न हुई और तुरन्त ही उनके पास आकर प्रणाम पूर्वक विनीत भाव से खड़ी हो गई ॥३॥ तभी नारदजी का ध्यान भग हुआ और वह बोले—हे अप्सरे! तुम यहाँ किस प्रयोजन से आई हो, यह यथार्थ रूप से कहो ॥४॥ इस पर चित्रलेखा ने हाथ जोड़ कर तीनों लोकों में सम्मानित उन नारदजी से कहा—हे भगवन्! मैं जिस कार्य से यहाँ आई हूँ, उसे कहती हूँ। मुझे यहाँ से अनिरुद्ध को लिवा ले जाना है। क्योंकि शोणितपुर के अधिपति बाणासुर की एक अत्यन्त सुन्दरी 'उषा' नाम की कन्या है ॥ ५-७ ॥ भगवती पार्वती ने उसे पति रूप में अनिरुद्ध को प्राप्त करने का वर प्रदान किया है और उषा की भी उनमें अत्यन्त आसक्ति है, इसीलिये मैं उन्हें लिवा ले जाना चाहती हूँ। हे भगवन्! मुझे इस कार्य में जिस प्रकार सफलता मिल सके, वह उपाय करिये और जब मैं उन्हें यहाँ से ले जाऊँ, तब यह वृत्तान्त भगवान् श्रीकृष्ण को भी बता दीजिये। परन्तु ऐसा होने पर युद्ध में अत्यन्त दुर्धर्ष दैत्यराज बाणासुर के साथ संग्राम छिड़ने की सम्भावना है ॥८-१०॥

न च शक्तोऽनिरुद्धस्त युद्धे जेतु महासुरम् ।
सहस्रबाहुमायान्त जयेत्कृष्णो महाभुज ॥११
भगवन्सन्निकर्ष ते यदर्थमहमागता ।
कथ हि पुण्डरीकाक्षो ज्ञापितस्तदिद भवेत् ॥१२
त्वत्प्रसादाच्च भगवन्न मे कृष्णाद्भय भवेत् ।
स हि तत्त्वार्थदृष्टिस्तु अनिरुद्ध कथ ह्रियेत् ॥१३
क्रुद्धो हि स महाबाहुस्त्रैलोक्यमपि निर्दहेत् ।
पौत्रशोकाभिसतप्त शापेन स दहेत् माम् ॥१४
तत्रोपाय च भगवश्चिन्तितु वै त्वमर्हसि ।
यथा ह्यूपा लभेत्कान्त मम चैवाभय भवेत् ॥१५

इसलिये उसका अनिरुद्ध से परास्त होना सभव नही है अ त मे भगवान् श्रीकृष्ण को ही उसे हराना पडेगा ॥११॥ इस समय भग्वान् श्रीकृष्ण को यह वृत्तान्त किस प्रकार सुनाया जाय, मैं आपसे यही जानना चाहती हूँ । १२॥ यदि आप मुझ पर कृपा करके यह समाचार भगवान् श्रीकृष्ण को स्वय ही सुना द, तो मैं निभय हो जाऊँ । उनके मनोभाव का ज्ञान हुए बिना अनिरुद्ध का अपहरण करने का मुझे साहस नही होरहा है ॥१३॥ भगवान् श्रीकृष्ण अपने क्रोध से तीनो लोको को भस्म करने मे समथ हैं, यदि मैं उनके जाने बिना ही अनिरुद्ध का अपहरण कर लूँगी तो वे पौत्र शोक से सतप्त होकर कही मुझे ही भस्म न कर डालें ॥१४॥ इसलिये आप ही कोई उपाय करें जिसस उषा को उसके प्रिय पति की प्राप्ति हो सक और मैं भय से मुक्त हो सकूँ ॥१५॥

इत्येवमुक्तो भगवाश्चित्रलेखा स नारद ।
उवाच स शुभ वाक्य मा भैस्त्वमभय शृणु। १६
त्वया नीतेऽनिरुद्धे तु कन्यावेश्मप्रवेशिते ।
यदि युद्ध भवेत्तत्र स्मर्तव्योऽह शुचिस्मिते ॥१७
ममैप परम कामो युद्ध द्रष्टु मनोरमे ।
तद्दृष्ट्वा च महाप्रीति प्रवृत्तिश्च दृढाभवेत् ॥१८

ह्यतां तामसी विद्यां सर्वलोकप्रमोहिनीम् ।
कृतकृत्यस्तु ते देवि एष विद्या ददाम्यहम् ॥१९
एवमुक्ते तु वचने नारदेन महर्षिणा ।
तथेति वचनं प्राह चित्रलेखा मनोजवा ॥२०
अभिवाद्य महात्मानमृषीणा नारदं वरम् ।
सा जगामानिरुद्धस्य गृहं च वान्तरिक्षगा ॥२१
ततो द्वारवतीमध्ये कामस्य भुवनं शुभम् ।
तत्समीपेऽनिरुद्धस्य भवनं सा विवेश ह ॥२२

चित्रलेखा के वचन सुन कर नारदजी ने कहा—हे अप्सरे ! तुम्हे किसी प्रकार भयभीत होने की आवश्यकता नही है क्योकि मैं तुम्हे भय से बचने का उपाय बताता हूँ ॥१६॥ जब तुम अनिरुद्ध को बाणासुर की पुत्री के पास पहुँचा दो, तब यदि किसी प्रकार युद्ध होने लगे तो मेरी याद करना ॥ १७ ॥ क्योकि युद्ध को देख कर मेरा चित्त अत्यन्त आनन्दित हो उठता है, इसलिये मैं युद्ध देखने के लिये सदा उत्सुक रहता हूँ । इसलिये मैं तुम्हे विश्व को मोह मे डालने वाली तामसी विद्या दे रहा हूँ, तुम उसे ले लो ॥१८-१६॥ तब चित्रलेखा ने नारदजी से तामसी विद्या प्राप्त कर उन्हे प्रणाम किया और आकाश मार्ग से होकर द्वारका के मध्य प्रद्युम्न भवन के पार्श्व भाग मे स्थित अनिरुद्ध के महल मे प्रवेश किया ॥ २०-२२ ॥

ददर्श भवनं यत्र प्राद्युम्निरवसत्सुखम् ।
तत. प्रविश्य भवनं सहसा तस्य तन्महत् ॥२३
तत्रानिरुद्धं सापश्यच्चित्रलेखा वराप्सराः ।
मध्ये परमनारीणां तारापतिमिवोदितम् ॥२४
व्यक्तमस्य हि सत्स्वप्नो हृदये परिवर्तते ।
इति तत्रैव बुद्धया च निश्चिता गतसाध्वसा ॥२५
सा दृष्ट्वा परमस्त्रीणां मध्ये शक्रध्वजोपमम् ।
चिन्तयाविष्टहृदया चित्रलेखा मनस्विनी ॥२६

कथं कार्यमिदं कार्यं कथं स्वस्ति भवेदिति ।
साऽन्तर्हिता चिन्तयित्वा चित्रलेखा यशस्विनी ॥२७
तामस्या छादयामास विद्यया शुभलोचना ।
ततोऽन्तरिक्षादेवाशु प्रासादोपर्यधिष्ठिता ॥२८
प्राद्युम्निं वचनं प्राह श्लक्ष्णं मधुरया गिरा ।
चक्षुर्दत्वा तु सा तस्मै कृत्वा चात्मनि दर्शनम् ॥२९
विविक्ते सा च वै देशे तं वाक्यमिदमब्रवीत् ।
अपि ते कुशलं वीर सर्वत्र यदुनन्दन ॥३०
अहस्तावत्प्रदोषो वा कच्चिद्गच्छति ते सुखम् ।
शृणुष्व त्वं महाबाहो विज्ञप्तिं मे रतीसुत ॥३१

फिर जिस कक्ष मे अनिरुद्ध अनेक सुन्दरियो के मध्य मे बैठे रह कर तारिकाओ के मध्य मे चन्द्रमा जैसे प्रतीत होरहे थे, वहाँ वह जा पहुँची ॥२२-२४॥ परन्तु अनिरुद्ध के स्त्रियो से घिरे होने के कारण चित्रलेखा ने सोचा कि इस प्रकार मरा कार्य कैसे होगा ? फिर कुछ स्थिर कर वह नारद प्रदत्त तामसी विद्या के प्रभाव से अदृश्य रह कर भवन के ऊपर जा पहुँची और उसने सब को मोहित कर अनिरुद्ध को चैतन्य रहने की शक्ति देकर उन्ही स्त्रियो के रहते हुए मधुर स्वर मे उनसे कहा—हे यदुनन्दन ! हे वीर ! आप कुशल से तो हैं ? आप-के दिन-रात तो सुखपूर्वक व्यतीत होते हैं ? इस समय मैं आपसे जो कुछ कहना चाहती हूँ, उसे सुनिये ॥२५-३१॥

उपाया मम सख्यास्तु वाक्यं वक्ष्यामि तत्त्वतः ।
स्वप्ने तु या त्वया दृष्टा स्त्रीभावं चापि भाविता ॥३२
निर्भर्त्ति हृदये या त्वामुपया प्रेषिता त्वहम् ।
रुदन्ती जृम्भती चैव निःश्वसन्ती मुहुर्मुहुः ॥३३
त्वद्दर्शनपरा सौम्य कामिनी परितप्यते ।
यदि त्वं यास्यसे वीर धारयिष्यति जीवितम् ३४
अदर्शनेन मरणं तस्या नास्त्यत्र संशयः ।
यदि नारीसहस्र ते हृदिस्थ यदुनन्दन ॥३५

स्त्रिया कामयमानाया कर्तव्या हस्तधारणा ।
त्व च तस्या वरोत्सर्गे दत्तो देव्या. मनोरथः ॥३६

आपने स्वप्न मे देख कर ही जिसके साथ पत्नी के समान आचरण किया था, उस उपा ने उसी समय से आपको अपने हृदय मदिर मे स्थान दे रखा है । वह कभी रोती, कभी जम्हाई लेती और कभी-कभी नि श्वास छोडती हुई आपको याद करती है । मुझे उसी ने आपके पास भेजा है ॥३२-३३॥ हे सौम्य ! आपके बिना वह जीवित नही रहेगी । वैसे आपकी सेवा हजारो स्त्री-रत्न तत्पर हैं, फिर भी यदि कोई नारी आपको कामना करती है तो उसका पाणिग्रहण करना आपका कर्त्तव्य है । भगवती पार्वतीजी के वरदान से ही वह आपके प्रति आशावान हुई है ॥ ३४-३५-३६ ॥

चित्रपट्ट मया दत्त त्वच्चिह्न दृश्य जीवति ।
सानुक्रोशो यदुश्रेष्ठ भव तस्या मनोरथे ॥३७
उपा ते पतते मूर्ध्ना वय च यदुनन्दन ।
श्रूयता चोद्भवस्तस्या कुलशील च यादृशम् ॥३८
सस्थान प्रकृति चास्या पितर च ब्रवीमि ते ।
वैरोचनिसुतो वीरो बाणो नाम महासुर ॥३९
स राजा शोणितपुरे तस्य त्वामिच्छते सुता ।
त्वद्भावगतचित्ता सा त्वन्मय चापि जीवितम् ॥४०
मनोरथकृतो भर्ता देव्या दत्तो न सशय ।
त्वत्सगमात्सा सुश्रोणी प्राणान्धारयते शुभा ॥४१

मैंने उसे आपका चित्र बना कर दिखाया था, वह सदा उसी को अपने अक में लिये रहती है । मेरी प्रार्थना है कि आप मेरी सखी पर दया कीजिये और जैसे भी हो सके उसका मनोरथ पूरा करने की कृपा करिये । अब मैं उसके कुल, शील, स्थान, प्रकृति और उसके पिता का परिचय देती हूँ ॥ ३७-३८-३९ ॥ शोणितपुर का राजा बाणासुर दैत्यराज बलि का पुत्र तथा महान् वीर है, वही उस उपा का पिता है । वह सुन्दरी आपको अपना मन अर्पण करके अपने जीवन

को आपका आश्रित कर चुकी है ॥४०॥ भगवती पार्वती ने भी उसे आपको वर रूप मे प्राप्त करने का वर प्रदान किया था। इसलिये भी वह अनुरक्ता आपके अभाव मे कभी भी जीवन धारण नही करेगी ॥४१॥

चित्रलेखावच श्रुत्वा सोऽनिरुद्धोऽब्रवीदिदम्।
दृष्टा स्वप्ने मया सा हि तन्मत्त शृणु शोभने ॥४२
रूप कांति मति चैव सयोग रुदित यथा।
एव सवमहोरात्र मुह्यामि परिचिन्तयन् ॥४३
यद्यह समनुग्राह्यो यदि सत्य त्वमिच्छसि।
नयस्व चित्रलेखे मा द्रष्टुमिच्छाम्यह प्रियाम् ॥४४
कामसन्तापसन्तप्त प्रियासङ्गमकामत।
एषोऽञ्जलिमया बद्ध सत्य स्वप्न कुरुष्व मे ॥४५
तस्य यद्वचन श्रुत्वा चित्रलेखा वराप्सरा हृ।
सफलोऽद्य मम क्लेश सरला मे यत्प्रयाचितम् ॥४६
ईप्सित तस्य विज्ञाय अनिरुद्धस्य भामिनी।
चित्रलेखा ततस्तुष्टा तथेति च तमब्रवीत् ॥४७
हर्म्ये स्त्रीगणमध्यस्थ कृत्वा चान्तर्हित यदा।
उत्पपात गृहीत्वा सा प्राद्युम्नि युद्धदुर्मदम् ॥४८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! चित्रलेखा के वचन सुन कर अनिरुद्ध बोले कि मैंने भी उसे जब से स्वप्न में देखा है, तभी से दुदशा ग्रस्त होरहा हूँ। तुम उसका विवरण सुनो ॥ ४२ ॥ मैं भी उसी समय से उसके रूप-लावण्य एव सयोगादि का विचार करता हुआ निरन्तर विमूढ बन गया हूँ और उसके दर्शन के लिये नित्य त व्याकुल हूँ इसलिये यदि तुम मुझ पर कुछ अनुग्रह करना चाहती हो तो शीघ्र ही उसके पास ले चलो ॥४३ ४४॥ हे अप्सरे ! मैं अपनी उस प्रियतमा से भेंट करने के लिये बहुत ही अधीर होगया हूँ, इसलिये मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि मेरे स्वप्न को सत्य करके दिखा दो ॥४५॥ यह सुन कर चित्रलेखा अत्य त प्रसन्न हुई और उसने तुरन्त ही अनिरुद्ध को उन महिलाओं के मध्य से

अपहृत कर लिया। फिर वह उन्हें साथ लेकर आकाश मार्ग से यह सोचती हुई उड़ चली कि मेरी सखी द्वारा सौंपा गया कार्य पूरा हो चुका है ॥४६-४७-४८॥

तमध्वानमागम्य सिद्धचारणसेवितम्।
सहसा शोणितपुरं प्रविवेश मनोजवा ॥४९
अदर्शनं तमानीय मायया कामरूपिणी।
अनिरुद्धं महाभागा यत्रोषा तत्र गच्छति ॥५०
उषाया दर्शयच्चैनं चित्राभरणभूषितम्।
चित्राम्बरधरं वीरं रहस्यमररूपिणम् ॥५१
तत्रोषा विस्मिता दृष्ट्वा हर्म्यस्था सन्निमन्त्रिवौ।
प्रवेशयामास च तं तदा सा स्वगृहं ततः ॥५२
प्रहर्षोत्फुल्लनयना प्रियं दृष्ट्वाऽर्थकोविदा।
सा हर्म्यस्था तमर्घ्येण यादवं समपूजयत् ॥५३
चित्रलेखां परिष्वज्य प्रियाख्यानेष्वपूजयत्।
त्वरिता कामिनी प्राह चित्रलेखां भयातुरा ॥५४
सखीदं वै कथं कार्यं गुह्यं कार्यविशारदे।
गुह्ये कृते भवेत्स्वस्ति प्रकाशे जीवितक्षयः ॥५५

फिर वह सिद्धगणों और चारणों से सेवित मार्ग को पार करती हुई शोणितपुर में प्रविष्ट हुई और अपनी माया के प्रभाव से अनिरुद्ध को अदृश्य रखती हुई उषा के भवन में ले पहुँची ॥४९-५०॥ उस समय उस अद्भुत शस्त्रास्त्रों से युक्त अनिरुद्ध के दर्शन कर उषा को अत्यन्त आश्चर्य हुआ, तब चित्रलेखा उन दोनों को घर के अन्तरंग भाग में ले गई ॥५१-५२॥ वहाँ उषा ने अत्यन्त हर्षित होकर अनिरुद्ध को अर्घ्य प्रदान किया और चित्रलेखा को हृदय से लगा कर कहा—हे सखी! अब इनको छिपा कर रखने का कोई उपाय करना चाहिये, अन्यथा सदा ही प्राण संकट में रहेंगे ॥५३-५४-५५॥

इत्युक्त्वा त्वरमाणा सा गुह्यदेशे स्वलंकृता।
कान्तेन सह संयुक्ता स्थिता वै भीतभीतवत् ॥५६

चित्रलेखाऽब्रवीद्वाक्य शृणु त्व निश्चय सखि ।
कृत पुरुषकारेण दैव नाशयते सखि ॥५७
यदि देव्या प्रसादस्ते ह्यनुकूलो भविष्यति ।
अथ मायाकृत गुह्य न कश्चिज्ज्ञास्यते नर ॥५८
सख्या वै एवमुक्ता सा पर्यवस्थितचेतना ।
एवमेतदिति प्राह साऽनिरुद्धमिद वच ॥५९
दिष्ट्या स्वप्नगतश्चौरो दृश्यते सुभग पति ।
यत्कृते तु वय खिन्ना दुर्लभप्रियकाड्क्षया ॥६०
कच्चित्तव महाबाहो कुशल सर्वतोगतम् ।
हृदय हि मृदु स्त्रीणा तेन पृच्छाम्यह तव ॥६१

यह कह कर उषा अपने प्रियतम को उस भवन के एकान्त स्थान मे ले जाती हुई आशका से व्याकुल होगई । उसकी उस व्याकुलता को देख कर चित्रलेखा ने कहा कि—हे सखी ! यदि पुरुषार्थ हो तो विधाता का विधान भी लाँघा जा सकता है । फिर भगवती पार्वतीजी की कृपा होने पर तो इसका भेद किसी को मिल ही नही सकता ॥५६-५७ ५८॥ चित्रलेखा के वचन सुन कर उषा के मन मे कुछ शान्ति हुई और वह अनिरुद्ध की ओर देख कर बोली—मैं इतने समय से जिनकी प्राप्ति की अभिलाषा मे व्याकुल होरही थी, उन अपने चितचोर का आज दर्शन कर सकी हूँ ॥५९-६० । हे महाबाहो ! आप कुशलपूर्वक तो हैं ? यह प्रश्न मैंने इसलिये किया है कि अबलाओ का हृदय अत्यन्त कोमल होता है ॥ ६१ ॥

तस्यास्तद्वचन श्रुत्वा उषाया श्लक्ष्णमर्थवत् ।
सोऽप्याह यदुशार्दूल शुभाक्षरतर वच ।
हर्षविप्लुतनेत्राया पाणिनाऽश्रु प्रमृज्य च । ६२
प्रहस्य सस्मित प्राह हृदयग्राहक वच ।
कुशल मे वरारोहे सर्वत्र मितभाषिणि ॥६३
त्वत्प्रसादेन मे देवि प्रियमावेदयामि ते ।
अदृष्टपूर्वश्च मया देशोऽय शुभदर्शने ॥६४

निशि स्वप्नो यथा दृष्टः मकृत्कन्यापुरे तथा ।
एवमेवमहं भीरु त्वप्रसादादिहागतः ॥६५
न च तद्रुद्रपत्न्या वै मिथ्या वाक्यं भविष्यति ।
देव्यास्ते प्रीतिमाज्ञाय त्वत्प्रियार्थं च भामिनि ॥६६
अनुप्राप्तोऽस्मि चार्व व प्रसीद शरणं गतः ।
इत्युक्ता त्वरमाणा सा गुह्यदेशे स्वलङ्कृता ॥६७
कान्तेन सह सयुक्ता स्थिता वै भीतभीतवत् ।
ततश्चोद्वाहधर्मेण गान्धर्वेण समीयतुः ॥६८

उषा के मधुर वचनो को सुन कर प्रसन्न हुए अनिरुद्ध ने मुसकाते हुए कहा—हे मितभाषिणी ! मैं सब प्रकार से कुशलपूर्वक हूँ। मैंने जीवन मे कभी भी इस देश को नही देखा था, जिसे तुम्हारे प्रसाद से आज देख रहा हूँ ॥६२-६३॥ एक रात्रि मे स्वप्नावस्था के समय ही तुम्हारा दर्शन हुआ था और आज भगवती पार्वतीजी की कृपा से तुम्हारा प्रिय करने के लिये मैं यहाँ उपस्थित हूँ। मुझे विश्वास है कि उनका वचन कभी असत्य नही होता। इसलिये हे सुन्दर मुख वाली भामिनी ! अब तुम मुझ पर प्रसन्न हो जाओ। यह सुन कर उषा ने हर्ष प्रकट किया और तब उन दोनो का गाधर्व विवाह होगया ॥६४ ६८॥

अन्योन्य रमतुस्तौ तु चक्रवाकौ यथा दिवा ।
पतिना साऽनिरुद्धेन मुमुदे तु वराङ्गना ॥६९
कान्तेन सह सयुक्ता दिव्यवस्त्रानुलेपना ।
रममाणाऽनिरुद्धेन अविज्ञाता सुता तदा ॥७०
तस्मिन्नेव क्षणे प्राप्ते यदूनामृषभो हि सः ।
दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यस्रगनुलेपनः ॥७१
उपया सह संयुक्तो विज्ञातो बाणरक्षिभिः ।
ततस्तैश्चारपुरुषैर्बाणस्यावेदित द्रुतम् ॥७२
यथा दृष्टमशेषेण कन्यायास्तदतिक्रमम् ।
तत. किङ्करसैन्य तु व्यादिष्टं भीमकर्मणा ॥७३

बले पुत्रेण वीरेण बाणेनामिलघातिना ।
गच्छ-व सहिता सर्वे हन्यतामेत्र दुर्मति ॥७४
येन न कुलचारित्त दूपित दूपितात्मना ।
उपाया धर्पितायां हि कुल नो धर्षित महत् । ७५

फिर चकई-चकवे के समान विहार उषा और अनिरुद्ध करते हुए सुख-पूर्वक समय व्यतीत करने लगे और उस सुख मे तन्मयता पूर्वक रम जाने से उन्हें व्यतीत होते हुए समय का भी ज्ञान नही था ॥६६ ७०॥ एक दिन दिव्य वस्त्रा-लकार और अनुलेपनादि से सुशोभित हुए अनिरुद्ध उषा के पास गये तभी किसी प्रकार अन्त पुर के रक्षको पर उनका भेद प्रकट होगया, तब उन्होने तुरन्त ही दैत्यराज के पास जाकर सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदन किया जिसे सुनते ही बाणासुर ने अपने सैनिको को आदेश दिया कि उस दुष्ट का शीघ्र ही वध कर दो ॥७१-७४॥ जिस दुष्ट ने उषा को कलंकित करके मेरे कुल को ही दूषित कर दिया है, उसके साथ दया-भाव की कोई आवश्यकता नही है ॥७५॥

असम्प्रदत्ता योस्माभि स्वयग्राहमधर्षयत् ।
अहो वीर्यमहो धैर्यमहो धार्ष्ट्यं च दुर्मते ॥७६
य पुर भवन चेद प्रविष्टो न स बालिश ।
एवमुक्त्वा पुनस्तास्तु किङ्कराश्चोदयद्भृशम् ॥७७
ते तस्याज्ञामथो गृह्य सुसनद्धा विनिर्ययु ।
यत्रानिरुद्धो ह्यभवत्तत्रागच्छन्महाबल ॥७८
नानाशस्त्रोद्यतकरा नानारूपा भयङ्करा ।
दानवा समभिक्रुद्धा प्राद्युम्निवधकाङ्क्षिण ॥७९
रुरोद तद्बल दृष्ट्वा बाष्पेणावृतलोचना ।
प्रद्युम्निवधभीता सा बाणपुत्री यशस्विनी ॥८०
ततस्तु रुदती दृष्ट्वा ता सुता मृगलोचनाम् ।
हा हा कान्तेति वेपन्तीमनिरुद्धोऽभ्यभाषत ॥८१
अभय तेऽस्तु सुश्रोणि मा भैस्त्व हि मयि स्थित ।
यशाप्तो दुर्गपालस्ते नेहास्ति भयकारणम् ॥८२

कृत्स्नोऽप्य यदि बाणस्य भृत्यवर्गो यशस्विनि ।
आगच्छति न मे चिन्ता भीरु पश्याद्य विक्रमम् ॥८३

मेरे द्वारा कन्यादान न करने पर भी इस प्रकार का गर्हित कार्य करना वास्तव में मेरे मान सम्मान पर आघात करना है । उस पापी के साहस को तो देखो कि वह मेरे अन्तःपुर में ही प्रविष्ट होगया । परन्तु उसने ऐसा साहस किया ही कैसे ? अच्छा अब तुम शीघ्र वहाँ जाकर उस दुरात्मा को मार डालो ॥७६-७७॥ हे राजन् ! राजा की आज्ञा मिलते ही वे सैनिक तुरन्त ही शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर अनिरुद्ध को मारने के लिये अन्तःपुर की ओर वेग से चल पड़े ॥७८॥ उनके हाथों में स्थित शस्त्रास्त्र अत्यन्त तीक्ष्ण थे और वे सभी सैनिक अत्यन्त विकराल देह वाले थे ॥ ७९ ॥ जब उषा ने उस सेना को अपनी ओर आती हुई देखा तो वह भय विह्वल नेत्रों से अश्रुपात करने लगी ॥ ८० ॥ उस बाणासुर पुत्री को हाकान्त कह कर रुदन करती और काँपती हुई देख कर अनिरुद्ध ने उसे आश्वासन देते हुए कहा—हे सुश्रोणि ! मेरे यहाँ स्थित रहते हुए तुम्हें किसी प्रकार का भय नहीं करना चाहिए । क्योंकि यह समय भय का नहीं, हर्ष मनाने का है ॥८१ ८२॥ यदि बाणासुर अपनी सम्पूर्ण सेना को युद्ध से युद्ध करने के लिए भेज दे तो भी मुझे कुछ चिन्ता नहीं होगी, अब तुम मेरे बल-विक्रम को देखो ॥ ८३ ॥

तस्य सैन्यस्य निनदं श्रुत्वाऽभ्यागच्छतस्ततः ।
सहसैवोत्थितः श्रीमान्प्राद्युम्निः किमिति ब्रुवन् ॥८४
अथ सोऽपश्यत बलं नानाप्रहरणोद्यतम् ।
स्थितं समततस्तत्र परिवार्य गृहं महत् ॥८५
ततोऽभ्यगच्छत्त्वरितो यत्र तद्वेष्ठितं बलम् ।
क्रुद्धः स्वबलमास्थाय अदशद्दशनच्छदम् ॥८६
ततो योद्धुमपोढाना बाणेयाना निशम्य तु ।
सा चित्रलेखाऽस्मरत नारदं देवदर्शनम् ॥८७
ततो निमेषमात्रेण सप्राप्तो मुनिपुङ्गवः ।
स्मृतोऽथ चित्रलेखाया पुरं शोणितसाह्वयम् ॥८८

आविध्य परिघं घोरं तेषां मध्ये व्यतिष्ठत ।
सूर्यो दिवि चरन्मध्ये मेघानामिव सर्वशः ॥९६

जब उन्होंने भीषण गर्जना करती हुई उस सेना को अपनी ओर आते हुए देखा तो जैसे अंकुश मारने से हाथी तेजी से बढता है, वैसे ही अत्यन्त वेग से उस सेना पर टूट पडे ॥९१॥ अनिरुद्ध को क्रोधपूर्वक दाँतो से ओष्ठ चबाते और भवन से उतर कर अपनी ओर आते देख कर दानवी सेना घबरा कर भागने लगी ॥९२॥ उसी समय अन्त:पुर के द्वार पर स्थित अर्गल को ग्रहण करके अनिरुद्ध ने उस सेना पर प्रहार किया ॥९३॥ तब वे दैत्य भी बाण, मूसल, गदा, खड्ग, शक्ति और शूलादि से अनिरुद्ध को बीधने लगे ॥९४॥ अस्त्र विद्या के ज्ञाता वे दानव घोर अनिरुद्ध पर सब ओर से शस्त्रास्त्रो की वर्षा कर रहे थे और अनिरुद्ध भी उनसे विचलित न होकर अपने हाथ मे उस भयंकर परिघ को लिये हुए ही मेरु के समान गर्जते हुए उस सेना के बीच विचरण कर रहे थे ॥ ९५-९६ ॥

अयुध्यत महावीर्यैर्दानवै सह संयुगे ।
तेषामेव च जग्राह परिघांस्तोमरानपि ॥९७
तैरेव च तदा युद्धे ताञ्जघान महाबलः ।
पुन. परिघमुत्सृज्य प्रगृह्य रणमूर्धनि ॥९८
स तेन विचरन्मार्गानेक शत्रुनिबर्हण ।
भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धमाप्लुत विप्लुतप्लुतम् ॥९९
इति प्रकारान्द्वात्रिंशद्विचरन्नाप्यदृश्यत ।
एक सहस्रशस्तत्र दद्दशू रणमूर्धनि ॥१००
क्रोडन्त बहुधा युद्धे क्रादिनास्यमितान्तरम् ।
ततस्तेनासितनवा रुधिरौघपरिप्लुता. ॥१०१
पुनर्भग्ना. प्राद्रवन्त यत्र बाणो व्यवस्थितः ।
गजवाजिरथौघैस्ते चोह्यमाना. समन्तत. ॥१०२
कृत्वा चार्तस्वरं घोरं दिशो जग्मुर्हतौजसः ।
एकं रूपोऽरि नरा तेऽन्योन्यं भयपीडिताः ॥१०३

वमन्त शोणित जग्मुर्विषादाद्विमुखा रणे ।
न बभूव पुरा देवैर्युध्यता तादृश भयम् ॥१०४

फिर उन दैत्यो के हाथ से ही शस्त्रास्त्रों को छीन कर उन्ही से उनको मार गिराते थे । फिर परिघ लेकर उन्होने भ्रान्त, उद्भ्रान्त, अविद्ध, आप्लुत, विप्लुत और लुप्त आदि बत्तीस प्रकार के पंतरे बदल-बदल कर युद्ध किया, जिससे वे एक के हजारो अनिरुद्ध प्रतीत होने लगे ॥९७ १००॥ उस समय दैत्य सेना अत्यन्त सत्रस्त और रुधिर मे स्नान करती हुई अनिरुद्ध को काल के समान समझ कर रणभूमि से भाग पडी । उन सब के मुख से रक्त बह रहा था । हाथी, घोडे, रथ, और पैदल सभी सैनिक व्याकुलता से चीत्कार करते हुए भागे जारहे थे । इस युद्ध मे दैत्यो को जैसा भय प्रतीत हुआ, वैसा तो देवासुर सग्राम में भी नही हुआ था ॥ १०१-१०४ ।

यादृश युध्यमानानामनिरुद्धेन सयुगे ।
केचिद्वमन्तो रुधिर ह्यपतन्वसुधातले ॥१०५
दानवा गिरिश्रृङ्गाभा गदाशूलासिपाणय ।
ते बाणमुत्सृज्य रणे जग्मुर्भयसमाकुला ॥१०६
विशालमावाशतल दानवा निर्जितास्तदा ।
नि शेपमग्ना महती दृष्ट्वा ता वाहिनी तदा ॥१
बाण क्रोधात्प्रजज्वाल समिद्धोऽग्निरिवाध्वरे।
अन्तरिक्षचरो भूत्वा साधुवादी समन्तत ॥१०८
नारदो नृत्यति प्रीतो ह्यनिरुद्धस्य सयुगे ।
एतस्मिन्नन्तरे चैव बाण परमकोपन ॥१०९
कुम्भाण्डसगृहीत तु रथमास्थाय वीर्यवान् ।
ययौ यत्रानिरुद्धो व उद्यतासी रथे स्थित ॥११०
पट्टिशासिगदाशूलमुद्यम्य च परश्वधान् ।
वभौ वाहुसहस्रेण शक्रो ध्वजशतैरिव ॥१११

भागते हुए वे दैत्य भय के कारण एक दूसरे के ऊपर गिर रहे थे और उनके मुख से रक्त-वमन होरहा था ॥१०५॥ गदा, शूल, खड्ग आदि अस्त्र-शस्त्र को फेंक कर और बाणासुर को वहीं छोड कर पर्वत शिखर के समान विशाल वे दैत्य आकाश मार्ग से भाग निकले। अपनी सेना का इस प्रकार पलायन देख कर बाणासुर क्रोध से अग्नि के समान रक्त वर्ण होगया और कुम्भाण्ड द्वारा चलाये जाने वाले रथ पर चढ कर अनिरुद्ध की ओर चल पडा। आकाश में स्थित नारदजी अनिरुद्ध का युद्ध कौशल देख कर बडे प्रसन्न हो रहे थे ॥१०६-११०॥ अपनी सहस्र भुजाओं में पट्टिश, तलवार, गदा, शूल, परश्वध आदि शस्त्रास्त्रों को धारण किये हुए वह बाणासुर इन्द्र के समान शोभा पाने लगा ॥१११॥

सोऽभिभूय रणे बाणमास्थितो यदुनन्दन. ।
सिंहप्रमुखतो दृष्ट्वा गजमेक यथा वने ॥११२
ततो बाण. स बाणौघैर्मर्मभेदिभिराशुगैः ।
विव्याध निशितैस्तीक्ष्णै प्राद्युम्निमपराजितम् ॥११३
समाहतस्ततो बाणै खड्गचर्मधरोऽपतत् ।
रामापतन्त निशितैरभ्यघ्नन्मायकैस्तथा ॥११४
सोऽतिविद्धो महाबाहुर्बाणै सन्नतपर्वभि. ।
क्रोधेनाभिजज्वाल चिकीर्षु: कर्म दुष्करम् ॥११५
रुधिरोघप्लुतैर्गात्रैर्बाणवर्षै समाहता: ।
अभिभूत सुसंक्रुद्धो ययौ बाणरथं प्रति ॥११६
असिभिर्मुसलै शूलै पट्टिशैस्तोमरैस्तथा ।
सोऽतिविद्ध शरौघैश्च प्राद्युम्निर्न व्यकम्पत ॥११७
आप्लुत्य सहसा क्रुद्धो रथेषा तस्य सोऽच्छिनत् ।
आप्लुत्यसहसा क्रुद्धो रथेषा तस्य सोऽच्छिनत् ।
जघान चाश्वान्खड्गेन बाणस्य रणमूर्द्धनि ॥११८
स पुन. शरवर्षेण पट्टिशैस्तोमरैरपि ।
शरासारान्तर्हित बाणो युद्धमार्गविशारदः ॥११९
हतोऽस्मीति विज्ञाय प्राणदन्नैर्ऋता गणाः ।
ततोऽस्त्र्य गत्वा रथपार्श्वे व्यवस्थित. ॥१२०

तब हाथी को देख कर सिंह के खड़े होने के समान अनिरुद्ध भी बाणासुर को आया देख कर उसके सामने जा खड़े हुए ॥११२॥ यह देख कर बाणासुर ने उन पर बाणों की वर्षा की और तलवार ग्रहण कर अपनी ओर वेग से आते हुए अनिरुद्ध को उसने बींधना आरम्भ किया ॥११३-११४॥ इससे अनिरुद्ध रक्त में नहा गये और बाणासुर को मार देने की इच्छा से उसकी ओर वेग से झपटे ॥११५-११६॥ यह देख कर उसने मूसल, शूल, पट्टिश और तोमर आदि से उन पर प्रहार किये, परन्तु अनिरुद्ध उससे भी विचलित न हुए ॥ ११७ ॥ फिर उन्होंने सहसा क्रोधपूर्वक उछल कर अपनी तलवार से उसके रथ की डोर काट कर घोड़ों को भी मार गिराया ॥११८॥ तब युद्ध कुशल बाणासुर ने तोमर, पट्टिश और बाणादि की वर्षा से उन्हें ढक दिया ॥११९॥ इस प्रकार बाणों की वर्षा से आच्छादित हुए अनिरुद्ध को मर गया समझ कर बाणासुर अपनी सेना के सहित सिंहनाद करने लगा, उसी समय अनिरुद्ध सहसा उसके रथ के पास जा पहुँचे ॥ १२० ॥

शक्ति बाणस्तत क्रुद्धो घोररूपा भयानकाम् ।
जग्राह ज्वलिता घोरा घण्टामाकुला रणे ॥१२१
ज्वलनादित्यसकाशा यमदण्डोग्रदर्शनाम् ।
प्राहिणोत्तामसङ्गेन महोल्का ज्वलितामिव ॥१२२
तामापतन्ती सप्रेक्ष्य जीवितान्तकरी तदा ।
सोऽभिलुप्त्य तदा शक्ति जग्राह पुरुषोत्तम ॥१२३
निर्बिभेद ततो बाण तया शक्त्या महाबल ।
सा भित्त्वा तस्य देह वै प्राविशद्धरणीतलम् ॥१२४
स गाढविद्धो व्यथितो ध्वजयष्टि समाश्रित ।
ततो मूर्च्छाभिभूत त कुम्भाण्डो वाक्यमब्रवीत् ॥१२५
उपेक्षसे दानवेन्द्र किमेव शत्रुमुद्यतम् ।
लब्धलक्षो ह्यय वीरो निर्विकारोऽद्य दृश्यते ॥१२६
मायामाश्रित्य युध्यस्व नाथ वध्योऽन्यथा भवेत् ।
आत्मान मा च रक्षस्व प्रमादात्किमुपेक्षसे ॥१२७

वेष्टितो बहुधा तस्य देह पन्नगराशिभि ।
स तु वेष्टितसर्वाङ्गो बद्ध प्राद्युम्निराहवे ।
निष्प्रयत्न कृतस्तस्थौ मैनाक इव पर्वत ।
ज्वालावलीढवदनै सर्पभोगैर्विचेष्टित ॥१३६

यह सुन कर दैत्यराज बाणासुर ने अत्यन्त क्रोधित होकर कुम्भाण्ड को कठोरता से इस प्रकार उत्तर दिया ॥१२९॥ हे सारथे ! मैं इसे मारने का उपाय अभी किये देता हूँ जैसे गरुड सर्प को निगल जाता है वैसे ही मैं इसे अपने उदर मे रख लूँगा ॥१३०॥ यह कह कर वह दैत्य अपने रथ, अश्व, ध्वज और सारथी के सहित अदृश्य होगया ॥१३१॥ उस समय अपने शत्रु को अदृश्य रह कर बाण-वर्षा करते देख कर अनिरुद्ध ने सब ओर दृष्टि घुमाई, परन्तु वह उन्हे दिखाई न दिया। तभी दैत्यराज ने सर्पमय तीक्ष्ण बाणो की भीषण वर्षा की, जिनसे *अनिरुद्ध ढक गये और उनके शरीर को वे विषधर सप सब ओर से जकडने लगे।* उस समय अनिरुद्ध बेबस होकर पर्वत के समान निश्चल भाव से खडे रहे ॥ १३२ १३६ ॥

अभित पर्वताकार प्राद्युम्निरभवद्रणे ।
निष्प्रयत्नगतिश्चापि सर्ववक्त्रमयै शरै ॥१३७
न विव्यथ स भूतात्मा सर्वत परिवेष्टित ।
ततस्त वाग्भिरुग्राभि सरब्ध समतर्जयत् ॥१३८
बाणो ध्वज समाश्रित्य प्रोवाचामर्षितो वच ।
कुम्भाण्ड वध्यता शीघ्रमय वै कुलपासन ।१३९
चारित्र येन मे लोके दूषित दूषितात्मना ।
इत्येवमुक्ते वचने कुम्भाण्डो वाक्यमब्रवीत् ॥१४०
राजन्वक्ष्याम्यह किचित्तन्मे शृणु यदिच्छसि ।
अय विज्ञायता कस्य कुतो वाऽयमिहागत ॥१४१
केन वाऽयमिहानीत शक्रतुल्यपराक्रम ।
मयाद्य बहुशो राजन्दृष्टो युध्यन्महारणे ॥१४२

क्रीडन्निव च युद्धेपु दृश्यते देवसूनुवत् ।
वलवान्मत्त्वसंपन्नः सर्वशास्त्रविशारदः ।।१४३
नायं वधकृतं दोपमर्हते दैत्यसत्तम ।
गान्धर्वेण विवाहेन कन्येयं तव संगता ।।१४४
अदेया ह्यप्रतिग्राह्या अतश्चिन्त्य वधं कुरु ।
विज्ञाय च वध वाऽस्य पूजा वाऽस्य करिष्यसि ।।१४५

यद्यपि अनिरुद्ध हिल भी नही सकते थे, फिर भी उनका मन स्थिर रहा। उसी समय बाणासुर ने ध्वज दण्ड को पकड कर अत्यन्त क्रोध पूर्वक कहा— हे कुम्भाण्ड ! इस कुलागार को तुरन्त ही मार डालो। क्योकि इसने मेरे कुल को दूषित किया है। यह सुन कर कुम्भाण्ड ने बाणासुर से कहा— हे महाराज ! यदि आप उचित समझें तो मेरा एक निवेदन सुनें। प्रथम यह जानना आवश्यक है कि यह युवक कौन है और कहाँ से आगया है ? ।।१३७-१४१।। इसे यहाँ कौन लिवा कर लाया ? हे राजन् ! मैंने इन्द्र के समान अत्यन्त पराक्रमी इस युवक को भीपण युद्ध करते हुए देख कर इसे अत्यन्त बली, पराक्रमी, साहसी और युद्ध कौशल मे चतुर पाया है ।।१४२-१४३।। इसलिये हे दैत्येन्द्र ! इसको मारना उचित नही होगा, क्योकि मेरा अनुमान है कि इसने आपकी कन्या के साथ गाधर्व विवाह अवश्य कर लिया होगा ।।१४४।। इस समय कन्या का त्याग अथवा उसे घर मे रहने देना—यह दोनो ही कार्य विचारणीय होगये हैं। इसलिये पहिले इस विषय मे भले प्रकार विचार करिये और फिर मारने योग्य हो तो मारिये और पूजन-योग्य हो तो पूजन कीजिये ।।१४५।।

उचितं यदि ते राजञ्ज्ञेयो वीर्यवलान्वितः ।
कन्या चेय न चान्यस्य निर्यातयेतेन सङ्गता ।।१४६
यदि चेष्टतमः कश्चिदयं वंशे महात्मनाम् ।
ततः पूजामयं वीरः प्राप्स्यते चासुरोत्तम ।।१४७
रक्ष्यतामिति चोक्त्वैव तथाऽस्त्विति च तस्थिवान् ।
एवमुक्ते तु वचने कुम्भाण्डेन महात्मना ।।१४८
तयेत्याह च कुम्भाण्डं वाणः शत्रुनिपूदनः ।

सरक्षिणस्ततो दत्त्वा अनिरुद्धस्य धीमत ॥१४६
ययौ स्वमेव भवन बले पुत्रो महायशा ।
सयत मायया दृष्ट्वा अनिरुद्ध महाबलम् ॥१५०
ऋषीणा नारद श्रेष्ठोऽव्रजद्द्वारवती प्रति ।
ततो ह्याकाशमार्गेण मुनिर्द्वारवती गत ॥१५१

इसलिये यह वीर्य-बल सम्पन्न युवक कौन है, इसका जानना आवश्यक है, क्योकि यदि आपकी कन्या इससे सगति को प्राप्त हो चुकी है तो उसे किसी अन्य वर को देना भी आपके लिये अनुचित ही होगा ॥१४६॥ इसलिये, यदि यह युवक किसी श्रेष्ठ वश का हो तो इसके पूजन करने मे भी क्या हानि हो सकती है ? ॥१४७॥ इस प्रकार मेरे मत मे तो इसे मारने से तो बचाना ही अधिक श्रेयस्कर है । कुम्भाण्ड के वचन सुन कर बाणासुर सहमत होगया और अनिरुद्ध को रक्षको की देख रेख म छोड कर स्वय अपने घर जा पहुँचा । देवर्षि नारद ने अनिरुद्ध को इस प्रकार मायापाश मे बँधा देख कर भगवान् श्रीकृष्ण को समाचार देने के लिये द्वारका को प्रस्थान किया ॥१४८-१५१॥

॥ श्रीकृष्ण का शोणितपुर को प्रस्थान ॥

ततोऽनिरुद्धस्य गृहे रुरुदु सर्वयोषित ।
प्रिय नाथमपश्यन्त्य कुरर्य इव सङ्घश ॥१
अहो धिक्किमिद नाथ नाथे कृष्णे व्यवस्थिते ।
अनाथा इव सत्रस्ता रुदिमो भयपीडिता ॥२
यस्येन्द्रप्रमुखा देवा सादित्या समरुद्गणा ।
बाहुच्छायामुपाश्रित्य वसन्ति दिवि देवता ॥३
तस्योत्पन्नमिद लोके भयदस्य महाभयम् ।
नस्यानिरुद्ध पौत्रस्तु वीर केनापि नो हृत ॥४
अहो नास्ति भय नून तस्य लोके सुदुर्मते ।
वासुदेवस्य य क्रोधमुत्पादयति दुसहम् ॥५
व्यादितास्यस्य यो मत्योर्दंष्ट्राग्रे परिवर्तते ।
स वासुदेव समरे मोहादभ्युदियाद्रिपु ॥६

इदमेवंविधं कृत्वा विप्रियं यदुपुंगवे ।
कथं जीवन्विमुच्येत साक्षादपि शचीपतिः ॥७
हृतनाथाः स्म शोच्याः स्म वय नाथं विना कृताः ।
विप्रयोगेन नाथस्य कृतान्तवशगाः कृताः ॥८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! द्वारका स्थित अनिरुद्ध भवन में अनिरुद्ध को न देख कर उनकी सब स्त्रियां कुररी के समान चीत्कार करने लगी ॥१॥ उन्होने कहा—अहो, महाप्रभु श्रीकृष्ण के विद्यमान रहते भी हम अबलाओ को भय के कारण इस प्रकार रोना पड रहा है ॥२॥ जिनके भुज-बल के आश्रय में आदित्यगण, मरुद्गण तथा इन्द्रादि सभी देवता निर्भय होकर स्वर्ग मे रहते हैं और जिनके दण्ड-भय से तीनो लोको के जीव सदा शकित रहते हैं, आज उन्ही जगन्नाथ श्रीकृष्ण के समक्ष भी भय उपस्थित होगया है, जो कोई उनके परम वीर पौत्र का हरण करके ले गया है ॥३-४॥ जिस दुरात्मा ने भगवान् श्रीकृष्ण की क्रोधाग्नि को इस प्रकार प्रज्वलित किया है, जान पड़ता है कि उस बुद्धिहीन को कोई डर नही लगा है ॥५॥ यदि यह बात न होती तो वह मुख खोले खड़ी हुई मृत्यु के दाँतो का ग्रास क्यो बनता और भगवान् से क्यो शत्रुता करता ? ॥६॥ जब कि भगवान् श्रीकृष्ण का अप्रिय करके इन्द्र भी सुखी नही रह सकते, तब वह उनके इस अप्रिय कार्य को करके कैसे सुखी रह सकता है ? ॥७॥ कुछ भी हो, आज तो उसने हमारे प्रियतम से वियोग करा के हमारी यह शोचनीय दशा कर दी और हमे मृत्यु के निकट पहुँचा दिया है ॥८॥

इत्येवं ता वदन्त्यश्च रुदन्त्यश्च पुन पुनः ।
नेत्रजं वारि मुमुचुरशिव परमाङ्गनाः ॥९
तासा वाष्पाम्बुपूर्णानि नयनानि चकाशिरे ।
सलिलेनाप्लुतानीव पङ्कजानि जलागमे ॥१०
तासां मरालपक्ष्माणि राजयन्ति शुभानि च ।
रुधिरेणाप्लुतानीव नयनानि चकाशिरे ॥११
तासां हर्म्यतलस्थानां रुदन्तीनां महास्वनः ।
कुररीणामिवाकाशे रुदंतीना सहस्रश ॥१२

त श्रुत्वा निनद घोरमपूर्वं भयमागतम्।
उत्पेतु सहसा स्वेभ्यो गृहेभ्यः पुरुषर्षभा. ॥१३
कस्मादेषोऽनिरुद्धस्य श्रूयते सुमहास्वन.।
गृहे कृष्णाभिगुप्ताना कुतो नौ भयमागतम् ॥१४
इत्येवमूचुस्तेऽन्योन्य स्नेहविक्लवगद्गदाः ।
अर्घापिता यथा सिंहा गुहाभ्य इव नि सृता ॥१५
सन्नाहभेरी कृष्णस्य आहता महती तदा।
यस्याः शब्देन ते सर्वे समागम्य च धिष्ठिताः ॥१६

इस प्रकार प्रलाप युक्त रुदन करती हुई वे स्त्रियाँ अमगल सूचक आँसुओं को बरसाने लगी ॥६। उनके जल भरे नयन वर्षाकाल के जल सिंचित कमल जैसे प्रतीत होरहे थे ॥१०॥ उन नयनो को रुदन के कारण लाल हुए देख कर ऐसा लगने लगा जैसे उनमे रक्त भर आया हो ॥११। उन सहस्रो स्त्रियो का कुररी के समान रुदन सुन कर सभी यादव व्याकुल होकर अपने अपने घरो से निकल कर परस्पर बोले कि अनिरुद्ध के घर से इस प्रकार की आर्त्त पुकार क्यो आरही है ? ॥१२-१३॥ भगवान् श्रीकृष्ण की छत्र छाया मे हम सब अपने को सुरक्षित समझते हुए आनन्दपूर्वक रहते हैं परन्तु इस रुदन को सुन कर हम भी भयभीत हो रहे हैं ॥ १४ ॥ यह कहते हुए वे समस्त यादव वीर क्रुद्ध सिंह के समान अपने-अपने घरो से बाहर आगये ॥१५॥ तभी भगवान् श्रीकृष्ण की सभा मे सन्नाह भेरी बज उठी, जिसके शब्द को सुन कर सब एकत्रित हुए यादवगण वहाँ जा पहुँचे ॥१६॥

किमेदिति तेऽन्योन्य समपृच्छन्त यादवा ।
अन्योन्यस्य हि ते सर्वे यथावृत्तमवेदयन् ।.१७
ततस्ते बाष्पपूर्णाक्षाः क्रोधसरक्तलोचना ।
नि श्वसतो व्यतिष्ठन्त यादवा युद्धदुर्मदाः ॥१८
तूष्णीभूतेषु सर्वेषु विप्रथुर्वाक्यमब्रवीत् ।
कृष्णं प्रहरतां श्रेष्ठं नि श्वसन्त मुहुर्मुहुः ॥१६

किमिदं चिन्तयाविष्टः पुरुषेन्द्र भवानिह ।
तव बाहुबलप्राणमाश्रिता सर्वयादवाः ॥२०
भवन्तमाश्रिताः कृष्ण संविभक्ताश्च सर्वशः ।
तथैव वलवाञ्शक्रस्त्वय्यावेश्य जयाजयौ ॥२१
सुखं स्वपिनि निःशङ्कः कथं त्वं चिन्तयाऽन्वितः ।
शोकसागरमक्षोभ्यं सर्वे ते ज्ञातयो गताः ॥२२

परस्पर सभी यह प्रश्न कर रहे थे कि क्या घटना घटी है ? तभी धीरे-धीरे उनको अनिरुद्ध के अदृश्य होने का वृत्तान्त मालुम हुआ ॥१७॥ उस समय क्रोध से सब के मुख ताम्रवर्ण के होगये और नेत्रों में आँसू भर गये तथा दीर्घ श्वास छोड़ते हुए वे सभी यादव वहाँ किंकर्त्तव्य विमूढ़ जैसे खड़े होगये । १८॥ इस प्रकार सब के निस्तब्ध भाव से खड़े हो जाने पर दीर्घ निःश्वास का त्याग करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण से विप्रथु कहने लगा—हे पुरुषेन्द्र ! आप चिन्ता से व्याकुल होकर बारम्बार दीर्घ श्वास क्यों छोड़ते हैं ? हम सभी आपके भुज-बल के आश्रय में रह कर भय-रहित जीवन बिता रहे हैं ॥१९ २०॥ देवराज इन्द्र ने भी अपनी विजय और पराजय का भार आपको सौंपा हुआ है, तब आपका इस प्रकार चिन्तित होना ही यादवों को शोक सागर में डालने का एक मात्र कारण है ॥ २१-२२ ॥

तान्मज्जमानानेकस्त्वं समुद्धर महाभुज ।
किमेवं चिन्तयाविष्टो न किंचिदपि भाषसे ॥२३
चिन्तां कर्तुं वृथा देव न त्वमर्हसि माधव ।
इत्येवमुक्तः कृष्णस्तु निश्वस्य सुचिरं बहु ॥२४
प्राह वाक्यं स वाक्यज्ञो बृहस्पतिरिव स्वयम् ।
विप्रथो चिन्तयाविष्टो ह्यतत्कार्यमचिन्तयम् ॥२५
विचिन्तयंस्त्वहं चास्य कार्यस्य न लभे गतिम् ।
तथाऽहं भवताप्युक्तो नोत्तरं विदधे क्वचित् ॥२६
दाशार्हगणमध्येऽहं वदाम्यर्थवतीं गिरम् ।
शृणुध्वं यादवाः सर्वे यथा चिन्तान्वितो ह्यहम् ॥२७

अनिरुद्धे हृते वीरे पृथिव्यां सर्वपार्थिवा. ।
अशक्ता इति मंस्यन्ते सर्वानस्मान्स्वबान्धवान् ॥२८
आहुकश्चैव नो राजा हृतः शाल्वेन वै पुरा ।
प्रत्यानीतः स चास्माभिर्युद्धं कृत्वा सुदारुणम् ॥२९

अब आप ही उनका उद्धार करने मे समर्थ हैं, फिर भी आप मौनावलम्बी होकर बैठे हैं। हे विभो! इस आपत्तिकाल मे आपका इस अवस्था मे बैठे रहना उचित प्रतीत नही होता। विपृथु के ऐसे वचन सुन कर भगवान् श्रीकृष्ण ने अत्यन्त गभीरता पूर्वक कहा—हे विपृथो! अब तक मैं इसी पर विचार कर रहा था कि हमारा इस विषय मे क्या कर्त्तव्य है? इसीलिये मैं आप को कोई उत्तर नही दे सका था ॥ २३-२६ ॥ इस समय यहाँ लगभग सभी यादव वीर उपस्थित है,मैं उनके सामने एक रहस्य की बात कहता हूँ, उस पर ध्यान दीजिये। अनिरुद्ध का अपहरण होने से पृथिवी भर के राजागण हमे बलहीन तथा अकर्मण्य समझ बैठेंगे ।२७-२८॥ पहिले एक बार हमारे राजा आहुक का शाल्व ने अपहरण किया था, तब हम उन्हे भयङ्कर युद्ध करके उससे छीन लाये थे ॥२९॥

प्रद्युम्नश्चापि नो बाल शम्बरेण हृतो ह्यभूत् ।
स तु निहत्य समरे प्राप्तो रुक्मिणिनन्दनः ॥३०
इद तु सुमहत्कष्ट प्राद्युम्नि क्व प्रवासित. ।
नैवंविधमह दोष न स्मरे मनुजर्षभा ॥३१
भस्मना गुण्ठितः पादो येन मे मूर्ध्नि पातितः ।
तस्याहं सानुबन्धस्य हरिष्ये जीवित रणे ॥३२
इत्येवमुक्ते कृष्णेन सात्यकिर्वाक्यमब्रवीत ।
चारा. कृष्ण प्रणीयन्तामनिरुद्धस्य मार्गणे ।
सपर्वतवनोद्देशा मार्गन्तु वसुधामिमाम् ॥३३
आहुकं प्राह कृष्णस्तु स्मितं कृत्वा वचस्तदा ।
आभ्यन्तराश्च बाह्याश्च व्यादिश्यन्ता चरा नृप ॥३४
केशवस्य वच. श्रुत्वा आहुकस्त्वरितोऽब्रवीत् ।
अन्वेषणेऽनिरुद्धस्य स चारान्दिष्टवांस्तदा ॥३५

ततश्चारास्तु व्यादिष्टः पार्थिवेन यशस्विना ।
हया रथाश्च व्यादिष्टाः पार्थिवेन महात्मना ।
अभ्यन्तरं च मार्गध्वं बाह्यतश्च समन्ततः ॥३६
वेणुमन्तं लताविष्टं तथा रैवतकं गिरिम् ॥
ऋक्षवन्तं गिरिं चैव मार्गध्वं त्वरिता हयैः ॥३७
एकैकं तत्र चोद्यानं मार्गध्वं काननानि च ।
यातव्यं चापि निःशङ्कमुद्यानानि समन्ततः ॥३८
हयानां च सहस्राणि रथानां चाप्यनेकशः ।
आरुह्य त्वरिताः सर्वे मार्गध्वं यदुनन्दनम् ॥३९

शिशुकाल मे प्रद्युम्न का भी शम्बरासुर द्वारा अपहरण हुआ था, परन्तु प्रद्युम्न ने ही उस असुर का वध कर दिया और स्वयं द्वारका लौट आये थे ॥३०॥ परन्तु इस समय तो यही समझ मे नही आता कि अनिरुद्ध को कौन यहाँ से उठा लेगया ? ऐसी दुःखदायिनी घटना की मैंने कभी भी कल्पना नही की थी ॥३१॥ जिसने मेरे शिर पर अपने धूल धूसरित पाँव को रखने की चेष्टा की है, मैं उसका समूल नाश कर डालूँगा ॥३२॥ भगवान् कृष्ण के वचन सुन कर सात्यकि ने कहा—अनिरुद्ध की खोज के लिये दूतो को भेजिये, जो कि पर्वत और वन आदि से युक्त सम्पूर्ण पृथिवी पर जाकर उन्हे ढूँढे ॥३३॥ सात्यकि के सुझाव पर मुसकाते हुए श्रीकृष्ण ने आहुक से कहा—हे राजन् ! अनिरुद्ध की खोज के लिये अब आप अविलम्ब दूतो को भेजिये, जो बाहरी और गुप्तरीति से भी उनकी खोज करें ॥३५-३६। तथा अश्वारोही दूत रैवतक और ऋक्षवान् आदि पर्वतो और वन आदि स्थानो पर जाकर अपने कार्य मे जुट जाँय ॥३७॥ इस प्रकार सब दूत शंका-रहित मन से सभी उद्यानो, मार्गों, वनो आदि मे जा-जाकर खोज करें । हे वीरो ! तुम सहस्रो रथो और घोडो पर चढ कर इस कार्य के लिये तुरन्त ही चल पडो ॥३८-३९॥

सेनापतिरनाधृष्टिरिदं वचनमब्रवीत् ।
कृष्णमक्लिष्टकर्माणमच्युतं भीतभीतवत् ॥४०

शृणु कृष्ण वचो मह्य रोचते यदि ते प्रभो ।
चिरात्प्रभृति मे वक्तु भवन्त जायते मति ॥४१
असिलोमा पुलोमा च निसु-दनरकौ हतो ।
सौभ. शाल्वश्च निहतो मै--ो द्विविद एव च ॥४२
हयग्रीवश्च सुमहान्सानुबन्धस्त्वया हत ।
तादृशे विग्रहे वृत्ते देवहेतो सुदारुणे ॥४३
सर्वाण्येतानि कर्माणि नि शेषा णि रणे रणे ।
कृतवानसि गोविन्द पार्ष्णिग्राहश्च नास्ति ने ॥४४
इद कर्म त्वया कृष्ण सानुबन्ध महत्कृतम् ।
पारिजातस्य हरणे यत्कृत कर्म दुष्करम् ॥४५
तत्र शक्रस्त्वया कृष्ण ऐरावतशिरोगत ।
निर्जितो बाहुवीर्येण त्वया युद्धविशारद ॥४६
तेन वैर त्वया सार्द्धं कर्तव्य नात्र सशय ।
वैरानुबन्धश्च महास्तेन कार्यस्त्वया सह ॥४७
तत्रानिरुद्धहरण कृत मघवता स्वयम् ।
नह्यन्यस्य भवेच्छक्तिनिर्वैरनिर्यातन प्रति ॥४८

इसके पश्चात् सेनाध्यक्ष अनाधृष्टि ने भगवान् श्रीकृष्ण से कहा—हे प्रभो ! मैं बहुत देर से एक निवेदन करना चाह रहा था, उसे कह रहा हूँ । यदि आप चाहे तो सुन कर उस पर विचार करने की कृपा करें ॥४० ४१॥ किसी एक समय आपने असिलोमा पुलोमा, निसुन्द, भौमासुर नरकासुर, मै द, द्विविद, हयग्रीव आदि को परिवार सहित मार दिया था । उन सभी युद्धो को आपने देवताओ के उपकारार्थ ही किया था और उसके कारण अब आपका कोई वैसा शत्रु शेष नही रहा है ॥४२ ४४॥ आपके यह सब कर्म महान् थे तथा पारिजात-हरण के समय भी आपने अनेक दुष्कर कर्म किये थे ॥४५॥ उसी युद्ध मे ऐरावत हाथी पर चढ़ने वाले देवराज इन्द्र को भी आपके द्वारा परास्त होना पडा था ॥४६॥ इसी-लिये मुझे शका होरही है कि अपनी पुरानी शत्रुता के प्रतिशोध स्वरूप इन्द्र ने

ही अनिरुद्ध का अपहरण कर लिया है, अन्यथा आपके साथ इस प्रकार की शत्रुता मोल लेने वाला और कौन होगा ? ॥४७ ४८॥

इत्येवमुक्ते वचने कृष्णो नाग इव श्वसन् ।
उवाच वचनं धीमाननाधृष्टिं महाबलम् ॥४६
सेनानीस्तात मा मैवं न देवाः क्षुद्रकर्मिणः ।
नाकृतज्ञा न च क्लीबा नावलिप्ता न बालिशाः ॥५०
देवतार्थं च मे यत्नो महान्दानवसंक्षये ।
तेषां प्रियार्थं च रणे हन्मि दृप्तान्महाबलान् ॥५१
तत्परस्तन्मनाश्चास्मि तद्भक्तस्तत्प्रिये रत. ।
कथं पापं करिष्यन्ति विजायैवंविधं हि माम् ॥५२
अक्षुद्राः सत्यवन्तश्च नित्यं भक्तानुकम्पिनः ।
तेभ्यो न विद्यते पापं बालिशत्वात्प्रभाषसे ॥५३
कदाचिदिह पुंश्चल्या अनिरुद्धो हृतो भवेत् ।
देवेषु समहेन्द्रेषु न तत्कर्मविधीयते । ५४

अनाधृष्टि की बात सुन कर श्रीकृष्ण ने कहा—यह कथन उचित नहीं है। देवगण ऐसी निम्न प्रकृति के नही होते और न उनके द्वारा ऐसी अकृतज्ञता, पुरुषार्थ हीनता, और मूर्खता ही हो सकती है ॥ ४६ ५० ॥ मैं उन्ही के हितार्थ दानवों को मारने के लिये सदैव तत्पर रहता हूँ और उन्ही की प्रसन्नता के लिये युद्ध में बड़े-बड़े अहंकारियों को नष्ट कर डालता हूँ ॥५१॥ इस प्रकार मैं देवताओं का भक्त एवं देव-परायण हूँ, इस दशा मे यह सम्भव नहीं है कि देवगण मेरे जैसे हितैषी का अहित करने लगें ॥५२॥ वे क्षुद्र नही हैं बल्कि सत्यवक्ता और भक्तों पर अनुग्रह करने वाले हैं। उनके मन मे कभी पाप नही रहता। उनकी महिमा का ज्ञान न होने से ही तुम्हारी ऐसी धारणा हुई है। ५३॥ मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह कार्य किसी पुंश्चली स्त्री का होगा, इन्द्रादि देवता ऐसा कार्य कभी नही कर सकते ॥५४॥

एवं चिन्तयमानस्य कृष्णस्याद्भुतकर्मणः ।
कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा ततोऽक्रूरोऽब्रवीद्वचः ॥५५

मधुर श्लक्ष्णया वाचा अर्थवाक्यविशारद ।
यच्छक्रस्य प्रभो काय तदस्माक विनिश्चितम् ॥५६
अस्माक चापि यत्कार्य तद्धि कार्य शचीपते ।
सरक्ष्याश्च वय देवैरस्माभिश्चापि देवता ।
दैवतार्थं वय चापि मानुषत्वमुपागता । ५७
एवमक्रूरवचनैश्चोदितो मधुसूदन ।
स्निग्धगम्भीरया वाचा पुन कृष्णोऽभ्यभाषत ॥५८
नाय देवैर्न गन्धर्वैर्न यक्षैर्न च राक्षसै ।
प्रद्युम्नपुत्रोपहृत पुश्चल्या नु महायशा ॥५९
मायाविदग्धा पुश्चल्यो दैत्यदानवयोषित ।
ताभिर्हृतो न सदेहो नान्यतो विद्यते भयम् ॥६०
इत्येवमुक्ते वचने कृष्णेन तु महात्मना ।
अथावगम्य तत्त्वेन यदूत यदुमण्डले ॥६१
हर्षयन्स तु सर्वेषा सूतमागधवन्दिनाम ।
मधुर श्रूयते घोषो माधवस्य निवेशने ॥६२

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! अद्भुत कर्म वाले भगवान् श्रीकृष्ण के वचन सुन कर अक्रूर बोले—हे भगवन् ! त्रैलोक्येश्वर इन्द्र के कार्य का हमे भले प्रकार ज्ञान है तथा वे भी हमारे कार्यों को जानते हैं। वे हमारे रक्षक हैं और उनके तथा देवताओ के कार्यो की सिद्धि के लिये ही हमने मनुष्य देह धारण किया है ॥५५ ५७। अक्रूर के वचन सुन कर भगवान् श्रीकृष्ण ने गभीरता पूर्वक कहा—यह कार्य किसी देव गधर्व यक्ष अथवा राक्षस का नही हो सकता। मैं समझता हूँ कि किसी पुश्चली स्त्री ने ही अनिरुद्ध का हरण किया है ॥ ५८ ॥ दैत्यों और दानवो की स्त्रियां माया के जानने वाली होती हैं, इसलिये यह कार्य उनके अतिरिक्त अन्य किसी का नही हो सकता ॥६०॥ वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्ण के वचनो से सभी को यथार्थ बात का ज्ञान होगया और तब श्रीकृष्ण की प्रशसा मे सूत, मागध, वन्दीजन आदि मधुर स्वरो में स्तुति करने लगे और उन समूह मे कोलाहल होने लगा ॥६१ ६२॥

ते चारा सर्व–: सर्वे सभाद्वारमुपागता ।
शनैं गद्गदया वाचा इद वचनमब्रुवन् ।।६३
उद्यानानि गुहा शैला सभा नद्य स-ांसि च ।
एकैक शनशो राज-मार्गित न च दृश्यते ।।६४
अन्ये क्र ण चरा राज नुनागम्य तदाऽब्रुवन् ।
सर्वे नो विदिता देशा प्राद्युम्निर्न च दृश्यते ।।६५
यदन्यत्स विधातव्य विधान यदुनन्दन ।
तदाज्ञापय न क्षिप्रमनिरुद्धस्य मार्गणे ।।६६
ततस्ते दीनमनस सर्वे बाष्पाकुलेक्षणा ।
अन्योन्यमभ्यभाषन्त किमत कार्यमुत्तरम ।।६७
सदष्टौष्ठपुटा केचित्केचिद्बाष्पाकुलेक्षणा ।
केचिद्भृकुटिनास-ा र चिन्तयन्त्यर्थसिद्धये ।।६८
एव चि-यना तेषा बह्वर्थमभिभाषितम् ।
अनिरुद्ध कुतश्चेति सभ्रम सुमहानभूत् । ६९
अन्योन्यमभिवीक्ष-ते य दवा जातमन्यव ।
ता निशा विमनस्कास्ते गमयेयु कथचन ।
अनिरुद्धो हृतश्चेति पुन पुनररिंदम ।।७०

इसी समय अनिरुद्ध की खोज में गये हुए दूत लौट कर आगये और उन्होंने सभा के द्वार पर खडे हो-र कहा—हे महाराज ! उद्य न, गुफा, पर्वत, सभा, नदी, सरोवर आदि सब स्थ नो मे हमने सौ-सौ बार खोज लिया, परन्तु अनिरुद्ध की वही भी नही पा सके ॥ ६४ ॥ हे यदुनन्दन ! अब हमारे लिये और कोई आज्ञा हो तो कहिये। यह कह कर दूत चुप खडे होकर एक-दूसरे को देखते हुए सोचने लगे कि अब क्या होता है ? ॥६५-६७॥ उनमे से कुछ के नेत्र जल से परिपूर्ण होरहे थे, कुछ दाँतों से ओष्ठ भींच रहे थे और कुछ भृकुटियों को चढ़ाये कार्य में तत्पर प्रतीत होरहे थे ॥६८॥ फिर सभी लोग परस्पर सोचने लगे कि अनिरुद्ध कहाँ गये। इस प्रकार से एक कोलाहल-सा होने लग गया ॥६९॥ उधर सब यादव परस्पर एक दूसरे का मुख देखते हुए अपना कर्त्तव्य निश्चय नही कर

पा रहे थे। इस प्रकार वह दुःखमयी रात्रि अत्यन्त कठिनता से व्यतीत हुई और सभी के मुख से हमारे अनिरुद्ध को कौन ले गया ? यही शब्द बारम्बार निकल रहे थे ॥ ७० ॥

एवं च ब्रुवतां तेषां प्रभाता रजनी तदा ।
ततस्तूर्यनिनादैश्च शङ्खानां च महास्वनैः ।
प्रबोधनं महाबाहोः कृष्णस्याक्रियतालये ॥७१
ततः प्रभाते विमले प्रादुर्भूते दिवाकरे ।
प्रविवेश सभामेको नारदः प्रहसन्निव ॥७२
दृष्ट्वा तु यादवान्सर्वान्कृष्णेन सह संगतान् ।
ततः स जयशब्देन माधवं प्रत्यपूजयत् ॥७३
अथाभ्युत्थाय विमनाः कृष्णः समितिदुर्जयः ।
मधुपर्कं च गां चैव नारदाय ददौ प्रभुः ॥७४
सोपविश्यासने शुभ्रे सर्वास्तरणसंवृते ।
सुखासीनो यथान्यायमुवाचेदं वचोऽर्थवत् ॥७५
किमेवं चिन्तयाविष्टा निःसञ्ज्ञा गतमानसाः ।
उत्साहहीनाः सर्वे वै क्लीबा इव समासते ॥७६

प्रातःकाल होने पर भगवान् कृष्ण के जागने की सूचना स्वरूप तुरही और शंखादि वाद्य बज उठे। श्रीकृष्ण अपनी शय्या को त्याग कर उठ बैठे ॥७१॥ फिर भगवान् सूर्य उदित हुए और सभी यादव सभा भवन में आकर एकत्रित होगये। इसी समय देवर्षि नारद भी वहाँ आ गये ॥७२॥ उन्होंने भगवान् का जय-जयकार किया और उग्रसेन आदि सभी यादवों ने उनका अभिनन्दन तथा भगवान् कृष्ण ने अर्घ्य-गोदानादि से सत्कार किया ॥७३-७४॥ तब वे श्रेष्ठ एवं शुभ आसन पर विराजमान होकर कहने लगे ॥७५॥ नारदजी बोले—आज आप सभी इस प्रकार कायरों की भाँति निरुत्साह होकर क्यों बैठे हुए हैं ? ॥७६॥

इत्येवमुक्ते वचने नारदेन महात्मना ।
वासुदेवोऽब्रवीद्वाक्यं श्रूयतां भगवन्निदम् ॥७७

अनिरुद्धो हृतो ब्रह्मन्केनापि निशि सुव्रत ।
तस्यार्थे सर्व एवास्म चिन्तयाविष्टचेतसः ॥७८
एष ते यदि वृत्तान्त श्रुतो दृष्टोऽपि वा मुने ।
भगवन्कथ्यतां साधु प्रियमेतन्ममानघ ॥७९
इत्येवमुक्ते वचने केशवेन महात्मना ।
प्रहस्यैतद्वचः प्राह श्रूयतां मधुसूदन ॥८०
निवृत्तं सुमहद्युद्धं देवासुरसमं महत् ।
अनिरुद्धस्य चैकस्य बाणस्यापि महामृधे ॥८१
उषा नाम सुता तस्य बाणस्याप्रतिमौजसः ।
तस्यार्थे चित्रलेखा वै जहाराशु तमप्सरा. ॥८२
उभयोरपि तत्रासीन्महायुद्ध सुदारुणम् ।
प्राद्यम्निबाणयोः सख्ये बलिवासवयोरिव ॥८३

नारदजी की बात सुन कर श्रीकृष्ण ने उनसे कहा—हे भगवन् ! इस व्याकुलता का कारण यह है कि रात्रिकाल मे यहाँ से अनिरुद्ध को कोई उठा लेगया है, इसलिये उसका पता न लग सकने के कारण ही हम इस प्रकार उद्विग्न हो रहे है ॥७७-७८॥ यदि आपने इस विषय मे कुछ देखा या सुना हो अथवा किसी और प्रकार से आपकी जानकारी हो तो कृपा करके हमे बताइये ॥ ७९ ॥ भगवान् कृष्ण की बात सुन कर नारदजी ने कुछ मुसकाते हुए कहा—हे यदुनन्दन ! इस विषय मे जो कुछ मैं कहता हूँ, उसे सुनिये ॥८०॥ आपके अनिरुद्ध का बाणासुर के साथ देवासुर-सग्राम जैसा भीषण समर मचा हुआ है ॥८१॥ उस बाणासुर की उषा नाम की एक सुन्दरी कन्या है, उसी के लिये चित्रलेखा नाम की अप्सरा ने अनिरुद्ध का हरण किया है । इसलिये अनिरुद्ध और बाणासुर मे बलि और इन्द्र के समान घोर युद्ध उपस्थित होगया ॥८२-८३॥

अस्माभिश्चापि तद्युद्धं दृष्टं सुमहदद्भुतम् ।
अनिरुद्धो मयात्तेन संयुगेष्वनिवर्तिना ॥८४
बाणेन मायामास्थाय बद्धो नागैर्महाबलः ।
व्यादिष्टस्तु वधस्तस्य बाणेन गरुडध्वज ॥८५

त निवारितवान्मन्त्री कुम्भाण्डो नाम तरय ह ।
कुमारस्यानिरुद्धस्य तेनासक्तेन सयुगे ॥८६
बाणेन मायामास्थाय सर्पैनियमन कृतम् ।
उत्तिष्ठतु भवाञ्छीघ्र यशसे विजयाय च ॥८७
नाय सरक्षितु काल प्राणास्तात जयैषिणाम् ।
प्राणे किचिद्गतैर्वीरो धैर्यमालम्ब्य तिष्ठति ॥८८

हे मधुसूदन ! यह दृश्य मैंने स्वय देखा है कि दैत्यराज बाणासुर उन्हें परास्त करने मे असमर्थ रहा, तब उसने मायामय युद्ध के द्वारा उन्हे नागपाश मे बाँध कर वध करने की आज्ञा दी, परन्तु उसके मन्त्री कुम्भाण्ड ने उनका मारा जाना स्थगित करा दिया है। वह बालक अभी भी नागपाश के बन्धन मे है। आप यश और विजय की प्राप्ति के लिये अब शीघ्र तैयार हो जाइये ॥८६ ८७॥ विजय की कामना वाले वीरो के लिये यह समय कटिबद्ध होने का है। जब प्राण सकट मे दिखाई दे तब वीरो को धैर्य धारण करना ही उचित है ॥८८॥

इत्येवमुक्ते वचने वासुदेव प्रतापवान् ।
प्रायानिकान्वै स भारानाज्ञापयत वीर्यवान् ॥८६
ततश्चन्दनपूर्णैश्च लाजैश्चैव समन्तत ।
निर्ययौ स महाबाहु कीर्यमाणो जनार्दन ॥९०
आस्थितो गरुड देवस्तस्य चानु हलायुध ।
पृष्ठतोऽनु बलस्यापि प्रद्युम्न शत्रुकर्षण ॥९१
जय बाण महाबाहो ये चास्यानुगता रणे ।
न हि ते प्रमुखे स्थातु कश्चिच्छक्तो महामृधे ॥९२
प्रसादे ते ध्रुवा लक्ष्मीर्विजयश्च पराक्रमे ।
विजेष्यसि रणे शत्रु दैत्येन्द्र सहस्रनिकम् ॥९३
सिद्धचारणसघाना महर्षीणा च सर्वश ।
शृण्वन्वाचोऽन्तरिक्षे वै प्रययौ केशवो रणे ॥९४

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन्! नारद की बात पूरी होते ही भगवान् श्रीकृष्ण ने तुरन्त ही युद्ध सामग्री एकत्र करने की आज्ञा दी और युद्ध के लिये चल दिये ॥८९॥ उनके चलते समय सब ओर से सुगन्ध, चन्दन और धान आदि की उन पर वर्षा होने लगी ॥९०॥ उस समय बलराम और प्रद्युम्न को साथ लेकर भगवान् श्रीकृष्ण गरुड की पीठ पर आरूढ हुए तभी आकाश में स्थित सिद्ध, चारण और महर्षिगण उनसे बोले—हे कृष्ण! आप शीघ्र ही दैत्यराज बाणासुर को उसके अनुचरों सहित मार डालिये, क्योंकि युद्ध में देवराज इन्द्र भी आपका सामना करने में समर्थ नहीं हैं। इस संग्राम में भी आप अवश्य विजयी होंगे। आपके द्वारा सेना सहित दानवराज बाणासुर का संहार होना निश्चित है। इस प्रकार आकाशवाणी को सुनते हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने युद्ध के लिये प्रस्थान किया ॥९१-९४॥

॥ कृष्णजी का अग्नि के साथ युद्ध ॥

ततस्तूर्यनिनादेन शंखानां च महास्वनैः ।
वन्दिमागधसूतानां स्तवैश्चापि सहस्रशः ॥१
स तूर्मुखैर्जयाशीर्भिः स्तूयमानो हि मानवैः ।
बभार रूपं सोमार्कशक्राणां प्रतिमां तदा ॥२
अतीव शुशुभे रूपं व्योम्नि तस्योत्पतिस्यतः ।
वैनतेयस्य भद्रं ते बृंहितं हरितेजसा ॥३
अथाष्टबाहुः कृष्णस्तु पर्वताकारसंनिभः ।
विबभौ पुण्डरीकाक्षो विकाङ्क्षन्बाणसंक्षयम् ॥४
असिचक्रगदाबाणा दक्षिणं पार्श्वमास्थिताः ।
वर्म शार्ङ्गं तथा चापं शंखं चैवास्य वामतः ॥५
शीर्षाणां वै सहस्रं तु विहितं शार्ङ्गधन्वना ।
सहस्रं चैव कायानां वहन्स कर्षणस्तदा ॥६
श्वेतप्रहरणोऽप्यग्र्यः कैलास इव शृङ्गवान् ।
प्रस्थितो गरुडेनाथ उद्यन्निव दिवाकरः ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन्! सब ओर से तुरही की ध्वनि, शंख-नाद और सूत, मागध तथा वन्दीजन का स्तुति पाठ प्रारम्भ होगया और भगवान् श्रीकृष्ण उस समय सूर्य, चन्द्र और इन्द्र के समान शोभायमान होने लगे ॥१-२॥ भगवान् के ही तेज से सम्पन्न तथा उड़ने के लिये तत्पर हुए गरुड़ की शोभा भी विशेष थी ॥३॥ उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण का देह पर्वत के समान विकराल होगया और आठ भुजाएँ प्रकट होगईं, इस प्रकार वे बाणासुर को मारने के कार्य में तत्पर हुए ॥ ४ ॥ उनकी दाहिनी भुजाओं में तलवार, चक्र, गदा और बाण तथा बाईं भुजाओं में ढाल, धनुष, शंख आदि स्थित थे ॥ ५ ॥ उसी समय उनके सहस्र मस्तक होगये तथा बलरामजी ने सहस्र देह धारण किये ॥६॥ उनके हाथों में जो तीक्ष्ण शस्त्रास्त्र थे, उनसे वे ऐसे प्रतीत होते थे, जैसे शिखरों के सहित साक्षात् कैलास पर्वत पर सूर्योदय हो रहा हो ॥७॥

सनत्कुमारस्य वपु प्रादुरासीन्महात्मन॰ ।
प्रद्युम्नस्य महाबाहो स ग्रामे विक्रमिष्यत ॥८
स पक्षवलविक्षेपैर्विधुन्वन्पर्वतान्बहून् ।
जगाम मार्गं वलवान्वातस्य प्रतिषेधयन् ॥९
अथ वायोरतिगतिमास्थाय गरुडस्तदा ।
सिद्धचारणसङ्घाना शुभ मार्गमवातरत् ॥१०
अथ रामोऽब्रवीद्वाक्य कृष्णमप्रतिम रणे ।
स्वाभि प्रभाभिर्हीना स्म कृष्ण कस्मादपूर्ववत् ॥११
सर्वे कनकवर्णाभा स वृत्ता स्म न स शय ।
किमिद ब्रूहि नस्तत्त्व किं मेरो पार्श्वगा वयम् ॥१२
मन्ये वाणस्य नगरमभ्यासस्थमरिंदम ।
रक्षार्थं तस्य निर्यातो वह्निरेष स्थितो ज्वलन् ॥१३
अग्नेराहवनीयस्य प्रभया स्म समाहता. ।
तेन नो वर्णवैरूप्यमिद जात हलायुध ॥१४
यदि स्म सन्निकर्षस्था यदि निष्प्रभता गता ।
तद्विधत्स्व स्वय बुद्ध्या यदत्रानन्तर हितम् ॥१५

कुरुष्व वैनतेय त्वं यच्च कार्यमनन्तरम् ।
त्वया विधाने विहिते करिष्याम्यहमुत्तमम् ॥१६

युद्ध क्षेत्र मे अपना पराक्रम दिखाने वाले प्रद्युम्न की शोभा भी सनत्कुमार जैसी होरही थी ॥ ८ ॥ पक्षिराज गरुड समस्त आकाशमार्ग को रोक कर चलने लगे, जिनके पंखो से निकलने वाली वायु के कारण अनेक पर्वत काँप रहे थे ॥ ९ ॥ वायु वेग से चलते हुए गरुड ने सिद्धो और चारणों के मार्ग को शीघ्र ही पार कर लिया ॥ १० ॥ तभी बलरामजी ने भगवान् श्रीकृष्ण से कहा—हे कृष्ण ! इस समय हमारी प्रभा कसे फीकी होरही है, पहिले तो ऐसा कभी न हुआ था ॥११॥ अब हम सब स्वर्ण जैसे वर्ण के होगये प्रतीत होते है, इसका क्या कारण है ? क्या हम सुमेरु पर्वत के निकट पहुँच गये है ? ॥१२॥ भगवान् श्री-कृष्ण ने कहा—मुझे ऐसा लगता है कि हम बाणासुर के नगर के समीप आगये हैं, जिसकी रक्षा के लिये यह अग्नि प्रज्ज्वलित है तथा उसी आहवनीय अग्नि की प्रभा से हमारी देह-कान्ति स्वर्ण के समान होगई है ॥१३॥ तब बलरामजी बोले —हे कृष्ण ! यदि बाणासुर की नगरी के समीप आने से ही हमारी प्रभा नष्ट होगई है, तो हमे अपने कर्त्तव्य को अब भले प्रकार सोच लेना उचित है ॥१४॥ तब श्रीकृष्ण ने गरुड से कहा—हे गरुड ! अब हमे क्या करना चाहिये पहिले तुम्ही इस पर अपने विचार प्रकट करो इसके बाद ही हम कोई निर्णय लेंगे ॥१६॥

एतच्छ्रुत्वा तु गरुडो वासुदेवस्य भाषितम् ।
चक्रे मुखसहस्रं हि कामरूपी महाबल ॥१७
गङ्गामुपागमत्तूर्णं वैनतेयो महाबल ।
आप्लुत्याकाशगङ्गायामापीय सलिल बहु ॥१८
प्रववर्षोपरि गतो वैनतेय प्रतापवान् ।
तेनाग्नि शमयामास बुद्धिमान्विनतात्मज ॥१९
अग्निराहवनीयस्तु तत शांतिमुपागमत् ।
त दृष्ट्वाऽऽहवनीय तु शान्तमाकाशगङ्गया ॥२०
परम विस्मय गत्वा सुपर्णो वाक्यमब्रवीत् ।
अहो वीर्यमथाग्नेस्तु यो दहेद्युगस क्षये ॥२१

त्रयस्त्रयाणा लोकाना पर्याप्ता इति मे मतिः ।
कृष्णः स कर्षणश्चैव प्रद्युम्नश्च महावलः ॥२२
तत. प्रशान्ते दहने स प्रतस्थे स पक्षिराट् ।
स्वपक्षवलविक्षेप कुर्वन्घोर महास्वनम् ॥२३

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्ण के वचन सुन कर गरुड ने भी सहस्र मुख धारण कर लिये ॥१७॥ फिर उन्होने आकाशगगा के तट पर जाकर उसका जल पान किया और उस जल को वही से बाणनगरी पर बरसाया। उनके इस कार्य से आहवनीय अग्नि शान्त होगया। इस प्रकार अग्नि को शान्त हुआ देख कर स्वय गरुड भी विस्मित होगये और बोले—देखो, अग्नि कितने व्यापक प्रभाव वाला है कि वह प्रलयकाल मे सम्पूर्ण विश्व को ही भस्म कर डालता है। इसी के प्रभाव से भगवान् की देह-कान्ति मे भी परिवर्तन हो गया। मेरे विचार मे तीनो लोको मे तीन अग्नियाँ ही सब कर्म करने मे समर्थ हैं। इस प्रकार अग्नि के शान्त होने पर कृष्ण, बलराम और प्रद्युम्न को पीठ पर बैठा कर गरुड चल पडे, उस समय उनके पखो के चलने से भयकर ध्वनि निकल रही थी ॥१८-२३॥

तान्दृष्ट्वा विस्मय तत्र रुद्रस्यानुचराग्नय ।
आस्थिता गरुड ह्येते नानारूपा भयावहाः ॥२४
किमर्थमिह स प्राप्ता. के वापीमे जनाश्रय. ।
निश्चय नाधिगच्छन्ति ते गिरिव्रजवह्नय ॥२५
प्रावर्तयश्च सग्रामे तैस्त्रिभि सह यादवै ।
तेषा युद्धप्रसक्ताना स नाद सुमहानभूत ॥२६
त च श्रुत्वा महानाद सिंहानामिव गर्जताम् ।
अथाङ्गिरा स्वपुरुष प्रेषयामास बुद्धिमान् ॥२७
यत्र तद्वर्तते युद्ध तत्र गच्छस्व मा चिरम् ।
दृष्ट्वा तत्सर्वमागच्छ इत्युक्त. प्रहितस्त्वरन् ॥२८

तत्पश्चात् शकर के अनुचर अग्नियो ने जैसे ही गरुड को देखा वैसे ही

सोचने लगे कि यह गरुड पर चढ़े हुए अनेक रूप वाले और भयानक कौन हैं ? इनका आगमन किस लिये हुआ है ? ऐसा विचार करते हुए भी वे कुछ स्थिर नहीं कर पाये ॥२४-२५॥ फिर उन अग्नियों ने इन कृष्ण, बलराम और प्रद्युम्न के साथ संग्राम छेड़ दिया, तब वहाँ घोर कोलाहल होने लगा ॥२६॥ उस भयंकर शब्द को सुन कर बाणासुर ने एक दूत बुला कर उसे आज्ञा दी कि हे दूत ! तुम युद्ध क्षेत्र में आकर वहाँ के ठीक समाचार लेकर शीघ्र आओ ॥२७-२८॥

तथेत्युक्त्वा स तद्युद्ध वर्तमानमवैक्षत ।
अग्नीना वासुदेवेन ससक्ताना महामृधे ॥२९
ते जातवेदसः सर्वे कल्माष. कुसुमस्तथा ।
दहनः शोषणश्चैव तपनश्च महाबलः ॥३०
स्वाहाकारस्य विषये प्रख्याताः पञ्च वह्नयः ।
अथापरे महाभागाः स्वैरनीकैर्व्यवस्थिताः ॥३१
पिठरः पतगः स्वर्णः श्वागाधो भ्राज एव च ।
स्वधाकाराश्रयाः पञ्च अयुध्यंस्तेऽपि चाग्नयः ॥३२
ज्योतिष्टोमविभागी च वषट्काराश्रयी पुनः ।
द्वावग्नी संप्रयुध्येते महात्मानौ महाद्युती ॥३३
आग्नेयं रथमास्थाय शरमुद्यम्य भास्वरम् ।
तयोर्मध्येऽङ्गिराश्चैव महर्षिर्विबभौ रणे ॥३४

बाणासुर की आज्ञा सुनते ही दूत ने वहाँ आकर इन तीनों के साथ अग्निगणों का भयंकर युद्ध होता हुआ देखा, उस समय स्वाहा युक्त आहुतियों को ग्रहण करने में समर्थ कल्माष, कुसुम, दहन, शोषण और तपन नामक पाँच और स्वधा ग्रहण करने वाले पिठर, पतग, स्वर्ण, श्वागाध और भ्राज नामक पाँच —इस प्रकार यह दस अग्निगण अपनी-अपनी सेनाओं के सहित घोर संग्राम कर रहे थे ॥३०-३२॥ उनके साथ वषट्कार के आश्रय में रहने वाला अग्नि और ज्योतिष्टोम का विभाग करने वाला अग्नि—यह दोनों भी युद्ध करने में तत्पर हैं ॥३३॥ उन दोनों अग्नियों के बीच में अग्निमय रथ पर चढ़े हुए महर्षि अंगिरा अपने हाथ में त्रिशूल लिये हुए रणक्षेत्र में उपस्थित हैं ॥३४॥

स्थितमङ्गिरस दृष्ट्वा विमुञ्चन्त शिताञ्छरान्
कृष्ण प्रोवाच सक्रुद्ध स्मयन्निव पुन पुन ॥३
तिष्ठध्वमग्नय सर्वे एष वो विदधे भयम् ।
ममास्त्रतेजसा दग्धा दिशो यास्यथ विद्रुता ।
अथाङ्गिरास्त्रिशूलेन दीप्तेन समधावत ॥३६
आददान इव क्रोधात्कृष्णप्राणान्महामृधे ।
त्रिशूल तस्य दीप्त तु चिच्छेद परमेपुभि ॥
अर्धचन्द्रैस्तथा तीक्ष्णैर्यमान्तकनिभोपमै ॥३७
स्थूणाकर्णेन बाणेन दीप्तेन स महामना ।
निर्घाधान्तकतुल्येन वक्षस्यङ्गिरस तत ॥३८
रुधिरौघप्लुतैर्गात्रैरङ्गिरा विह्वलन्निव ।
विष्टब्धगात्र सहसा पपात धरणीतले ॥३९
शेपास्ततोऽग्नय सर्वे चत्वारो ब्रह्मण सुता ।
आधावन्तस्तदा शीघ्र बाणस्य पुरमन्तिकात् ॥४०

उन्हे तीक्ष्ण बाणो की वर्षा करते हुए देख कर श्रीकृष्ण बोले—हे अग्नियो ! मैं अभी तुम्हारे नाश का उपाय करता हूँ तब तुम मेरे शस्त्रो से भस्म होते हुए भागोगे । यह सुन कर महर्षि अगिरा एक प्रज्वलित त्रिशूल तान कर श्रीकृष्ण की ओर झपटे ॥३५-३६॥ उस समय उनको मृत्यु के समान अपनी ओर आता देख कर श्रीकृष्ण ने यम, सूर्य और अग्नि की प्रभा से तीक्ष्ण हुए अर्द्ध-चन्द्राकार बाण से उनके त्रिशूल को मार्ग मे ही काट दिया ॥३७॥ तदनन्तर उन्होने अपने धनुष पर स्थूलाकर्ण नामक तेजोमय बाण चढा कर अगिरा के हृदय को बीध डाला ॥३८॥ इससे महर्षि अगिरा रक्त मे भीग कर विह्वल होते हुए भूमि पर जा गिरे ॥३९॥ इसके पश्चात् ब्रह्माजी के पुत्र रूप सभी अग्नि युद्ध क्षेत्र को छोड कर शोणितपुर की ओर भाग गये ॥४०॥

॥ श्रीकृष्ण ज्वर युद्ध ॥

अथागमत्तत्र कृष्णो यत्र बाणपुर तत ।
अथ बाणपुर दृष्ट्वा दूरात्प्रोवाच नारद ॥१

एतत्तच्छोणितपुरं कृष्ण पश्य महाभुज ।
अत्र रुद्रो महातेजा रुद्राण्यां सहितोऽवसत् ॥२
गुहश्च बाणगुप्त्यर्थं सतत क्षेमकारणात् ।
नारदस्य वचः श्रुत्वा कृष्णस्त्विदमथाब्रवीत् ॥३
क्षणं चिन्तयतामत्र श्रूयता च महामुने ।
यदि वाऽवतरेद्रुद्रो वाणसंरक्षणं प्रति ॥४
यावित्ततो वयमप्यत्र सह योत्स्याम तेन वै ।
एवं विवदतोस्तत्र कृष्णनारदयोस्तदा ॥५
प्राप्ता निमेषमात्रेण शीघ्रगा गरुडेन ते ।
ततः शंखं समाधाय वदने पुष्करेक्षणः । ६

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! फिर भगवान् श्रीकृष्ण भी आगे बढते हुए शोणितपुर के पास जा पहुँचे । उस पुर को देखते ही नारदजी ने उन्हे बताया —हे महाबाहो ! यही वह शोणितपुर है, जहाँ वाणासुर का मगल करने के लिये पार्वतीजी और स्वामिकार्तिकेय के सहित साक्षात् भगवान् शंकर निवास करते हैं । यह सुन कर भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—हे महामुने ! यदि रुद्रदेव स्वय युद्ध क्षेत्र मे आकर बाणासुर की रक्षा करेंगे तो मुझे भी उनके साथ युद्ध करना पडेगा । इस प्रकार श्रीकृष्ण और नारद के मध्य वार्तालाप हो ही रहा था, कि इतने मे ही शोणितपुर आगया और वहाँ उन्होने अपने पाचजन्य शंख की ध्वनि की ॥ १-६ ॥

वायुवेगसमुद्भूतो मेघश्चन्द्रमिवोद्गिरन् ।
ततः प्रध्माप्य तं शंखं भयमुत्पाद्य वीर्यवान् ॥७
प्रविवेश पुरं कृष्णो वाणस्याद्भुतकर्मणः ।
ततः शंखप्रणादैश्च भेरीणा च महास्वनैः ॥८
वाणानीकानि सहसा स नह्यन्त समन्ततः ।
ततः किंकरसैन्य तु व्यादिष्टं समरे भयात् ॥९
कोटिशश्चापि बहुशो दीप्तप्रहरणास्तदा ।
तदसंख्येयमेकस्थं महाभ्रवनसंनिभम् ॥१०

नीलाञ्जनचयप्रख्यमप्रमेयमथाक्षयम् ।
दीप्तप्रहरणाः सर्वे दैत्यदानवराक्षसाः ॥११
प्रमाथगणमुख्याश्च अयुध्यन्कृष्णमव्ययम् ।
सर्वतस्तैः प्रदीप्तास्यैः सार्चिष्मद्भिरिवाग्निभिः ॥१२
अभ्युपेत्य तदात्युग्रैर्यक्षराक्षसकिन्नरैः ।
पीयते रुधिरं तेषां चतुर्णामपि संयुगे ॥१३

उस समय शङ्ख के मुख पर पहुँचने से मेघों में से चन्द्रोदय होने जैसी शोभा हुई। इस प्रकार शङ्खनाद से भय की सूचना देते हुए श्रीकृष्ण शोणितपुर में घुस गये। तभी उस शंख ध्वनि को सुन कर भेरी बजाती हुई बाण-सेना युद्ध के लिये सुसज्जित होने लगी और युद्ध की आज्ञा मिलते ही तीक्ष्ण हथियारों के सहित चलने लगी। हे राजन्! उस असंख्य सेना को देख कर ऐसा प्रतीत होता था, जैसे आकाश में मेघों के समूह ही छा गये हों। ७-१०। नीलगिरि के समान नीली पोशाकों वाले वे असंख्य दैत्य, दानव और राक्षस अनेक प्रकार के तेज युक्त शस्त्रास्त्रों को लेकर बढ़ रहे थे ॥११॥ इस सेना में रुद्र के प्रमथगण अधिक थे। युद्ध क्षेत्र में आते ही वह सेना भगवान् श्रीकृष्ण के साथ संग्राम में तत्पर हुई। उस समय वे अग्नि के समान प्रदीप्त मुख वाले यक्ष, राक्षस एवं दैत्यादि सब ओर से आ-आकर श्रीकृष्णादि वीरों का रक्त पान की चेष्टा में लगे ॥ १२-१३ ॥

वातोद्धूतैरिव घनैर्विप्रकीर्णैरिवाचलैः ।
शुशुभे तत्र बहुलैरनीकैर्द्वन्द्वविभिः ।
मुसलैरसिभिः शूलैर्गदाभिः परिघैस्तथा ॥१४
अबाधं तदसंख्येयं शुशुभे सर्वतो बलम् ।
ततः स कर्षणो देवमुवाच मधुसूदनम् ॥१५
कृष्ण कृष्ण महाबाहो यदेतद्दृश्यते बलम् ।
एतैः सह रणे योद्धुमिच्छामि पुरुषोत्तम ॥१६
ममाप्येवं व सञ्जाता बुद्धिरित्यब्रवीच्च तम् ।
एभिः सह रणे योद्धुमिच्छेयं योधसत्तमैः ॥१७

युद्धचतः प्राङ्मुखस्थास्तु सुपर्णो वै ममाग्रतः ।
सव्यपार्श्वे तु प्रद्युम्नस्तथा मे दक्षिणे भवान् ।
रक्षितव्यमथान्योन्यमस्मिन्घोरे महामृधे ॥१८
एवं ब्रुवन्तस्तेऽन्योन्यमधिरुढाः खगोत्तमम् ।
गिरिश्रृङ्गनिभैर्घो रैर्गदामुसललाङ्गलैः ॥१९
युध्यतो रौहिणेयस्य रौद्र रूपमभूत्तदा ।
युगान्ते सर्वभूताना कालस्येव दिधक्षतः ॥२०
आकृष्य लाङ्गलाग्रेण मुसलेनावपोथयत् ।
चचारातिबलो रामो युद्धमार्ग विशारदः ॥२१

उस विशाल सेना को देख कर प्रतीत होता था कि वायु के थपेडों से मेघ उमड आये हैं या अनेक पर्वत इधर-उधर बिखर गये है। फिर वह सेना कुनिश, पट्टिश, शूल, गदा, मूसल आदि शस्त्रास्त्रो का प्रहार करने लगी। कुछ क्षण मे ही वह भूमि असंख्य सैनिको से परिपूर्ण होगई, यह देख कर बलरामजी बोले—हे कृष्ण ! हे महाबाहो ! मैं इस दानवी सेना से युद्ध करना चाहता हूँ ॥१४-१५-१६॥ इस पर श्रीकृष्ण ने कहा—हे भगवन् ! मैं भी इन वीर सैनिको से युद्ध करने के लिये उत्सुक हूँ ॥१७॥ मैं पूर्वाभिमुख होकर लड़ूँगा, गरुड मेरे आगे रहेगे, प्रद्युम्न बाँई ओर तथा आप दाँयी ओर रहे। इस प्रकार युद्ध करते हुए हम परस्पर मे एक-दूसरे का बचाव भी कर सकेंगे ॥१८॥ वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन्। इस प्रकार स्थिर कर वे गरुड की पीठ पर आरूढ होगये। बलरामजी ने पर्वतशिखर के समान गदा, मूसल और लागलास्त्र ग्रहण कर अपनी आकृति को विकराल बनाया और युद्ध करने लगे। उस समय वे प्रलयाग्नि के समान संसार को उदरस्थ करने मे तत्पर प्रतीत हुए ॥१९-२०॥ वे अपने लाग-लास्त्र से खीच खीच कर शत्रुओ को मारते हुए युद्ध क्षेत्र मे घूम रहे थे ॥२१॥

प्रद्युम्नः शरजालैस्तान्समन्तात्पर्यवारयत् ।
दानवान्पुरुषव्याघ्रो युध्यमानान्महाबलः ॥२२

स्निग्धाञ्जनचयप्रख्यः शंखचक्रगदाधरः ।
प्रध्माय वहुशः शङ्खमयुध्यत जनार्दनः ॥२३
पक्षप्रहारनिहता नखतुण्डाग्रदारिता ।
नीता वैवस्वतपुरं वैनतेयेन धीमता ॥२४
तद्हन्यमानं दैत्यानामनीकं भीमविक्रमम् ।
अभज्यत तदा भरये बाणवर्षसमाहतम् ॥२५
भज्यमानेष्वनीकेषु त्रातुकाम समभ्ययात् ।
ज्वरस्त्रिशिरा षड्भुजो नवलोचनः ॥२६
भस्मप्रहरणो रौद्रः कालान्तकयमोपमः ।
नदन्मेघसहस्रेण तुल्यो निर्घातनिःस्वनः ॥२७

महाबली प्रद्युम्न भी अपने भीषण बाणों की वरसा कर दानवों का संहार कर रहे थे ॥२२॥ स्निग्ध अंजन के समान श्याम वर्ण वाले भगवान् श्रीकृष्ण भी अपने शंख का घोष करते हुए युद्ध कर रहे थे ॥२३॥ गरुड़ भी अपने परों, नखों और चोंच की मार से असंख्य दैत्यों को नष्ट कर रहे थे ॥२४॥ इस प्रकार वह महापराक्रमी दैत्य-सेना अत्यन्त त्रस्त होकर युद्ध क्षेत्र से पलायन करने लगी ॥२५॥ उसी समय दैत्य सैनिकों के रक्षार्थ काल के समान भयानक तीन पैर तीन सिर, छः हाथ और नौ नेत्र वाला ज्वर वहाँ आगया। उसके हाथों में भस्मास्त्र था और वह मेघ के समान गर्जनशील कंठ स्वर से गर्जना कर रहा था ॥ २६-२७ ॥

निःश्वसञ्जृम्भमाणश्च निद्राऽन्वितततनुर्भृशम् ।
नेत्राभ्यामाकुलं वक्त्रं मुहुः कुर्वन्भ्रमन्मुहुः ॥२८
स हृष्टरोमा ग्लानाक्षो भग्नचित्त इव श्वसन् ।
हलायुधमभिक्रुद्ध साक्षेपमिदमब्रवीत् ॥२९
किमेवं वल मत्तोऽसि न मां पश्यसि संयुगे ।
तिष्ठ तिष्ठ न मे जीवन्मोक्ष्यसे रणमूर्धनि ॥३०
भस्म तदा क्षिप्तं ज्वरेणाप्रतिमौजसा ।
शीघ्रपाद्वक्षो निपतितं शरीरे पर्वतोपमे ॥३१

तद्भस्म वक्षसस्तस्य मेरो शिखरमागतम् ।
प्रदीप्त पतित तत्र गिरिशृङ्ग व्यदारयत् ।।३२
शेषेण चापि जज्वाल भस्मना कृष्णपूर्वज ।
नि श्रमज्जृम्भमाणश्च निन्द्रान्विततनुर्भृशम् । ३३

वह बारम्बार दीर्घ श्वास लेता और जम्हाई ले-लेकर मुख खोलता था। उसका देह निद्रित व्यक्ति जैसा तथा नेत्र तिरछे और घूमते हुए थे ।।२८।। उसकी रोमावलि हर्षित, नेत्रो म निद्रा और चित्त मे चचलता थी। उसने क्रोध से श्वास लेते हुए क्रोध पूवक बलरामजी से कहा—अरे, तुम ऐसे मदमत्त क्यो हो रहे हो ? क्या तुम्ह मेरा यहाँ आना दिखाई नही देता ? अब तुम यहाँ जीवित नही बच सकोगे ।।२९-३०।। फिर उस महाबली ज्वर ने अपने भस्मास्त्र से बलरामजी के हृदय पर प्रहार किया। परन्तु वह उनके हृदय मे न घुस कर पवत के ऊपर जा पडा जिसमे मेरु पर्वत के शिखर फट गये ।।३१ ३२।। उस भस्म का जो सूक्ष्म अश उनके देह पर लगा रह गया था उसके प्रदीप्त होने से बलराम के देह मे निद्रा व्याप्त होगई और वे दीघ श्वास लेने लगे ।।३३।।

ततो हलधरो भग्न कृष्णमाह विचेतन ।
कृष्ण कृष्ण महाबाहो प्रदीप्तोऽस्म्यभय कुरु ।।३४
दह्यामि सर्वतस्तात कथ शान्तिर्भवेन्मम ।
इत्येवमुक्ते वचने बलेनामिततेजसा ।।३५
प्रहस्य वचन प्राह कृष्ण प्रहरता वर ।
न भेतव्यमितीत्युक्त्वा परिष्वक्तो हलायुध ।।३६
कृष्णेन परमस्नेहात्ततो दाहात्प्रमुच्यत ।
मोक्षयित्वा बल तत्र दाहात्तु मधुसूदन ।।३७
प्रोवाच परमक्रुद्धो वासुदेवो ज्वर तदा ।
एह्येहि ज्वर युध्यस्व या ते शक्तिर्महामृधे ।।३८
यच्च ते पौरुष सर्व तद्दर्शयतु नो भवान् :
सव्येतराभ्या बाहुभ्यामेवमुक्तो ज्वरस्तदा ।।३९

चिक्षपेन महद्भूस्म ज्वालागर्भ महावलः ।
तत. प्रदीप्तगात्रस्तु मुहुर्नमभत्प्रभु. ॥४०
कृष्ण प्रहर्ता श्रेष्ठ शम चाग्निर्गतस्तत. ।
ततस्तैर्भु जगाकारं र्बाहुभिस्तु त्रिभिस्तदा ॥४१
जघान कृष्ण गीवाया मुष्टिनैकेन चोरसि ।
स प्रहारस्तुमुलस्तयो पुरुषसिंहयो ॥४२
ततो ज्वरं कनकविचित्रभूषण न्यपीडयद्भ् जवलयेन स युगे ।
जगत्क्षयं समुपनयञ्जत्पती. शरीरधृग्गगनचरं महामृधे ॥४३

इस प्रकार भस्म के प्रभाव से पीडित हुए बलरामजी ने श्रीकृष्ण से कहा —हे कृष्ण ! मेरा देह दग्ध होरहा है, उसके शीतल होने का उपाय करो । यह सुन कर भगवान् श्रीकृष्ण उनके देह से लिपट गये ॥३४-३५ ३६॥ उनके लिपटते ही बलरामजी का दाह शान्त होगया । फिर श्रीकृष्ण ने क्रोधित होकर ज्वर से कहा—हे ज्वर ! तुम मे यदि शक्ति और पुरुषार्थ है तो मुझसे युद्ध करो । भगवान् के वचन सुन कर ज्वर ने भस्मास्त्र का एक तीव्र प्रहार उन पर भी किया, जिससे उनके देह मे दाह उत्पन्न होगया ॥३७-४०॥ क्षण भर मे ही उनके उस ताप का निवारण होगया । फिर उसने अपनी भुजाएँ फैला कर श्रीकृष्ण के कंधे पर एक मुक्का मारा । इस प्रकार दोनो मे भीषण युद्ध होने लगा ॥४१-४२॥ तब मानव रूपधारी श्रीकृष्ण ने उस आकाश मे विचरण करने वाले उस ज्वर को पकड कर धर दबाया ॥४३॥

॥ वैष्णव ज्वर और शिव ज्वर मे युद्ध ॥

मृतमित्यभिविज्ञाय ज्वरं शत्रुनिषूदन ।
कृष्णो भुजबलाभ्यां तु विक्षेपाथ महीतले ॥१
मुक्तगात्र स बाहुभ्यां कृष्णदेहं विवेश ह ।
अमुक्त्वा विग्रहं तस्य कृष्णस्याप्रतिमौजसः ॥२
स ह्याविष्टस्तथा तेन ज्वरेणाप्रतिमौजसा ।
कृष्ण. स्खलन्निव मुहु क्षितौ गाढं व्यवर्तत ॥३

जृम्भते श्वमते चैव वल्गते च पुन पुन ।
रोमाञ्चोत्थितगात्रश्च निद्रया चाभिभूयते ॥४

तत स्थैर्य समालम्ब्य कृष्ण परपुरंजय ।
विकुर्वति महायोगी जृम्भमाण पुन पुन ॥५

ज्वराभि भूतमात्मान विज्ञाय पुरुषोत्तम ।
सोऽसृजज्ज्वरमन्य तु पूर्वज्वरविनाशनम् ॥६

घोर वैष्णवमत्युग्र सर्वप्राणिभय करम्
ससृष्टवान्स तेजस्वी त ज्वर भीमविक्रमम् ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! शत्रु नाशक श्रीकृष्ण ने ज्वर को मरा हुआ समझ कर जैसे ही पृथिवी पर फेंका, वैसे ही वह अदृश्य रूप से उनके देह में घुस गया। जिससे उनके पाँव डगमगाने लगे, कभी जम्हाई आती कभी श्वास का वेग रुकता, कभी रोमाञ्च होता और कभी नींद आने लग जाती ॥१-४॥ तब भगवान् ने समझ लिया कि मेरे देह में ज्वर घुस गया है, इसलिये उसे नष्ट करने की इच्छा से उन्होंने एक अन्य ज्वर को उत्पन्न किया ॥ ५ ६ ॥ भगवान् कृष्ण द्वारा उत्पन्न वैष्णव ज्वर जीवों के लिये घोर भयदायक था ॥७॥

ज्वर कृष्णविसृष्टस्तु गृहीत्वा त ज्वर बलात् ।
कृष्णाय हृष्ट प्रायच्छत्तत जग्राह ततो हरि ॥८

ततस्त परम क्रुद्धो वासुदेवो महाबल ।
स्वगात्रात्स्वरेणैव निष्क्रमयत वीर्यवान् ॥९

आविध्य भूतले चैन शतधा स्तुमुद्यत ।
व्याघोषत ज्वरस्तत्र भो परित्रातुमर्हसि ॥१०

आविध्यमाने तस्मिंस्तु कृष्णेनामिततेजसा ।
अशरीरा ततो वाणी ह्यन्तरिक्षात्समापत ॥११

कृष्ण कृष्ण महाबाहो यदूनां नन्दिवर्धन।
मा वधीर्ज्वरमेन तु रक्षणीयस्त्वयानघ ॥१२

इत्येवमुक्ते वचने त मुमोच हरि स्वयम्।
भूतभव्यविष्यस्य जगत परमो गुरु ॥१३

उस ज्वर ने शैव ज्वर को पकड कर श्रीकृष्ण के सामने उपस्थित किया तब श्रीकृष्ण ने उसे पृथिवी पर गिरा दिया और उसे खण्ड खण्ड करने की इच्छा करने लगे, तभी शैव ज्वर चीत्कार करता हुआ मेरी रक्षा करो, रक्षा करो' कहने लगा ॥ ८ १० ॥ तभी आकाशवाणी हुई कि हे महाबाहो ! आप इस शैव ज्वर की रक्षा करिये ॥११-१२॥ ऐसी आकाशवाणी सुन कर भगवान् श्रीकृष्ण ने उसे मुक्त कर दिया ॥१३॥

॥ श्रीकृष्ण-शिव युद्ध ॥

ततस्ते त्वरिता सर्वे क्षयस्त्रय इवाग्नय ।
वैनतेयमथारुह्य युध्यन्ते रणमूर्द्ध नि ॥१
तत्र सर्वाण्यनीकानि वाणवर्षैरवाकिरन् ।
अर्दयन्वैनतेयस्था नदन्तोऽतिबलाद्रणे ॥२
चक्रलाङ्गलपातैश्च वाणवर्षैश्च पीडितम् ।
सचुकोप महानीक दानवाना दुरासदम् ॥३
कक्षेऽग्निरिव स वृद्ध शुष्के धनसमीरित ।
कृष्णवाणाग्निरुद्धू तो विवृद्धि परमा गत ॥४
दानवाना सहस्राणि तस्मिन्समरमूर्द्ध नि ।
युगान्ताग्निरिवार्चिष्मान्दहमानो व्यराजत ॥५
भग्न बल ततो दृष्ट्वा कृष्णेनामिततेजसा ।
सरक्तनयन स्थाणुर्युद्धाय पर्यवर्तत ॥६

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! फिर बलराम कृष्ण और प्रद्युम्न—यह तीनो ही महाबली गरुड की पीठ पर चढ कर युद्ध कर रहे थे। उनके द्वारा की गई बाण वर्षा से सम्पूर्ण दैत्य सेना आवृत्त होगई और उस सेना को नष्ट होती हुई देख कर वे रणक्षेत्र में गर्जन करते हुए विचरने लगे ॥१-२॥ सुदर्शन

चक्र लांगलास्त्र और भीषण बाणों के प्रहार से अत्यन्त संतप्त हुई दानव सेना अत्यन्त क्रोधित हो गई ॥३॥ जैसे घास में लगा हुआ अग्नि अधिक बढ़ जाता है, वैसे ही श्रीकृष्ण का शस्त्र रूपी अग्नि दानव सैन्य रूपी ईंधन को प्राप्त कर अधिक प्रदीप्त हो उठी ॥४॥ उस प्रलयाग्नि के समान भीषण शस्त्रास्त्रों की अग्नि में पड़ कर हजारों दैत्य भस्म होने लगे ॥५॥ इस प्रकार श्रीकृष्ण के तेज से नष्ट होती हुई दैत्य सेना की दुर्दशा देख कर भगवान् शंकर अत्यन्त क्रोधित होकर स्वयं रण क्षेत्र में युद्ध के लिए आये ॥६॥

बाणस रक्षणं कर्तुं रथमास्थायसुप्रभम् ।
देवः कुमारश्च तथा रथेनाग्निसमेन वै ॥७
नन्दीश्वरसमायुक्तं रथमास्थाय वीर्यवान् ।
सदष्टोष्ठपुटो रुद्र प्राधावत यतो हरिः ॥८
पिबन्निव नदाकाशं सिंहयुक्तो महास्वनः ।
रथो भाति घनोन्मुक्तः पौर्णमास्या यथा शशी ॥९
ततो गणसहस्रास्तु नानाप्रहरणायुधैः ।
नदद्भिर्विविधान्नादान्यो देवस्य शोभयन् ॥१०
रुधिरार्द्रमेदावक्त्रै महादंष्ट्रा बलिप्रिया ।
देवं सपरिवार्याथ महाशत्रुप्रमर्दनम् ॥११
लीलायमानास्तिष्ठन्ति संग्रामाभिमुखोन्मुखा ।
ततो दिव्यं रथं दृष्ट्वा रुद्रस्याक्लिष्टकर्मणः ॥१२
कृष्णो गरुडमास्थाय ययौ रुद्राय संयुगे ।
वैनतेयस्थमायान्तमायातमग्रणी हरिम् ॥१३
विव्याध कुपितो बाणैर्नाराचानां शतेन स ।
सारं रर्दितस्तेन हरेणाक्लिष्टकर्मणा ॥१४
हरिर्जग्राह कुपितो शस्त्रं पार्जन्यमुत्तमम् ।
प्रचचार ततो भूमिर्विष्णुरुद्रप्रपीडिता ॥१५

ही कार्तिकेयजी और नन्दी भी आरूढ़ होगये। वे दांतों से होंठों को चबाते हुए शीघ्रता से श्रीकृष्ण की ओर बढ़े ॥७-८॥ नभ मंडल का पान करने वाले रुद्र के सिंह-योजित रथ को देख कर प्रतीत होता था कि जैसे मेघों के बीच से चन्द्रमा निकल आया है ॥९॥ रथ के सब ओर भगवान् शङ्कर के प्रमथगण घोर गर्जना करने लगे ॥१०॥ उन सब के विशाल मुख रक्त से भीग रहे थे। वे सब बड़े-बड़े दांतों वाले और मांस-बलि भक्षण करने वाले थे। वे भगवान् शंकर के चारों ओर विविध प्रकार की क्रीडाएँ करते हुए चल रहे थे। तभी श्रीकृष्ण ने रथारूढ़ रुद्र पर भीषण बाण-वर्षा की, तब शिवजी ने भी अत्यन्त क्रोध पूर्वक एक साथ सौ बाणों से श्रीकृष्ण पर प्रहार किया। फिर उनके बाणों से आहत हुए श्रीकृष्ण ने पार्जन्य नामक अस्त्र उठा लिया, उस समय उन दोनों के युद्ध को देख कर पृथिवी कांप उठी ॥११-१२॥

॥ हरिहरात्मक स्तोत्र ॥

ततस्तु जृम्भमाणस्य देवस्याक्लिष्टकर्मणः।
ज्वाला प्रादुरभूद्वक्त्राद्दहतीव दिशो दश ॥१
ततस्तु धरणी देवी पीड्यमाना महात्मभिः।
ब्रह्माणं विश्वधातारं वेश्मानाऽभ्युपागमत् ॥२
देवदेव महाबाहो पीड्यामि परमौजसा।
कृष्णरुद्रभराक्रान्ता भविष्यैकार्णवा पुनः ॥३
अविषह्यमिमं भारं चिन्तयस्व पितामह।
लघ्वीभूता यथा देव धारयेयं चराचरम् ॥४
ततस्तु काश्यपीं देवीं प्रत्युवाच पितामह।
मुहूर्तं धारयात्मानमाशु लघ्वी भविष्यसि ॥५

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन्! तब भगवान् शङ्कर ने जम्हाई लेने के लिये अपना मुख खोला जिससे अग्नि की लपटें निकलने लगी और उस अग्नि के प्रभाव से दसों दिशाएँ धधक उठी ॥१॥ तब उन दोनों महात्माओं के संघर्ष के कारण संताप से कांपती हुई पृथिवी ब्रह्माजी की शरण मे पहुँची ॥२॥ वहाँ

जाकर पृथिवी ने कहा—हे प्रभो ! श्रीकृष्ण और भगवान् शंकर के संघर्ष से मैं अत्यन्त भयभीत हूँ क्योंकि इनके महातेज को न सह सकने के कारण मुझे पुनः समुद्र की शरण लेनी पड़ेगी ॥३॥ हे पितामह ! अब अधिक भार को सहन करने की मुझ में क्षमता नहीं है इसलिए मेरा भार इतना कम हो सके कि मैं उसे सुगमता पूर्वक धारण कर सकूँ, ऐसा प्रयत्न कीजिये ॥४॥ इस पर ब्रह्माजी ने कहा—हे धरे ! तुम क्षण भर धीरज रखो । तुम्हारा भार अभी कम हुआ जाता है ॥ ५ ॥

दृष्ट्वा तु भगवान्ब्रह्मा रुद्रं वचनमब्रवीत् ।
कृष्टो महाभुजस्त्वं हि ननु परिरक्षसे ॥६
न च युद्धं महाबाहो तव कृष्णेन रोचते ।
न च बुध्यसि कृष्णं त्वमात्मानं तु द्विधा कृतम् ॥७
ततः शरीरयोगाद्धि भगवानव्ययः प्रभुः ।
प्रविश्य पश्य ते कृत्स्नांस्त्रीँल्लोकान्सचराचरान् ॥८
प्रविश्य योगं योगात्मा वरास्ताननुचिन्तयन् ।
द्वारवत्यां यदुवरं च तदनुस्मृत्य सर्वशः ।
जगाद नोदारं किञ्चिन्निवृत्तोऽसौ भवत्तदा ॥९
आत्मानं कृष्णयोनिञ्च पश्यते स्वयंयोनिजम् ।
ततो निवृत्य रुद्रस्तु व्यस्तवादोऽभवन्मृधे ॥१०
ब्रह्माणं चाब्रवीद्रुद्रो न योत्स्ये भगवन्निति ।
कृष्णेन सह संग्रामे नष्टो भवतु मन्दिरी ॥११
ततः कृष्णाच्य रुद्रश्च परिष्वज्य परस्परम् ।
परां प्रीतिमुपागम्य संग्रामात्सजगमतुः ॥१२

ना आपके लिये अशोभनीय है ॥७॥ यह सुन कर भगवान् शंकर ने श्रीकृष्ण के देह में घुस कर तीनों लोकों के दर्शन किये ॥८॥ उस समय उन्होंने योगस्थ हो-कर अपने जृम्भास्त्र को प्रभावहीन देखा फिर द्वारका में बाणासुर की मृत्यु विषयक अपने वर का भी स्मरण किया, तब ब्रह्माजी को कोई उत्तर न देकर युद्ध का परित्याग कर दिया ॥९॥ इस प्रकार श्रीकृष्ण के शरीर में स्थित ब्रह्माण्ड को देख कर बाहर आये और ब्रह्माजी से बोले—अब मैं श्रीकृष्ण से नहीं लड़ूँगा, अच्छा हो कि पृथिवी का भार हलका हो जाय ॥१०-११॥ फिर भगवान् शंकर और श्रीकृष्ण दोनों ने ही परस्पर आलिंगन किया और युद्ध करने से निवृत्त हो-गये ॥ १२ ॥

श्रीकृष्ण-बाणासुर युद्ध ॥

प्रमाथगणभूयिष्ठे सैन्ये दीर्णे महासुर ।
निर्जगाम ततो बाणोयुद्धायाभिमुखस्त्वरन् ॥१
भीमप्रहरणैर्घोरै दैत्येन्द्रं सुमहारथे ।
महाबलैर्महावीरैर्वज्रीव सुरसत्तमै ॥२
पुरोहिता शत्रुवधं वदन्तस्तथैव चान्ये श्रुतशीलवृद्धा ।
जपैश्च मन्त्रैश्च तथौषधीभिर्महात्मन स्वस्त्ययनं प्रचक्रु ॥३
ततस्तूर्यप्रणादैश्च भेरीणां तु महास्वनैः ।
सिंहनादैश्च दैत्यानां बाण कृष्णमभिद्रवत् ॥४
दृष्ट्वा बाणं तु निर्यातं युद्धायैव व्यवस्थितम् ।
आरुह्य गरुडं कृष्णो बाणायाभिमुखो ययौ ॥५

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! प्रमथगणों के सहित सम्पूर्ण दानवी सेना के भाग जाने पर बाणासुर शीघ्रता पूर्वक युद्ध क्षेत्र में उपस्थित हुआ ॥१॥ महाबली दैत्यगण भीषण शस्त्रास्त्रों को धारण कर अपने-अपने वाहनों के द्वारा दैत्यराज के साथ चले ॥२॥ उस समय बाणासुर के पुरोहितों ने शत्रु नाश का आशीर्वाद देकर उसकी रक्षा के लिये जप, मंत्र और औषधादि उपचारों का

प्रयोग किया ॥३॥ फिर तुरही-भेरी आदि बाजे बज उठे और वीरगण गर्जना करने लगे। उसी समय बाणासुर श्रीकृष्ण को देख कर वेग से उनकी ओर बढा ॥४॥ श्रीकृष्ण भी उसे अपनी ओर आते देख कर गरुड पर चढ कर उसकी ओर लपके ॥ ५ ॥

तस्य शार्ङ्ग विनिर्मुक्तैः शरैरशनिसन्निभैः।
तिलशस्तद्रथं साश्वध्वजपताकिनम् ॥६
चिच्छेद कवचं कायान्मुकुटं च महाप्रभम्।
कार्मुकं च महातेजा हस्तचापं च केशवः ॥७
विव्याध चैनमुरसि नाराचेन स्मयन्निव।
स मर्माभिहत. संख्ये प्रमुमो हाल्पचेतनः ॥८
प्रयुध्येता ध्वजौ तत्र तावन्योन्यमभिद्रुतौ।
युद्धं त्वभूद्वाहनयोरुभयोर्देवदैत्ययोः ॥९
गरुडस्य च संग्रामो मयूरस्य च धीमतः।
पक्षतुण्डप्रहारैस्तु चरणास्यनखैस्तथा ॥१०
अन्यान्यं जघ्नतुः क्रुद्धौ मयूरगरुडावुभौ।
वैनतेयस्ततः क्रुद्धो मयूरं दीप्ततेजसम् ॥११
जग्राह शिरसि क्षिप्रं तुण्डेनाभिपतंस्तदा।
उत्क्षिप्य चैव पक्षाभ्यां निजघान महाबलः ॥१२
पद्भ्यां पार्श्वाभिघाताभ्यां कृत्वा घातान्यनेकशः।
आकृष्य चैनं तरसा विकृष्य च महाबला ॥१३
नि.संज्ञं पातयामास गगनादिव भास्करम्।
मयूरे पतिते तस्मिन्पपाताविबलो भुवि ॥१४

इस प्रकार उन दोनों महान् योद्धाओं में घोर युद्ध होने लगा और श्रीकृष्ण के शार्ङ्ग धनुष द्वारा चलाये गये बाणों से अश्व, ध्वज और पताका युक्त

बाणासुर का रथ धीरे-धीरे जीर्ण होने लगा ॥६॥ उन्होंने दैत्यराज का कवच, मुकुट, धनुष आदि को भंग करके उसके हृदय को बींध डाला, जिसके कारण वह युद्ध चेतना हीन होगया ॥७-८॥ इस प्रकार उन दोनो में घोर युद्ध चल रहा था, तभी उनके ध्वज परस्पर भिड गये। एक ओर बाणासुर का वाहन मयूर और दूसरी ओर श्रीकृष्ण के वाहन गरुड थे। दोनो ही परस्पर पक्ष, पैर, तुण्ड, नख, चोंच आदि के प्रहारो से एक दूसरे को पीडित कर रहे थे तभी गरुड ने सहसा उछल कर मयूर को अपनी चोंच मे दबा और दाहिने पक्ष से उसके मस्तक मे तथा पैरो से पार्श्व मे प्रहार करने लगे ॥९-१२॥ इस प्रकार पिटता पिटता मयूर मूर्च्छित होगया तब गरुड ने उसे उठा कर धरती पर दे मारा ॥१३॥ उस समय चेतना हीन होकर पृथिवी पर गिरता हुआ वह मोर आकाश से गिरते हुए सूर्य के समान प्रतीत होने लगा और उस मयूर के साथ ही बाणासुर भी पृथिवी पर गिर गया ॥ १४ ॥

वाणः समरसे विग्नश्चिन्तयन्कार्यमात्मन ।
मयाऽतिबलमत्तेन न कृत सुहृदा वचः ॥१५
पश्यता देवदैत्याना प्राप्तोऽस्म्यापदमुत्तमाम् ।
त दीनमनस ज्ञात्वा रणे बाणं सुविक्लवम् ॥१६
चिन्तयद्भगवान्रुद्रो बाणरक्षणमातुरः ।
ततो नन्दि महादेव. प्राह गम्भीरया गिरा ॥१७
नन्दिकेश्वर याहि त्वं यतो बाणो रणे स्थितः ।
रथेनानेन दिव्येन सिंहयुक्तेन भास्वता ॥१८
बाणे सयोजमाशु त्वमल युद्धाय चाऽनघ ।
प्रमाथगणमध्येऽहं स्थास्यामि न हि मे मनः ॥१९
यौद्धु वितरते ह्यद्य बाण सरक्ष्य गम्यताम् ।
तथेत्युक्त्वा ततो नन्दी रथेन रथिना वर. ॥२०
यतो वाणस्ततो गत्वा बाणमाह शनैरिदम् ।
दैत्यामु रथमातिष्ठ शीघ्रमेहि महाबल ॥२१

ततोयुध्यस्व कृष्णं वै दानवान्तकरं रणे ।
आरुरोह रथं बाणो महादेवस्य धीमतः ॥२२
आरूढः स तु बाणश्च तं रथं ब्रह्मनिर्मितम् ।
तं स्यन्दनमधिष्ठाय भवस्यामिततेज. ॥२३
प्रादुश्चक्रे महारौद्रमस्त्रं सर्वास्त्रघातनम् ।
दीप्तं ब्रह्मशिरो नाम बाणः क्रुद्धोऽतिवीर्यवान् ॥२४
प्रदीप्ते ब्रह्मशिरसि लोकाः क्षोभमुपागमन् ।
लोकसंरक्षणार्थं वै तत्सृष्टं ब्रह्मयोनिना ॥२५

इस प्रकार गिरा हुआ बाणासुर उद्विग्नता पूर्वक विचार करने लगा कि मैंने बल से गर्वित होकर अपने बन्धुओं के वचनों को नहीं माना, इसी से आज मेरी यह दुर्दशा हुई है। तब भगवान् रुद्र ने बाणासुर को विह्वल हुआ देख कर अपने नन्दी गण से कहा ॥१५-१६-१७॥ नन्दीश्वर! तुम शीघ्र ही मेरे इस सिंह योजित रथ को ले जाकर बाणासुर को दे दो और स्वयं उस युद्ध का सचालन करो। इस रथ के प्राप्त होते ही बाणासुर में शक्ति का विशेष संचार होगा। इसलिये तुम शीघ्रता पूर्वक वहाँ जाकर बाणासुर की रक्षा के कार्य में लग जाओ। यह सुन कर नन्दीश्वर ने तुरन्त ही प्रस्थान किया और बाणासुर को रथ देकर कहा कि—आप इस रथ पर शीघ्र ही बैठिये ॥१८-२१॥ फिर आप दानवों के संहारक श्रीकृष्ण से युद्ध कीजिये। नन्दी की बात पूरी होते ही बाणासुर उस रुद्र-निर्मित रथ पर जा बैठा ॥२२॥ उस रथ पर बैठते ही उसने अत्यन्त क्रोध पूर्वक सभी शस्त्रों को नष्ट करने वाले ब्रह्मशिर नामक बाण को प्रकट किया ॥२३-२४॥ उस प्रज्वलित बाण के उत्पन्न होते ही सब लोक व्याकुल हो उठे, इस बाण को ब्रह्माजी ने पहिले लोक की रक्षा के लिये रचा था ॥२५॥

वपुषा तेज आधत्तं बाणस्य प्रमुखे स्थितम् ।
ज्ञात्वाऽतितेजसा चक्रं कृष्णेनाभ्युदितं रणे ॥२६
अप्रमेय ह्यविहतं रुद्राणी चाब्रवीच्छिवम् ।
अजेयमेतत्त्रैलोक्ये चक्रं कृष्णेन धार्यते ॥२७

वाणं त्रायस्व देवि त्वं यावच्चक्रं न मुञ्चति ।
ततस्त्यक्षवचः श्रुत्वा देवी लम्बामथाब्रवीत् ॥२८
गच्छ हि लम्बे शीघ्रं त्वं वाणसरंक्षणं प्रति ।
ततो योगं समाधाय अदृश्या हिमवत्सुता ॥२९
कृष्णस्यैकस्य तद्रूपं दर्शयत्पार्श्वमागता ।
चक्रोद्यनकरं दृष्ट्वा भगवन्तं रणाजिरे ॥३०
अन्तर्धानमुपागम्यत्यज्य सा वाससी पुनः ।
परित्राणाय बाणस्य विजयाधिष्ठिता ततः ॥३१

तब बाणासुर के सामने जाकर भगवान् ने उसके तेज को आवर्तित किया। तभी भगवान् शंकर ने श्रीकृष्ण को चक्र धारण किये देख कर पार्वतीजी से कहा —हे देवि ! श्रीकृष्ण का वह चक्र सम्पूर्ण त्रैलोक्य से भी जीता नहीं जा सकता। इसलिये जब तक वह चक्र छोड़ा जाय, उसके पूर्व ही तुम वहाँ जाकर बाणासुर की रक्षा करो। शिवजी की बात सुन कर पार्वतीजी ने लम्बादेवी से कहा ॥२६-२७ २८॥ हे लम्बे ! तुम शीघ्र यहाँ से जाकर बाण को बचाओ। यह कह कर पार्वतीजी ने अलक्षित भाव से श्रीकृष्ण के निकट जाकर उन्हें दर्शन दिया और फिर लम्बादेवी वस्त्र परित्याग पूर्वक बाणासुर की रक्षा के लिये श्रीकृष्ण के सामने जाकर खड़ी होगई ॥२९-३०-३१॥

प्रमुखे वासुदेवस्य दिग्वासा. कोटवी स्थिता ।
तां दृष्ट्वा ऽथ पुनः प्राप्ता देवी रुद्रस्य समताम् ॥३२
लम्बां द्वितीयां निघ्नन्तीं कृष्णो वचनमब्रवीत् ।
भूयः सामर्पताम्राक्षो दिग्वस्त्राऽवस्थिता रणे ।३३
बाणसंरक्षणपरा हन्मि बाणं न संशयः ।
एवमुक्ता तु कृष्णेन भूयो देव्यब्रवीदिदम् ॥३४
जाने त्वां सर्वभूतानां स्रष्टारं पुरुषोत्तमम् ।
महाभागं महादेवमनन्तं लीनमव्ययम् ॥३५

पद्मनाभं हृषीकेशं लोकानामादिसंभवम् ।
नार्हसे देव हन्तुं वै बाणमप्रतिमं रणे ॥३६
प्रयच्छ ह्यभयं बाणे जीवपुत्रीत्वमेव च ।
मया दत्तवरो ह्येष भूयश्च परिरक्ष्यते ॥३७
न मे मिथ्या समुद्योगं कर्तुं मर्हसि माधव ।
एवमुक्ते तु वचने देव्या परपुरंजयः ॥३८
कृष्णः प्रभाषते वाक्यं शृणु सत्यं तु भामिनि ।
बाणो बाहुसहस्रेण नर्दते दर्पमाश्रितः ॥३९

उसे नग्न वेश मे सामने खड़ी देख कर श्रीकृष्ण बोले—हे देवि ! तुम अपने वस्त्रों को त्याग कर इस नग्न वेश मे बाणासुर की रक्षा के लिये यहाँ आ गई हो, परन्तु मैंने आज इसे मारने का दृढ निश्चय कर लिया है । यह सुन कर लम्बा ने मीठे स्वर मे कहा—हे पुरुषोत्तम ! आप जगत् के रचने वाले, देवताओं मे महान्, अन्त रहित, अव्यय, पद्मनाभ एव हृषीकेश हैं, इसलिये आपको इस बाणासुर का वध नही करना चाहिये ॥३२-३६॥ हे माधव ! आप इसे अभयदान देकर मुझे जीवित पुत्र वाली बनाइये, क्योंकि मैं इसकी वर दात्री होने के कारण इसे अब भी बचा रही हूँ । इसलिये, आप मेरे वचन को व्यर्थ न करिये । लम्बा-देवी की बात सुन कर श्रीकृष्ण बोले—हे भामिनी ! अब तुम मेरी बात सुनो, तुम्हारे पुत्र को अपनी सहस्र भुजाओं का गर्व है और यह उन्ही के कारण सदैव गरजता रहता है ॥३७-३८-३९॥

एतेषां छेदनं त्वद्य कर्तव्यं नात्र संशयः ।
द्विबाहुना च बाणेन जीवपुत्री भविष्यसि ॥४०
आसुरं दर्पमाश्रित्य न च मां संश्रयिष्यति ।
एवमुक्ते तु वचने कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा ॥४१
प्रोवाच देवी बाणाय देवदत्तो भवेदिति ।
अथ तां कार्तिकेयस्य मातरं गोऽभिभाष्य वै ॥४२

प्रोवाच बाणं समरे वदतां प्रवरः प्रभुः ।
युध्यतां युध्यतां संख्ये भवता कोटवी स्थिता ॥४३
अशक्तानामिव रणे धिग्वाण तव पौरुषम् ।
एवमुक्त्वा ततः कृष्णस्तच्चक्रं परमात्मवान् ॥४४
निमीलिताक्षो व्यसृजद्बाणं प्रति महाबलम् ।
क्षेपणाद्यस्य मुह्यन्ति लोकाः सस्थाणुजङ्गमाः ॥४५

इसलिये मैं उसकी हजार भुजाओं में से केवल दो भुजाएँ शेष रहने दूँगा, इस प्रकार वाणासुर के जीवित रहने से तुम्हारे जीवित पुनिका बनी रहने में कोई व्यतिक्रम नहीं होगा ॥ ४० ॥ ऐसा होने से वह स्पर्धा करने से निवृत्त हो जायगा। श्रीकृष्ण के ऐसे वचन सुन कर देवी बोली—हे प्रभो ! जैसे भी हो वाणासुर जीवित बच सके वैसा ही आप कीजिये। भगवान् बोले 'अच्छा, यही होगा' ॥४१-४२॥ फिर उन्होंने वाणासुर से कहा—हे दैत्यराज ! तुम कायरों की भाँति देवी का सहारा क्यों लेते हो ? तुम्हारे इस प्रकार के अपौरुष युक्त कर्म को धिक्कार है। यह कह कर श्रीकृष्ण ने अपने नेत्रों को बन्द किया और वाणासुर पर चक्र चलाने लगे। परन्तु चक्र चलने की सम्भा... लोक मूच्छित होगये ।४३-४४-४५॥

क्रव्यादानि च भूतानि तृप्तिं यान्ति महामृधे ।
तमप्रतिमकर्माणं समानं सूर्यवर्चसा ॥४६
चक्रमुद्यस्य समरे कोपदीप्तो गदाधरः ।
स मुष्णन्दानवं तेजः समरे स्वेन तेजसा ॥४७
चिच्छेद बाहूंश्चक्रेण श्रीधरः परमौजसा ।
अलातचक्रवत्तूर्णं भ्राम्यमाणं रणाजिरे ॥४८
क्षिप्तं तु वासुदेवेन बाणस्य रणमूर्द्धनि ।
विष्णुचक्रं भ्रमत्याशु शंख्ययाद्रूपं नदृश्यते ॥४९
तस्य बाहुसहस्रस्य पर्यायेण पुनः पुनः ।
बाणस्य छेदनं चक्रे तच्चक्रं रणमूर्द्धनि ५०

कृत्वा द्विबाहुं तं बाणं छिन्नशाखमिव द्रुमम् ।
पुनः कराग्रं कृष्णस्य चक्रं प्राप्तं सुदर्शनम् ॥५१

ऐसे में ही श्रीकृष्ण ने सूर्य के समान तेजोमय अपने चक्र को छोड़ा, जो दूसरे सूर्य के समान अत्यन्त वेगपूर्वक घूमता हुआ अदृश्य रूप से बाणासुर के रथ मार्ग पर अग्रसर हुआ ॥४६-४९॥ तब उसने बाणासुर की एक-एक करके सब भुजाएँ काटते हुए केवल दो भुजाएँ छोड़ दीं। इस प्रकार दैत्यराज को सहस्रबाहु से द्विबाहु करके वह चक्र पुनः भगवान् श्रीकृष्ण की अंगुलियों पर स्थित हो गया ॥ ५०-५१ ॥

कृतकृत्ये तु संप्राप्ते चक्रे दैत्यनिपातने ।
स्रवता तेन कायेन शोणितौघपरिप्लुतः ॥५२
अभवत्पर्वताकारश्छिन्नबाहुर्महासुरः ।
असृङ्मत्तश्च विविधान्नादान्मुञ्चन्घनो यथा ॥५३
तस्य नादेन महता केशवो रिपुसूदनः ।
चक्रं भूयः क्षेप्तुकामो बाणनाशार्थमुद्यतः ।
तमुपेत्य महादेवः कुमारसहितोऽब्रवीत् ॥५४
कृष्ण कृष्ण महाबाहो जाने त्वां पुरुषोत्तमम् ।
मधुकैटभहन्तारं देवदेव सनातनम् ॥५५
लोकानां त्वं गतिर्देव त्वत्प्रसूतमिदं जगत् ।
अजेयस्त्वं त्रिभिर्लोकैः ससुरासुरपन्नगैः ॥५६
तस्मात्संहर दिव्यं त्वमिदं चक्रं समुद्यतम् ।
अनिवार्यमसंहार्यं रणे शत्रुभयंकरम् ॥५७
बाणस्यास्याभयं दत्तं मया केशिनिषूदन ।
तन्मे न स्यान्मृषा वाक्यमतस्त्वां क्षामयाम्यहम्॥५८
जीवता देव बाणोऽयमेतच्चक्रं निवर्तितम् ।
मान्यस्त्वं देवदेवानामसुराणां च सर्वशः ॥५९
समरेऽस्तु गमिष्यामि यत्रार्थं तन्मेऽस्त्वर ।
न तावद्धिमते तस्मान्मामनुज्ञातुमर्हसि ॥६०

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन्! "जब सुदर्शन चक्र अपने कार्य को पूर्ण करके भगवान् श्रीकृष्ण के पास लौट गया, उस समय बाणासुर के देह से रक्त की धाराएँ प्रवाहित हो रही थी ॥५२॥ भुजाओ के कटने पर वह पर्वत के समान दिखाई देने लगा और रुधिर में नहा कर जलधर के समान गर्जन करने लगा ॥५३॥ उसकी गर्जना से क्रोधित हुए श्रीकृष्ण उस पर चक्र छोड़न के लिये फिर तत्पर हुए तभी स्वामि कार्तिकेय के साथ भगवान् शिव स्वयं वहाँ आकर बोले—हे महाबाहो! हे पुरुषोत्तम! हे देवदेव! आप मधु कैटभ के मारने वाले, सनातन पुरुष एवं ससारी जीवो की एक मात्र गति हैं, यह सम्पूर्ण जगत आपसे ही उत्पन्न हुआ है। इसलिये देवता, दैत्य, मनुष्य अथवा अन्यान्य जीवो म से कोई भी आपको परास्त नही कर सकता ॥५४ ५५-५६॥ अतः अब आप अपने इस अनिवारणीय और अमहारणीय चक्र को रोकिये। हे केशव! मैंने बाणासुर को अभय प्रदान किया हुआ है, इसलिये अब आप वही करें जिससे मेरे वचन की रक्षा हो सके ॥५७-५८॥ श्रीकृष्ण ने कहा—हे रुद्रदेव! आप सभी देव दानवो के लिये पूजनीय हैं, इसलिये मैं आपके अनुरोध को स्वीकार कर अपने चक्र को निवारण करता हूँ, जिससे बाणासुर की प्राण रक्षा हो जायगी। ५६॥ हे देवदेव शकर! मेरा निश्चय अपूर्ण ही रह गया। अब मैं यहाँ से जा रहा हूँ और आपको नमस्कार करता हूँ ॥६०॥

॥ उषा अनिरुद्ध विवाह ॥

वासुदेवोऽपि बहुधा नारद पर्यपृच्छत ॥ १
क्वानिरुद्धोऽस्ति भगवन्स यतो नागबन्धनं ॥२
श्रोतुमिच्छामि तत्वेन स्नेहक्लिन्न हि मे मन ।
अनिरुद्धे हृते वीरे क्षुभिता द्वारका पुरी ॥३
शीघ्र त मोक्षयिष्यामो यदर्थं वयमागता ।
अथ त नष्टशत्रु वै द्रष्टुमिच्छामहे वयम् ॥४
स प्रदेशस्तु भगवन्विदितस्तव सुव्रत ।
एवमुक्तस्तु कृष्णेन नारद प्रत्यभाषत ॥५

कन्यापुरे कुमारोऽसौ बद्धो नागैश्च माधव ।
एतस्मिन्नन्तरे शीघ्रं चित्रलेखा ह्युपस्थिता ॥६
वाणस्योत्तमसर्वस्य दैत्येन्द्रस्य महात्मन ।
इदमन्तःपुरं देव प्रविशस्त्र यथासुखम् ॥७
तत प्रविष्टास्ते सर्वे ह्यनिरुद्धस्य मोक्षणे ।
बल सुपर्णो कृष्णस्तु प्रद्युम्नो नारदस्तथा ॥८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! इसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण नारदजी से बारम्बार पूछने लगे कि हे—भगवन् ! नागपाश के बन्धन में पड़ा हुआ अनिरुद्ध कहाँ है ? ॥२॥ मेरा चित्त स्नेह विह्वल होकर अब उसे देखने को उत्सुक है और उधर सब द्वारका वासी भी उसके बिना व्याकुल हो रहे हैं ॥३॥ उसे छुड़ाने के लिये ही हमारा यहाँ आगमन हुआ है इसलिये मैं उसे अब शीघ्र ही बन्धन से मुक्त करने को आतुर हूँ ॥४॥ हे मुने ! आप उस स्थान को जानते हैं। यह सुन कर देवर्षि नारद ने उनसे कहा—हे माधव ! नागपाश में बँधे हुए अनिरुद्ध इस समय बाणासुर की कन्या के अन्तःपुर में बन्दी है। नारदजी अभी इतना ही कह पाये थे, तभी उषा की सहेली चित्रलेखा वहाँ आगई ॥६॥ उसने कहा—हे देव ! हमारे दैत्यराज महात्मा बाणासुर का यह अन्तःपुर है, आप इसमें सुखपूर्वक प्रवेश करें ॥७॥ यह सुन कर बलरामजी गरुड़ प्रद्युम्न और नारदजी के सहित श्रीकृष्ण अनिरुद्ध को बन्धन से छुड़ाने के लिये उस अन्तःपुर में पहुँचे ॥ ८ ॥

ततो दृष्ट्वैव गरुडं येऽनिरुद्धशरीरगा ।
शररूपा महासर्पा वेष्टयित्वा तनुं स्थिता ॥९
ते सर्वे सहसा देहात्तस्य निःसृत्य भोगिन ।
क्षितिं समभिवर्तित्वा प्रकृत्यावस्थिता धरा ॥१०
दृष्ट स्पृष्टश्च कृष्णेन सोऽनिरुद्धो महायशा ।
स्थित प्रीतमना भूत्वा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥११
देवदेव सदा युद्धे जेता त्वमसि केशव ।
न शक्त प्रमुखे स्थातुं साक्षादपि शतक्रतु ॥१२

ततो महाबलं देव बलभद्रं यशस्विनम् ।
अभिवादयते हृष्टः सोऽनिरुद्धो महामनाः ॥१३
माधव च महात्मानमभिवाद्य कृताञ्जलि. ।
खगोत्तमं महावीर्यं सुपर्णमभिवाद्य च ॥१४
ततो मकरकेतुं च चित्रबाणधर प्रभुम् ।
पितरं सोऽभ्युपागम्य प्रद्युम्नमभ्यवादयत् ॥१५

उनके पहुँचते ही जिन बड़े-बड़े सर्पो ने अनिरुद्ध को बाँध रखा था, वे गरुड के भय से तुरन्त ही अनिरुद्ध को छोड कर भाग गये ॥९-१०॥ तब अनिरुद्ध को देख कर श्रीकृष्ण उनके पास पहुँचे और उन्होंने स्नेह से उनके देह पर हाथ फेरा। उस समय अनिरुद्ध ने हाथ जोड कर भगवान् से कहा—हे देवदेव! आप तो सभी युद्धो सदैव विजयी रहे हैं आपके सामने युद्ध करने मे इन्द्र भी समर्थ नही हैं ॥११-१२॥ फिर अनिरुद्ध ने बलरामजी को प्रणाम किया और भगवान् श्रीकृष्ण और गरुड को भी प्रणाम करके अपने पिता प्रद्युम्न के चरणो मे वन्दना की। १३-१५॥

सखीगणवृता चैव सा चोषा भवने स्थिता ।
बल चातिबल चैव वासुदेव सुदुर्जयम् ॥१६
असख्यातगति च व सुपर्ण मभिवाद्य च।
पुष्पबाणधरं चैव लज्जमानाऽभ्यवादयत् ॥१७
तत शक्रस्य वचनान्नारद परमद्युति ।
वासुदेवसमीप स प्रहसन्पुनरागत ॥१८
वर्द्धापयति त देव गोविन्द शत्रुसूदनम् ।
दिष्ट्या वर्द्धसि गोविन्द अनिरुद्धसमागमात् ॥१९
ततोऽनिरुद्धसहिता नारदं प्रणता स्थिता ।
आशीर्भिर्वर्द्धयित्वा च देवर्षि कृष्णमब्रवीत् ॥२०
अनिरुद्धस्य वीर्याढ्यो विवाह. क्रियता विभो ।
जाज्वल्यमाणिकादृष्ट श्रद्धा हि मम जायते ॥२१

तत. प्रहसिताः सर्वे नारदस्य वचःश्रवात् ।
कृष्णः प्रोवाच भगवन्क्रियतामाशु मा चिरम् ॥२२

अनिरुद्ध के पीछे-पीछे उषा भी अपनी सखियों के साथ उपस्थित हुई और उसने भी बलराम, कृष्ण, प्रद्युम्न और गरुड को प्रणाम किया ॥१६-१७॥ फिर इन्द्र के कहने से नारदजी श्रीकृष्ण के पास जाकर हँसते हुए बोले— हे मधुसूदन ! आज आपको अनिरुद्ध मिल गये हैं, इसलिये यह दिन परम सौभाग्य का है ॥१८-१९॥ फिर भगवान् श्रीकृष्ण ने अनिरुद्ध आदि के सहित आगे बढ कर नारदजी के चरण छुए और प्रणाम किया। तब नारदजी ने सब को आशीर्वाद देकर श्रीकृष्ण से कहा ॥२०॥ हे प्रभो ! आज यहीं उषा-अनिरुद्ध का विवाह कार्य सम्पन्न होना उचित है, क्योंकि मेरी इसके लिये बडी इच्छा है ॥२१॥ नारदजी के वचन सुन कर सभी उपस्थित जन हर्षित हुए और श्रीकृष्ण कहने लगे—हे भगवन् ! अब विलम्ब न करके, इस शुभ कार्य को आप ही सम्पन्न करें ॥२२॥

एतस्मिन्नन्तरे तात कुम्भाण्ड. समुपस्थितः ।
वैवाहिकास्तु सभागान्गृह्य कृष्ण नमस्य तु ॥२३
कृष्ण कृष्ण महाबाहो भव त्वमभयप्रदः ।
शरणागतोऽस्मि देवेश प्रसीद पोऽञ्जलिस्तव ॥२४
नारदस्य वच श्रुत्या सर्वं प्रागेव चाच्युत. ।
अभय यच्छते तस्मै कुम्भाण्डाय महात्मने ॥२५
कुम्भाण्ड मन्त्रिणा श्रेष्ठ प्रीतोऽस्मि तव सुव्रत ।
सुकृत ते विजानामि राष्ट्रिकोऽस्तु भवानिह ।
सज्ञातिपक्षः सुमुखी निवृत्तऽस्तु भवानिह ॥२६
राज्यं च ते मया दत्तं चिर जीव ममाश्रयात् ।
एवं दत्वा राज्यमस्मै कुम्भाण्डाय महात्मने ॥२७
विवाहमकरोत्तस्यानिरुद्धस्य जनार्दनः ।
ततस्तु भगवान्वह्निस्तत्र स्वयमुपस्थित. ॥२८

इस प्रकार की बातें हो ही रही थी, तभी विवाह की सब सामग्रियो के सहित कुम्भाण्ड ने वहाँ आकर भगवान् श्रीकृष्ण को प्रणाम किया और हाथ जोड कर कहने लगा—हे महाबाहो ! आप मेरे लिये अभय दीजिये ! हे प्रभो ! मैं आपकी शरण मे उपस्थित हुआ हूँ ।।२४।। हे राजन् ! भगवान ने नारदजी के मुख से कुम्भाण्ड का सब वृत्तान्त पहिले ही सुन लिया था और तभी वे उसे अभय देने का विचार स्थिर कर चुके थे ।।२५।। इसलिये उन्होने उससे कहा—हे कुम्भाण्ड ! तुम दैत्यराज के सभी मन्त्रियो मे श्रेष्ठ हो, नारदजी के मुख से मैं तुम्हारे विषय मे पहिले ही सुन चुका हूँ इसलिये भी तुम पर प्रसन्न हूँ । अब तुम अपने बन्धु-बान्धवो सहित शोणितपुर मे रह कर यहाँ का अधिपत्य करो ।। २६ ।। इस पुरी का राज्य मैंने तुम्हे पहिले से ही देने का निश्चय कर लिया था । इस प्रकार कुम्भाण्ड को राज्य प्रदान कर भगवान् ने उषा-अनिरुद्ध का विवाह कराया, उस समय अग्नि देव साक्षात् रूप में वहाँ आगये थे ।।२७-२८।।

स विवाहोऽद्धस्य नक्षत्रे च शुभेऽभवत् ।
ततोऽप्सरोगणश्चैव कौतुकं कर्तुमुद्यतः ।।२६
स्नातस्त्वलकृतस्तत्र सोऽनिरुद्ध स्वभार्यया ।
तत. स्निग्धैः शुभैर्वाद्यैर्गन्धर्वाश्च जगुस्तदा ।।३०
नृत्यन्त्यप्सरसश्चैव विवाहमुपाशोभयन् ।
ततो निर्वर्त्तयित्वा तु विवाहं शत्रुसूदन. ।।३१

फिर शुभ नक्षत्र मे उनका विवाह हुआ । उस समय आमोद प्रमोद के लिये अनेको अप्सराएँ वहाँ आगईं ।।२६।। उषा, अनिरुद्ध दोनो ने स्नान कर श्रेष्ठ वस्त्राभूषण पहिने, तब गन्धर्व और विद्याधर सुमधुर स्वर मे गाने-बजाने लगे ।।३०।। अप्सराएँ नाचने लगी । इस प्रकार अत्यन्त आनन्द पूर्वक भगवान् श्रीकृष्ण ने उषा-अनिरुद्ध का विवाह सस्कार सम्पन्न करा लिया ।।३१।।

।। श्रीकृष्ण और अनिरुद्ध का द्वारका-गमन ।।

अनिरुद्धस्य सुप्रज्ञः सर्वैर्देवगणैर्वृत. ।
आमन्त्र्य वरदं तत्र रुद्रं देवनमस्कृतम् ।।१

चकार गमने बुद्धि कृष्ण परपुरजय ।
द्वारकाभिमुख कृष्ण ज्ञात्वा शत्रुनिपूदनम् ॥२
कुम्भाण्डो वचन प्राह प्राञ्जलिर्मधुसूदनम् ।
बाणस्य गावस्तिष्ठन्ति हस्ते तु वरुणस्य वै ॥३
यासाममृतकल्प वै क्षीर क्षरति माधव ।
तत् पीत्वाऽतिबलश्चैव नरो भवति दुर्जय ॥४
कुम्भाण्डेनैवमाख्याते हरि प्रीतमनास्तदा ।
गमनाय मति चक्रे गन्तव्यमिति निश्चयम् ॥५
जगाम ब्रह्मलोक स वृत स्वभवनालये ॥६
इन्द्रो मरुद्गणयुतो द्वारकाभिमुखो ययौ ।
यत कृष्णस्तत सर्वे गच्छन्ति जयकाक्षिण ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! अनिरुद्ध का विवाह कार्य सम्पन्न होने पर सब देवताओ के सहित श्रीकृष्ण ने भगवान् रुद्रदेव को नमस्कार कर द्वारकापुरी जाने का विचार किया । यह देख कर कुम्भाण्ड ने हाथ जोड कर उनसे कहा—हे मधुसूदन ! मुझे आपसे यह निवेदन करना है कि बाणासुर की गौओ पर वरुण ने अधिकार कर रखा है । उनके थनो से अमृत के समान दूध निकलता है, जिसको पान करने वाला पुरुष महाबली और अजेय हो जाता है ॥ १ ४ ॥ कुम्भाण्ड की बात सुन कर श्रीकृष्ण ने वरुण लोक के लिये प्रस्थान करने का विचार स्थिर किया ॥ ५ ॥ इसके पश्चात् ब्रह्माजी ने श्रीकृष्ण की स्तुति की और अपने लोक को चले गये ॥६॥ मरुद्गण आदि देवताओ के साथ इन्द्र तथा और भी कृष्णपक्ष के जो पुरुष शोणितपुर आये थे, वे सभी द्वारका की ओर चल दिये ॥७॥

वाहनेन मयूरेण सखिभि परिवारिता ।
द्वारकाभिमुखी ह्युषा देव्या प्रस्थापिता ययौ ।
ततो बलश्च कृष्णश्च प्रद्युम्नश्च महाबल ॥८

आरुढवन्तो गरुडमनिरुद्धश्च वीर्यवान् ।
प्रस्थितश्च स तेजस्वी गरुडः पततां वरः ।।९
उन्मूलयंस्तरुगणान्कम्पयश्चापि मेदिनीम् ।
आकुलाश्च दिशः सर्वा रेणुध्वस्तमिवाम्बरम् ।।१०
गरुडे संप्रयातेऽभून्मन्दरश्मिर्दिवाकरः ।
ततस्ते दीर्घमध्वानं प्रययुः पुरुषर्षभाः ।।११
आरुह्य गरुडं सर्वे जित्वा बाणं महौजसम् ।
ततोऽम्बरतलस्थास्ते वारुणी दिशमास्थिताः ।।१२
अपश्यन्त महात्मानो गावो दिव्यपय प्रदाः ।
वेलावनविचारिण्यो नानावर्णाः सहस्रशः ।।१३
अवज्ञाय तदा रूपं कुम्भाण्डवचनाश्रयात् ।
कृष्णः प्रहरतां श्रेष्ठस्तत्त्ववतोऽर्थविशारद. ।।१४
निशम्य बाणगावस्तु तासु चक्रे मनस्तदा ।
आस्थितो गरुडं प्राह स तु लोकादिरव्ययः ।।१५

उषा को उसकी सब सखियो के सहित मयूर वाहन पर चढा कर द्वारका के लिये विदा किया गया, फिर बलराम, कृष्ण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध गरुड पर आरूढ होकर चल दिये । उस समय गरुड के पखो के वेग से वृक्ष उखडने लगे, पृथिवी कपित होने लगी, दिशाएँ व्याकुल हुई तथा आकाश मे धूल ही धूल छागई ।।८-१०।। गरुड के चलने पर सूर्य रश्मियाँ निष्प्रभ हो गईं । इस प्रकार बाणासुर विजेता भगवान् गरुड के द्वारा आकाश मे पहुँच कर उत्तर की ओर बढे ।।११-१२।। मार्ग मे ही उन्हे विभिन्न वर्णों की हजारो गौएँ समुद्र तट पर चरती हुई दिखाई पडी ।।१३।। श्रीकृष्ण ने कुम्भाण्ड से उन गौओ का वृत्तान्त सुन कर ही उन्हे प्राप्त करने का निश्चय कर लिया था । इसलिये उन्हे देखते ही गरुड से श्रीकृष्ण बोले ।।१४-१५।।

वैनतेय प्रयाहि त्वं यत्र बाणस्य गोधनम् ।
यासां पीत्वा किल क्षीरममृतत्वमवाप्नुयात् ।।१६

आह मा सत्यभामा च वाणगावो ममानय ।
यासां पीत्वा किल क्षीरं न जीर्यन्ति महासुरा ॥१७
विज्वराश्च जरास्त्यक्त्वा भवन्ति किल जन्तव ।
ता आनयस्व भद्र ते यदि धर्मो न लुप्यते ॥१८
अथवा कार्यलोपो वै मैव तासु मन कृथा ।
इति मामब्रवीत्सत्या ताश्चैता विदिता मम ॥१९
दृश्यन्ते गाव एतास्ता दृष्ट्वा मां वरुणालयम् ।
विशन्ति सहसा सर्वा कार्यमत्र विधीयताम् ॥२०
इत्युक्त्वा चैव गरुड पक्षवातेन सागरम् ।
सहसा क्षोभयित्वा च विवेश वरुणालयम् ॥२१
दृष्ट्वा जवन गरुड प्राप्त वै वरुणालयम् ।
वारुणाश्च गणा सर्वे विभ्रान्ता प्राचरंस्तदा ॥२२
ततस्तु वारुण सैन्यमभिज्ञातु सुदुर्ज्जयम् ।
प्रमुखे वासुदेवस्य नानाप्रहरणोद्यतम् ।
तद्युद्धमभवद्घोर वारुणै पन्नगारिणा ॥२३

श्रीकृष्ण बोले—हे वैनतेय ! वह देखो, जिनके दुग्धपान से ही अमरता मिल सकती है वे वाणासुर की गौएँ यही है । सत्यभामा ने कहा था कि बाणासुर की कुछ गौओ के दूध मे यह विशेषता है कि उसे पीकर देवगण अजर, अमर और रोग मुक्त हो जाते हैं यदि किसी प्रकार धर्म नष्ट न होता हो तो उन्हे लेते आइये । इसलिये तुम उन गौओ के पास जाओ ॥१६ १८॥ इस पर गरुड ने कहा—हे प्रभो ! मैने उन गौओ को देख लिया है । परन्तु यदि वे गौएँ मुझे देख कर वरुणालय म घुस गई तब क्या कर्त्तव्य होगा ? ॥२०॥ यह कहते हुए गरुड अपने पख की वायु से समुद्र को क्षोभित करते हुए उसमे प्रविष्ट हो गये ॥२१॥ उन्हे वेग पूर्वक आया देख कर वरुण के गण विचलित हो उठे और शस्त्रास्त्र ग्रहण करके भगवान् वासुदेव के सामने आगये । फिर उनका गरुड से घोर सग्राम होने लगा ॥२२ २३॥

तेषामापतता सख्ये वारुणाना सहस्रश ।
भग्न बलमनाधृष्य केशवेन महात्मना ॥२४
ततस्ते प्रद्रुता यान्ति तमेव वरुणालयम् ।
षष्टि रथसहस्राणि षष्टि रथशतानि च ॥२५
वारुणानि च युद्धानि दीप्तशस्त्राणि सयुगे ।
तद्बल बलिभि शूरैर्बलदेवजनार्दनै ॥२६
प्रद्युम्नेनानिरुद्धेन गरुडेन च सर्वश ।
शरौघैर्विविधैस्तीक्ष्णैर्वध्यमान समन्तत ॥२७
ततो भग्न बल दृष्ट्वा कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा ।
वरुणस्त्वथ सक्रुद्धो निर्ययौ यत्र केशव ॥२८
ऋषिभिर्देवगन्धर्वैस्तथैवाप्सरसा गणै ।
सस्तूयमानो बहुधा वरुण प्रत्यदृश्यत ॥२९
छत्रेण ध्रियमाणेन पाण्डुरेण वपुष्मता ।
सलिलस्राविणा श्रेष्ठ चापमुद्यम्य धिष्ठित ॥३०

उस समय अकेले श्रीकृष्ण ने ही वरुण के हजारो सैनिको को मार भगाया। तभी वरुण के साठ हजार रथी वीर उतने ही रथो पर चढ कर वहाँ आ ये। उन सब के पास विभिन्न प्रकार के चम-चमाते हुए शस्त्रास्त्र थे। उस सेना को रण मे सामना करती हुई देख कर बलराम, कृष्ण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और गरुड ने अपने तीक्ष्ण बाणो की वर्षा से मार कर भगा दिये। उनकी ऐसी दशा देख कर वरुण को अत्यन्त क्रोध हुआ और वे तुरन्त ही श्रीकृष्ण के सामने पहुँचे ॥२४-२८॥ उस समय ऋषि देवता, गधर्व, अप्सरा आदि उनके पीछे पीछे स्तुति करते हुए चल रहे थे ॥२९॥ उनके मस्तक पर जल धारमय श्वेत छत्र और हाथो मे श्रेष्ठ धनुष सुशोभित था ॥३०॥

अपापतिरतिक्रुद्ध पुत्रपौत्रबलान्वित ।
आह्वयन्निव युद्धाय विस्फारितमहाधनु ॥३१

स तु प्राध्मापयच्छंखं वरुणः समधावत ।
हरिं हर इव क्रुद्धो बाणजालैः समावृणोत् ॥३२
ततः प्रध्माय जलजं पाञ्चजन्यं जनार्दनः ।
बाणजालैर्दिशः सर्वास्ततश्चक्रे महाबलः ॥३३
ततः शरौघैर्विमलैर्वरुणः पीडितो रणे ।
स्मयन्निव ततः कृष्णं वरुणः प्रत्ययुध्यत ॥३४
ततोऽस्त्रं वैष्णवं घोरमभिमन्त्र्याहवे स्थितः ।
वासुदेवोऽब्रवीद्वाक्यं प्रमुखे तस्य धीमतः ॥३५
इदमस्त्रं महाघोरं वैष्णवं शत्रुसूदनम् ।
मयोद्यतं वधार्थं ते तिष्ठेदानीं स्थिरो भव ॥३६
ततोऽस्त्रं वरुणो देवो ह्यस्त्रं वैष्णवमुद्यतः ।
वारुणास्त्रेण स योज्य विननाद महाबलः ॥३७

इस प्रकार अपने पुत्र-पौत्रादि के सहित आये हुए वरुण ने धनुष की टंकोर कर अपने युद्धोन्मुख होने की सूचना दी और फिर अपने शंख को बजा कर श्रीकृष्ण की ओर वेगपूर्वक झपटे तथा रुद्रदेव के समान भीषण बाण-वृष्टि करके उन्होंने श्रीकृष्ण को सब ओर से ढक दिया ॥३१-३२॥ तब श्रीकृष्ण ने भी अपने पाञ्चजन्य शंख की ध्वनि करके जो विकराल बाण-वर्षा की उससे सभी दिशाएँ त्रस्त हो गईं ॥३३॥ श्रीकृष्ण के उन बाणों से अत्यन्त व्याकुल होते हुए भी वरुण उनसे निरन्तर युद्ध कर रहे थे ॥३४॥ तभी भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने वैष्णवास्त्र को अभिमंत्रित करके वरुण से कहा—हे वरुण ! अब तुम्हें नष्ट करने के लिये मुझे इस वैष्णवास्त्र का प्रयोग करना पड़ेगा । इसलिये, अब तुम सावधानी से युद्ध करो ॥ ३५-३६ ॥ यह सुन कर उस वैष्णवास्त्र को नष्ट करने के विचार से वरुण ने सिंहनाद करके अपने वारुणास्त्र का संधान किया ॥३७॥

तस्यास्त्रे वितता ह्यापो वरुणस्य विनिःसृताः ।
वैष्णवास्त्रस्य शमने वर्त्तन्ते समितिंजय ॥३८
आपस्तु वारुणास्त्रस्य क्षिप्ताः क्षिप्ता ज्वलन्ति वै ।
दह्यन्ते वारुणास्त्रे ततोऽस्त्रे ज्वलिते पुनः ॥३९

वैष्णवे तु महावीर्ये दिशो भीता विदुद्रुवुः ।
तत तज्ज्वलितं दृष्ट्वा वरुणः कृष्णमब्रवीत् ॥४०
स्मर स्वप्रकृतिं पूर्वामव्यक्तां व्यक्तलक्षणाम् ।
तमो जहि महाभाग तमसा मुह्यसे कथम् ॥४१
सत्त्वस्थो नित्यमासीस्त्वं योगीश्वर महामते ।
पञ्चभूताश्रयान्दोषानहंकारं च वर्जय ॥४२
या ते वैष्णवी मूर्तिस्तस्या ज्येष्ठो ह्यहं तव ।
ज्येष्ठभावेन मान्यं तु किं मां त्वं दग्धुमिच्छसि ॥४३
नाग्निर्विक्रमते ह्यग्नौ त्यज कोपं युधां वर ।
त्वयि न प्रभविष्यामि जगतः प्रभवो ह्यसि ॥४४
पूर्वं हि या त्वया सृष्टा प्रकृतिर्विकृतात्मिका ।
धर्मिणी बीजभावेन पूर्वं धर्मं समाश्रिता ॥४५

उस समय वारुणास्त्र से भीषण जल धाराएँ निकल कर वैष्णवास्त्र को निवारण करने के प्रयत्न में लगी, परन्तु उससे ज्यों-ज्यों जल निकल कर वैष्णवास्त्र पर पड़ता था, त्यों-त्यों वह और भी धधकता जारहा था । इस प्रकार वारुणास्त्र की जल धाराओं को क्षीण करके वैष्णवास्त्र भयंकर रूप में प्रज्वलित हो उठा, जिसके कारण वरुण की सेना भस्म होने लगी ॥३८-३९॥ उस समय सभी दिशाएँ भयभीत हो गई और घोर विप्लव की स्थिति उत्पन्न होगई, यह देख कर वरुण ने कहा—हे महाभाग ! आप इस प्रकार तामस क्यों कर रहे हैं ? आप अपने पूर्व स्वरूप का स्मरण करके इस तमोगुण का परित्याग करिये ॥४०-४१॥ योगेश्वर ! अब आप पंचभूतों के आश्रित अहंकारादि का त्याग करके सत्त्वगुण को धारण करिये ॥४२॥ आपके दृश्यमान वैष्णव स्वरूप का मैं ज्येष्ठ स्वरूप हूँ, फिर आप मुझे भस्म करने का प्रयत्न क्यों कर रहे हैं ? ॥४३॥ अग्नि अपने पराक्रम को अग्नि पर ही कभी प्रकट नहीं करता, आप इस विश्व के कारण रूप हैं, आप पर मैं तो क्या, कोई भी प्रभुत्व स्थापित करने में समर्थ नहीं है । इसलिये, अब आप अपने क्रोध को छोड़ दीजिये ॥४४॥ पहिले आपने

जिस कार्यभूत माया की रचना की थी, वही माया इस समय इस विश्व की कारणरूप होगई है ॥४५॥

आग्नेयं वैष्णवं सौम्यं प्रकृत्यै वेदमादितः ।
त्वया सृष्टं जगदिदं स कथं मयि वर्तसे ॥४६
अजेयः शाश्वतो देहः स्वयंभूर्तभावनः ।
अक्षरं च क्षरं चैवं भावाभावौ महाद्युते ॥४७
रक्ष मां रक्षणीयोऽहं त्वयाऽनघ नमोऽस्तु ते ।
आदिकर्त्ताऽसि लोकानां त्वयैतद्वहुलीकृतम् ॥४८
विक्रीडसि महादेव बालः क्रीडनकैरिव ।
न ह्यहं प्रकृतिद्वेषी नाहं प्रकृतिदूषकः ॥४९
प्रकृतिर्या विकारेषु वर्त्तते पुरुषर्षभ ।
तस्या विकारशमने वर्त्तसे त्वं महाद्युते ॥५०
विकारो वा विकाराणां विकाराय न तेऽनघ ।
तानधर्मविदो मन्दान्भयान्विकुरुते सदा ॥५१
इदं प्रकृतिजं दोषैस्तमसा मुह्यते यदा ।
रजसा वापि संस्पृष्टा तदा मोहः प्रवर्तते ॥५२
परावरज्ञः सर्वज्ञ ऐश्वर्यविधिमास्थितः ।
किं मोहयसि नः सर्वान्प्रजापतिरिव स्वयम् ॥५३

आपने ही आग्नेय, वैष्णव और सौम्य प्रकृति-युक्त जगत् को रचा है फिर आप ही अपनी सृष्टि के सामने ऐसे भयंकर अस्त्रों का प्रदर्शन करेंगे तो यह जीवित किस प्रकार रह सकती है ? ॥४६॥ आप अजेय, शाश्वत, स्वयंभू, भूतभावन, अक्षर, क्षर एवं सर्वत्र स्थित हैं ॥४७॥ हे प्रभो ! मैं तो आपके द्वारा रक्षा किये जाने के योग्य हूँ। हे लोकों के कर्त्ता जगदीश्वर ! आपको नमस्कार है। आप एक से अनेक होने की सामर्थ्य वाले हैं ॥४८॥ जैसे बालक खिलौनों से [illegible] खेलते हैं, वैसे ही आप इस विश्व रूप खिलौने से खेलते हैं। परन्तु, आपके [illegible] खेल का प्रयोजन समझ में नहीं आता ॥४९॥ जब प्रकृति में कोई विकार

उत्पन्न हो जाता है, तब उस विकार को दूर करने के लिये ही आप अवतीर्ण होते हैं ॥५०॥ आप मे क्रोधादि विकारो की प्रवृत्ति केवल दुष्टो और अधर्मिको के भले प्रकार मर्दन करने के निमित्त ही होती है ॥५१॥ इस विश्व के रजोगुण और तमोगुण से व्याप्त हो जाने पर ही मोह को अवतारणा होती है ॥५२॥ हे सर्वज्ञ ! आप ऐश्वर्य म स्थित होकर प्रजापति के समान हम सब को मोहित क्यों कर रहे हैं ? ॥५३॥

वरुणेनैवमुक्तस्तु कृष्णो लोकपरायण ।
भावज्ञ सर्ववृष्णीरस्तत प्रीतमना ह्यभूत् ॥५४
इत्येवमुक्त कृष्णस्तु प्रहसन्वाक्यमब्रवीत् ।
गाव प्रयच्छ मे वीर शान्त्यर्थं भीमविक्रम ॥५५

इत्येवमुक्त कृष्णेन वाक्य वाक्यविशारद ।
वरुणो ह्यब्रवीद्भूय शृणु मे मधुसूदन ॥५६
बाणेन सार्धं समयो मया देव कृत पुरा ।
कथ च समय कृत्वा कुर्या विफलमन्यथा ॥५७
त्वमेव वेद सर्वस्य यथा समयभेदक ।
चारित्र दुष्यते तेन न च सद्भि प्रशस्यते ॥५८
धर्मभागैर्नरो नित्य वर्ज्यते मधुसूदन ।
न च लोकानवाप्नोति पाप समयभेदक ॥५९

प्रसीद धर्मलोपश्च मा भून्मे मधुसूदन ।
न मा समयभेदेन योक्तुमर्हसि माधव ॥६०
जीवन्नाह प्रदास्यामि गावो वै वृषभेक्षण ।
हत्वा नयस्व मा गाव एष मे समय पुरा ॥६१
एतच्च मे समाख्यात समय मधुसूदन ।
सत्यमेव महाबाहो न मिथ्या तु सुरेश्वर ॥६२
यदि वाहमनुग्राह्यो रक्ष मा मधुसूदन ।
अथ वा गोषु निर्बन्धो हत्वा नय महाभु

वरुण के वचन सुन कर लोक परायण भगवान् श्रीकृष्ण ने प्रसन्न होकर कहा—हे भीम विक्रम वरुण ! इस वर्तमान क्लेश की शान्ति के लिये बाणासुर की गौओं को लाकर हमें दे दो ॥ ५४-५५ ॥ इस पर वाणी विशारद वरुण ने उनसे कहा—हे मधुसूदन ! इससे पहिले ही बाणासुर के और मेरे मध्य जो सन्धि हुई थी, उसका उल्लंघन करने में मैं असमर्थ हूँ ॥५७॥ क्योंकि नियम भंग करने वाला पुरुष लोक में निन्दित और श्रेष्ठ लोकों का अधिकारी नहीं होता ॥५८-५९॥ इसलिये आप मुझ पर प्रसन्न होकर ऐसा उपाय करिये जिससे मुझे वचन भंग का दोष न लगे ॥ ६० ॥ अपने प्राण के रहते हुए उन गौओं को मैं कदापि नहीं दे सकता, यदि आप उन्हें ले जाना चाहते हैं तो पहिले मुझे नष्ट कर दीजिये ॥ ६१ ॥ इस प्रकार जो यथार्थ बात थी वह आपसे कह चुका हूँ । अब आप चाहें तो मेरी रक्षा करें अथवा मेरा वध करके गौओं को प्राप्त कर लें ॥ ६२-६३ ॥

वरुणेनैवमुक्तस्तु यदूनां वंशवर्द्धनः ।
अभेद्यं समयं मत्वा न्यस्तवादो गवां प्रति ॥६४
स प्रहस्य ततो वाक्यं व्याजहारार्थकोविदः ।
तस्मान्मुक्तोऽसि यच्चैव बाणेन समयः कृतः ॥६५
प्रश्रितैर्मधुरैर्वाक्यैस्तत्त्वार्थमधुभाषितैः ।
कथं पापं करिष्यामि वरुण त्वय्यहं प्रभो ।
गच्छ मुक्तोऽसि वरुण सत्यसंधोऽसि नो भवान् ॥६६
त्वत्प्रियार्थं मया मुक्ता बाणगावो न संशयः ।
ततस्तूर्यनिनादैश्च भेरीणां च महास्वनैः ॥६७
अर्घमादाय वरुणः केशवं प्रत्यपूजयत् ।
केशवोऽर्घं तदा गृह्य वरुणाद्यदुनन्दनः ॥६८
बलं चापूजयद्देवं कुशलीव समाहितः ।
वरुणायाभयं दत्त्वा वासुदेवः प्रतापवान् ॥६९
द्वारकां प्रस्थितः शौरिः शचीपतिसहायवान् ।
तत्र देवाः समस्ताः ससाध्याः सिद्धचारणाः ॥७०

गन्धर्वाप्सरसश्चैव किन्नराश्चान्तरिक्षगा.।
अनुगच्छन्ति मृतेशं सर्वभूतादिमव्ययम् ॥७१

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन्! वरुण की बात सुन कर भगवान् श्रीकृष्ण ने उनका वचन भग न होने देना ही उचित समझा और अन्त मे उन्होंने कहा—हे वरुण! यदि आपकी बाणासुर से इस प्रकार की सधि थी तो मैं उसे नही तोडूँगा ॥ ६४-६६॥ आपकी रक्षा के लिये बाणासुर की गोएँ मैंने छोड दी, अब आप अपने इच्छित स्थान को जाने मे स्वतत्र है। यह सुन कर वरुण ने प्रसन्न होकर तुरही और भेरी की ध्वनि के साथ भगवान को अर्घ्य भेंट किया और उनका पूजन किया। इस प्रकार वरुण को अभयदान देकर इन्द्रादि के सहित द्वारका जा पहुँचे। उस समय सभी देवता, मरुद्गण, साध्य गधर्व, अप्सरा, किन्नर तथा आकाश मे विचरण करने वाले सब प्राणी उनके पीछे पीछे चल रहे थे ॥ ६७ ७१ ॥

आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ यक्षराक्षसा ।
विद्याधरगणश्चैव ये चान्ये सिद्धचारण ।
गच्छन्तमनुगच्छन्ति यशसा विजयेन च ॥७२
नारदश्च महाभाग प्रस्थितो द्वारका प्रति ।
तुष्टो बाणजय दृष्ट्वा वरुण च कलिप्रिय ॥७३
कैलासशिखरप्रख्ये प्रासादे मन्दरे शुभे ।
दूरान्निशाम्य मधुहा द्वारका द्वारमालिनीम् ॥७४
पाञ्चजन्यस्य निर्घोष चक्रे चक्रगदाधर ।
सज्ञा प्रयच्छते देवो द्वारकापुरवासिनाम् ॥७५
देवानुयाननिर्घोष पाञ्चजन्यस्य नि स्वनम् ।
श्रुत्वा द्वारवती सर्वे प्रहर्षमतुल गता ॥७६
पूर्णकुम्भैश्च लाजैश्च बहुविन्स्तविस्तरै ।
द्वारोपशोभिता कृत्वा सर्वा द्वारवती पुरीम् ७७

आदित्य वसु रुद्र,अश्विद्वय, यक्ष, राक्षस सिद्ध,चारण आदि के द्वारा श्रीकृष्ण

की विरुदावलि गाई जा रही थी ॥७२॥ देवर्षि नारद भी बाणासुर को जीतने और वरुण पर उपकार करने वाली लीलाओ को देखकर प्रसन्न होते हुए उनके साथ-साथ चल रहे थे ॥ ७३ ॥ कैलाश शिखर के समान ऊँची अट्टालिकाओं वाली द्वारकापुरी को दूर से देखकर भगवान ने अपने पाञ्चजन्य शंख की ध्वनि की ॥७४-७५॥ उस ध्वनि को सुन कर भगवान के द्वारका आगमन की सूचना पाकर द्वारकावासी अत्यंत हर्षित हुए ॥ ७६ ॥ सम्पूर्ण नगरी कलश ध्वज और विविध पुष्पमालाओ से सुसज्जित की गई थी, इस प्रकार प्रत्येक द्वार पर अनेको माग लिक पदार्थ शोभा दे रहे थे ॥ ७७ ॥

सुश्लिष्टरथ्यां सश्रीकां बहुरत्नोपशोभिताम् ।
विप्राश्चार्घं समादाय यथैव कुलनंगमाः ॥७८
जयशब्दैश्च विविधैः पूजयन्ति स्म माधवम् ।
वैनतेये तमासीनं नीलाञ्जनचयोपमम् ॥७९
ववन्दिरे तदा कृष्णं श्रिया परमया युतम् ।
तमानुपूर्व्या पूर्णाश्च पूजयन्ति महाबलम् ॥८०
अनन्तं केशिहन्तारं श्रेष्ठिपूर्वाश्च श्रेणयः ।
ऋषिभिर्देवगन्धर्वैश्चारणश्च समन्ततः ॥८१
स्तूयते पुण्डरीकाक्षो द्वारकोपवने स्थितः ।
तदाश्चर्यमपश्यन्त दाशार्हगणसत्तमा. ॥८२
प्रहर्षमतुलं प्राप्ता दृष्ट्वा कृष्णं महाभुजम् ।
बाणं जित्वा महादेवमायान्तं पुरुषोत्तमम् ॥८३
द्वारकावासिनां वाचश्चरन्ति बहुधा तदा ।
प्राप्ते कृष्णे महाभागे यादवानां महारथे ॥८४
गत्वा च दूरमध्वानं सुपर्णो द्रुतमागतः ।
धन्याः स्मोऽनुगृहीताः स्मो येषां वै जगतः पिता ॥८५

द्वारका के सभी मार्ग रत्नमालादि से सजाये गये थे, ब्राह्मण अर्घ्य पात्र स्वस्ति-पाठ करने लगे और बन्दीजनो ने स्तुति-गान का प्रारम्भ किया

॥ ७८-८० ॥ सभी वर्णों के पुरवासी जनों ने पंक्ति बद्ध होकर उनका पूजन प्रारम्भ किया। भगवान् श्रीकृष्ण जैसे ही द्वारका के उपवन में आये वैसे ही ऋषि, देवता, गन्धर्व और चारणादि ने स्तोत्र प्रारम्भ किया, उस समय द्वारका वासी अत्यन्त हर्षित और विस्मित हो रहे थे तथा सभी लोग परस्पर में कह रहे थे कि भगवान् श्रीकृष्ण बाणासुर को जीत कर आये हैं, जब वे जगदीश्वर स्वयं ही हमारी रक्षा और पालन करते हैं, तो हमारे समान धन्य एवं अनुगृहीत और कौन हो सकता है ? ॥८१-८५॥

रक्षिता चैव गोप्ता च दीर्घबाहुर्महाभुज ।
वैनतेय समारुह्य जित्वा बाणं सुदुर्जयम् ॥८६
प्राप्तोऽस्य पुण्डरीकाक्षो मनास्याह्लादयन्निव ।
एव कथयतामेव द्वारकावासिनां तदा ॥८७
वासुदेवगृहं देवा विविशुस्ते महारथाः ।
अवतीर्य सुपर्णात्तु वासुदेवो बलस्तदा ॥८८
प्रद्युम्नश्च निरुद्धश्च गृहान्प्रविविशुस्तदा ।
ततो देवविमानानि स चरन्ति तदा दिवम् ॥८९
अवस्थितानि दृश्यन्ते नानारूपाणि सर्वशः ।
हंसर्षभमृगैर्नागैर्वाजिसारसबर्हिणैः ।
भास्वन्ति तानि दृश्यन्ते विमानानि सहस्रशः ॥९०

स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हमारे रक्षक हैं, आज वे बाणासुर को पराजित करके अपने गरुड वाहन से यहाँ पधार कर हमारे हृदयों को सुख प्रदान करेंगे। द्वारका की जनता में इस प्रकार का वार्तालाप चल रहा था, तभी गरुड की पीठ से उतर कर महारथी, बलराम, कृष्ण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध भगवान् वासुदेव के भवन में गये। उस समय देवताओं के सहस्रों दिव्य विमान आकाश में छा रहे थे। वे विमान हंस, ऋषभ, मृग, नाग, अश्व, सारस और मयूर आदि के आकार के तथा अत्यन्त शोभायुक्त थे ॥८६-९०॥

अथ कृष्णोऽब्रवीद्वाक्य कुमारान्तान्सहस्रश ।
प्रद्युम्नादीन्समन्तान्तु श्लक्ष्ण मधुरयागिरा ।। ९१
एते रुद्रास्तथादित्या वसवोऽश्विनावपि ।
साध्या देवास्तथाऽन्ये च वन्दध्व च यथाक्रमम् ।।९२
सहस्राक्ष महाभाग दानवाना भयकरम् ।
वन्दध्व सहिता शक्र सगण नागवाहनम् ।।९३
सप्तर्षयो महाभाग भृग्वाङ्गिरसमाश्रिता ।
ऋषयश्च महात्मानो वन्दध्व च यथासुखम् ।।९४
एते चक्रधराश्चैव तान्वन्दध्व च सर्वश ।
सागराश्च ह्रदाश्चैव मत्प्रियार्थमिहागता ।।९५
दिशश्च विदिशश्चैव वन्दध्व च यथाक्रमम् ।
वासुकिप्रमुखाश्चैव नागा वै सुमहाबला ।।९६
गावश्च मत्प्रियार्थं वै वन्दध्व च यथाक्रमम् ।
ज्योतींषि सह नक्षत्रैर्यक्षराक्षस किन्नरै ।।९७
आगता मत्प्रियार्थं वै वन्दध्व च यथाक्रमम् ।
वासुदेववच श्रुत्वा कुमारा प्रणता स्थिता ।।९८
यथाक्रमेण सर्वेषा देवताना महात्मनाम् ।
सर्वान्दिवौकसो दृष्ट्वा पौरा विस्मयमागता ।।९९
पूजयार्थमथ समागम्यप्रगृह्य द्रुतमगता ।
अहो सुमहदाश्चर्य वासुदेवस्य संश्रयात् ।।१००

उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण ने वहाँ उपस्थित सहस्रों यादव कुमारों को सदय करके कहा—हे युवको ! इस समय रुद्र, आदित्य, वसु, अश्विद्वय, साध्य, देवता, इन्द्र, सप्तर्षि, महर्षि, चक्रधर, समुद्र, सरोवर दिशा, विदिशा, वासुकि आदि नाग, धेनु, नक्षत्र, यक्ष, राक्षस और किन्नर आदि हमारी सुख वृद्धि के हेतु यहाँ पधारे हैं । इसलिये, तुम इन सबकी वन्दना करो । यह सुन कर उन सभी युवकों ने उन सब की क्रम क्रम करके वन्दना की । उन देवताओं को इस प्रकार वहाँ आये देख कर सभी द्वारकावासी अत्यन्त विस्मित हुए और उन्होंने

पूजन-सामग्री एकत्र की और परस्पर में कहने लगे कि भगवान् श्रीकृष्ण के आश्रय में रह कर हमने यह अत्यन्त विस्मयजनक दृश्य देखा ॥६१-१००॥

प्राप्यते यदिहास्माभिरिति वाचश्चरन्त्युत ।
ततश्चन्दनचूर्णैश्च गन्धपुष्पैश्च सर्वश. ॥१०१
किरन्ति पौरा. सर्वास्तान्पूजयन्तो दिवौकसः ।
लाजैः प्रणामैर्धूपैश्च वाग्भिस्त्वनियमैस्तथा ॥१०२
द्वारकावासिनः सर्वे पूजयन्ति दिवौकस. ।
आहुकं वासुदेवं च साम्ब च यदुनन्दनम् ॥१०३
सात्यकिं चोल्मुकं चैव विपृथुं च महाबलम् ।
अक्रूरं च महाभागं तथा निषधमेव च ॥१०४
एतान्परिष्वज्य तदा मूर्ध्नि चाघ्राय वासवः ।
अथ शक्रो महाभाग समक्ष यदुमण्डले ॥१०५
स्तुवन्त केशिहन्तारं तत्रोवाचोत्तरं वच ।
सात्वत. सात्वतामेष सर्वेषा यदुनन्दनम् ॥१०६
मोक्षयित्वा रणे चैव यशसा पौरुषेण च ।
महादेवस्य मिषतो गुहस्य च महात्मन. ॥१०७
एष बाणं रणे जित्वा द्वारका पुनरागत ।
सहस्रबाहोर्बाहूना कृत्वा द्वयमनुत्तमम् ॥१०८

इस प्रकार हर्षित और विस्मित हुए पुर वासियो ने उन देवताओ पर चन्दन, पुष्प एव गध आदि की वर्षा की। धान अर्पित किया, धूप प्रदान की, फिर प्रणाम और स्तुति-गायन आदि किया ॥१०१-१०२॥ इस प्रकार द्वारका वासियों से पूजित इन्द्र ने आहुक, वसुदेव, साम्ब, उल्मुक, विपृथु, अक्रूर और निषध का आलिंगन किया और उनके मस्तकों को सूँघ कर सभी यादवो से कहने लगे— हे यादवगण! तुम्हारे श्रीकृष्ण ने भगवान् रुद्र और स्वामि कार्तिकेय से युद्ध किया तथा बाणासुर को हरा कर यह यहाँ आये हैं। बाणासुर की हजार भुजाओ में से केवल दो भुजाएँ ही इन्होंने शेष छोड़ी थी ॥१०३-१०८॥

स्थापयित्वा द्विबाहुत्वे प्राप्तोऽय स्वपुरं हरि. ।
यदर्थं जन्म कृष्णस्य मानुषेषु महात्मन· ॥१०८
तदप्यवमित कार्यं नष्टशोका वय कृता· ।
पिवता मधु माध्वीकं भवना प्रीतिपूर्वकम् ॥११०
कालो यास्यत्यविरसं विषयेष्वेव रयज्यताम् ।
बाहुना सश्रयास्सर्वे वयमस्य महात्मन. ॥१११
प्रणष्टशोका र स्यामः सर्व एव यथासुखम् ।
एव स्तुत्वा सहस्राक्ष केशव दानवान्तकम् ॥११२
आपृच्छ्य त महाभाग: सर्वदेवगणं वृतः ।
तत पुन परिष्वज्य कृष्णं लोकनमस्कृतम् ।
पुरन्दरो दिव यात सह देवमरुद्गणै· ॥११३
ऋषयश्च महात्मानो जयाशीर्भिर्महौजसम् ।
यथागतं पुनर्याता यक्षराक्षसकिन्नरा ॥११४

जिस कार्य के लिये इन्होंने मनुष्य देह धारण किया था, वह कार्य प्रायः पूर्ण होग । हमारे भी संकट नष्ट होगये, अब आप सभी आनन्द पूर्वक यहाँ निवास करो ॥ १०६-११० ॥ इनके बाहुबल के आश्रय में सब सुख से रहेंगे । इस प्रकार कहते हुए इन्द्र ने श्रीकृष्ण की अनुमति लेकर सब देवताओं के सहित अपने लोक को प्रस्थान किया ॥१११-११३॥ जो ऋषिगण वहाँ आये थे वे भी उन्हें आशीर्वाद देकर चले गये तब यक्ष, राक्षस और किन्नरादि भी उन्हें प्रणाम करके अपने-अपने स्थान को गये ॥ ११४ ॥

भविष्य-पर्व

।। जनमेजय की संतति ।।

जममेजयस्य के पुत्राः पठ्यन्ते लोमहर्षणे ।
कस्मिन्प्रतिष्ठितो वशः पाण्डवानां महात्मनाम् ।।१
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं पर कौतूहलं हि मे ।
त्वत्तः कथयतः सव वेद्य ग्रहं तत्परिस्फुटम् । २
पारीक्षितस्य काश्यायां द्वौ पुत्रौ सम्बभूवतुः ।
चन्द्रापीडश्च नृपतिः सूर्यापीडश्च मोक्षवित् ।।३
चन्द्रापीडस्य पुत्राणा शतमुत्तमधन्विनाम् ।
जनमेजय इत्येवं क्षात्र भुवि परिश्रुतम् ।।४
तेषां श्रेष्ठस्तु राजाऽऽसीत्पुरे वाराणसाह्वये ।
सत्यकर्णो महाबाहुर्यज्वा विपुलदक्षिणः ।।५
सत्यकर्णस्य दायादः श्वेतकर्णः प्रतापवान् ।
अपुत्र. स तु धर्मात्मा प्रविवेश तपोवनम् ।।६
तस्माद्वनगताद्गर्भं यादवी प्रत्यपद्यत ।
सुचारोदुहिता सुभ्रूर्मालिनी भ्रातृमालिनी ।।७

शौनक ने कहा—हे लोमहर्षण पुत्र ! आप सभी शास्त्रो मे पारगत एवं सर्वज्ञाता हैं, इसलिये अब जनमेजय की सतति और उनके किस पुत्र के द्वारा पाण्डुवश प्रतिष्ठित हुआ, सो कहिये । इस कथा को सुनने की मुझे अत्यंत इच्छा ।।१-२।। सौति ने कहा—हे मुने ! महाराज जनमेजय की काश्या नाम की भार्या से दो पुत्र उत्पन्न हुए, उनके नाम चन्द्रापीड और सूर्यापीड थे । जिनमे से चन्द्रापीड तो राज्यपद पर

चन्द्रपीड के महावीर धनुर्धारी एक सौ पुत्र हुए, उन्ही से जनमेजय का वश प्रतिष्ठित हुआ ॥४॥ उन सौ मे से सबमे बडा जो सत्यकर्ण नामक पुत्र था, हस्तिनापुर का राजा हुआ । वह अत्यत उदारचेता तथा विपुल दक्षिणा वाले यज्ञो का अनुष्ठाता था ॥५॥ उसका भाई श्वेतकर्ण अत्यत बली, पराक्रमी तथा धर्मज्ञ किन्तु पुत्र-हीन था, इसलिये अनेक भ्राताओ वाली भार्या मालिनी के सहित वनवासी हो गया ॥६॥ परंतु वन मे निवास करती हुई मालिनी के गर्भ रह गया ॥ ७ ॥

स तु जन्मनि गर्भस्य श्वेतकर्णं प्रजेश्वरम् ।
अन्वगच्छद्गतं पूर्वैर्महाप्रस्थानमच्युतम् ॥८
सा दृष्ट्वा सम्प्रयात त मालिनी पृष्ठतोऽन्वगात् ।
पथि सा सुषुवे सुभ्रूर्वने राजीवलोचनम् ॥९
कुमारं तं परित्यज्य भर्तारं चान्वगच्छत ।
पतिव्रता महाभागा द्रौपदीव पुरा पतीन् ॥१०
स तु राजकुमारोऽसौ गिरिकुञ्जे ररोद ह ।
छायार्थं तस्य मेघास्तु प्रादुरासन्समन्ततः ॥११
श्रविष्ठायाश्च पुत्रौ द्वौ पिप्पलादश्च कौशिकः ।
दृष्ट्वा कृपान्वितौ गृह्य त प्रक्षालयतां जलैः ।
निघृष्टौ तस्य तौ पार्श्वौ शिलायां रुधिरप्लुतौ ॥१२
अजश्यामौ तु पार्श्वौ तावुभावपि समाहितौ ।
तथैव तु समारूढौ अजपार्श्वस्ततोऽभवत् ॥१३
ततोऽजपार्श्व इति तौ चक्राते तस्य नाम ह ।
स तु वेमकशालायां द्विजाभ्यामभिवर्धितः ॥१४

गर्भ के लक्षण प्रकट होते ही श्वेतकर्ण ने पूर्व पुरुषों के पथ का अवलम्बन करते हुए महा प्रस्थान की इच्छा की ॥८॥ जब मालिनी ने यह देखा कि उसके पति महा प्रस्थान कर रहे हैं, तो वह भी उनके पीछे-पीछे चल पड़ी । कुछ दूर चलने पर ही उसके एक पद्म के समान नेत्र वाला पुत्र उत्पन्न हुआ,

परतु मालिनी ने उस पुत्र को वही वडा छोड कर अपने पति का ही अनुसरण किया ॥९-१०॥ मार्ग मे पडा हुआ वह बालक उस पर्वत कुञ्ज मे रुदन करने लगा, तभी उसकी छाया करने के लिये उसके ऊपर सब ओर से बादल छा गये ॥११॥ उसके कुछ समय पश्चात् ही महर्षि पिप्पलाद और कौशिक वहाँ आये, उन्होंने उस बालक को देखकर दयावश उठा लिया और उसके देह का भले प्रकार प्रक्षालन किया। परतु उसके दोनो पार्श्वों मे कुछ रक्त लगा रह गया, इस लिये उन्होंने उन पार्श्व भागों को घिसा, जिसके कारण वह अग बकरे के समान काले रग के हो गये। इसलिये वह बालक 'अजपार्श्व' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। फिर वे दोनो महर्षि उस बालक को महर्षि वेमक के आश्रम मे लाकर उसका पालन पोषण करने लगे ॥१२-१४॥

वेमकस्य तु भार्या तमुद्वहत्पुत्रकारणात् ।
वेमक्या स तु पुत्रोऽभूद्ब्राह्मणौ सचिवौ च तौ ॥१५
तेषा पुत्राश्च पौत्राश्च युगपत्तुल्यजीविन ।
स एष पौरवो वश पाण्डवाना प्रतिष्ठित ॥१६
श्लोकोऽपि चात्र गीतोऽय नाहुषेण ययातिना ।
जरासक्रमणे पूर्वं भृश प्रीतेन धीमता ॥१७
आचन्द्रार्कग्रहा भूमिर्भवेदपि न सशय ।
अपौरवा न तु मही भविष्यति कदाचन ॥१८

महर्षि वेमक की भार्या वेमकी ने भी उस बालक का पालन पोषण अपने पुत्र के समान किया। इस प्रकार अजपार्श्व वेमक-पत्नी का पुत्र बन गया तथा विप्रवर पिप्पलाद और कौशिक उसके मत्री हुए ॥१५॥ उनकी पुत्र-पौत्रादि रूप सतान समकालीन हुई तथा उनसे ही पाडवो का पौरव वश प्रतिष्ठित हुआ ॥१६॥ पूर्व कालीन नहुषतनय राजा ययाति ने भी अपनी वृद्धावस्था की प्राप्ति पर इस श्लोक को कहा था—जब सूर्य-चन्द्रादि ग्रहो से आच्छादित यह पृथिवी रहेगी, तब तक पुरुवश का कभी लोप न होगा ॥१७-१८॥

।। जनमेजय--व्यास संवाद ।।

उक्तोऽयं हरिवंशस्ते पर्वाणि निखिलानि च ।
यथा पुरोक्तानि तथा व्यासशिष्येण धीमता ।।१
तत्कथ्यमानममिनमितिहाससमन्वितम् ।
प्रीणात्यस्मानमृतवत्सर्वपापविनाशनम् ।।२
सुखश्राव्यतया धीर मनो ह्लादयतीव न ।
जनमेजयस्तु नृपति श्रुत्वा चाख्यानमुत्तमम् ।
सौते किमकरोत्पश्चात्सर्पसत्राऽनन्तरम् ।।३
जनमेजयस्तु स नृप श्रुत्वा चाख्यानमुत्तमम् ।
यदारभत्तदाख्यास्ये सर्पसत्रादनन्तरम् ।।४
तस्मिन्सत्रे समाप्तेऽथ राजा पारीक्षितस्तदा ।
यष्टु स वाजिमेधेन सम्भारानुपचक्रमे ।।५
ऋत्विक्पुरोहिताचार्यानाहूयेदमुवाच ह ।
यक्ष्येऽहं वाजिमेधेन हय उत्सृज्यतामपि ।।६
ततोऽस्य विज्ञाय चिकीर्षित तदा कृष्णो महात्मा सहसाऽऽजगाम ।
पारीक्षित द्रष्टुमदीनसत्त्व द्वैपायन सर्वपरावरज्ञ. ।।७

शौनक जी ने कहा—पूर्वकाल में व्यास जी के शिष्य श्री वैशम्पायन जी ने हरिवंश की जो कथा कही थी, वह उसी प्रकार आपने भी कही है ।।१।। इस पापों के नाशक इतिहासमय हरिवंश के श्रवण से हमको अत्यन्त आनन्द हुआ है ।।२।। इन कथा को सुनकर आनन्दातिरेक के कारण हमारा मन आर्द्र हो उठा है और अब हम यह जानने के लिये उत्सुक हैं कि राजा जनमेजय ने इसे सुनने के बाद क्या कार्य किया ? ।।३।। सौति ने कहा—हे मुने ! सर्पयज्ञ के पश्चात् इस श्रेष्ठ वृतान्त को सुनकर राजा जनमेजय ने जो कुछ किया, वह कहता हूँ, सुनिये ।।४।। सर्पयज्ञ के बाद अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान करने के लिये राजा जनमेजय ने यज्ञ-सामग्री एकत्र करने का आदेश दिया ।।५।। फिर उन्होंने ऋत्विज, पुरोहित और आचार्य को बुलाकर उनसे कहा—हे भगवन् ! अब

मेरी इच्छा अश्वमेध यज्ञ करने की है, इसलिये अब अश्व का छोडा जाना उचित है ॥६। यह बात चल ही रही थी, तभी महर्षि कृष्णद्वैपायन राजा जनमेजय द्वारा अश्वमेध करने का विचार जानकर उनके पास आये ॥७॥

पारीक्षितस्तु नृपतिर्दृष्ट्वा तमृषिमागतम् ।
अर्घ्यपाद्यासन दत्वा पूजयामास शास्वत ॥८
तौ चोपविष्टावभित सदस्यास्तस्य शौनक ।
कथा बहुविधाश्चित्राश्चक्राते देवसहिता ॥९
तत कथान्ते नृपतिर्नोदयामास त मुनिम् ।
पितामह पाण्डवानामात्मन प्रपितामहम् ॥१०
महाभारतमाख्यान बह्वर्थं श्रुतिविस्तरम् ।
निमेपमात्रमपि मे सुखश्राव्यतया गतम् ॥११
विभूतिविस्तरकर सर्वेषा वै यशस्करम् ।
त्वया सुविहित ब्रह्मञ्शङ्खे क्षीरमिवाहितम् ॥१२
अमृतेन तु तृप्ति स्याद्यथा स्वर्गसुखेन च ।
तथा तृप्ति न गच्छामि श्रुत्वेमा भारती कथाम् ॥१३
अनुमान्य तु सर्वज्ञ पृच्छामि भगवन्नहम् ।
हेतु कुरूणा नाशस्य राजसूयो मतो मम ॥१४
दु सहाना यथा श्वसो राजन्यानामुपप्लवे ।
राजसूय तथा मन्ये युद्धार्थमुपकल्पितम् ॥१५

महर्षि को आया देखकर राजा ने उठ कर उन्हे अर्घ्य, पाद्य, आसन निवेदन किया और फिर उनकी यथाविधि पूजा की ॥८॥ फिर सब के यथोचित स्थान पर बैठ जाने पर महर्षि कृष्ण द्वैपायन और उपस्थित अन्य विप्र-श्रेष्ठो मे वेदादि विषयक वार्ता आरम हुई ॥९॥ अनेक प्रकार के वार्तालाप के पश्चात् राजा जनमेजय ने अपने उन प्रपितामह महर्षि व्यास से कहा ॥१०॥ हे भगवान्! सुनने मे विस्तृत और सर्वार्थपूर्ण उस महाभारत नामक इतिहास का पूरे एक वर्ष तक श्रवण किया परतु वह इतना आनन्दप्रद था कि एक वर्ष भी एक

निमेष के समान ही बीत गया ॥११॥ दूध से भरे हुए शख के समान इस ऐश्वर्य का विधान करने वाले तथा यश प्राप्त कराने वाले इस महाभारत नामक श्रेष्ठ इतिहास को आपने रचा है ॥१२॥ जैसे स्वर्गीय सुख के उपभोग और अमृत के पान से किसी की इच्छा पूर्ण नहीं होती, वैसे ही महाभारत की कथाओं को बारबार सुनकर भी अभी तक तृप्ति नहीं हुई है ॥१३॥ आप सर्वज्ञ हैं, इस लिये मैं आपसे कौरव वश के नाश का कारण जानना चाहता हूँ। अकेले राजसूय यज्ञ मे ही बहुतेरे क्षत्रिय नष्ट हो गये इसलिये उनके नाश का कारण मैं राजसूय यज्ञ को ही समझता हूँ ॥१४-१५॥

राजसूयस्तु सोमेन श्रूयते पूर्वमाहृतः ।
तस्यान्ते सुमहद्युद्धमभवत्तारकामयम् ॥१६
आहृतो वरुणेनाथ तस्यान्ते सुमहाक्रतोः ।
देवासुर महायुद्धं सर्वभूतक्षयावहम् ॥१७
हरिश्चन्द्रश्च राजर्षिः क्रतुमेनमुपाहरत् ।
तत्राप्याडीवकं नाम युद्धं क्षत्रियनाशनम् ॥१८
ततोऽनन्तरमार्गेण पाण्डवेनातिदुस्तरः ।
महाभारत आरम्भः सम्भृतोऽग्निरिव क्रतुः ॥१९
तदस्य मूलं युद्धस्य लोकक्षयकरस्य तु ।
राजसूयो महायज्ञः किमर्थं न निवारितः ॥२०
राजसूयो ह्यसंहार्यो यज्ञाङ्गैश्च दुरत्ययैः ।
मिथ्या प्रणीते यज्ञाङ्गे प्रजानां सक्षयो ध्रुवः ॥२१
भवानपि च सर्वेषां पूर्वेषां नः पितामहः ।
अतीतानागतज्ञश्च नाथश्चादिकरश्च नः ॥२२
ते कथं भवता नेत्रा बुद्धिमन्तश्च्युता नयात् ।
अनाथा ह्यपराध्यन्ते कुनेतारश्च मानवा ॥२३

सुना गया है कि प्राचीन काल मे इस यज्ञ का आरंभ चन्द्रदेव ने किया था, तब यज्ञ के अन्त में अत्यंत घोर तारकामय सग्राम की प्राप्ति हुई थी ॥१६॥

फिर वरुणदेव ने जो राजसूय यज्ञ किया था, उसके अन्त में भी सब प्राणियों का संहारक देवासुर युद्ध हुआ था ॥१७॥ तदनन्तर इस महायज्ञ को राजर्षि हरिश्चन्द्र ने किया था, जिसमें वसिष्ठ ने आडी और विश्वामित्र ने बगुले का रूप धारण किया था। उस समय भी क्षत्रियों के संहार का कारण यह राजसूय यज्ञ ही हुआ था ॥१८॥ इसलिये मैं तो यही समझता हूँ कि महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के कारण ही महाभारत युद्ध की प्राप्ति हुई होगी ॥१९॥ आप मेरे पूर्व पुरुषों के पितामह हैं, इसलिये हमारे आदि पुरुष तथा सर्वज्ञ भी हैं और राजसूय यज्ञ का भले प्रकार सम्पन्न किया जाना अत्यंत दुष्कर है तथा विघ्न होने पर प्रजा के नष्ट होने का संकट भी सम्भाव्य है इसका पूर्ण ज्ञान होने पर भी आपने संसार को क्षीण करने वाले घोर युद्ध के कारण रूप राजसूय यज्ञ को क्यों होने दिया ? ॥२०-२२॥ कुनेता के चक्र में पड़कर ही अनाथ पुरुष अपराधी हो जाते हैं, इसलिये आपने उनके नेता होकर भी उन्हें नीति-मार्ग से भ्रष्ट क्यों होने दिया ? ॥२३॥

कालेन विपरीतास्ते तव पूर्वपितामहः ।
न मां भविष्यं पृच्छन्ति न चापृष्टो ब्रवीम्यहम् ॥२४
सामर्थ्यं च न पश्यामि भविष्यस्य निवर्तने ।
परिहर्तुं न शक्या हि कालेन विहिता गतिः ॥२५
त्वया त्विदमहं पृष्टो वक्ष्याम्यागन्तु भावि यत् ।
अवश्यं बलवान्कालः श्रुत्वाऽपि न करिष्यसि ॥२६
न संरम्भान्न चारम्भान्न वै स्थास्यसि पौरुषे ।
लेखा हि काललिखिता सर्वथा दुरतिक्रमाः ॥२७
अश्वमेधः क्रतुश्रेष्ठः क्षत्रियाणां परिश्रुतः ।
ते भावेन ते यज्ञं वासवो धर्षयिष्यति ॥२८
यदि तच्छक्यते राजन्परिहर्तुं कथंचन ।
दैवं पुरुषकारेण मा यजेथाश्च तं क्रतुम् ॥२९
न चापराधः शक्रस्य नोपाध्यायगणस्य ते ।
न च वा यजमानस्य कालोऽत्र दुरतिक्रमः ॥३०

वेद व्यास जी ने कहा—हे वत्स ! तुम्हारे पूर्व पितामह काल के वशीभूत होकर अपना श्रेष्ठ मार्ग छोड़ बैठे थे। उन्होंने भविष्य के विषय मे मुझसे कभी कुछ नही पूछा और जब तक मुझसे कोई कुछ बात न पूछे तब तक मैं कुछ बताता नही ॥२४॥ फिर जो होने वाली बात थी, उसे मैं रोक भी कैसे सकता था ? क्योकि काल की गति रोकी नही जा सकती ॥२५॥ यदि तुम मुझसे पूछना चाहो तो मैं भविष्य की बात बता सकता हूं, परतु उसे जान कर भी मेरे अनुसार कार्य नही कर सकोगे ॥२६॥ क्योकि काल कभी भी भयभीत अथवा उत्साह का वशवर्ती नहीं होता, उसका लेख किसी प्रकार मिटाया नहीं जा सकता ॥२७॥ क्षत्रियो के लिये अश्वमेघ यज्ञ सर्वश्रेष्ठ बताया गया है, परतु तुम्हारे अश्वमेध यज्ञ मे सुरराज इन्द्र विघ्न उत्पन्न कर देंगे ॥२८॥ यदि किसी प्रकार अपने पुरुषार्थ से दैव का उल्लघन भी किया जा सके, तो भी तुम इस यज्ञ को मत करो ॥२६॥ तुम्हारे उस यज्ञ मे इन्द्र, उपाध्याय और यजमान—किसी का कोई दोष न होने पर भी काल की अबाध गति ही उसका लोप कराने में प्रमुख होगी ॥३०॥

तस्य सस्थाकृतमिदं कालस्य परमेष्ठिनः ।
यथादृष्टं प्रजासर्गं गमिष्यति युगक्षये ॥३१
तथा यज्ञफलाना च विक्रेतारो द्विजातयः ।
यत्प्रणेय निबोधस्व त्रैलोक्य सचराचरम् ॥३२
निवृत्तावश्वमेधस्य किं निमित्तं भविष्यति ।
श्रुत्वा परिहरिष्यामि भगवन्यदि मन्यसे ॥३३
निमित्त भविता तत्र ब्रह्मकोपकृतं प्रभो ।
यतेथा परिहर्तु त्वमित्येतद्भद्रमस्तु ते ॥३४
त्वया वृत्त क्रतु चैव वाजिमेध परंतप ।
क्षत्रिया नाहरिष्यन्ति यावद्भूमिर्धरिष्यति ॥३५
निवृत्तावाश्वमेधस्य ब्रह्मशापाग्नितेजसा ।
अह निमित्तमिति मे भयं तीव्रं तु जायते ॥३६

कथ ह्यकीर्त्या युज्येत सुकृती मद्विधो जन ।
लोकानुत्सहते गन्तु ख सपाश इव द्विज ॥३७
यथा ह्यनागतमिद दृष्टमल प्रणाशनम् ।
यद्यस्ति पुनरावृत्तिर्यज्ञस्याश्वासयस्व माम् ॥३८ ,

काल के बल से तुम्हारे यज्ञ के नष्ट होने का विधान पहिले से ही विधाता द्वारा उसी प्रकार निश्चित हो चुका है, जिस प्रकार प्रलय के पश्चात् पुन सृष्टि होना निश्चित है। भविष्य मे ब्राह्मण ही यज्ञ फल के बेचने वाले हो जायेंगे, इस प्रकार ससार का सभी कार्य काल के ही वश मे है ॥३१-३२॥ यह सुन कर जनमेजय ने कहा—हे भगवन् ! मेरे अश्वमेध यज्ञ मे उपस्थित होने वाले विघ्न का यदि आप कारण बताने की कृपा करें तो मैं उसका निवारण करने का कोई यत्न करूँ ॥३३॥ इस पर व्यास जी बोले—हे राजन् ! यज्ञ के असफल होने का एक मात्र कारण ब्राह्मणो का क्रोध ही है, इसलिये तुम उस ब्रह्म क्रोधानल के निवारण का ही उपाय करना इसी से तुम्हारा कल्याण होगा ॥३४॥ जिस अश्वमेध यज्ञ को तुम करने जा रहे हो, उसे जब तक यह पृथिवी स्थित रहेगी, तब तक कोई भी क्षत्रिय पूर्ण करने मे समर्थ न हो सकेगा ॥३५॥ तब जनमेजय ने कहा—जिस ब्रह्मकोप की अग्नि के प्रज्वलित होने से यज्ञाग्नि का निवारण हो जाता है उसका कारण मैं ही बनूँगा, यह जानकर मैं अत्यत भयभीत हो रहा हूँ ॥३६॥ क्योंकि मेरे जैसा पुण्यकर्मा पुरुष इस प्रकार के कलक के कारण जाल मे बँधे हुए पक्षी के समान परलोक मे जाने का साहस किस प्रकार कर सकेगा ? ॥३७॥ इसलिये जिस प्रकार आपने यज्ञ मे उपस्थित होने वाले विघ्नो को दिखाया है, उसी प्रकार यज्ञ की पुनरावृत्ति का उपाय भी मुझसे कहिये ॥३८॥

उपात्तयज्ञो देवेषु ब्राह्मणेषूपपत्स्यते ।
तेजसा व्याहृत तेजस्तेजस्येवावतिष्ठते ॥३९
औद्भिज्जो भविता कश्चित्सेनानी कश्यपो द्विज ।
अश्वमेध कलियुगे पुन प्रत्याहरिष्यति ॥४०

तद्युगे तत्कुलीनश्च राजसूयमपि क्रतुम् ।
आहरिष्यति राजेन्द्र श्वेतग्रहमिवान्तक ॥४१
यथा बल मनुष्याणा वर्तृणा दास्यते फलम् ।
युगान्तद्वारमृषिभि सवृत विचरिष्यति ॥४२
तदाप्रभृति हास्यन्ति नृणा प्राणा पुराकृती ।
न निर्वतिष्यते लोके वृत्तान्तावर्तनेष्विह ॥४३
तदा सूक्ष्मो महोदर्को दुस्तरो दानमूलवान् ।
चतुराश्रम्यशिथिलो धर्म प्रविचलिष्यति ॥४४
तदा ह्यल्पेन तपसा सिद्धि प्राप्स्यन्ति मानवा ।
धन्या धर्मं चरिष्यन्ति युगान्ते जनमेजय ॥४५

व्यास जी ने कहा—हे वत्स ! जैसे तेज से विनष्ट हुआ तेज, तेज में ही लीन हो जाता है, वैसे ही नष्ट हुआ यज्ञ देवताओ और ब्राह्मणो मे ज्ञान रूप से स्थित रहता है ॥३६॥ भविष्य मे कलिकाल की प्राप्ति होने पर पृथिवी के गर्भ से उत्पन्न कश्यप गोत्रिय सेनानी ब्राह्मण होगा, वही ससार मे अश्वमेध यज्ञ की पुनरावृत्ति करेगा ॥४०॥ उसके पश्चात् जैसे प्रलय काल के आने पर उत्पन्न करने वाला श्वेतग्रह पुन आविर्भूत होता है, वैसे ही उसी ब्राह्मण के वश मे जन्म धारण करने वाला कोई महात्मा उस यज्ञ की पुन अवतारणा करेगा ॥४१॥ उस समय पूर्व प्रकृति विलीन होकर इन्द्रियो मे विपरीत भाव की उत्पत्ति करेगी, जिससे मनुष्यो का आचरण दूषित हो जायगा ॥४३॥ दान मूलक आचरण कठिन होगा, फिर भी धर्म के अल्प आचरण से ही महान् फल की प्राप्ति हो जाया करेगी । उस समय चारो आश्रमो के नियम शिथिल हो जायेंगे और अल्प तपस्या से ही मनुष्यो को सिद्धि प्राप्त होने लगेगी । इसलिये हे जनमेजय ! उस युगान्त काल मे धर्माचरण करने वाले मनुष्य धन्य समझे जायेंगे ॥४४-४५॥

॥ व्यास जी द्वारा कलियुग वर्णन ॥

आसन्न विप्रकृष्ट वा यदि काल न विद्महे ।
तस्माद्द्वापरसविद्ध युगान्त स्पृहयाम्यहम् ॥१

प्राप्ता वयं तु तत्कालमनया धर्मतृष्णया ।
आदद्यात्परम धर्मं सुखमल्पेन कर्मणा ॥२
प्रासमुद्वेगकरणं युगान्तं समुपस्थितम् ।
प्रनष्टधर्मं धर्मज्ञ निमित्तैर्वक्तुमर्हसि ॥३
पृष्ट एवं भविष्यस्य गतिं तत्त्वेन चिन्तयन् ।
युगान्ते सर्वभूताना भगवानब्रवीत्तदा ॥४
अरक्षितारो हर्तारो बलिभागस्य पार्थिवाः ।
युगान्ते प्रभविष्यन्ति स्वरक्षणपरायणाः ॥५
अक्षत्रियाश्च राजानो विप्राः शूद्रोपजीविनः ।
शूद्राश्च ब्राह्मणाचारा भविष्यन्ति युगक्षये ॥६
काण्डे स्पृष्टाः श्रोत्रियाश्च निष्क्रियाणि हवींष्यथ ।
एकपङ्क्त्यामशिष्यंति युगान्ते जनमेजय ॥७

राजा जनमेजय ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ मुक्ति का समय समीप है या नहीं यह तो मैं नही जानता किन्तु इस युग मे थोडे परिश्रम से ही अधिक पुण्य-फल प्राप्त हो जाता है, इसी से मैने इस अवसर पर जन्म लिया है ॥१-२॥ इतनी कथा सुनकर शौनक ने भी प्रश्न किया कि इस समय लोगो को भयभीत करने वाला और धर्म की शक्ति को क्षीण करने वाला कलियुग आ चुका है इस लिये हम भी उनका वर्णन अवश्य सुनना चाहते है। इस पर सौति ने कहा हे शौनक ! मैं तुमको वह सब प्रसग बतलाना हूँ जो उस अवसर पर भगवान व्यास ने राजा जनमेजय को सुनाया था ॥३-४॥ उस युग मे राजा लोग परम स्वार्थी बनकर प्रजा के हित साधन, तपयज्ञ आदि सत्कर्मों से विमुख हो जायेंगे। क्षत्रियो के अतिरिक्त अन्य वर्णों के राजा शासक हो जायेंगे, ब्राह्मण शूद्रो के काम करने लगेंगे और शूद्र ब्राह्मणो का-सा आचार विचार करने लगेंगे। ब्राह्मण धनुष-बाण का प्रयोग करने वाले हो जायेंगे, यज्ञादि क्रियाहीन हो जायें और श्रेणीभेद क्षीण होकर सब लोग एक साथ भोजन करने लगेंगे ॥५-७॥

शिल्पवन्तोऽनृतपरा नरा मद्यामिषप्रियाः ।
मित्रभार्या भविष्यन्ति युगान्ते जनमेजय ॥८

राजवृत्तिस्थिताश्चौरा राजानश्चौरशीलिनः ।
भृत्याश्चानिर्दिष्टभुजो भविष्यन्ति युगक्षये ॥९
धनानि श्लाघनीयानि सतां वृत्तमपूजितम् ।
अकुत्सना च पतिते भविष्यति युगक्षये ॥१०
प्रनष्टचेतना मर्त्या मुक्तकेशा विचूलिनः ।
ऊनषोडशवर्षाश्च प्रजास्यन्ति नराः सदा ॥११
अट्टशूला जनपदाः शिवशूलाश्चतुष्पथाः ।
प्रमदाः केशशूलाश्च भविष्यंति युगक्षये ॥१२
सर्वे ब्रह्म वदिष्यन्ति सर्वे वाजसनेयिनः ।
शूद्रा भोवादिनश्चैव भविष्यन्ति युगक्षये ॥१३
तपोयज्ञफलानां च विक्रेतारो द्विजातयः ।
ऋतवश्च भविष्यन्ति विपरीता युगक्षये ॥१४
शुक्लदन्ता जिताक्षाश्च मुण्डाः काषायवाससः ।
शूद्रा धर्मं चरिष्यन्ति शाक्यबुद्धोपजीविनः ॥१५

शिल्पकार्य के करने वाले असत्य व्यवहार परायण हो जायेंगे, मद्य-मांस का व्यवहार बहुत बढ जायगा और लोग मित्र की स्त्री से दुराचार करने में सकोच न करेंगे। उस समय राजा ही चोर (अपहरणकर्ता) बन जायेंगे, चोर राजा हो जायेंगे और नौकर स्वामी का कुछ भी ध्यान न करके उनका सर्वस्व खा बैठेंगे। धन ही प्रतिष्ठा का आधार माना जायगा, सज्जनों का सम्मान न होगा और पाप-कर्म करने वालों को कोई निन्दनीय न कहेगा ॥८-९॥ लोग धर्म-ज्ञान से शून्य होंगे, विधवाओं और संन्यासियों के संतानें होंगी और मनुष्यों की आयु बहुत कम हो जायगी। सभी लोग अन्न बेचने लग जायेंगे, ब्राह्मण धर्म को बेचेंगे और स्त्रियाँ अपने रूप का व्यवसाय करने लग जायेंगी ॥११-१२॥ सभी श्रेणियों के व्यक्ति ब्रह्मवादी होने का दम्भ करके कर्म भ्रष्ट हो जायेंगे और वैदिक यज्ञ-यागादि का करना छोड देंगे। शूद्रों की स्थिति सम्मानजनक हो जायगी। ब्राह्मण अपनी तपस्या तथा यज्ञों के फल को धन के लिये बेचने वाले होंगे और सब ऋतुएं समय के प्रतिकूल होने लगेंगी। शूद्र लोग पवित्र आचार-विचार ग्रहण

धरेंगे, श्वेतदन्त, सूक्ष्मदर्शी, मुण्डित, काषाय वेषधारी होकर बौद्धधर्म के अनुयायी बनेंगे ॥१३-१५॥

श्वापदप्रचुरत्वं च गवां चैव परिक्षयः ।
स्वादूना विनिवृत्तिश्च विद्यादन्तगते युगे ॥१६
अन्त्या मध्ये निवत्स्यन्ति मध्याश्चान्तनिवासिनः ।
यथा निम्न प्रजाः सर्वा गमिष्यन्ति युगक्षये ॥१७
तथा द्विहायना दम्यास्तथा पल्वलकर्षकाः ।
चित्रवर्षी च पर्जन्यो यगे क्षीणे भविष्यति ॥१८
सर्वे चौरकुले जाताश्चौरयानाः परस्परम् ।
स्वल्पेनाढ्या भविष्यन्ति यत्किञ्चित्प्राप्य दुर्गताः ॥१९
न ते धर्मं करिष्यन्ति मानवा निर्गते युगे ।
ऊषार्कबहुला भूमिः पन्थानस्तस्करावृताः ॥२०
सर्वे वाणिज्यकाश्चैव भविष्यन्ति कलौ युगे ।
पितृदत्तानि देयानि विभजन्ते सुतास्तदा ।
हरणाय प्रपत्स्यन्ते लोभानृतविरोधिता ॥२१

जंगली हिंसक जीवों की अधिकता होकर गायों की संख्या घट जायगी और सब वस्तुओं का स्वाद पूर्वापेक्षा कम हो जायगा। म्लेच्छ देशों के निवासी मध्यदेश में आकर रहने लगेंगे और मध्यदेश वालों को म्लेच्छों के प्रदेशों में जाकर निवास करना पड़ेगा और सर्व साधारण नीच मार्ग पर चलने लगेंगे। बैल शक्तिहीन होकर हल खींचने में कठिनाई अनुभव करेंगे और वर्षा भी बहुत ही अस्त-व्यस्त रूप से होने लगेगी, ॥१६-१८॥ सभी व्यक्ति एक दूसरे का धन अपहरण करके चौर्यवृत्ति से शीघ्र ही धनवान बन जाना चाहेंगे और इसलिये सबको दुर्दशाग्रस्त होना पड़ेगा। उस समय लोग धर्माचरण छोड़ देंगे, भूमि ऊसर हो जायगी और रास्ते में सब ओर डाकुओं का भय रहेगा। उस समय सब लोग सब प्रकार की वस्तुओं को बेचने वाले ही होंगे और पिता की जायदाद का पुत्र बँटवारा कर लेंगे। धन के लिये लोग असत्य व्यवहार करेंगे तथा दूसरे का धन दबा लेंगे ॥१९-२१॥

सौकुमार्ये तथा रूपे रत्ने चोपक्षय गते ।
भविष्यन्ति युगान्ते च नार्य केशैरलङ्कृता ॥२२
निर्विहारस्य भूतस्य गृहस्थस्य भविष्यति ।
युगान्ते समनुप्राप्ते नान्या भार्यासमा गति ॥२३
कुशीलानार्यभूयिष्ठ वृथारूपसमन्वितम् ।
पुरुषाल्प बहुस्त्रीक तद्युगान्तस्य लक्षणम् ॥२४
बहुयाचनको लोको न दास्यति परस्परम् ।
अविचार्य ग्रह् ष्यन्ति दान वर्णान्तरात्तथा ॥२५
राजचौराग्निदण्डार्तो जन क्षयमुपेष्यति ।
सस्यनिष्पत्तिर्फला तरुणा वृद्धशीलिन ।
ईहयाऽसुखिनो लोका भविष्यन्ति युगक्षये ॥२६
वर्षासु वाता परुषा नीचा शर्करवर्षिण ।
सदिग्ध परलोकश्च भविष्यति युगक्षये ॥२७
आत्मनश्च दुराचारा ब्रह्मदूषणतत्परा ।
आत्मान बहु मन्यन्ते मन्युरेवाभ्ययाद्द्विजान् ॥२८

स्त्रियो मे से सुकुमारता, रूप और रत्नादि का अभाव होकर केवल बालो का ही श्रृ गार रह जायगा । गृहस्थ जीवन मे से सुन्दर और श्रेष्ठ उपादानो का अभाव हो जायगा और केवल नारी समागम ही एक मात्र उपभोग का मार्ग जान पडेगा। समस्त पृथ्वी रूप का झूठा गर्व करने वाली और चरित्र हीन स्त्रियो से भर जायगी और पुरुषो की अपेक्षा नारियो की सख्या भी अधिक हो जायगी ।२२-२४॥ माँगने वाले बहुत हो जायँगे पर कोई किसी को कुछ देगा नही । ब्राह्मण बिना विचार किये सब वर्णो का दान ग्रहण करने लगेंगे । अधिकाश प्रजा राजदण्ड चोरदण्ड और अग्निदण्ड से नष्ट होने लगेगी। खेतो मे बोने के लिये डाला बीज भी नष्ट हो जायगा, युवावस्था म ही बुढापा जैसा जान पडने लगेगा और लोग भाँति भाँति की कामनाओ के कारण दु खित रहने लगेंगे ॥२५-२६॥ वर्षा ऋतु मे भयकर वायु चलने और धूल उडने लगगी। लोग परलोक के अस्तित्व मे सदेह करने लगेंगे। वे ब्राह्मणो पर दोषारोपण करेंगे

पर अपने दोषों पर दृष्टिपात न करेंगे। ब्राह्मणों में भी दोष प्रकट करने के सिवाय और कोई योग्यता न रहेगी ।२७-२८।।

वैश्याचाराश्च राजन्या धनधान्योपजीविनः ।
युगापक्रमणे सर्वे भविष्यन्ति द्विजातयः ।।२९
अप्रवृत्ताः प्रपत्स्यन्ते समया शपथास्तथा ।
ऋणं सविनयभ्रंशं युगे क्षीणे भविष्यति ।।३०
भविष्यत्यफलो हर्षः क्रोधश्च सफलो नृणाम् ।
अजाश्चैवोपरोत्स्यन्ते पयसोऽर्थे युगक्षये ।।३१
अशास्त्रविदुषां पुंसामेवमेव स्वभावतः ।
अप्रमाणं वदिष्यन्ति नीतिं पण्डितमानिनः ।।३२
शास्त्रोक्तस्याप्रवक्तारो भविष्यन्ति युगक्षये ।
सर्वे सर्वं हि जानन्ति वृद्धाननुपसेव्य वै ।।३३
न कश्चिदकविर्नाम युगान्ते समुपस्थिते ।
न क्षत्राणि नियोक्ष्यन्ति त्रिवर्गस्था द्विजातयः ।
चौरप्रायाश्च राजानो युगान्ते पर्युपस्थिते ।।३४
कुण्डावृषा नैष्कृतिकाः सुरापा ब्रह्मवादिनः ।
अश्वमेधेन यक्ष्यन्ति युगान्ते जनमेजय ।।३५

कलियुग में क्षत्रिय स्वधर्म त्याग कर वैश्यों की तरह खरीदने बेचने का धन्धा करने लगेंगे और सब लोग द्विज बनने का ही प्रयत्न करने लगेंगे। अनावश्यक होने पर भी लोग शपथ लेने लगेंगे पर नीचे दर्जे के लोग ही नहीं ऊँची श्रेणी वाले भी ऋण को लेकर हड़प जायेंगे ।।२९-३०।। इस युग में सद्भाव रखने वालों का काम बिगड़ जायगा और क्रोध का आश्रय लेने वालों को सफलता मिल जायगी। दूध के लिये बकरियाँ पाली जाने लगेंगी। लोग शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किये बिना ही उनका अर्थ करने लगेंगे और अनुभवी वृद्धों शिक्षा प्राप्त न करके भी अपने को विद्वान समझ लेंगे ।।३१-३३। उस समय सभी मनुष्य अपने को कवि तथा विद्वान मानने लगेंगे, ब्राह्मण क्षत्रियों की वृत्ति

अपना लेंगे और क्षत्रिय लोग चोरी-डाका का कार्य करने लगेंगे। यद्यपि ठग, शराबी, कन्या विक्रय करने वालो को यज्ञ का अनधिकारी माना गया है, पर कलियुग मे ऐसे ही व्यक्ति बडे-बडे यज्ञो का आयोजन करने लगेंगे ॥३४-३५॥

अयाज्यान्याजयिष्यन्ति तथाऽभक्ष्यस्य भक्षिण: ।
ब्राह्मणा धनतृष्णार्ता युगान्ते समुपस्थिते ॥३६
भोशब्दमभिधास्यन्ति न च कश्चित्पठिष्यति ।
एकशङ्खास्तदा नार्यो गवेधुकपिनद्धका ॥३७
नक्षत्राणि वियोगीनि विपरीता दिशस्तथा ।
सन्ध्यारागोऽथ दिग्दाहो भविष्यत्यवरे युगे ॥३८
पितॄन्पुत्रा नियोक्ष्यन्ति वध्व. श्वश्रूश्च कर्मसु ।
वियोनिषु चरिष्यन्ति प्रमदासु नरास्तथा ॥३९
वाक्शरैस्तर्जयिष्यन्ति गुरूञ्छिष्यास्तथैव च ।
मुखेषु च प्रयोक्ष्यन्ति प्रमत्ताश्च नरास्तदा ॥४०
अव्रताग्राणि भोक्ष्यन्ति नराश्चैवाग्निहोत्रिण ।
भिक्षा बलिमदत्त्वा च भोक्ष्यन्ति पुरुषा. स्वयम् ॥४१
पतीन्सुप्तान्वञ्चयित्वा गमिष्यन्ति स्त्रियोऽन्यत. ।
पुरुषाश्च प्रसुप्तासु भार्यासु च परस्त्रिय म् । ४२
नाव्याधितो नाप्यरुजो जन सर्वोऽभ्यसूयक ।
न कृतिप्रतिकर्ता च काले क्षीणे भविष्यति ॥४३

ब्राह्मणगण अभक्ष्य व्यवहार करने वाले तथा आचार-विहीन लोगो से भी धन के लोभ से यज्ञ करायेंगे और उनको सम्मान जनक शब्दो से पुकारेंगे, पर वे वेद-शास्त्रो का अध्ययन नही करेंगे। स्त्रियाँ आभूषण विहीन हो जायेंगी ॥३६-३७॥ नक्षत्रो का ग्रह संयोग विच्छिन्न हो जायगा, दिशाओ का भाव बदल जायगा और निरन्तर दिग्दाह होने लगेगा ॥३८॥ पुत्र पिताओ से तथा बहुएँ सास से सेवा कार्य कराने लगेंगी। गुरु के प्रति शिष्य गर्जन-तर्जन करने लगेंगे। विभिन्न वर्ण के स्त्री पुरुषो मे सम्बन्ध होने लगेगा और इसे प्रशसनीय

माना जाने लगेगा । ३८-४०।। अग्निहोत्र वाले बलि तथा भिक्षादान के पहले ही भोजन कर लेंगे । स्त्रियो पर-पुरुषो से तथा पुरुष पराई स्त्रियो से दुराचार करने वाले हो जायेंगे ॥४१-४२॥ उस युग मे कोई मनुष्य नीरोग और मानसिक पीडा से मुक्त न होगा । सब लोग परस्पर द्वेष भाव करने लगेंगे और कोई उपकार के बदले मे भी प्रत्युपकार नही करेगा ॥४३॥

।। राजा जनमेजय के यज्ञ में विघ्न ।।

इत्येवमाश्वासयतो राजानं जनमेजयम् ।
अतीतानागतं वाक्यमृषेः परिषदा श्रुतम् ॥१
अमृतस्येव संवाहः प्रभा चन्द्रमसो यथा ।
अतर्पयत तच्छ्रोत्र महर्षेर्वाङ्मयो रसः ॥२
धर्मकामार्थसंयुक्तं करुणं वीरहर्षणम् ।
रमणीय तदाख्यानं कृत्स्नं परिषदा श्रुतम् ॥३
केचिदश्रूणि मुमुचुः श्रुत्वा दध्युस्तथापरे ।
इतिहासं तमृषिणा पाणाविव निदर्शितम् ॥४
सदस्यान्सोऽभ्यनुज्ञाय कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ।
पुनर्द्रक्ष्याम इत्युक्त्वा जगाम भगवानृषि ॥५
अनुजग्मुस्तदा सर्वे प्रयान्तमृषिसत्तमम् ।
लोके प्रवदता श्रेष्ठ ये विशिष्टास्तपोधनाः ॥६
याते भगवति व्यासे सदा ब्रह्मर्षिभि सह ।
ऋत्विजः पार्थिवाश्चैव प्रतिजग्मुर्यथागतम् ॥७

सूतजी ने कहा—महर्षि व्यासजी ने राजा जनमेजय को इस प्रकार अतीत काल और भविष्य की बात कह कर सान्त्वना दी, इस विवेचन को सुन कर सभी उपस्थित पुरुष परस्पर मे कहने लगे कि जिस प्रकार चन्द्रमा की चाँदनी और अमृतधारा के पीने से तृप्ति होती है, वैसे ही महर्षि व्यासजी के वचनामृत का पान करके हम अत्यन्त तृप्ति को प्राप्त हुए हैं ॥१-२॥ उस धर्म,

अर्थ और काम युक्त, वीरो के हर्ष की वृद्धि करने वाले तथा करुण और रमणीक वृत्तान्त को सुन कर सब उसका अनुमोदन करने लगे ॥३-४॥ फिर वे महामुनि सभा की प्रदक्षिणा कर 'पुनः कभी आपके दर्शन करूँगा' कहते हुए वहाँ से चले गये ॥ ५ ॥ उनके जाते समय जो ऋषि, तपस्वी, विप्रगण तथा ऋत्विज् आदि उन्हें पहुँचाने गये थे, वे कुछ दूर जाकर लौट आये ॥६-७॥

पन्नगानां सुघोराणां कृतानां वैरयातनाम् ।
जगाम रोपमुत्सृज्य राजा विर्षमिवोरगः ॥८
होमाग्निदीप्तशिरसं परित्राय च तक्षकम् ।
आस्तीकोऽथाश्रमपदं जगाम स महामुनिः ॥९
राजाऽपि हास्तिनपुरं जगाम स्वजनावृतः ।
अन्वशासच्च मुदितस्तदा प्रमुदिता प्रजा ॥१०
कस्यचित्त्वथ कालस्य स राजा जनमेजयः ।
दीक्षितो वाजिमेधेन विधिवद्भूरिदक्षिणः ॥११
सशप्तमश्वं तत्रास्य देवी काश्या वपुष्टमा ।
स विवेशोपगम्याथ विधिदृष्टेन कर्मणा ॥१२
तां तु सर्वानवद्याङ्गी चक्मे वासवस्तदा ।
संज्ञप्तमश्वमाविश्य तया मिश्रीबभूव सः ॥१३
तस्मिन्विकारे जनिते विदित्वा तत्त्वतश्च तत् ।
असंज्ञप्तोऽयमश्वस्ते ध्वंसेत्यध्वर्युमब्रवीत् ॥१४

जैसे विष को छोड़ कर सर्प क्रोध-रहित हुआ चला जाता है, वैसे ही राजा जनमेजय वैर और क्रोध का परित्याग कर वहाँ से चले गये ॥८॥ तभी महर्षि आस्तीक होमाग्नि से प्रदीप्त सिर वाले तक्षक की रक्षा करने के उपरान्त अपने आश्रम को चले गये ॥९॥ अपने अनुयायियों सहित हस्तिनापुर में आकर राजा जनमेजय ने हर्ष सहित राज्य का सचालन किया और प्रजा भी अपने राजा के दर्शन करके बहुत प्रसन्न हुई ॥१०॥ कुछ काल के उपरान्त महाराज जनमेजय विधि सहित अश्वमेध यज्ञ के लिये दीक्षित हुए ॥११॥ फिर जब यज्ञ

के घोडे को बलि किया गया तब राजमहिषी काशिराजसुता वपुष्टमा, उस के पास जा बैठी ।। १२।। तभी उस सर्वाङ्गसुदरी रानी वपुष्टमा को देख कर इन्द्र उस पर मोहित होगये और सूक्ष्म रूप धारण कर उन्होने उस घोडे के देह मे प्रवेश किया । इस प्रकार उसने रानी का सग प्राप्त किया ।।१३।। तब राजा जनमेजय ने इस प्रकार का विकार देख कर रानी से कहा—यह मृत अश्व ही तेरा काल हो जायगा ।।१४।।

अध्वयु र्ज्ञानिस पन्नस्तदिन्द्रस्य विचेष्टितम् ।
कथयामास राजर्षे शशाप स पुर दरम् ।।१५
यद्यस्ति मे यज्ञफल तपो वा रक्षत प्रजा ।
फलेनानेन सर्वेण ब्रवोमि श्रूयतामिदम् ।।१६
अद्यप्रभृति देवेन्द्रमजितेन्द्रिमजितेन्द्रियमस्थिरम् ।
क्षत्रिया वाजिमेधेन न यक्ष्य तीति शौनक ।।१७
ऋत्विजश्चाब्रवीत्क्रुद्ध स राजा जनमेजय ।
दौर्बल्य भवतामेतद्यदय धर्षित क्रतु ।।१८
विषये मे न वस्तव्य गच्छध्व सह बान्धवै ।
इत्युक्तास्तत्यजुर्विप्रास्त नृप जातमन्यव ।।१९
अमर्षादिन्वशासच्च पत्नीशालागत स्त्रिय ।
राजा परमधर्मज्ञस्तामसो जनमेजय ।।२०
असती वपुष्टमामेता निर्यातयत मे गृहात् ।
यया मे चरणो मूर्ध्नि पातितौ रेणुगुण्ठितौ ।।२१
शौण्डीर्यं मेऽनया भग्न यशो मानश्च दूषित ।
त चैना द्रष्टु मिच्छामि परिक्लिष्टामिव स्रजम् ।।२२

तभी ज्ञानवान् अध्वर्यु ने अपनी ज्ञान दृष्टि के प्रभाव से इन्द्र की कुचेष्टा को जान लिया और उसका सब वृत्तान्त राजा से यथावत् कहा ।। १५ ।। तब राजा ने कुपित होकर इन्द्र को शाप दिया कि यदि मेरे यज्ञ का, तप का अथवा प्रजा-पालन का कुछ भी धर्म फल बचा हो तो मेरे उसी फल से अश्वमेघ यज्ञ

का अनुष्ठ ता कोई भी क्षत्रिय अब से इन्द्र को नहीं पूजेगा ॥ १६-१७ ॥ फिर उस क्रोधित हुए राजा जनमेजय ने ऋत्विजो को सम्बोधित करके कहा—हे ऋत्विजो ! आपकी ही असावधानी से मेरे यज्ञ मे यह विघ्न उपस्थित हुआ है इसलिये अब से आप मेरे राज्य मे नही रहेंगे । आप सभी सपरिवार मेरे राज्य से तुरन्त ही चले जांय । राजा के वचन कर क्रोधित हुए ऋत्विज् गण तुरन्त ही वहाँ से चल दिये ॥१८-१६॥ फिर राजा जनमेजय अपने अन्त पुर मे पहुँचे और अत्यत क्रोध पूर्वक अपनी पत्नियो से कहने लगे मेरी आज्ञा है कि इस असती वपुष्टमा को मेरे गृह से तुरन्त ही निकाल बाहर करो, क्योंकि इस दुष्टा ने अपना धूलधूसरित पाँव मेरे सिर पर रख दिया है ॥२०-२१ । इसके कुकृत्य से मेरा सम्मान, गौरव और कीर्ति—सभी कुछ समाप्त होगया । उपभोग की हुई माला के समान नीरस हुई इस दुष्ट स्त्री का अब मुख भी नही देखूँगा ॥२२॥

न स्वादु सोऽश्नाति नर. सुखं स्वपिति वा रहः ।
अन्वास्ते य. प्रिया भार्या परेण मृदितामिह ॥२३
पुनर्नवोपभुञ्जन्ति श्वावलीढं हविर्यथा ।
एवमुच्चैः प्रभापन्त क्रुद्ध पारीक्षतं नृपम् ।
गन्धर्वराज. प्रोवाच विश्वावसुरिदं वचः ॥२४
क्षियनशतयज्वानं वासवस्त्वा न मृष्यते ।
अप्सरास्तेन पत्नी ते विहितेयं वपुष्टमा ॥२५
रम्भानामाप्सरा देवी काशिराजसुता मता ।
सैषा योषिद्वरा राजन्रत्नभूताऽनुसूयताम् ॥२६
यत्ते विवरमासाद्य विघ्नमिन्द्रेण ते कृतम् ।
यज्वा ह्यसि कुरुश्रेष्ठ समृद्धया वासवोपम. ॥२७
बिभेत्यभिभवाच्छक्रस्तव क्रतुफलं नृप ।
तस्मादावर्तितश्चैव क्रतुरिन्द्रेण ते विभो ॥२८
भार्यया वासवेनेह प्रयुक्ता विघ्नमिच्छता ।
क्रतोर्विवरमासाद्य मग्न्यं हय याजिनम् ॥२६

जो पुरुष पराये संसर्ग को प्राप्त हुई स्त्री के साथ जीवन-यापन करे, उसको कभी सुस्वादु पदार्थों से भी तृप्ति नहीं मिल सकती ॥ २३ ॥ इसलिये बुद्धिमान् पुरुष कुत्ते द्वारा दूषित हुई हवि के समान ही इस प्रकार की दुष्टा स्त्रियों का परित्याग कर देते हैं। जिस समय राजा जनमेजय इस प्रकार का कटु भाषण कर रहे थे, तभी गंधर्वराज विश्वावसु राजा के पास आकर बोले—हे राजन् ! आपके सौ यज्ञों का पूर्ण होना इन्द्र को किसी प्रकार भी सहन नहीं हुआ, इसीलिये उन्होंने अपनी रम्भा नाम की अप्सरा को वपुष्टमा बना कर आपकी भार्या कर दी ॥ २५ ॥ इसीलिये उस रम्भा ने काशिराज की पुत्री के रूप में जन्म लिया था। अतः आपकी रानी वपुष्टमा दुष्टा नहीं, स्त्रियों में रत्न रूपा है ॥ २६ ॥ यह तो आपके यज्ञ को भ्रष्ट करने की इन्द्र की ही चाल थी, क्योंकि आप ऐश्वर्य और यज्ञ-कर्म—दोनों में इन्द्र से कम नहीं हैं ॥२७॥ आपको सौ यज्ञों के पूर्ण होने पर जिस फल की प्राप्ति होती, उससे उनका इन्द्रत्व न छिन जाय, इसी आशंका से इन्द्र भयभीत रहते थे, इसीलिये अवसर मिलने पर उन्होंने आपके यज्ञ को निर्विघ्न पूर्ण नहीं होने दिया है ॥२८-२९॥

रतिमिन्द्रेण रम्भायां मन्यसे या वपुष्टमाम् ।
अथ ते गुरवः शप्तास्त्रियज्ञशतयाजिनः ॥३०
भ्र शितस्त्वं च विप्राश्च बलादिन्द्रसमादिह ।
त्वत्तश्चैव सुदुर्धर्षास्त्रियज्ञशतयाजिनः ॥३१
बिभेति हि सदा त्वत्तो ब्राह्मणेभ्योऽपि वासवः ।
एकेन वै तदुभय तीर्णं शक्रेण मायया ॥३२
स एष सुमहातेजा विजिगीषुः पुरन्दरः ।
कथमन्यैरनाचीर्णं नप्तुर्दारानतिक्रमेत् ॥३३
यथैव हि परा बुद्धिः परो धर्मः परो दमः ।
यथैव परमैश्वर्यं कीर्तितं हरिवाहने ।
तथैव त्वयि दुर्धर्षे त्रियज्ञशतयाजिनि ॥३४
मा वासवं मा च गुरूमात्मानं मा वपुष्टमाम्
गच्छ दोषेण कालो हि सर्वथा दुरतिक्रमः ॥३५

आपने जिसे वपुष्टमा मान रखा है, वह यथार्थ मे रम्भा है। आपके यज्ञ मे विघ्न उपस्थित करने के लिये ही इन्द्र ने यह षड्यन्त्र रचा था, जिसे न समझ कर आपने गुरुजनो को अपमानित किया है ॥३०॥ ऐसा करके आप सब ब्राह्मणो सहित इन्द्रत्व के फल से वंचित होगये हैं। इन्द्र को जो भय आपसे था, वही उन ब्राह्मणो से था, इसलिये एक ही छल मे उन्होंने दोनो को जीत लिया है ॥३१-३२॥ यदि यह बात न होती तो वे ऐसे जघन्य दुराचरण मे क्यों प्रवृत्त होते ? ॥३३॥ हे राजन् ! जिस प्रकार इन्द्र ज्ञान, धर्माचरण, दम, ऐश्वर्य और कीर्ति से युक्त हैं, उसी प्रकार आप में भी वे सब गुण समान रूप से हैं ॥३४॥ इसलिये आप इन्द्र, गुरुजन, वपुष्टमा, अथवा स्वयं को भी दोष मत दीजिये । यह तो काल का प्रभाव था, जिसके अतिक्रमण मे कोई भी समर्थ नही है ॥३५॥

ऐश्वर्येणाश्वमाविश्य देवेन्द्रेणासि रोषितः ।
आनुकूल्येन देवस्य वर्तितव्यं सुखार्थिना ॥३६
दुस्तरं प्रतिकूलं हि प्रतिस्रोत इवाम्भसः ।
स्त्रीरत्नमुपभुङ्क्ष्वेमामपापां विगतज्वरः ॥३७
अपापास्त्यज्यमाना वं त्यजेयुरपि योषितः ।
अदुष्टास्तु स्त्रियो राजन्दिव्यास्तु सविशेषतः ॥३८

इन्द्र ने अश्व के देह मे प्रवेश करके आप मे क्रोध उत्पन्न कर दिया है, यदि आप सुख की कामना करते हो तो इन्द्र के अनुकूल कार्य कीजिये ॥३६॥ जैसे जल का वेग नही रुक सकता, वैसे ही इन्द्र से प्रतिकूल होकर जीवन व्यतीत नही किया जा सकता । इसलिये आप इस नारी रत्न को निष्कलंक समझिये ॥३७॥ निरपराधिनी नारी का त्याग उसके क्रोध का कारण हो सकता है। एक तो नारी जाति के दोष को वैसे ही अधिक नही माना जाता, जिस पर वपुष्टमता में तो दिव्यागना होने की विशेषता है ॥३८॥

एवं स विश्वावसुनाऽनुनीतः प्रसादमागम्य वपुष्टमायाः ।
चकार मिथ्याः चर्यातिशङ्कितात्मा शान्तिं परां मानवधर्मदृष्टाम् ॥३९

श्रममिविनिवर्तमानसं स समभिलपज्जनमेजयो यशः स्वम् ।
विषयमनुशशास धर्मवृद्धिमुदितमना रमयन्वपुष्टमां ताम् ।।४०
नहीं विरमति विप्रपूजनान्न च वितिवर्तति यज्ञदानशीलात् ।
न विषयपरिक्षणाच्च्युतोऽभून्न च परिगर्हति तां वपुष्टमां च ।।४१
विधिविहितमशक्यमन्यथा हि कर्तुं यदृषिरचिन्त्यतया पुराऽब्रवीत्सः ।
इति स नृपतिरात्मवांस्तदाऽसौ तदनु विचिन्त्य बभूव वीतमन्युः ।।४२
इदं महाकाव्यमृषेर्महात्मनः पठन्नृणां पूज्यतमो भवेन्नरः ।
प्रकृष्टमायुः समवाप्य दुर्लभं लभेच्च सर्वज्ञफलं च केशवम् ।।४३
शतक्रतोः कल्मषविप्रमोक्षणं पठन्निदं मुच्यति कल्मषान्नरः ।
तथैव कामान्विविधान्समश्नुते ह्यवाप्तकामश्च चिराय नन्दति ।।४४

इस प्रकार विश्वावसु के वचनों को मान कर राजा जनमेजय ने वपुष्टमा के प्रति शंका रहित होकर अपने चित्त को शान्त कर लिया ।।३६।। फिर अपनी यश-वृद्धि के लिये दत्त चित्त होकर राज्य-शासन चलाने लगे और वपुष्टमा भी दोषारोपण को भूल कर प्रसन्न चित्त रहने लगी ।। ४० ।। उस समय से राजा जनमेजय ने ब्राह्मणों के पूजन में प्रमाद नहीं किया, दान और यज्ञ पहिले के समान ही होने लगे, देश-रक्षा के कार्य में भी वे कभी उदासीन नहीं रहे ।।४१।। महर्षि व्यासजी का वचन यथार्थ था कि काल की गति का उल्लंघन नहीं हो सकता—यह स्थिर कर राजा जनमेजय राज्य कार्य एवं विहार करने लगे ।।४२।। महर्षि व्यास प्रणीत इस महाकाव्य और इन्द्र के पाप नष्ट होने सम्बन्धी इस इतिहास के पढने वाले को मान, दीर्घायु, सर्वज्ञता और सुख प्राप्त होता है, उसका कोई भी अभीष्ट अपूर्ण नहीं रहता ।।४३-४४।।

।। सनातन ब्रह्म का वर्णन ।।

शृणुष्वैकमना राजन्यच्चेन्द्रियसमाहितः ।
कथां कथयतो राजन्निर्विकारेण चेतसा ।।१
ब्रह्मसम्बन्धसंबद्धमबद्धं कर्म भिन्नृप ।
पुरस्ताद्ब्रह्म संपन्नं ब्रह्मणो यददक्षिणम् ।।२

अव्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम् ।
निष्कलः पुरुषस्तस्मात्स बभूदात्मयोनिज ॥३
दिव्यो दिव्येन वपुषा सर्वभूतपतिर्विभुः ।
अचिन्त्यश्चाव्ययश्चैव युगाना प्रभवोऽव्यथः ॥४
अभूतश्चाप्यजातश्च सर्वत्र समता गतः ।
अव्यक्तात्परमं यत्तन्नारायणविदो विदुः ॥५
सर्वत पाणिपादं तं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥६
असतश्च सतश्चैव विज्ञेयं तत्र कारणम् ।
अव्यक्तो व्यक्तरूपस्थश्चरन्नपि न दृश्यते ॥७
विकारपुरुषोऽव्यक्तो ह्यरूपी रूपमाश्रित ।
चरत्यचिन्त्य सर्वेषु गूढोऽग्निरिव दारुषु ॥८

वैशम्पायनजी कहने लगे—हे राजन् ! आपने जो पचेन्द्रियों से न जान सकने योग्य परब्रह्म का स्वरूप सुनने की इच्छा की है, मैं उसे कह रहा हूँ, आप पवित्र भाव से सुनिये । उस सांख्य-सिद्धान्त के अनुसार सूक्ष्म और स्थूल जगत के कारण परम पुरुष का कभी नाश नहीं होता, वह सदा पूर्ण रहता है । अहंकार तत्त्व तथा ब्रह्मा की उत्पत्ति उसी से होती है ॥१-३॥ वह समस्त जीवों और सभी विषयों का स्वामी, सर्वत्र-व्याप्त, विचार में न आ सकने योग्य और खंडित न होने वाला है । काल सम्बन्धी परिवर्तन उसी के कारण होता है । वह किसी से उत्पन्न नहीं होता, फिर भी वह सर्वत्र विद्यमान रहता है । इसी से विद्वान उसे विभु और नारायण कहते हैं ॥४-५॥ उसके सब ओर हाथ, पैर, नेत्र, शिर और मुख हैं और वह इस समस्त विश्व को घेर कर रहता है । विश्व में सत् और असत् जो कुछ है उसका कारण वही है पर वह कभी प्रत्यक्ष दिखाई नहीं पड़ सकता वह लकड़ी में गर्भित अग्नि की तरह विश्व के प्रत्येक पदार्थ में समाया है, पर रूप रहित होने के कारण वह कभी देखा नहीं जा सकता ॥ ६-७-८ ॥

भूतभव्योद्‌भवो नाथः परमेष्ठी प्रजापतिः ।
प्रभुः सर्वस्य लोकस्य नाम चास्येति तत्त्वतः ॥६
अपदात्‌ पदो जातस्तस्मान्नारायणोऽभवत्‌ ।
अव्यक्तो व्यक्तिमापन्नो ब्रह्मयोगेन कामतः ॥१०
ब्रह्मभावे च तं विद्धि स शब्दं लब्धवान्प्रभुः ।
प्रभुः सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्येतरस्य च ॥११
अहं स्विति स होवाच प्रजाः स्रक्ष्यामि भारत ।
प्रभवः सर्वभूतानां यस्य तन्तुरिमाः प्रजाः ॥१२
स्वभावाज्जायते सर्वं स्वभावाच्च तथाऽभवत्‌।
अहंकारः स्वभावाच्च तथा सर्वमिदं जगत्‌ ॥१३
सर्वव्यापी निरालम्बो ह्यग्राह्योऽथ जयो ध्रुवः ।
एवं ब्रह्ममयो ज्योतिर्ब्रह्मशब्देन शब्दितः ॥१४
अव्यक्तो व्यक्तिमापन्नः पञ्चभिः क्रतुलक्षणैः ।
धारयन्ब्रह्मणो व्यक्तं विविधं चिन्तितं स्वरन्‌ ॥१५

काल तथा अवस्था की दृष्टि से वही भूत, भविष्य और वर्तमान काल के रूप में परिवर्तित होता रहता है । वह सब लोकों व जीवों का स्वामी, परम आश्रय और रचयिता है । उस नारायण के बिना पैर हुये भी अनेकों पैर हो जाते हैं और वह ब्रह्म योग द्वारा ही जाना जा सकता है । वह ब्रह्म कहा जाने वाला चराचर जगत का एकमात्र स्वामी है ॥६-११॥ वही सृष्टि-रचना का निश्चय करके उनमें सलग्न हो जाता है और तब उसी के शरीर से समस्त प्रजा का प्रादुर्भाव होता है ॥१२॥ इस विश्व-रचना के उद्भाव रूप समस्त तत्त्व तथा सम्पूर्ण विश्व उसी से उत्पन्न होता है यह विजयी, अवलम्बन रहित, सर्वव्यापी अदृश्य रहने वाला और स्वयं-प्रकाशित वाला तत्त्व ही 'ब्रह्म' शब्द से उल्लिखित होता है । यह ब्रह्म यद्यपि अव्यक्त है पर वही पाँच सूक्ष्म भूतों की उपाधियाँ ग्रहण करके सृष्टि-रचना का साधन बन जाता है ॥१३-१५॥

अथ मूर्ति समाधाय स्वभावाद्ब्रह्मचोदितः ।
ससर्ज सलिलं ब्रह्मा येन सर्वमिदं ततम्‌ ॥१६

वायु पूर्वमथो दृष्ट्वा यो धातुर्धातृसत्तमः ।
धारणाद्धातृशब्दं च लभते लोकसंज्ञितम् ॥१७

तदेतद्वायुसंभूतं कृत्स्नं जगदभूत्पुरा ।
एतद्देवं रतिक्रान्तं पूर्वमेव सरस्वती ॥१८
पृथक्त्वं गमितं तोयं पृथिवीशब्दमिच्छता ।
घनत्वाच्च द्रवत्वाच्च निखिलेनोपलभ्यते ॥१९

कलत्वात्सीदमानाच्च सलिले सलिलोद्भवः ।
व्याजहार शुभा वाणी समन्तात्पूरयन्निव ॥२०
ऊर्ध्वोऽहं स्थातुमिच्छामि ससीदाम्युद्धरस्व माम् ।
गम्भीरे तोयविवरे मूर्तिविक्षोभितान्तरम् ॥२१

विषय का आरम्भिक रूप जल बतलाया गया है, तदनुसार ब्रह्मा जल की ही सृष्टि करते हैं। जल से पूर्व वायु होती है। ये ब्रह्मा ही संसार को धारण करते हैं इसलिये जगत में 'धाता' कहे जाते हैं ॥१६-१७॥ उस जलमय संसार में जब ब्रह्मा की इच्छा प्राणियों के निवास योग्य स्थान बनाने की हुई तो जल और भूमि पृथक् पृथक् हो गये और द्रव तथा ठोस पदार्थों का भेद जान पड़ने लगा ॥ १८-१९ ॥ उस अवसर पर जल में डूबी हुई पृथ्वी ने स्वयं ही ब्रह्मा का ध्यान करते हुये कहा—इस अगम्य जल राशि में डूबी रहने से मैं अत्यन्त कंपित हूँ, आप मुझे कृपा कर बाहर निकालिये ॥२०-२१॥

ततो मूर्तिधरा देवी सर्वभूतप्ररोहिणी ।
यथायोगेन संभूता सर्वं च विषयं विभो ॥२२
श्रुत्वा च गदितं तस्या गिरं तां च शुभाक्षिणाम् ।
वराहरूपमास्थाय निपपात महार्णवे ॥२३
उद्धृत्य सोऽवनिं तोयात्कृत्वा सर्वं गुरुत्तरम् ।
समाधौ स्थाप्य गत्वा प्रीतो न च दृश्यते ॥२४
तदाद्यन्तमयं ज्योतिराकाशमिति च स्थितम् ।
तत्र ब्रह्मा समुद्भूतः सर्वभूतपितामहः ॥२५

अद्यापि मवमा धाम्ना धार्यते सर्व योगिना ।
ज्ञातयोगेन सूक्ष्मेण प्रजाना हितकाम्यया ॥२६
भित्त्वा तु पृथिवीमध्यमुपयाति समुद्भवम् ।
तपनस्तूर्ध्वं मातिष्ठन् रश्मिभि. स दहन्निव ॥२७
तस्य मण्डलमध्यात्तु नि सृत सोममण्डलम् ।
स सनातनजो ब्रह्मा सौम्य सोमत्वमन्वगात् ॥२८

इस पर भगवान ने 'वाराह रूप' द्वारा उसे बाहर निकाला। इस महान कार्य को पूरा करके वे अपने समाधि योग से वहीं अदृश्य हो गये ॥२२-२४॥ इस प्रकार वे ज्योति स्वरूप नारायण ही उस समय 'आकाश स्वरूप थे, उन्ही से विश्व-स्रष्टा ब्रह्माजी का उद्भव हुआ। अब भी वे अपनी इच्छा से योग-शक्ति द्वारा सब प्राणियो को धारण किये हुये हैं ॥२५-२६॥ उस पृथ्वी रूप-पिण्ड को विदीर्ण करके सूर्य प्रकट हुये जिनका तेज ऐसा था कि उससे विश्व जलता-सा जान पडता था। इस लिये उस मण्डल से एक दूसरा मण्डल प्रादुर्भाव हुआ जो अपने सौम्यत्व के कारण सोम-मण्डल कहा गया ॥२७ २८॥

सोममण्डलपर्यन्तात्पवन समजायत ।
तदक्षरमय ज्योतिस्तेजोभिरभिवर्द्धयन् ॥२६
स तु योगमयज्ञानात्स्वभावाद्ब्रह्मस भवात् ।
सृजते पुरुष दिव्य ब्रह्मयोनि सनातनम् ॥३०
द्रव यत्सलिल तस्य घन यत्पृथिवी भवत् ।
छिद्र यच्च तदाकाश ज्योतिर्यच्चक्षुरेव तत् ॥३१
वायुना स्पन्दते च न स धाताज्ज्योतिस भव ।
पुरुषात्पुरुषो भाव पञ्चभूतमयो महान् ॥३२
भूतात्मा वै समे नस्मि स्तस्मिन्देह सनातन ।
गुहाया निहित ज्ञान योगयज्ञ सनातन ॥३३
तपनस्यैव तद्रूप योऽग्निर्वसति देहिनाम् ।
शरीरे नित्यशो युक्ते धातुभि सह स गत ॥३४

स्वभावात्क्षयमायाति स्वभावाद्भयमेति च।
स्वाभावाद्विन्दते शान्ति स्वभावाच्च न विन्दति ॥३५

उस सोम मण्डल से जो पवन रूप तत्त्व निकला वह सर्व प्रकाशक तथा ज्योतिमय था, वही ससार मे 'वेद' के नाम से विख्यात हुआ। भगवान नारायण ने ही अपनी इच्छा से वेदोक्त सनातन पुरुष की सृष्टि की। उस सनातन पुरुष का द्रव भाग जल, स्थूल भाग पृथ्वी, पोला भाग आकाश ज्योति भाग नेत्र और शरीर का स्पन्दन ही वायु था। इस प्रकार उस अव्यक्त ब्रह्म से पचभौतिक विश्व की उत्पत्ति हुई ॥२६-३२॥ इस प्रकार वह सनातन पुरुष समस्त प्राणियों मे समान रूप से स्थित रहता है और इसका ज्ञान योग दृष्टि प्राप्त होने से ही होता है। शरीर में पचभूतो के साथ जो यह तपन रूप शक्ति रहती है उसको ही सामान्यजन 'जीव' कहते हैं पर तत्त्वदर्शी उसे परमात्मा का ही अंश आत्मा मानते हैं। यह आत्मा ही पूर्व संस्कारो के कारण गुलाब-गुल या शान्ति-अशान्ति का अनुभव किया करती है ॥३३-३५॥

इन्द्रियैर्व्यतिमूढात्मा मोहितो ब्रह्मणः पदे।
सम्भवं निधनं चैव कर्मभि. प्रतिपद्यते ॥३६
यावत्तद्ब्रह्मविषयं नोपमातीह तत्त्वतः।
तावत्संसारमाप्नोति सम्भवांश्च पुनः पुनः ॥३७
इन्द्रियैर्व्यतिरिक्तो वै यदा भवति योगवित्।
तदा ब्रह्मत्वमापन्नः प्रलयाग्रे प्रतिष्ठति ॥३८
प्रतिषिद्धममुं लोकं ब्रह्मवान्स भवत्युत।
न च रागव्ययं याति न च सज्जति कर्हिचित् ॥३९
आगतिं च गतिं चैव निधनं सम्भवं तथा।
भूतेभ्यो वेत्ति सर्वज्ञः परां सिद्धिमुपागतः ॥४०
आत्मनो गतयश्चैव तथा विषयगोचरम्।
पुरस्तात्कर्मनिर्वृत्तेः पदे ब्रह्म प्रतिष्ठितम् ॥४१
चित्तग्रन्थीश्च मनसा रुन्ध्यात्पूर्वांश्च यातनाः।
भिद्यमानाः प्रलोभेन वायुभिन्नमिवार्णवम् ॥४२

इन्द्रियों के व्यसनो मे फंसे हुये प्राणी ब्रह्मज्ञान की ओर आकर्षित नही होते और इससे ससार-चक्र मे ही फसे रहते है। पर जो इन्द्रियो को वशीभूत करके ब्रह्मयोग मे अग्रसर होते हैं, वे उस अचिन्त्य आनन्द को भोग कर प्रलय के पश्चात् भी परमानन्द की स्थिति को स्थायी कर लेते है ।।३६-३८।। इसलिये ब्रह्मज्ञानी सासारिक सुखो को क्षणस्थायी समझ कर कभी उनमे लिप्त नही होते। वरन् वे अन्य लोगो की गति, अगति, मृत्यु-जन्म के कर्म फलको देखते हुये अपनी मुक्ति के लिये ही प्रयत्न करते रहते हैं। जो विषय वासनायें सामान्य लोगो के चित्त मे हल-चल मचाती रहती है,ब्रह्मज्ञानी उनको दु:ख मूलक जान कर त्याग देते हैं ।।३६-४२।।

पच्यते हृदयं नीलं परम्यो ज्ञानचक्षुषा ।
अजप्रोक्तमिवात्मा वै विमुक्तो देहबन्धनात् ।।४३
सृजेदपि परं लोकं स हरेदपि विद्यया ।
तेजोमूर्तिरिवाविद्धमिह लोकं च ससृजेत् ।।४४
तिर्यग्योनौ गताश्चैव कर्मभिर्नियमोपमै ।
तान्यपि प्रतिमुच्ये ब्रह्मयुक्तेन चेतसा ।।४५
अक्षरं चाक्षरं चैव योगकर्माभिविद्यते ।
न क्षरं विद्यते तत्र यद्ब्रह्म कर्मभिध्रुवम् ।।४६

सच्चा ब्रह्मज्ञान उसी को समझना चाहिये जिससे हृदय काम-क्रोध आदि दुर्वासनाओ से मुक्त होकर ज्ञान चक्षु खुल जाते है और मन शुद्ध हो जाता है। ऐसा होने से मनुष्य देह बन्धन से छुटकारा पा जाता है। ऐसे ब्रह्मज्ञान सम्पन्न व्यक्ति ब्रह्मा के समान लोक की सृष्टि और सहार करने मे भी समर्थ होते हैं ।। ४३-४४ ।। वे स्वय ही नही अन्य पापग्रस्त तथा पशु-पक्षी योनियो में पडे जीवो का भी उद्धार कर देते हैं। सासारिक भोग और मोक्ष-दोनो ही योग कर्म के परिणाम हैं पर सत्य स्वरूप ब्रह्मयोगी मे कर्मकल्ष का कोई अश शेष नही रहता ।। ४५-४६ ।।

॥ शुभाशुभ कर्मों का फल ॥

पृथिव्यां यत्कृतं छिद्रं तपनेन विवर्द्धता ।
तस्मिन्न्यस्तोऽथ मैनाकः स्वभावविहितोऽचलः ॥१
पर्वभिः पर्वतत्वं च लभते नाम संज्ञितम् ।
अचलादचलत्वं च स्वभावान्मेरुरेव सः ॥२
यस्य पृष्ठे सुविस्तीर्णे नगस्य सुमहाद्भिमान् ।
तस्मिंस्तु पुरुषो व्यक्तो वसति ज्योतिरुद्भवः ।
विहितश्च स्वभावेन तेनैव परमात्मना ॥३
यत्तद्ब्रह्ममयं तेजो निहितं शिरसोऽन्तरे ।
तस्य ज्योतिर्मयं रूपं दीप्तं पुरुषविग्रहम् ॥४
वदनादभिनिष्क्रान्तं ज्वलन्तमिव तेजसा ।
चतुर्भिर्वदनैर्युक्तं चतुर्भिश्च भुजोत्तमैः ॥५
वक्त्रे ब्रह्मसमुद्भूत ब्रह्मा ब्राह्मणपुङ्गवः ।
तदेव तन्महाभूतं पुनर्भावत्वमागतम् ॥६
उद्धृता पृथिवी देवी पुरस्तात्सलिलाशयात् ।
ब्रह्मत्वं ब्रह्मणः स्थानादलोको लोकतां गतः ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे महाराज ! पृथ्वी के मध्य भाग को विदीर्ण करके जब सूर्य आकाश में स्थित हो जाते हैं, तो इससे जो छिद्र होता है उस जगह सुमेरु और मैनाक पर्वत उपस्थित हो जाते हैं । इनमें 'पर्व' (कामना पूर्ण करने की प्रवृत्ति) होती है इसलिये उनका नाम पर्वत' पड़ा । चलने फिरने की शक्ति न होने से इनको अचल, कहा गया ॥ १-२ ॥ उस सुमेरु पर्वत की पीठ पर ज्योतिर्मय परमेश्वर की स्थिति होती है । वेदान्त के अनुसार जिसे ब्रह्ममय तेज कहा गया है, उस ज्योतिर्मय परम पुरुष उसका विग्रह होता है ॥३-४ । उस परम पुरुष के मुख में चार मुख युक्त तथा प्रदीप्त जान पड़ने वाला जो तेज निकलता उसी को चतुर्मुख कहते हैं । ब्रह्म के मुख से उत्पन्न होने के कारण ही उसे ब्रह्मा कहते हैं और इसी से द्विज का नाम ब्राह्मण कहा गया है ॥ ५-६ ॥

पृथ्वी का जल के भीतर से उद्धार करने वाले भगवान वाराह चतुर्भुज कहे गये है ॥ ७ ॥

पदसंधौ ब्रह्मलोकं शृङ्गं मेरोस्तदाऽभवत् ।
उच्छ्रितं योजनशतं सहस्रशतमेव च ॥८
एवमेक्ष च विस्तारं चतुर्भिर्गुणितं गुणैः ।
अथवा नैव सख्यातु शक्य भूतेन केनचित् ॥६
चतुर्भिः पार्श्वविस्तारैः शिलाभिरभिसवृतैः ।
नगस्य यस्य राजेन्द्र विस्तारैः शतयोजनैः ॥१०
कोटिकोटीशतगुणैर्गुणितं ब्रह्मवादिभिः ।
योगयुक्तैः सदा सिद्धैर्नित्यं ब्रह्मपरायणैः ॥११
मरुद्भि. सह देवेन्द्रैः रुद्रैर्वसुभिरेव च ।
आदित्यैर्विश्वसहितैः ररक्ष वसुधाधिपान् ॥१२
ररक्ष पृथिवी चैव भगवान्विष्णुना ।
विवस्वद्वरुणाभ्या च संघातं गमिता नृप ॥१३
तेन ब्राह्मेण वपुषा ब्रह्मप्राप्तेन भारत ।
यस्माद्विष्णुमयं तेजः सर्वस्य समता गतम् ॥१४
यत्तद्ब्रह्मेति वै प्रोक्त ब्राह्मणैर्वेदपारगै. ।
नियमैर्बहुभि. प्राप्तं सत्यव्रतपरायणैः. । १५

सुमेरु के शिखर की ऊँचाई सौ हजार योजन और विस्तार इससे चौगुना बतलाया गया है। उसी के ऊपर ब्रह्मलोक की स्थिति कही जाती है। इस पर्वत के विस्तार की नाप-जोख कोई लाखो वर्ष मे भी नही कर सकता ॥८-६॥ उसके चारो ओर स्तम्भो की तरह महाविशाल शिलायें दिखाई पड़ती है। योग-परायण सिद्ध ब्रह्मज्ञानी भी उनका विस्तार करोडो योजन बतलाते हैं। वास्तव में उसके विस्तार को कोई जान नही सकता वह अनन्त है ॥१०-११॥ उन चास मरुत, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य विश्वे देव, वरुण और इन्द्रादि देवो से यह पृथ्वी व्याप्त रहती है और भगवान विष्णु और ब्रह्मा अपने तेज से पृथ्वी का

पालन करते है और कर्म तथा ज्ञान के मोक्षप्रद उपदेशो से यहां के राजाओ आदि का मार्ग दर्शन करते हैं ॥१२-१५॥

एवमेते त्रयो लोका ब्राह्मेऽहनि समाहिताः ।
अहनि ब्रह्म चाव्यक्तं व्यक्तं प्राणे प्रतिष्ठितम् ॥१६
ब्रह्मणो नियतं कर्म प्रभावेण प्रचोदितम् ।
प्रवर्त्तमानं भावेन शश्वदच्छलवादिनाम् ॥१७
एतद्धितमिति प्रोक्तं ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ।
यदेकं ब्रह्मणः पादं दिष्टत्वं गमितं पदम् ॥१८
बहुत्वाद्विप्रभावाना विश्वशब्दः प्रयुज्यते ।
ब्राह्मणैर्ब्रह्मभूतात्मा सत्यव्रतपरायणैः ॥१९
विश्वरूपं मनोरूपं बुद्धिरूपं च मानयन् ।
एवं द्वन्द्वं स भगवान्प्रथमं मिथुनं सृजत् ॥२०
स एव भगवान्विश्वो देव्या सह सनातनः ।
विधाय विपुलान्भोगान्ब्रह्मा चरति सानुगः ॥२१

जिस ब्रह्म को तीनो लोक वासी अव्यक्त और यज्ञ मे प्रतिष्ठित कहते हैं, योगी जन उसे प्रत्यक्ष रूप से अपनी अन्तरात्मा मे स्थिति देखते हैं। पुण्य कर्मों मे अनुराग रखने वाले धार्मिक जन जो कर्म वेद विहित करते हैं,वेदोंके ज्ञाता उसे हितकर कहते हैं। पर इस प्रकार के कर्म जनित पुण्य परमात्मा के एक अंश भाग ही होते हैं, क्योंकि वह वास्तव मे कर्म से नही आत्मज्ञान से ही प्राप्त हो सकता है। इसी लिये सत्य को मानने वाले ब्रह्मविद् 'विश्व' शब्द से उसका उल्लेख करते हैं ॥ १६-१९ ॥ वही परमात्मा स्थूल रूप, मनोरूप तथा बुद्धिरूप जगत को रच कर सर्व प्रथम मिथुन (स्त्री-पुरुषो) की रचना करता है। वही विश्वरूप भगवान आदि देवियो के रूप मे विपुल भोग करता सर्वत्र स्थित है ॥ २०-२१ ॥

स एष भगवान्ब्रह्मानित्यं ब्रह्मविदां वरः ।
निर्वाणभयगन्तॄणामकिंचनपर्येषिणाम् ॥२२

सोमात्सोमः समुत्पन्नो धारासलिलविग्रहात् ।
यथाभिषिक्तो भूतानामाधिपत्ये महेश्वरः ॥२३
अभिषिच्य च भूतेशं कृत्वा कर्म स्वभावतः ।
नदति स्म तदा नादं तेन सा ह्युच्यते नदी ॥२४
सा ब्रह्मलोकं सम्भाव्य अभिभूय सहस्रधा ।
गा गता गगनाद्देवी सप्तधा प्रससार च ॥२५
सहस्रधा च राजेन्द्र बहुधा च पुनः पुनः ।
इमं लोकममुं चैव भावयन्क्षरसम्भवम् ॥२६
ततो भूतानि रोहन्ति महाभूतफलानि च ।
ततः सर्वे-क्रियारम्भाः प्रवर्त्तन्ते मनीषिणाम् ॥२७

जो ब्रह्मज्ञान परायण ऋषि-मुनि निर्वाण-पदगामी जनों में अग्रणी और त्याग परायण थे उनके नियन्ता ब्रह्माजी ही होते हैं। परमेश्वर के सलिल रूप से सोमदेव की उत्पत्ति हुई है। उसी सलिल से परमात्मा ने समस्त जीवों के अध्यक्ष पद पर भगवान महेश्वर को अभिषिक्त किया ॥२२-२३॥ तत्पश्चात् वे बहुत गम्भीर रूप से नाद करने लगे, जिससे उस सलिल धारा का नाम नदी हुआ। परमात्मा द्वारा प्रकट नदी ब्रह्मलोक होकर पर्वतादि को विदीर्ण करके पृथ्वी पर आई। गगन से आने के कारण ही उसका नाम गंगा पड़ा और वह पृथ्वी पर सात धाराओं में विभक्त होकर बहने लगी ॥२४-२५॥ फिर उन गंगा ने सहस्रों तीर्थों के रूप में अपना विस्तार किया जिससे लोक और पर लोक में उनका विस्तार हुआ और मान वृद्धि हुई। गंगाजी के जल के तेज से धान्य के बीज अंकुरित होने लगे और उनसे तरह-तरह के प्राणियों की वृद्धि होने लगी। इन धान्य तथा मनुष्यादि में ही मनीषियों द्वारा समस्त धार्मिक क्रियाऐं प्रवर्तित की गईं ॥ २६-२७ ॥

चतुर्भिर्वदनैस्तस्य मुखपद्माद्विनिःसृता ।
तदाऽक्षरमयी सिद्धिर्दिशत्व समुपागता ॥२८

तस्य ज्ञानमयं पुण्य चतुष्पादं सनातनम् ।
पतित्वेनाभवद्देवो ब्रह्मा चात्र पितामह ॥२९
पादा धर्मस्य चत्वारो यैरिद धार्यंते जगत् ।
ब्रह्मचर्येण व्यक्तेन गृहस्थेन च पावने ॥३०
गुरुभावेन वाक्येन गुह्यगामिनगामिना ।
इत्येते धर्मपादा स्यु. स्वर्गहेतो प्रचोदिताः ॥३१
न्यायाद्धर्मेण गुह्येन सोमो वर्धति मण्डले ।
ब्रह्मणो ब्रह्मचरणाद्वेदा वर्तन्ति शाश्वता ॥३२
गृहस्थानभिवाक्येन तृप्यन्ति पितरस्तथा ।
ऋषयोऽपि च धर्मेण नगस्य शिरसि स्थिता ॥३३
नगस्य तस्य सम्पश्य मेरोः शिखरमुत्तमम् ।
पद्भ्या सम्पीड्य वृषणावृषिभिस्तैर्विचार्यते ॥३४
ग्रीवा निगृह्य पृष्ठ च विनाम्य प्रहसन्निव ।
नाभिदेशे करौ न्यस्य सव शोऽङ्गानि स क्षिपन् ॥३५

ब्रह्माजी के चारो मुखो से जो-जो ज्ञानमय शब्द निकले वे ही चारों वेद हो गये जो मनुष्यों को धर्म साधन और ब्रह्म प्राप्ति का मार्ग दिखलाते हैं। वही वेद रूपी ज्ञान आगे चल कर यज्ञ के ब्रह्मा, उद्गाता, होता और अध्वर्यु—इन चार भागो से सम्पन्न होकर अनन्त विस्तार को प्राप्त हो गया और स्वयं भगवान ब्रह्मा ही उस पद के अधिपति हुये ॥२८-२९॥ धर्म के भी ये ही चार चरण हैं जिनसे वह ससार को धारण करता है। ब्रह्मचर्य आदि चारो आश्रम भी धर्म के चार चरण हैं। धर्म के ये चरण ही स्वर्ग और मोक्ष के साधन रूप माने गये हैं ॥३०-३१॥ योग का गुह्य ज्ञान स्वाध्याय और मनन द्वारा होता है, जिससे मानसिक विकास होता है और वहाँ वेदोक्त ब्रह्मचर्य की स्थिति होती है। गृहस्थ आश्रम का पालन करने वाले व्यक्ति जब इस प्रकार ब्रह्म-योग की ओर प्रवृत्त होते हैं तो मेरु शिखर पर रहने वाले ऋषिगण तथा उनके पितृगण इससे परम सतुष्ट हो जाते हैं ॥३२-३३॥ वे ऋषि उसी उत्तम शिखर पर विराजमान होकर सदा अवलोकन करते रहते हैं और जघामूल में दांये और बांये पैर के

गुल्फ को रख कर गर्दन तथा रीढ की हड्डी को सीधा रखते हुये नाभि देश पर हथेलियों को रख कर, मुख को सहज रूप से प्रसन्न मुद्रा मे रखते हुये साधना पर बैठते हैं। यही योगियों का आसन कहलाता है ॥३४-३५॥

मूर्ध्नि ब्रह्म समुत्क्षिप्य मनसाऽपि पितामहः ।
असृजन्मनसा विष्णुं योगाद्योगेश्वरस्य च ।। ३६
व्यतिरिक्तेन्द्रियो विष्णुर्बिम्बाद्विम्बमिवोद्धृतः ।
तेजोमूर्तिधरो देवो नभसीन्दुरिवोदितः ।।३७
रराज ब्रह्मयोगेन सहस्रांशुरिवापरः ।
विराजन्नभसो मध्ये प्रभाभिरतुलं प्रभुः ।।३८
नोपलभ्यति मूढात्मा प्रत्यक्ष ब्रह्म शाश्वतम् ।
ललाटमध्ये तिष्ठन्तं द्विधाभूत क्रिया प्रति ।।३९
ज्योतिश्चक्षुषि सम्बद्ध विम्ब भास्करसोमयोः ।
बुद्ध्या पूर्वं तु पश्यन्ति अध्यात्मविषये रताः ।।४०
ब्राह्मणा वेदविद्वांस. सत्यव्रतपरायणाः ।
नेतरे जातु पश्यन्ति अध्यात्म नावबुध्यते ।।४१

इस प्रकार स्थिर आसन पर बैठ कर योग-साधक श्वास को नियन्त्रित करते हुये मस्तक के मध्य मे विष्णु-भगवान का ध्यान करते हैं। उस समय सब इन्द्रियों के विषयों से निवृत्त हो जाने से हृ... मे ऐसा ज्ञानालोक होता है मानो आकाश मे चन्द्रमा का उदय ही हो ।। ३६-३७ ।। ऐसी ब्रह्मयोग की साधना से अन्तरात्मा मे ज्ञान का ऐसा प्रकाश हो जाता है मानो एक नये सूर्य ही प्रकाशित हो उठा हो। यद्यपि यह भूतात्मा ब्रह्म ललाट के मध्य मे ही स्थित रहता है, पर अज्ञानी जन उसे नही जान पाते ।। ३८-३९ ।। चन्द्रमा तथा सूर्य स... ज्योति मनुष्य के दोनो नेत्रों मे समाई रहती है, पर ध्यान द्वारा मन को एकाग्र कर सकने वाले ही उसका दर्शन कर सकते हैं। वेदोक्त मार्ग से आत्म साधना करने वाले मनीषी ही उसका अनुभाव करने मे समर्थ होते हैं अन्य लोगों को इस अध्यात्म तत्त्व का परिचय नही हो पाता ।।४०-४१।।

तस्य ज्ञानमयं पुण्यं चतुष्पादं सनातनम् ।
पतित्वेनाभवद्देवो ब्रह्मा चात्र पितामहः ॥२६
पादा धर्मस्य चत्वारो यैरिदं धार्यते जगत् ।
ब्रह्मचर्येण व्यक्तेन गृहस्थेन च पावने ॥३०
गुरुभावेन वाक्येन गुह्यगामिनगामिना ।
इत्येते धर्मपादाः स्युः स्वर्गहेतोः प्रचोदिताः ॥३१
न्यायाद्धर्मेण गुह्येन सोमो वर्द्धति मण्डले ।
ब्रह्मणो ब्रह्मचरणाद्वेदा वर्तन्ति शाश्वताः ॥३२
गृहस्थानभिवाक्येन तृप्यन्ति पितरस्तथा ।
ऋषयोऽपि च धर्मेण नगस्य शिरसि स्थिताः ॥३३
नगस्य तस्य सम्पश्य मेरोः शिखरमुत्तमम् ।
पद्भ्यां सम्पीड्य वृषणावृषिभिस्तैर्विचार्यते ॥३४
ग्रीवां निगृह्य पृष्टं च विनाम्य प्रहसन्निव ।
नाभिदेशे करौ न्यस्य सर्वशोऽङ्गानि संक्षिपन् ॥३५

गुल्फ को रख कर गर्दन तथा रीढ़ की हड्डी को सीधा रखते हुये नाभि देश पर हथेलियों को रख कर, मुख को सहज रूप से प्रसन्न मुद्रा में रखते हुये साधना पर बैठते हैं। यही योगियों का आसन कहलाता है ॥३४-३५॥

मूर्ध्नि ब्रह्म समुत्क्षिप्य मनसाऽपि पितामहः ।
असृजन्मनसा विष्णुं योगाद्योगेश्वरस्य च ॥३६
व्यतिरिक्तेन्द्रियो विष्णुर्बिम्बाद्बिम्बमिवोद्धृतः ।
तेजोमूर्तिधरो देवो नभसीन्दुरिवोदितः ॥३७
रराज ब्रह्मयोगेन सहस्रांशुरिवापरः ।
विराजन्नभसो मध्ये प्रभाभिरतुलं प्रभुः ॥३८
नोपलभ्यति मूढाना प्रत्यक्षं ब्रह्म शाश्वतम् ।
ललाटमध्ये तिष्ठन्तं द्विधाभूतं क्रियां प्रति ॥३९
ज्योतिश्चक्षुषि सम्बद्धं बिम्बं भास्करसोमयोः ।
बुद्ध्या पूर्वं तु पश्यन्ति अध्यात्मविषये रताः ॥४०
ब्राह्मणा वेदविद्वांसः सत्यव्रतपरायणाः ।
नेतरे जातु पश्यन्ति अध्यात्मं नावबुध्यते ॥४१

शान्ति प्राप्त करता है। वेदज्ञ महात्मा इसी को 'वैष्णव-यज्ञ' कहते हैं ॥ ५३-५६ ॥

चेतसस्तूपलम्भं हि मनोग्राह्यस्य कामतः।
कारणं श्रोतुमिच्छामि यथा त्वं मन्यसे मुने ॥५७
न ह्यस्य कारणं किञ्चिद्बाह्यं भवति भारत।
अन्तर्गतं कारणं तु शारीरं मानसं नृप ॥५८
येन वेद्यं विदुर्मर्त्या ब्राह्मणाः सशितव्रताः।
अवेद्यमपि वेद्य च शक्यं वेत्तुं न कर्मणा ॥५९
ब्राह्मणेन विनीतेन सदा ब्रह्मनिषेविणा।
सदा विदिततत्त्वेन सिद्धिहेतोर्महीपते ॥६०
सदा चैव शुचिर्भूत्वा नियतो ब्रह्मकर्मणा।
उपतिष्ठेत स गुरुं बद्धाञ्जलिपुटो द्विज. ॥६१
सायं प्रातश्च तत्त्वज्ञो मोक्षकर्माणि कारयेत्।
विनीतो ब्रह्मभावेन समाहितमतिर्मुनिः ॥६२
सम्प्रपद्येत मनसा वैष्णव पदमुत्तमम्।
ध्यायन्नेव प्रसीदेत समाहितमतिर्द्विजः ॥६३

राजा जनमेजय ने प्रश्न किया—जिस प्रकार ईंधन के न मिलने पर आग स्वयं बुझ जाती है उसी प्रकार भोगों के उपलब्ध न होने पर उनका शान्त हो जाना स्वाभाविक है। ऐसी दशा में यदि मन एक बार समाधि अवस्था में पहुंच जाता है तो फिर वह विषयों की ओर क्यों आकृष्ट होता है ॥ ५७ ॥ वैशम्पायनजी ने कहा—इस प्रकार मन का पुनरावर्तन आन्तरिक, शारीरिक अथवा मानसिक कारणों से ही होता है। ऐसे कारण मन में उपस्थित होकर चित्त को चलायमान कर देते हैं। इन कारणों को जिस ज्ञान द्वारा जाना जा सकता है उसका प्राप्त करना भी कठिन ही है। वह शास्त्रों के स्वाध्याय तथा सुयोग्य आचार्य के उपदेश से ही प्राप्त हो सकता है, कर्म द्वारा उसका ज्ञान होना सम्भव नहीं ॥५८-५६॥ निर्वाण अभिलाषी को शुद्ध-पवित्र होकर नम्रता पूर्वक—आचार्य की उपासना करनी और दोनों समय धारणा-ध्यान आदि मोक्ष

प्रदायक कर्मो मे दत्तचित्त होना चाहिये । उसे समाहित चित्त से विनीत भाव रखते हुये ब्रह्म की भावना करनी चाहिये ॥६०-६२॥ ऐसा करने से अवश्य ही श्रेष्ठ वैष्णवपद की प्राप्ति होती है । इसमे सन्देह नही कि मनः प्रसाद ऐसी उच्चगति प्राप्त करने का मुख्य साधन है ॥६३॥

गच्छते परमं ब्रह्म निर्विकारेण चेतसा ।
अपुनर्भवभावज्ञो निर्ममो भावबन्धनात् ॥६४
सदेवाक्षरमित्याहुर्यत्तद्ब्रह्म सनातनम् ।
तर्हि सत्कर्मयोगेन विद्यायोगेन दर्शितम् ॥६५
ब्राह्मणाना विनीताना वैष्णवे पदसञ्चये ।
सर्वद्रव्यातिरिक्ताना कामयोगविगर्हिणाम् ॥६६
अपुनर्भाविना लोका कर्मयोगप्रतिष्ठिता ।
अनादानेन मनसा राजन्कर्मणि कर्मणि ॥६७
आदानाद्बद्धयते जन्तुर्निरादानात्प्रमुच्यते ।
ब्राह्मणेभ्य क्रियावाप्तिर्जन्तो पूर्वाञ्जनाधिप ॥६८
मुक्तश्चेन्द्रियबन्धेन प्राप्नश्च परमं पदम ।
न भूय. पुनरायाति मानुषं देहविग्रहम् ॥६९

जब साधक का चित्त सासारिक विकारो से शून्य हो जाता है तो ब्रह्म साक्षात्कार मे विलम्ब नही होता और भव बन्धनो से शीघ्र ही छुटकारा हो जाता है ॥६४॥ इसमे कुछ भी सन्देह नही कि सनातन ब्रह्म की प्राप्ति कर्मयोग और ज्ञान योग द्वारा ही निश्चित है । जो साधक वेदो के ज्ञाता और विनीत होते है और सासारिक पदार्थो और विषय भोग से अनासक्त होते हैं वे ही वैष्णव-पद तक पहुंच सकते हैं ॥६५-६६॥ यद्यपि कर्म को पुनर्जन्म का कारण बतलाया गया है पर जो अनासक्त भाव से कर्म करते हैं उनके लिये यही मोक्ष का आधार बन जाता है और ऐस साधनो का कभी पुनरागमन नही होता । फलाकाक्षा से कर्म करने के कारण प्राणी बन्धन में पडता है और फलाशा का त्याग करके कर्म करने से इन्द्रियों के बन्धन से मुक्त होकर परम पद को प्राप्त

कर लेता है, और उसको मानव देह ग्रहण करने के लिये इस जगत मे नही आना पड़ता ।।६७-६८।।

।। सनातन जगत का प्रमाण ।।

उपसर्गं च योगं च ध्यातव्यं चैव यत्पदम् ।
न भूयः पुनरायाति मानुषं देहविग्रहम् ।।१
शृणु विस्तरतः सर्वं यथा पृच्छसि मेधया ।
उपपन्नेन मनसा ब्रह्मादीनामनेकधा ।।२
पञ्च सिद्धिगुणांस्त्यक्त्वा पश्यतो ब्रह्मणो नृप ।
योगयुक्तेन मनसा पञ्चेन्द्रियनिवासिनः ।।३
ब्रह्मणश्चिन्तयानस्य ब्रह्मयज्ञं सनातनम् ।
बहुरूपमनैश्वर्यात्प्रवर्त्तति निरोधनम् ।।४
पञ्चेन्द्रियस्य ग्रामस्य नवद्वारस्य भारत ।
कामक्रोधस्य लोभस्य सन्निरुद्धस्य मेधया ।।५
तेजसा मूर्ध्नि चाधाय धूमो दोधूयते महान् ।
नीललोहितवर्णाभिः पीतैः श्वेतैश्च धातुभिः ।।६
माञ्जिष्ठरागवर्णाभैः कपोतसदृशैस्तथा ।
शुद्धवैडूर्यवर्णाभैः पद्मवर्णदलप्रभैः ।।७
स्फाटिकैर्मणिवर्णाभैर्नगेन्द्रसदृशैस्तथा ।
इन्द्रगोपकवर्णाभैश्चन्द्रांशुसलिलप्रभैः ।।८
बहुवर्णैः सुधूमौघैरिन्द्रायुधसमप्रभैः ।
सपतद्भिश्च युगपन्मेघैरिव समागमे ।।९

राजा जनमेजय ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ मैं योग मार्ग और उसमें आने वाले विघ्न, ध्यान करने योग्य सत्य के विषय में विशेष रूप से सुनना चाहता हूँ जिसे जानकर फिर मानव-देह में नहीं आना पड़ता ।।१।। वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् बहुत योग की साधना में जो अनेकों प्रकार के उपसर्ग आते हैं

मैं उनका वर्णन विस्तार पूर्वक सुनाता हूँ ॥२॥ जो साधक पाँचो इन्द्रियो के विषयो को त्याग कर सनातन ब्रह्म का ध्यान करते हैं उनको स्वयमेव ही दूर-दर्शन, दूर श्रवण आदि योगैश्वर्य प्राप्त हो जाते हैं और ये योग मार्ग की सर्वोच सिद्धि मे बाधा स्वरूप सिद्ध होते हैं ॥३-४॥ इस पचेन्द्रिय युक्त गृह मे नौ द्वार हैं जिनको काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि अवरुद्ध किये रहते हैं ॥५॥ जब साधक योग साधन मे सलग्न होता है तो उसमे एक तेज का प्रादुर्भाव होता है जो मस्तक मे होकर निकलने लगता है। उससे एक गहरा धुँवा सा निकलने लगता है। वह धुँवा समय समय पर नीला, लाल पीला श्वेत, मजीठ के रग का, कबूतर के रग का, वैदूर्य पद्मराग, स्फटिक मणियों के रग का अथवा नागेन्द्र-राज, इन्द्रगोप कीट, चन्द्रकिरण, इन्द्रधनुष आदि के विविध वर्णों का होता है और आकाशस्थ मेघो के समान छा जाता है ॥६ ६॥

निरुध्यन्त इवाकाशे पक्षवद्भिरिवाद्रिभि ॥
ते धूमवर्णा सघाता घना सलिलधारिण ।
निर्वमुश्चैव तोयौघान्विविधुर्वसुधातलम् ॥१०
मूर्ध्नि चैव महानग्निर्मानसो भूयते प्रभु ।
युक्त परमयोगेन शतशोऽर्चिभिरावृत ॥११
तस्यार्च विस्फुलिङ्गाना सहस्राणि शतानि च ।
विसृज्य सर्वगात्रेभ्यो ज्वलन्निव युगाग्नय ॥१२
याव त्थो वर्ष धारास्तु ताव त्योऽर्च्योऽनलस्य च ।
समेयुर्वारिधाराभिर्विपुले वसुधातले ॥१३
वर्णाभ्या युज्यमानस्य वायुर्दोधूयते महान् ।
दिव्यसिद्धगुणोद्भू न सूक्ष्मप्राणविवर्द्धन ॥१४
वेगवान्भीमनिर्घोषो वलवान्प्राणगोचर ।
तैरेव चाग्निसघातैर्धातुभि सह सगत ॥१५

जब वह धुँवा निरुद्ध होकर घनीभूत होता है तो वह वर्षा करने वाले बादलो का रूप ग्रहण कर लेता है और उससे जो जल बरसता है उससे समस्त

वसुधा आर्द्र हो जाती है ॥१०॥ इसके पश्चात् ऐसा जान पड़ता है मानो मस्तक मे अत्यन्त भयकर अग्नि भड़क उठी है और योगी की समस्त देह से असख्य चिनगारियाँ निकल रही हैं और उस अग्नि ने प्रलयाग्नि का-सा रूप धारण कर लिया है ॥११-१२॥ उस समय यह आश्चर्य होता है कि मेघ से जितनी जल-धारा बरसती है उतनी ही अग्नि अधिक भड़कती है, पर अन्त मे ये दोनो शान्त हो जाती हैं ॥१३॥ तत्पश्चात् बड़े जोर की वायु चलने का आभास होता है। वह दिव्य गुणो युक्त वायु अन्य तत्त्वो से मिलकर 'सूक्ष्म प्राण' का नाम धारण कर लेता है। उसका वेग बड़ा तीव्र और शब्द अत्यन्त भयकर होता है। उसकी शक्ति समस्त जगत का भेदन कर सकने वाली जान पड़ती है ॥१४-१५॥

सहस्रशोऽथ शतशो मूर्तिकृत्वा पृथग्विधाम् ।
अग्निर्वायुर्जलं भूमिर्धातवो ब्रह्मचोदिताः ॥१६
समवायत्वमापन्ना बीजभूता महीपते ।
संघातं ब्रह्मवेगेन धातवो गमिता नृप ॥१७
यद्ब्रह्म चक्षुषोर्मध्ये स सूक्ष्मः पुरुषो विराट् ।
तयोरन्यान्बहून्सूक्ष्मान्ससृजे पुरुषोत्तम. ॥१८
स एव भगवान्विष्णुर्व्यक्ताव्यक्तः सनातनः ।
आधारः सर्वविद्याना प्रलये प्रलयान्तकृत् ॥१९
तं मूर्ध्नि धातुभिर्नद्धं विशन्ति ब्रह्मचोदिताः ।
तेऽन्तरा. पुरुषा. सर्वे ज्ञानारः सुखदु खयोः ॥२०
अथ चेष्टितुमारब्धा मूर्तयो ब्रह्मसमिता. ।
भित्त्वा च धरणी देवी प्रापयन्त दिशो दश ॥२१

वैशम्पायन जी ने जनमेजय से फिर कहा—हे राजन् ! इस प्रकार अ[illegible] वायु, जल, पृथ्वी, आकाश आदि तत्त्व एक दूसरे मे सम्मिलित होकर सैक[illegible] हजारों प्रकार के रूप धारण कर लेते हैं, पर वास्तव में इस प्रकार के भाव होने का कारण वह ब्रह्म ही होता है ॥१६-१७॥ उस समय साधक के दं[illegible] नेत्रों के मध्य में जो 'ब्रह्म' परिलक्षित होता है उसी को सूक्ष्म और विराट् [illegible]

जाता है। इससे वह साधक भगवान विष्णु की तरह ही स्थूल सूक्ष्म और सब विद्याओं का आधार तथा प्रलय कर सकने वाला प्रतीत होने लगता है और भगवान का अंग ही बन जाता है ॥१८-१९॥ उस समय संसार के सुख दुःख का अनुभव करने वाले सभी जीव भगवान की शक्ति से उस योगी के भीतर प्रविष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार सर्वभूतमय हो जाने से उसको समस्त जगत और दशों दिशाओं का ज्ञान हो जाता है ॥२०-२१॥

इत्येते पार्थिवा सर्वे ऋषयो ब्रह्मनिर्मिता ।
तत्रैव प्रलयं याता भूमित्वमुपयान्ति च ॥२२
कर्मक्षयाद्विमुच्यन्ते धातुभिः कर्मबन्धनैः ।
कर्मक्षयाद्विमुक्तत्वादिन्द्रियाणां च बन्धनात् ॥२३
तामेव प्रकृतिं यान्ति अज्ञाता कर्मगोचरैः ।
क्षराद्धूमक्षयं चैव अग्निगर्भास्तमोमया ॥२४
येन तन्तुरिवाच्छन्नो भावाभाव प्रवर्तते ।
धूमादभ्रास्तु संभूता अभ्रात्तोयं सुनिर्मलम् ॥२५
जगती जलात्तु संभूता जग येव च यत्फलम् ।
फलाद्रसस्तु संजज्ञे रसात्प्राणस्तु देहिनाम् ॥२६
रसश्च तन्मयो जज्ञे यत्तद्ब्रह्म सनातनम् ।
प्रधानं ब्रह्म चोद्दिष्टं बहुभिः कारणान्तरैः ।
ब्रह्मणैस्तपसि श्रान्तैः सत्यव्रतपरायणैः ॥२७

संसार के अन्य ऋषि भी उन्हीं योगियों में विलीन हो जाते हैं और पार्थिव सम्बन्ध को प्राप्त होते हैं। जो योगी कर्म बन्ध से मुक्त होकर इन्द्रियों के बन्धनों को भी काट फेंकते हैं, वे ही उस परम पद तक पहुँचने में समर्थ होते हैं। पर जो, यज्ञ, अग्नि होत्रादि में लगे रहते हैं वे वहाँ नहीं पहुंच सकते। यज्ञादि सत्कर्मों से पुण्य की प्राप्ति होती है और उसका फल भोगने के लिये इस संसार में ही आना पड़ता है। कर्म के द्वारा ही इस जगत का क्रम अग्रसर होता रहता है ॥२१-२२॥ सृष्टि रचना में सबसे पहले धुँये से मेघ, मेघ से जल, जल से पृथ्वी,

पृथ्वी से फल और फल से रस की उत्पत्ति होती है। उस रस से प्राणियों में 'प्राण' की प्रतिष्ठा होती है। इस प्रकार रस को ही सनातन ब्रह्म का रूप मानना चाहिये। तपस्या मे निरत तथा सत्य परायण विद्वानो ने इस प्रकार विचार करके ब्रह्म का यही रूप प्रतिपादित किया है ॥२५-२७॥

अव्यक्ताद्व्यक्तिमापन्नं स्वेन भावेन भारत।
अन्त स्थं सर्वभूतेषु चरन्त विद्यया सह ॥२८
कर्म कर्तेति राजेन्द्र विषयस्थमनेकधा।
नोपलभ्येत चक्षुर्भ्यां तपसा दग्धकिल्बिषैः ॥२९
उपलभ्येत चक्षुर्भ्यां ज्ञानिभिर्ब्रह्मवादिभिः।
नि.सृतस्तु भ्रुवोर्मध्यान्मेघमुक्त इवांशुमान् ॥३०
चरद्भिः पक्षिवल्लोके निर्द्वन्द्वै निष्परिग्रहैः।
योगधर्मेण कौरव्य ध्रुवमासाद्यते फलम् ॥३१
प्रादुर्भावं क्षयं चैव भूतस्य निधन तथा।
विधत्ते शतशो ब्रह्मा सक्षये च भवेत्तदा ॥३२
कर्मणायोगज्ञो भूतेभ्यो नात्र सशयः।
अविनाशाय लोकस्य धर्मस्याप्यायनेन च ॥३३
युग द्वादशसाहस्रं सहस्रयुगसहितम्।
एतद्ब्रह्मयुग नाम युगाना प्रथमं युगम् ॥३४
सहस्रयुगयोरन्ते सहारः प्रलयान्तकृत्।
सूक्ष्म भवति लोकाना निर्विकारमचेतनम् ॥३५
तथा प्रलयमापन्न जगत्सर्वं सनातनम्।
ब्रह्म संपद्यते सूक्ष्मं निमित्त कारणैर्गुणै. ॥३६

यद्यपि वह ब्रह्म अव्यक्त है, यथार्थ मे अपनी माया और विद्या से वह समस्त जीवों में समाविष्ट होकर विचरण करता है। पर सांसारिक बन्धनों में पड़ा माया ग्रस्त जीव उन विविध वेष धारण करने वाले ब्रह्म को पहिचान नहीं सकता ॥२८-२९॥ पर योग साधन तथा ब्रह्म का ध्यान करने से जिनकी अन्त-

रात्मा पवित्र तथा निर्मल हो गई है वे ही अपनी ज्ञान-दृष्टि से उस ब्रह्म को देख सकने मे समर्थ होते हैं। वह ब्रह्म बादलो से बाहर प्रकाशित सूर्य की तरह उन साधको के भ्रूमध्य मे स्थित होता है ॥३०॥ पर यह फल उन्ही को मिलता है जो योगमार्ग को ग्रहण करके सर्वस्व त्यागी होकर पक्षियो के समान संसार मे विचरण करते रहते हैं ॥३१॥ हे राजन्! इस प्रकार ब्रह्मा जी सैकडो हजारो बार इस जगत की रचना और प्रलय करके जीवो को उत्पन्न और समाप्त कर चुके हैं। उनकी इच्छा से ही यह जगत का कर्म चक्र चलता रहता है ॥३२-३३॥ ब्रह्मा जी का युग सहस्र युग युक्त बारह हजार वर्षो का होता है। इसी को ब्रह्म-युग या महायुग कहते हैं। इसका अन्त होने पर प्रलयकाल उपस्थित होकर सबका संहार कर देता है। तब सब पदार्थ सूक्ष्म रूप मे हो जाते है और यह त्रिगुणमय ससार सूक्ष्म होकर एक रूप हो जाता है और उसी परब्रह्म मे विलीन हो जाता है ॥३४-३६॥

॥ कर्मफल् वर्णन ॥

प्राग्वशं श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण महामुने । -
आद्ययोर्युगयोर्ब्रह्मन्ब्रह्मप्राप्तस्य सर्वशः ॥१
शृणु विस्तरशः सर्वं यन्मा पृच्छसि मेधया ।
उपपन्नेव मनसा दैवप्रत्ययसाधिना ॥२
ऋद्धि प्राप्तस्तु भगवान्योगात्मा ब्रह्मसंभवः ।
भूतानां बहुलत्वं च चकारेहेश्वरः प्रभुः ३
स्थितो ब्रह्मासने ब्रह्मा विक्षिप्तः सहसा प्रभुः ।
अचलेनैव भावेन स्थाणुभूतेन भारत ॥४
रवतश्च मोक्षविषये स च ज्ञानमये पदे ।
यस्मात्पदसहस्राणि प्रभवन्ति भवन्ति च ॥५
ब्रह्मयज्ञं तु यजते योगद्वैदात्मकं सदा ।
ब्रह्मणो विपुलं ज्ञानमैश्वर्यं च प्रवर्तते ॥६

राजा जनमेजय ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ! अब आप मेरे ऊपर कृपा कर

अन्य युगो मे ब्रह्म की प्राप्ति का वृतान्त सुनाइये ॥१॥ वैशम्पायन जी कहने लगे—हे राजन् ! जो कुछ आपने पूछा है उसका सम्पूर्ण वृतान्त चित्त लगाकर सुनिये—जब परब्रह्म ऋद्धियो सहित योगासक्त भाव से ब्रह्म रूप मे अवतीर्ण होते हैं तो स्थाणु की तरह अचल रूप से ब्रह्मासन पर विराजमान रहते हैं ॥२-४॥ जब वे रजोगुण की ओर आकृष्ट होते है तब जीवसृष्टि की अधिकता होने लगती है । वे भगवान जिस प्रकार मोक्षपद के विषय मे अनुरक्त होते हैं वैसे ही ज्ञान पद के विषय मे भी होते हैं । इसलिये मोक्षमार्ग की तरह ज्ञानमार्ग मे हजारो तरह के पदो का आविर्भाव हुआ है । जो साधक वेदात्मक ब्रह्मयज्ञ का अनुष्ठान करते हैं उनको विपुल ज्ञान और ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है ॥६॥

ततः प्रथममैश्वर्यं युञ्जानेन प्रवर्तितम् ।
ब्रह्मणा ब्रह्म भूतेन भूताना हितमिच्छता ॥७
सदा त्वाकाशमैश्वर्यं युञ्जानस्य प्रवर्तते ।
ब्रह्मणो ब्रह्मभूतस्य निर्विकारेण कर्मणा ॥८
तदाऽन्तरिक्ष सप्राप्त निर्मलं ब्रह्म चाव्ययम् ।
सहारः सर्वभूताना नराणा ब्रह्मवादिनाम् ।
ध्रुवमैश्वर्ययोगाना प्रतिपद्यन्ति देहिनः ॥९
आकाशैश्वर्य भूतेन संयुगे ब्रह्मवादिना ।
प्रवर्त्तमानमैश्वर्यं वायुभूतं करोति च ।
विकारैर्बहुभिः प्राप्तैः सप्तद्धिर्महाबलैः ॥१०
एतैर्विकारैः सवृतैर्निरुद्धैश्च समन्ततः ।
ध्रुवमैश्वर्यमापन्नः सिद्धो भवति ब्राह्मणः ॥११
शरीरादभिनिष्क्रम्य आकाशेन प्रधावति ।
निरालम्बो निरालम्बान्नालम्ब्य मनसा ततः १२
ऐश्वर्यभूतो भूतात्मा चरन्दिवि न दृश्यते ।
चक्षुर्भिर्बहुभिर्लोकैः पुरंदरमुखैरपि ॥१३
ओंकारं ये त्वधीयन्ते मनसा ब्रह्मसत्तमाः ।
विमुक्ताः सर्वकर्मभ्यस्ते तं पश्यन्ति साधवः १४

सच्चे ब्राह्मण का कर्तव्य है कि उस ऐश्वर्य को स्वार्थ मे व्यय न करके अन्य प्राणियो के उपकार मे ही लगावे। विकार रहित साधना करने से साधक मे सर्व प्रथम आकाश रूप ऐश्वर्य का उदय होता है जो विशुद्ध ब्रह्म का स्वरूप है। ब्रह्म यज्ञ की साधना से जब परब्रह्म मे आकाश रूपी ऐश्वर्य का ज्ञान होता है तो योगी उन्हें वायु रूप कहने लगते हैं। इसी प्रकार अग्नितत्व आदि का भी उदय होता है जिससे ध्रुव ऐश्वर्य रूप परब्रह्म का ज्ञान हो जाता है और उसकी गणना सिद्ध पुरुषो मे होने लगती है ॥७-११॥ इस प्रकार विकारो का निरोध होने पर वह योगी शरीर से पृथक होकर अदृश्य भाव से आकाश मे विचरण कर सकता है ॥१२॥ सामान्य मनुष्य उठे कभी नही देख सकते चाहे उनके इन्द्र की तरह हजारो आँखें क्यो न हो जायें ॥१३॥ उसका दर्शन करने मे वे ही श्रेष्ठ साधक समर्थ हो सकते हैं जो सब कर्म बन्धनो से मुक्त ॐकार रूप परब्रह्म को जान जाते है ॥१४॥

एतद्धि परमं ब्रह्म ब्राह्मणानां मनीषिणाम्।
अन्तश्चरन्ति भूताना विद्धि चेतनया सह ॥१५
एष शब्दो महानादः पुराणो ब्रह्मसंभवः।
वायुभूतोऽक्षरं प्राप्तो वदन्त्येवं द्विजातयः ॥१६
अरूपी रूपसंपन्नो धातुभिः सह संगतः।
अन्तश्चरति भूतेषु कामकारकरो वशी ॥१७
एतत्पूर्वमनुध्याय मनसाऽऽपूरयन्निव।
वेदात्मकं तदा यज्ञं चिन्तयन्तो मनीषिण. ॥१८
ब्राह्मणाः शुचयो दान्ता यशो यज्जंस्तदन्वयाः।
ब्रह्मलोकं काङ्क्षमाणा वैष्णव पदमुत्तमम् ॥१९
पदहेतोः क्रियाः सर्वा. कुर्वंति विगतज्वराः।
न ह्यं ते प्रसवादाने भवमिच्छंति भारत ॥२०
स्त्रिभिर्माल्योपहारैश्च प्रतिभावैश्च वै द्विजाः।
यजंति परमात्मानं विष्णुं सत्त्वपराक्रमम् ॥२१

विद्वान् साधकों के लिये यह ॐकार, जो चैतन्य तत्त्व के साथ समस्त जीवों में व्याप्त रहता है, परब्रह्म के तुल्य ही है ॥१५॥ वे कहते हैं कि इस महा शब्द 'ॐ' और ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं है। यह अविनाशी सर्व वर्ण प्रकाशक और अदृश्य होता है ॥१६॥ यह रूप रहित होने पर भी पंचभूतों के साथ मिल कर रूप युक्त हो जाता है और तब समस्त प्राणियों के भीतर व्याप्त होकर रहता है ॥१७॥ जो पवित्र और शुद्ध स्वभाव के साधक ब्रह्म में तन्मय हो जाते हैं और ब्रह्म में ही जिनकी स्थिति होती है वे ही इस ॐकारमय ब्रह्म का ध्यान करने में समर्थ होते हैं और विशुद्ध आत्मा वाले महानुभाव ही इस प्रकार का साधन करके उत्कृष्ट वैष्णव-पद को प्राप्त कर सकते हैं ॥१८-१९॥ वे समस्त प्रकार के आलस्य आदि को त्याग कर पूर्ण सजगता के साथ इस पद को प्राप्त करने के लिये समस्त प्रयत्न करते हैं ॥२०॥ वे तीन बार उपहार दी गई पुष्प-माला की तरह अपनी प्रतिभा तथा शुद्ध भावना से सतोगुण सम्पन्न विष्णु भगवान की आराधना करते हैं ॥२१॥

यजनं विक्रमं चैव ब्रह्मपूर्वाः प्रचक्रिरे ।
ब्रह्मापि वैष्णवं तेजो वेदोक्तैर्वचनैर्नृप ॥२२
ब्राह्मणैर्ब्रह्मविद्भिश्च ब्रह्मज्ञैर्ब्रह्मवादिभिः ।
शुचिभिः कर्मनिर्मुक्तैः सत्यव्रतपरायणैः ॥२३
धातुभिर्मोक्षकाले च महात्मा संप्रदृश्यते ।
तदेव परमं ब्रह्म वैष्णवं परमाद्भुतम् ॥२४
रसात्मकं तदैश्वर्यं विकारान्ते प्रदृश्यते ।
घोररूपा विकारास्ते व्यथयन्ति महात्मनः ॥२५
संछाद्यातीव तोयेन क्षुभ्यमाणो विचेतनः ।
ऊर्मिभिश्छाद्यते चैव शीतोष्णाभिविताडितः ॥२६
महार्णवगतश्चैव दह्यते न च मज्जते ।
मग्नश्चैव महानद्याः सलिलेनैव सीदति ॥२७
सीदमानश्च सलिले स शीतास्वाद्यते यमात् ।
आगनाच्छादनाच्चैव मुच्यमानो विचेतनः ॥२८

हे राजन् जिन श्रेष्ठ साधकों की सच्ची श्रद्धा वेद के वचनों पर रहती है, वे ही ब्रह्मयोग और विष्णु भगवान की आराधना इन दोनों कार्यों को एक साथ कर सकते हैं। वे वैदिक तत्त्वज्ञान के द्वारा यह भली प्रकार जान जाते हैं कि ब्रह्मा और विष्णु मे कोई अन्तर नही ॥२२-२३॥ वे निर्मल अन्त करण वाले साधक मोक्षावस्था मे जिस एक तत्त्व का दर्शन करते हैं वही ब्रह्मा, विष्णु रस, ऐश्वर्य आदि सब कुछ है ॥२४॥ पर इस प्रकार सत्य ज्ञान और सर्वोच्च लक्ष्य पर पहुँचने के पूर्व अनेक प्रकार के घोर विकार-विघ्न साधक को व्यथित करते हैं ।२५॥ उसे कभी ऐसा जान पड़ता है कि जल राशि ने उसे ढक लिया है और कभी अत्यन्त उष्ण और शीतल लहरें ऊपर आती मालूम पड़ती है ॥२६॥ कभी ऐसा अनुभव होता है वह एक महार्णव मे निमग्न हो रहा है और भस्म हुआ जा रहा है, कभी किसी बहुत बड़ी नदी मे डूबता-सा मालूम पड़ता है ॥२७॥ कभी आभास होता है कि वह जल मे पड़ा है और अत्यन्त शीत को सहन कर रहा है और उसके रहने और भोजन आदि का भी कहीं ठिकाना नही है ॥२८॥

श्वभ्रे प्रपद्यमानश्च तोयेन परिषिच्यते ।
शुक्लवर्णेन बहुना स्रोतसा मूर्ध्नि सर्वशः ॥२९
ऊर्ध्वं ज्योतिरवेक्षश्च शुक्लैः पीतैश्च बाध्यते ।
वारिपूर्णैः सुगम्भीरैर्विद्युद्भिरिव भासितैः ॥३०
एतैं विकारैः [redacted]वृत्तैर्निरुद्धैश्चैव सर्वशः ।
ध्रुवमैश्वर्यमासाद्य सिद्धो भवति ब्राह्मण. ॥३१
रसात्मकं तदैश्वर्यं जिह्वाग्रादभिनिःसृतम् ।
सहस्रधारं विततं मेघत्वं समुपागतम् ॥३२
रसांश्च विविधान्योगात्स सिद्धः सृजते प्रभुः ।
धात्वर्यं सर्वभूताना योगप्राप्तेन हेतुना ॥३३
तेजसो रूपमैश्वर्यं विकारैः सह वर्द्धते ।
आत्मनो विघ्नजननं स्वस्थो ब्राह्मणकारणे ॥३४

कभी ऐसा प्रतीत होता है कि वह किसी गहरे गड्ढे मे पहुँच गया है और

उसके मस्तक पर चारों ओर से शुभ्र जल धारा गिर रही है ॥२९॥ कभी मस्तक के ऊपर श्वेत और पीत वर्ण का बिजली का प्रकाश-सा चमकता दिखाई पड़ता है ॥३०॥ इस प्रकार अनेको विकार योग साधन के अवसर पर अनुभव होने लगते हैं, पर जो साधक इनकी ओर कुछ ध्यान न देकर अपने मार्ग पर अग्रसर होता जाता है उसे ब्रह्मज्ञान होकर सिद्धि प्राप्त होती है ॥३१॥ उसकी जिह्वा से जो रस निसृत होता है वह मेघरूप होकर सहस्रों धाराओं से पृथ्वी को जल से आप्लावित कर देता है ॥३२॥ वह अपनी योगसाधना द्वारा विविध प्रकार के रसों की सृष्टि करते हैं जो सब प्राणियों के लिये हितकारी होते हैं ॥३३॥ इस प्रकार ब्रह्मयोग के अभ्यास से साधक का चित्त स्वभावतः शांत और सुस्थिर हो जाता है, पर अकस्मात उसमें तेज और रूप के विकार उठ खड़े होते हैं ॥३४॥

उग्ररूपं विरूपैश्च दृश्यते दण्डपाणिभिः ।
घोररूपं सुगम्भीरं पिङ्गाक्षं नं रविग्रहे ॥३५
नेत्र समुद्धरन्भीम जिह्वाग्र चास्य विन्दति ।
नदन्ति युगपन्नाद जृम्भमाणा. पुन पुन ॥३६
पुनरेव तदा भत्रा बहुरूपास्तदाऽभवन् ।
नृत्यमाना. प्रगायन्ति तर्जयन्तो विशेषत. ॥३७
स्त्रीभूताश्च तत सर्वे युञ्जानाश्चावलम्बिरे ।
यण्ठेषु बहुरूपत्वाद्विघ्नैश्चैव प्रलोभयन् ॥३८
मधुरं रभिधानैश्च व्याहरन्ति न भीतवत् ।
पतन्ति युगपत्सर्वे पादयोमूर्धभियुंता ॥३९
प्रसाद काक्षमाणाश्च योगस्यान्तरविघ्नत ।
बहुप्रकार कथयन्न त्यन्ति च तरन्ति च ॥४०
एतं विकारं सनृत्तैर्निरुद्धैश्चैव सर्वश ।
ध्रुवमैश्वर्य मासाद्य सिद्धो भवति ब्राह्मण ॥४१
तदर्चिष इवाग्नेया आदित्यस्येव रश्मय ।
तेजोरूपा मैश्वर्यं जनितास्तेजविन्दव ॥४२

इन विकारों के उठने पर ऐसा प्रतीत होने लगता है कि क्रोधी, बुरी आकृति के पीले नेत्र वाले पुरुष रोष पूर्वक दण्ड प्रहार करने को उद्यत हैं ॥३५॥ मालूम पड़ता है कि वे आँखें निकाल लेंगे और जीभ को काट डालेंगे। वे मुँह फैला कर बहुत जोर से चीत्कार करते हुये भय उत्पन्न करते है ॥३६॥ कुछ ही क्षण पश्चात् वे अपना भाव बदल कर नाच गान द्वारा साधक को प्रसन्न करने की चेष्टा करने लगते हैं। फिर वे सुन्दर स्त्री का रूप धारण कर साधक के कंधे पर हाथ रख कर उसे मोहित करने लगते हैं और हँस हँस कर बातें करते हैं ॥३६-३८॥ फिर मानो दया की भीख माँगते हुये वे अपना मस्तक साधक के पैरों पर रख देते हैं और तरह-तरह नाच-गान का अभिनय करते हुये उसको लुभाने की चेष्टा करते हैं ॥३९-४०॥ हे राजन् ! इस प्रकार के अनेक प्रकार के उत्पात योग का साधन करने वाले के सामने आते रहते हैं, पर जो धैर्यशाली पुरुष उनसे विचलित नहीं होते वे अन्त मे अवश्य सिद्धि को प्राप्त करते हैं। उनका ऐश्वर्य आरम्भ मे अग्नि शिखा और सूर्य के सदृश्य तीव्र होता है, तत्पश्चात् वह सौम्य रूप मे हो जाता है ॥४१-४२॥

ज्योतींषि चैव संवृत्ता आकाशमुपसंगताः।
चरन्ति लोके सततं सूर्याचन्द्रमसोर्गतिम् ॥४३
चन्द्रसूर्यात्मकं दिव्यं ज्योतिष्मद्वनमुत्तमम्।
एतद्विभ्राजते लोके कोके कालचक्रं ध्रुवं वरम् ॥४४
अर्धमासाश्च मासाश्च ऋतुसंवत्सराण्यथ।
क्षणा लवा मुहूर्ताश्च कलाः काष्ठास्तथैव च ॥४५
अहोरात्रप्रमाणं च निमिषोन्मेषणं तथा।
ताराणां गतयश्चैव ग्रहाणां च विशेषतः ॥४६
अथ पार्थिवमंश्चयं विकारग्रहसंभवम्।
योगयुक्तास्त्वभिग्रस्ता यान्येन ह्यचलासनात् ॥४७
अलोमाच्छिद्यते सद्यो वेपमानोऽनुकीर्यन्ते।
सीदते वसुधामध्ये भिद्यमानः पुनः पुनः ॥४८

भूताना बहुरूपैश्च अन्यैश्च तलवासिभि. ।
विषये यज्यते क्षिप्र स क्षेपात्समवरुद्ध्यते ॥४६

वे योगी-गण लघिमा ऋद्धि के प्रभाव से ज्योति के रूप मे इच्छानुसार आकाश मे विचरते रहते हैं। वे योगी ज्योति स्वरूप धारण करके सूर्य चन्द्र से सलग्न होकर ध्रुव नक्षत्र को केन्द्र मान कर घूमते घूमते क्षण, लव मुहूर्त, कला, काष्ठा, दिवा, रात्रि निमेष उन्मेष, अर्द्धमास, मास, ऋतु, सवत्सर, नक्षत्र और विशेषत ग्रहो की गति प्राप्त कर लेते हैं ॥४२-४६॥ जो योगी इन हीन सासारिक प्रलोभनो मे लुभा कर पतनोन्मुख हो जाते है तो वे अपने उच्च पद से गिर जाते हैं। यदि वे लोभ पर विजयी हो जाते है तो उन विकारो का उन पर कुछ भी प्रभाव नही पडता। जो लोग पतित हो जाते हैं आरम्भ मे तो उनको अपनी हीनता पर बडी लज्जा आती है, पर फिर वे शीघ्र तरह तरह विजय रूपी रसो की ओर मुड जाते हैं ॥४७-४०॥

तत पार्थिवमैश्वर्यं सेवमानश्च सर्वत ।
मूर्तिमद्भिश्च बहुधा धातुभि स च हन्यते ॥५०
शक्तितोमरनिस्त्रिंशैर्गदाभिश्चाप्य नेकधा ।
असिभि पात्यते चैव क्षुरधारै सहस्रश ॥५१
भिद्यते चैव बाणाग्रै सुतीक्ष्णैर्मर्मभेदिभि ।
एभिर्विकारैर्निर्वृत्तैर्निरुद्धश्चैव सर्वश ॥५२
ध्रुवमैश्वर्यमापन्न सिद्धो भवति ब्राह्मण ।
तत पार्थिवमैश्वर्यं निर्मुक्तस्य विकारत ॥५३
प्रादुर्भवति सजाते समाधौ प्रलय गते ।
दिव्य गन्ध समाघ्राय दिव्यार्थास्ताञ्छृणोति च ॥५४
दिव्यरूपैश्च पुरुषैश्छिद्यते न च भिद्यते ।
गच्छन्सुकृतिना चान्त प्रधानात्मा क्षरन्निव ॥५५

ऐसी परिस्थिति आने पर उस विषयासक्त योगी को ससारी गण शक्ति, तोमर, गदा, तलवार, बाण रूपी स्वार्थ युक्त वचनाओं से नष्ट-भ्रष्ट कर डालते हैं। उनके ये प्रहार बडे मर्मभेदी होते हैं ॥४९-५२॥ पर जो साधक धैर्य अवलम्बन करके समस्त विघ्नों को पार कर लेते हैं, तो वे आत्म-विकास के शिखर पर

पहुँच कर मोक्ष पद के अधिकारी हो जाते हैं। जब तक वह योगी शरीर धारण किये रहता है जीवन मुक्त महात्माओ के संसर्ग मे रहकर दिव्य पदार्थों का आनन्द प्राप्त करता रहता है ॥५३-५४॥ शरीर त्यागने पर वह सर्वोच्च अविनाशी पदवी को प्राप्त कर लेता है और कोई भी व्यक्ति उसे किसी प्रकार की हानि नही पहुँचा सकती ॥५५॥

॥ मधु और विष्णु भगवान का युद्ध ॥

ते तु गोब्राह्मणा नागाश्चन्द्रादित्यपुरस्कृता ।
ब्राह्मणान्पूजयन्देवान्वसुभिब्रह्मसम्भवं ॥१
नारदप्रमुखाश्चैव गन्धर्वा ऋषयो नृप ।
कुर्वन्ति सतत यत्ने क्रमप्राप्त पितामहम् ॥२
वचोभिर्मधुरामार्षं पञ्चेन्द्रियनियामिभि ।
सर्वभूतप्रियकरं. सर्वभूतहितं पिभि ॥३
स्तूयमानश्च यज्ञान्ते पञ्चेन्द्रियसमाहितं. ।
प्रोवाच भगवान्ब्रह्मा दिष्टया दिष्ट्येति भारत ॥४
तत कश्यपमामाप्य प्रोवाच भगवान्प्रभु ।
भवानपि सुतं सार्द्धं यक्ष्यते वसुधातले ॥५
मनुभि परमप्राप्तं सपूर्णं वरदक्षिणं ।
यक्षा सुराश्च ते सर्वे मया प्रतिपूर्ण प्रभो ॥६
वय यक्ष्यामहे पूर्वं पूर्वं यक्ष्यामहे वयम् ।
एवमन्योन्यस रम्भाद्वियन्ते बलदर्पिता ॥७
दैतेयाश्चाप्यदैतेया परस्परजयैषिण ।
युद्धायैव प्रतिष्ठन्ति प्रगृह्य विपुलौ भुजौ ॥८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन्! वेदों मे पारंगत, पवित्र शरीर वाले तथा दर्श-पौर्णमास आदि यज्ञ के अनुष्ठाता नारद आदि देवर्षि और गन्धर्वगण हवि स्वम्भा दक्षिणा के द्वारा आज्यपादि वर्ग के क्रम से मोक्ष पितामह श्री

ब्रह्माजी का पूजन करके प्रिय वाणी में उनका स्तव करने लगे ॥१-३॥ उनके यज्ञ को देख कर और सब प्राणियों का कल्याण करने वाले उस स्तोत्र को सुन कर श्रीब्रह्माजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होने कहा—सौभाग्य से ही तुम इस प्रकार के यज्ञ मे प्रवृत्त हुए हो। इसके पश्चात् उन्होने महर्षि कश्यप से कहा—हे कश्यप ! तुम भी अपने पुत्रो के सहित पृथिवी पर जाकर यज्ञ करोगे। तुम्हारे देवता और दैत्य प्रभृति सभी पुत्र सात्विक, राजसिक और तामसिक—तीनों प्रकार के यज्ञो का दक्षिणा सहित अनुष्ठान करेंगे ॥४-६॥ इसके पश्चात् पितामह ब्रह्माजी की बात सुन कर देवताओं ने कहा 'हम यज्ञ करेंगे' और दैत्यों ने कहा कि पहिले हम यज्ञ करेंगे। इस प्रकार स्पर्धा करते हुए उन देव-दानवो में बाहु-युद्ध होने लगा ॥७-८॥

निवार्यमाणा ऋषिभिस्तपसा दग्धकिल्बिषैः।
अन्यैश्च विविधैर्विप्रैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ॥९
निवार्यमाणा युध्यन्ते वृषभा इव गोकुले।
प्रयुद्धारम्भसंक्रान्ताः सर्वे प्राणजयैषिणः ॥१०
पश्यतां सर्वभूतानां मृत्योर्विषयमागताः।
ततः शब्देन महता परं कृत्वा महाबलाः ॥११
रुन्धन्ति बाहुभिः क्रुद्धाः सपक्षा इव पक्षिणः।
चचाल वसुधा चैव पादक्रान्ता च रोचिभिः ॥१२
नौर्यथा पुरुषाक्रान्ता निषीदति महाजले।
पर्वताश्च विशीर्यन्ते नर्द्दमाना गजा इव ॥१३
चुक्षुभुश्च महानद्यस्ताडिता मातरिश्वना।
ततः समभवद्युद्धं मघोविष्णोश्च भारत ॥१४
युगान्तकरणं घोरं सर्वप्राणिभयंकरम्।
प्रममाथ बलं विष्णुः समग्रं बलपौरुषम् ॥१५
वह्नेरिव बलं दीप्तं शमयत्यम्बुना यथा।
तथा प्रशमितं तेन भगवत्यपकारिणा ॥१६

उस समय पुण्य शरीर और वेद-वेदान्त के ज्ञाता विप्रा ने उन्हे निवारण करने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु दोनों ही उनकी बात को न मान कर युद्ध मे प्रवृत्त होगये। तब देव दानव घोर सिंहनाद करते हुए एक दूसरे का मार्ग रोकने लगे। जैसे जल मे नौका भार से डगमग करती है, वैसे ही देव दानवो के भार से पृथिवी हिलने लगी। गजनशील बैलो के समान गर्जना करते हुए पर्वत विदीर्ण होकर इधर उधर गिरने लगे ॥९-१३॥ प्रचण्ड वायु के थपेड़ो से नदियाँ उमड पड़ीं। फिर भगवान् विष्णु और मधु दानव मे युग का अन्त करने वाला घोर युद्ध होने लगा। जैसे अग्नि की उग्र ज्वालाओ को जल वृष्टि से मेघ शान्त कर देता है, वैसे भगवान् विष्णु ने अपना अपकार करने वाले मधु दानव के सम्पूण बल-पराक्रम का हरण कर लिया ॥१४-१६॥

॥ भगवान विष्णु द्वारा मधु का वध ॥

बलवान्स तु दैतेयो मधुर्भीमपराक्रम ।
बबन्ध पाशैर्निशितैर्महेन्द्र पर्वतान्तरे ॥१

त वै प्रह्लादवचनाल्लक्षणज्ञश्च भारत ।
ऐश्वर्यमैन्द्रमाकाङ्क्षन्भविष्य बुद्धिस क्षयात् ॥२

बद्ध्वेन्द्र सहसा मध्ये पाशैर्मर्मविवर्जितै ।
आयसैर्बहुभिश्चित्रैर्बलवद्भिर्विदारणै ॥३

विष्णुमेवाग्रणी रुद्रमाह्वयद्युद्धकोविद ।
मृधे गणाना सर्वेषा कालस्य वशमागत ॥४

द्वैधीभूता काश्यपेया मधोर्वशमुपागता ।
युद्धार्थमभ्यधावन्त प्रगृह्य विपुला गदा ॥५

गन्धर्वा किन्नराश्चैव वाद्ये गीते च कोविदा ।
प्रनृत्यन्ति प्रगायन्ति प्रहसन्ति च सर्वश ॥६

तन्त्रीभि सुप्रयुक्ताभिर्मधुराभि स्वभावत ।
मनो मधोर्विधन्वन्ति युध्यमानस्य रागिण ॥७

मधोर्बलार्थं मधुनो नियोगात्पद्मयोनिनः ।
एतान्विकारान्कुर्वन्ति गन्धर्वाः सत्यवादिनः ।।८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! उस अत्यन्त पराक्रमी मधु ने प्रह्लाद के वचनो के अनुसार इन्द्रत्व को प्राप्त करने की कामना से मर्म भेदी पाशास्त्र मे बाँध कर पर्वतो की शिलाओ के मध्य बन्दी बना लिया ।। १-३ ।। इसके पश्चात् उसने काल के वशीभूत होकर भगवान् विष्णु को युद्ध की चुनौती दी ! तभी कश्यप के पुत्र दो दलो मे बँट कर देव-पक्ष और दैत्य-पक्ष मे हो गये । फिर दैत्यपक्ष के लोग भयकर गदाओ को ग्रहण कर-करके युद्ध के लिये आगये ।। ४-५ ।। उधर देव पक्ष के गन्धर्व और किन्नर हर्षित होकर गायन, वादन और नृत्य मे लगे ।।६।। उसमे वीणा की मधुर झंकार के कुशलता पूर्वक उठने से दैत्यराज मधु तथा युद्धोन्मत्त दानव मुग्ध हो गये ।। ७ ।। इस प्रकार पद्मयोनि ब्रह्माजी की प्रेरणा से गन्धर्वो ने दानवो के हृदयो मे विकार उत्पन्न कर दिया ।।८।।

तत्र शक्तो हि गान्धर्वे तस्मिन्द्वन्द्वे मधुर्मनः ।
दानवाश्चासुराश्चैव प्रत्यक्षं यान्ति प्राणदन् ।।९
मधोश्च मन आक्षिप्य पश्यन्योगेन चक्षुषा ।
मन्दरं प्रयते विष्णुर्गूढोऽग्निरिव दारुषु ।।१०
ऋषयो दीप्तमनसं किंचिद्व्यथितमानसाः ।
पितामहं पुरस्कृत्य क्षणेनान्तरधीयत ।।११
विष्णुः सोऽभ्यहनत्क्रुद्धो मधुर्मधुनिभेक्षणः ।
भुजेन शङ्खदेशान्ते न चकम्पे पदात्पदम् ।।१२
विष्णुश्चाभ्यहनद्दैत्यं कराग्रेण स्तनान्तरे ।
स पपात मही तूर्णं जानुभ्या रुधिरं वमन् ।।१३
न चैनं पतितं हन्ति विष्णुर्युद्धविशारदः ।
बाहुयुद्धे हि समयं मत्वाऽचिन्त्यपराक्रमः ।।१४

इन्द्रध्वज इवोत्तिष्ठञ्जानुभ्यां स महीतलात् ।
मधू रोषपरीतात्मा निर्दहन्निह चक्षुषा ॥१५

घोर गर्जन करता हुआ दैत्यराज मधु भी गन्धर्वों के उस संगीत-कौशल के प्रति आकर्षित हो उठा तथा अन्यान्य सभी दैत्य उसमें तन्मय होने लगे ॥६॥ तब विकार युक्त मन वाले मधु के सामने से हट कर भगवान् विष्णु भी काष्ठ मे प्रविष्ट अग्नि के समान मदर पर्वत मे प्रविष्ट होगये ॥१०॥ तब उज्जवल तेज वाले ऋृषिगण ब्रह्माजी के साथ ही अदृश्य होगये ॥११॥ फिर क्रोधित हुए मधु ने भगवान् विष्णु की कनपटी मे कर प्रहार किया, परन्तु उन पर उसका कोई प्रभाव नही हुआ और उन्होने उसके वक्षःस्थल पर मुष्टिका का भीषण प्रहार किया जिससे वह मुख से रुधिर डालता हुआ पृथिवी पर गिर गया ॥१२-१३॥ फिर संभल कर उठा और रोष पूर्ण लाल नेत्रो से इस प्रकार देखने लगा, जैसे उन्हे अभी भस्म कर देना चाहता है ॥१४-१५॥

परुषाभिस्ततो वाग्भिरन्योन्यमभिगर्ज तुः ।
समीयतुर्बाहुयुद्धे परस्परवर्षिणौ ॥१६
उभौ तौ बाहुबलिनावुभौ युद्धविशारदौ ।
उभौ च तपसा शान्तावुभौ सत्यपराक्रमौ ॥१७
दृढप्रहारिणौ वीरावन्योन्यं विचकर्षतुः ।
शैलेन्द्राविव युद्धयन्तौ पक्षैः पाषाणसन्निभैः ॥१८
विकर्षन्तौ वमन्तौ च अन्योन्यं वसुधातले ।
गजाविव विषाणाग्रैर्नखाग्रैश्च विचेरतु ॥१९
ततो व्रणमुखैश्चैव सुस्राव रुधिरं बहु ।
ग्रीष्मान्ते धातुसंसृष्टं शैलेभ्य इव काञ्चनम् ॥२०
संसिक्तौ रुधिरौघैश्च सर्वाङ्गैः समरञ्जितौ ।
अयोद्यतैः पदाग्रैश्च तौ व्यदारयता महीम् ॥२१
अभिहत्य तु तौ वीरौ परस्परमनेकधा ।
पतङ्गाविव युध्येता पक्षाभ्यां मांसगृद्धिनौ ॥२२

फिर दोनों में अत्यन्त कठोर वचनों का आदान-प्रदान हुआ और तब दोनों ही ताल ठोक कर मल्लयुद्ध करने लगे ॥१६॥ बाहुबल, रण चातुर्य, तेज और सत्य पराक्रम में दोनों ही समान थे। प्रहार करने में दोनों में कोई भी नहीं चूकता था। कभी एक-दूसरे को खींचते और कभी धक्का देते हुए पर्वत-राजों के समान लड रहे थे ॥१७-१८॥ जैसे दो मदमत्त हाथी परस्पर लडते हैं, वैसे ही वे दोनो रणमत्त रणभूमि में पैंतरे बदल-बदल कर विचरण करते थे ॥१६॥ दोनों ही महाबली आहत होगये थे, इससे उनके देह से रक्त की धाराएं बह रहीं थी, जैसे वर्षाकाल में कोई झरना प्रवाहित हो रहा हो ॥२०॥ दोनों के शरीर रुधिर से लथपथ हो रहे थे और दोनों ही अपने पाँवों के प्रहार से पृथिवी को पीडित कर रहे थे ॥२१॥ वे दोनो भीषण पक्षियों के समान परस्पर अपने देहों को बचाते हुए महा भयकर युद्ध कर रहे थे ॥२२॥

शुश्रुवुश्चान्तरिक्षेऽथ सर्वभूतानि पुष्करे ।
सिद्धाना वदनोन्मुक्ता. परया वर्णसम्पदा ॥२३
स्तुतयो विष्णुसयुक्ता. सत्या. सत्यपराक्रमे ।
शरीरं धातुसंयुक्तं सयुक्त चेतनेन च ॥२४
तद्ब्रह्म इन्द्रियंर्युक्त तेजोभूतं सनातनम् ।
ध्रुवं तिष्ठन्ति भूतास्ते सूक्ष्मे प्रलयता गते ॥२५
पुनश्चोद्भवते सूक्ष्मं बहुरूपमनेकधा ।
प्रबोध्य भाव भूताना त्रिषु लोकेषु कामद. ॥२६
सुरूपो बहुरूपास्तांल्लोकान्स चरते वशी ।
मानसी तनुमास्थाय बहुभि. कारणान्तरैः ॥२७
योगात्मा धारयन्नुर्वी नागात्मानं दिवन्धरः ।
ब्रह्मभूतं परं चैव सूक्ष्मेणात्मानमीश्वरः ॥२८

तभी आकाश में स्थित सिद्धगण भगवान् विष्णु की स्तुति करने लगे—हे प्रभो ! इस पचभौतिक देह में आत्म रूप से जो विराजमान हैं, वही आप चिन्मय ब्रह्म और देह तथा इन्द्रियों वाले प्राणी के रूप में प्रसिद्ध होते हैं ॥२३-

२४॥ यही पंचभौतिक उपादान प्रलय के उपस्थित होने पर सूक्ष्म रूप ग्रहण कर आप भगवान् में ही विलीन होता है तथा वह सूक्ष्म उपादान विभिन्न जीवों को उत्पन्न करके स्वयं निर्लिप्त भाव से सर्वत्र घूमते हैं ॥ २५-२७ ॥ वही आप योगात्मा दुष्टों का दमन और साधुओं का पालन करने के लिये पृथिवी पर अवतीर्ण होते हैं। यह आप ही भूतों के धारण करने वाली पृथिवी, शेष सज्ञक अनन्त, स्वर्ग के पालक इन्द्र तथा पंचमहाभूत हैं ॥२८॥

स्तूयमानश्च विबुधैः सिद्धैर्मुनिवरैस्तथा।
सस्मार विपुलं देहं हरिर्हयशिरो महान् ॥२९
कृत्वा वेदमयं रूपं सर्वदेवमयं वपुः।
शिरोमध्ये महादेवो ब्रह्मा नु हृदये स्थितः ॥३०
आदित्यरश्मयो बालाश्चक्षुषी शशिभास्करौ।
जङ्घे तु वसवः साध्याः सर्वसंधिषु देवता ॥३१
जिह्वा वैश्वानरो देवः सत्या देवी सरस्वती।
मरुतो वरुणश्चैव जानुदेशे व्यवस्थिताः ॥३२
एवं कृत्वा तथा रूपं सुराणामद्भुतं महत्।
असुरं पीडयामास क्रोधाद्रक्तान्तलोचनः ॥३३
मधोर्मेदोम्बुपूर्णा च पृथिवी समदृश्यत।
प्रमदेव घना चैव शुक्लाशुकनिवासिनी ॥३४
मेदिनीत्येव शब्दश्च लब्धः पृथ्व्या नरोत्तम।
नामासुरसहस्रेण धरण्या सप्रतिष्ठितम् ॥३५

हे राजन्! इस प्रकार सिद्धगण, देवगण, और महर्षि, गण द्वारा स्तुत होने पर भगवान् ने अपने हयग्रीव रूप का स्मरण किया, जिससे उनका वेद तथा सर्वदेव मय स्वरूप प्रकट होगया। उस समय भगवान् रुद्र उनके मस्तक में तथा ब्रह्माजी वक्ष स्थल में प्रतिष्ठित हो गये ॥ २९-३० ॥ सूर्य की किरणें उनकी रोमावलि हुईं तथा सूर्य-चन्द्रमा दोनों नेत्र होगये, वसुगण जाँघ पर और अन्यान्य देवगण उनकी अंग-सन्धियों पर आ विराजे ॥३१॥ अग्नि देवता उनकी जिह्वा

और वेद मन्त्र उनकी वाणी हुई। मरुद्गण और वरुण उनके जानु प्रदेश पर बैठे ॥३२॥ हे राजन् ! देवताओं के हितार्थ भगवान् विष्णु ने अपना ऐसा विकराल वेश बना कर तथा क्रोध से लाल नेत्र कर दैत्य श्रेष्ठ मधु का मर्दन किया ॥३३॥ इस प्रकार मधु के मृत होकर पतित होने से उसके रुधिरादि से भरी हुई पृथिवी श्रेष्ठ वस्त्र धारण करने वाली स्त्री जैसी प्रतीत होने लगी उसी समय से असुरगण इस पृथिवी को मेदिनी कहने लग गये ॥३४-३५॥

॥ समुद्र मंथन वर्णन ॥

ब्रह्मन्खिले वर्तमाने निर्मर्यादे महाग्रहे।
अविनाशे च भूतानां कथमासन्प्रजास्तदा ॥१
अभ्यषिञ्चत्पृथुं वैन्यं पुरा राज्ये प्रजापतिः।
राज्याय ऋषिभिः सार्द्धं प्रजाधर्मपरायण. ॥२
एप नः परमो राजा सानुरागादजायत।
स तायां संप्रवृत्तायामन्योन्यमनुजल्पिरे ॥३
एप नो वृत्तिदाता च विप्राणा च प्रवर्तिता।
निर्माता सर्वभूतानां सत्यप्राप्तेन कर्मणा ॥४
एतस्मिन्नन्तरे देशा गन्धमादनसानुपु।
वहुभिर्नियमैः श्रान्ता निषण्णा गिरिसानुपु ॥५
अथ गन्धं समामाद्य समन्ताद्देवदानवाः।
माधवे समयं प्राप्ते तेन गन्धेन दर्पिताः ॥६

जनमेजय ने कहा—हे ब्रह्मन् ! मर्यादा-रहित महाग्रहों में स्थित रहते हुए प्राणियों को मोक्ष कैसे मिल सकती है ? ॥१॥ वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! प्रजा धर्म के पालने वाले प्रजापति ने ऋषियों के परामर्श से वेणु पुत्र पृथु को राज्य पद पर अभिषिक्त किया था ॥२॥ उस समय त्रेता युग का प्रारंभ था। प्रजाजन उन राजा के आगमन में सुख पूर्वक रहते हुए परस्पर कहते थे कि यह प्रजा में अनुरक्त महाराज सर्व श्रेष्ठ हैं, यह हमारी जीविका और रक्षा का

प्रबन्ध करते हैं, इन्ही के लिये हमारी भी शिल्प कार्य मे प्रवृत्ति हुई है ॥३-४॥ तभी वसन्त काल की प्राप्ति पर तपस्यारत देवगण विभिन्न व्रतो से दुर्बल हो कर गधम दन पर्वत पर रहने लगे। उस समय पवन के संयोग से पुष्पो से मन्द सुगंध निकल कर फैल रही थी ॥५-६॥

पुष्पमात्रस्य यद्वीर्यं मारुतेन विसर्पितम् ।
मनोग्राहि सुखं सर्वं पार्थिवं गन्धमुत्तमम् ॥७
ते दैत्यास्तेन गन्धेन किंचिद्विस्मयमागताः ।
प्रसन्नमनसो भूत्वा परं सौख्यमुपागताः ॥८
ऊचुश्च सहिताः सर्वे तेन गन्धेन दर्पिताः ।
पुष्पमात्रस्य यद्वीर्यं किं तस्य फलतो भवेत् ॥९
अनुमानेन विज्ञेया विविधाः कर्मबुद्धयः ।
शुभाश्चैवाशुभाश्चैव बुद्धिप्राणेन देहिनाम् ॥१०
तस्माद्वयं पयोमध्ये औषध्यो निर्मथामहे ।
मन्दरेण विशालेन बलिना कामरूपिणा ॥११
समुद्रमभिसंरम्भान्मथ्नीमः सोमजं जलम् ।
पीत्वा च सहिताः सर्वे प्रस्थिताः कामरूपिणः ॥१२
विष्णुरेवाग्रणीस्तेषां भविष्यति महाबलः ।
दिवं च वसुधां चैव भोक्ष्यामः सह शत्रुभिः ॥१३
समूलपत्रशाखाश्च सपुष्पाः फलशालिनः ।
सर्वं ग्रहांश्च गृह्णीमः सूत्रां च वसुधातले ॥१४

उस सुगन्ध से देवता और दैत्य सभी उन्मत्त हो गये, क्योंकि वह पार्थिव सुगन्ध अत्यन्त आनन्द दायिनी और मन को हरने वाली होगई। वायु के झोंकों से पुष्प सब ओर फैल गये। उससे आश्चर्य चकित और हर्षित हुए दैत्य सोचने लगे कि जिस वृक्ष का ऐसा सुगन्धित पुष्प है तो फल भी अत्यन्त मा होगा ॥८-९॥ जैसे देह धारियो के शुभाशुभ कर्मों का अनुमान से ज्ञान होता वैसे ही अनुमान करके हम समुद्र में विभिन्न प्रकार की औषध्यादि डाल ।

॥१७ १८॥ घट घट की जानने वाले ब्रह्माजी उनकी कामना जान कर विश्व का कल्याण करने के लिये आकाश से ही बोले—हे दानवगण ! इस पर्वत का उखाडना तुम्हारे लिये सम्भव नहीं है इसलिये तुम आदित्य, वसु, रुद्र, मरुद्गण, देवता, यक्ष, गंधर्व और किन्नरादि से मिल कर पुनः इसका उद्योग करो तो तुम्हारे लिये हिमालय के समान सार युक्त यह पर्वत बहुत छोटा हो जायगा ॥ २० २२ ॥

सुरासुरगणा सर्वे समुत्पाट्य महागिरिम् ।
हस्तारूढा प्रपश्यन्ति वीरुधो हिमवद्रसम् ॥२३
एतच्छ्रुत्वा च वचन सर्वेषामन्तिके तदा ।
दैतेया बाहुबलिनो मनोभिर्वाग्भिरेव च ॥२४
आक्रीडभूता वहुधा वभूवुर्लवणाम्भस ।
यत्र पुष्करविन्यस्त सहित देवदानवै ॥२५
सुरासुरगणा सर्वे सहिता लवणाभस ।
मन्दर पुष्कर कृत्वा नेत्र वासुकिमेव च ॥२६
समा सहस्र मथित जलमौषधिभि सह ।
क्षीरभूत समायोगादमृत समपद्यत ॥२७
तज्जहुरसुरा पूर्वमाक्रान्ता लोभमन्युना ।
धन्वन्तरिस्तथा मद्य श्रीर्देवी कौस्तुभो मणि ॥२८
शशाङ्को विमलश्चापि समुत्तस्थु समन्तत ।
उच्चै श्रवा हयो रम्य पीयूष तदनन्तरम् ॥२९
पश्चाद्देवास्तदादातुमुद्यता राहुमब्रुवन् ।
न तु वेचित्तिपर्वत्ति स्म दैत्या नैव च दानवा ॥३०
चिच्छेदाथ हरि सख्ये राहोश्चक्रेण क तदा ।
अनिमुंचत पितृगणैर्मुनिभिश्च सनातनै ॥३१
तदिन्द्रहस्तादमृत जहार पृथिवी स्वयम् ।
जगामाग्गता देवी ब्रह्मवाक्यप्रचोदिता ॥३२

ब्रह्माजी का वचन सुन कर वे दैत्यगण देवताओं के पास गये और उन्हें साथ लेकर पर्वत को उखाड़ने लगे। इससे पर्वत उखड़ गया, जिसे मथानी बना कर एक हजार वर्ष तक समुद्र को मथने लगे। इससे अमृत की उत्पत्ति हुई। देवताओं के हाथ में स्थित उस अमृत को दैत्यों ने अधिक लोभ के कारण छीन लिया। यह अमृत समुद्र मथन में धन्वतरि, लक्ष्मी वारुणी, कौस्तुभ मणि, चन्द्रमा और उच्चैः श्रवा अश्व के पश्चात् निकला था॥ २८ २९ ॥ फिर जब देवता अमृत पीने को तत्पर हुए तो राहु की ओर संकेत करते हुए उन्होंने कहा —हमारे मध्य में कोई दैत्य तो नहीं है? ॥३०॥ यह संदेश मिलते ही भगवान् विष्णु ने अपने चक्र से राहु का मस्तक काट डाला। तब ब्रह्मवाक्य से प्रेरित हुई पृथिवी ने इन्द्र के हाथ से ऋषियों के उस सनातन पेय रूप अमृत का हरण कर लिया॥ ३१-३२ ॥

॥ भगवान वामन का बलि को छालना ॥

निहते दैत्यस घात त्रिष्णोश्चातिपराक्रमे।
दैतेया दानवेयाश्च किमिच्छन्ति पराक्रमात् ॥१
दानवा राज्यमिच्छन्ति पराक्रम्य महाबला।
तप इच्छन्ति सहिता देवा सत्यपराक्रमा ॥२
कथं कालस्य महतो हैरण्यकशिपुस्तदा।
यजते ब्रह्मण क्षेत्रे प्राप्यैश्वर्यं स कामद ॥३
यजेद्बहुसुवर्णेन राजसूयेन पार्थिव।
क्रतुना दानवश्रेष्ठो वसुधाया महाबला ॥४
गङ्गायमुनयोर्मध्ये यदभूद्विपुल तप।
समेयुस्तत्र सहिता यजमाने महासुरे। ५
ब्राह्मणा वेदविद्वांसो महाव्रतपरायणा।
यतयश्चापरे सिद्धा योगधर्मेण भारत ॥६
मुनयो वालखिल्याश्च धन्या धर्मेण शोपिता।
बहवो हि द्विजा मुख्या नित्या धर्मपरायणा ॥७

ऋषयश्च महाभागा विप्रै: पूज्याः सहस्रशः ।
विपुलै रत्र विभवैर्ह्रियमाणैस्ततस्ततः ॥८

जनमेजय ने कहा—हे ब्रह्मन् ! भगवान् विष्णु से परास्त हुए दैत्य-दानवो ने अपने बल से क्या करने का विचार किया, सो कहिये ॥१॥ वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! उस समय दैत्य-दानवो ने अपने पराक्रम से राज्य-भार समाला और देवता तप करने लगे ॥२॥ इस पर राजा जनमेजय ने पुनः प्रश्न किया—हे विप्र श्रेष्ठ ! अत्यन्त बली, पराक्रमी एवं दानशील राजा बलि ने अपना यज्ञ दीर्घ काल तक किस प्रकार किया ? ॥३॥ इस पर वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! उस अत्यन्त दानशील राजा बलि ने बहुत-सा स्वर्ण देकर ऐसे राजसूय यज्ञ का प्रारम्भ किया था, जैसा गंगा-यमुना के बीच मे रहने वाला कोई भी राजा नही कर पाया । उसके यज्ञ मे वेदज्ञाता ब्राह्मण, यती, सिद्ध, बालखिल्यादि ऋषि तथा अन्यान्य प्रमुख ब्राह्मण और ऋषि सम्मिलित हुए थे । उस यज्ञ का प्रारम्भ विपुल धन के व्यय पूर्वक किया जा रहा था ॥४-८॥

शुक्रस्तु सह पुत्रेण दैत्य याजयते प्रभुः ।
हैरण्यकशिपुं मन्ये गणाना प्रभव. प्रभुः ॥६
हैरण्यकशिपुश्चैव व्याजहार सरस्वतीम् ।
कामाद्वरं ददातीति तद्वै संप्रतिपद्यताम् ॥१०
विष्णुर्वामनरूपेण भिक्षां ता प्रतिगृह्णति ।
हैरण्यकशिपोर्हस्तादृद्धे पदे पदमेव च ॥११
ततः क्रमितुमारेभे विष्णुः सत्यपराक्रमः ।
त्रीँल्लोकान्मुनिभिः क्रान्तैर्दिव्यं वपुरधारयन् ॥१२
हृतराज्याश्च ते दैत्याः पातालविवरं ययुः ।
ससैन्यगणसंवद्धाः सप्रासाः सासितोमराः ॥१३
सयन्त्रलगुडाश्चैव सपताकारथध्वजाः ।
सचर्मवर्मकोशाश्च सायुधाः सपरश्वधाः ॥१४

तथेन्द्रविष्णुसहिताः सद्यस्तेऽभ्युत्थिता गणाः ।
अभ्यषिञ्चन्प्रमुदिता लोकानामधिपे सुराः ॥१५

उस यज्ञ को अग्नि के समान तेजस्वी महर्षि शुक्राचार्य ने अपने पुत्रों के साथ आकर प्रारम्भ कराया। उसी समय वामन रूप धारण करके भगवान् विष्णु ने स्वयं वहाँ जाकर भिक्षा माँगी। यह देख कर बलि ने कहा—आप जो चाहें वही माँग लीजिये, मैं आपकी याचना अवश्य पूरी करूँगा ॥६-१०॥ यह सुन कर वामन रूप भगवान् विष्णु ने उससे तीन पग पृथिवी की याचना की ॥११॥ बलि के स्वीकार करने पर भगवान् ने तुरन्त ही दिव्य रूप धारण कर लिया और अपने तीन पगों का विस्तार कर उनसे तीनों लोकों को नाप लिया ॥१२॥ इस प्रकार दैत्यों का सम्पूर्ण राज्य छिन गया और प्रास, असि, तोमर, यन्त्र, लगुड, खड्ग, चर्म, वर्म, कोष तथा परशु आदि शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित सम्पूर्ण सेना के सहित सभी दैत्य पाताल लोक में चले गये ॥ १३-१४ ॥ तब विष्णु आदि देवताओं ने प्रसन्न होकर तीनों लोकों का शासन इन्द्र को सौंप दिया ॥ १५ ॥

स तान्स्वधामृतेनाशु पितृत्वे समतर्पयत् ।
ब्रह्मा तदमृतं दिव्यं महेन्द्राय प्रयच्छति ।
अक्षयश्चाव्ययश्चैव स वृतस्तेन कर्मणा ॥१६
ततः शङ्खमुपाध्मासीद्द्विपता लोमहर्षणम् ।
पितामहकरोद्भूतं जनितृप्रथमे पदे । १७
तं श्रुत्वा शङ्खशब्दं तु त्रयो लोकाः समाहिताः ।
निर्वृतिं परमां प्राप्ता इन्द्रं नाथमवाप्य च ॥१८
सर्वैः प्रहरणैश्चैव संयुक्ता वह्निसंभवैः ।
मन्दराग्रेषु विहितैर्ज्वलद्भिरिव पावकैः ॥१६

इन्द्र ने स्वधामृत से उसी समय सब देवताओं को तृप्त किया तब ब्रह्माजी ने उस अमृत को इन्द्र के लिये पुनः दे दिया। उस अमृत को पीकर इन्द्र

अमर होगये ॥१६॥ तभी ब्रह्माजी के द्वारा बजते हुए शंख की घोर ध्वनि तीनों लोकों मे गूँज उठी, जिससे इन्द्र के त्रैलोक्याधिपति होने की बात सब को विदित होगई। तब सब को अत्यन्त हर्ष हुआ और सभी लोग अग्नि से अत्यन्त तेजोमय आग्नेयास्त्र प्राप्त करके आनन्द मनाने लगे ॥१७ १९॥

॥ वाराह भगवान द्वारा पृथ्वी का उद्धार ॥

जगदण्डमिदं पूर्वमासीत्सर्वं हिरण्मयम् ।
प्रजापतेर्मूर्तिमयमित्येव वैदिकी श्रुति ॥१
ततो वर्षसहस्रान्ते विभेदोर्ध्वमुख विभु ।
लोकस जननार्थाय विभेदाधोमुख पुन ॥२
भूयोऽष्टधा विभेदाण्ड प्रभुर्वं लोकयोनिकृत् ।
चकार जगतश्चात्र विभाग सर्वभागवित् ॥३
यच्छिद्रमूर्ध्वमाकाश परा सुकृतिना गति ।
विहित विश्वयोगेन यदधस्तद्रसातलम् ॥४
यदण्डमकरोत्पूर्वं देवलोकसिसृक्षया ।
समन्तादष्टधा यानि छिद्राणि कृतवास्तु स ॥५
विदिशस्ता दिश सर्वा मनसं बाकरोद्द्विधा ।
नानारागविरागाणि यान्यण्डशकलानि वै ॥६
बहुवर्णधराश्चित्रा बभूवुस्ते वलाहका ।
यदण्डमध्ये स्कन्न तद्द्रवमासीत्समाहितम् ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! वेदो की श्रुतियो से यह जाना जाता है कि प्राचीन काल मे यह ससार एक स्वर्णिम अण्ड के रूप मे था ॥ १ ॥ एक सहस्र वर्षो के पश्चात् भगवान् ने उस अण्ड का मुख ऊपर की ओर करके उसके दो भाग किये और कुछ समय के पश्चात् सृष्टि की इच्छा से उस अण्ड का मुख नीचे की ओर करके उसके आठ भाग कर डाले। इस प्रकार इस विश्व के अनेक खण्ड होगये ॥२ ३॥ उस अण्ड का ऊपरी छेद आकाश हुआ जो श्रेष्ठ पुरुषो के कर्म का साधन बन गया और उसके नीचे का भाग रसातल बन गया ॥ ४ ॥

वीर ! हे नारायण ! आप युग-युग में मुझ पर बढ़े हुए भार को जन-कल्याणार्थ उतारते रहे हैं ॥२२॥

तवैव तेजसाक्रान्तां रसातलतलं गताम् ।
त्रायस्व मां सुरश्रेष्ठ त्वामेव शरणं गताम् ॥२३
दानवैः पीड्यमानाहं राक्षसैश्च दुरात्मभिः ।
त्वामेव शरणं नित्यमुपयामि सनातनम् ॥२४
तावन्मेऽस्ति भयं भूयो यावन्न त्वां ककुद्मिनम् ।
शरणं यामि मनसा शतशोऽप्युपलक्षये ॥२५
मा भैर्धरणि कल्याणि शान्तिं व्रज समाहिता ।
एष त्वामुचितं स्थानमानयामि मनीषितम् ॥२६
ततो महात्मा मनसा दिव्यं रूपमचिन्तयत् ।
किं नु रूपमहं कृत्वा उद्धरामि वसुन्धराम् ॥२७
जले निमग्ना धरणी येनाहं वै समुद्धरे ।
इत्येवं चिन्तयित्वा तु देवो नारायणः प्रभुः ॥२८
जलक्रीडारुचिस्तस्माद्वाराहं रूपमस्मरत् ।
हरिरुद्धरणे युक्तस्तदाऽभूदस्य भूमिभृत् ॥२९

हे प्रभो ! दैत्यो-दानवों के द्वारा पीड़ित हुई मैं अब आपकी ही शरण को प्राप्त हुई हूँ, क्योंकि अब मैं दानवादि के बोझ और आपके तेज से क्षीण होकर रसातल मे धँसक रही हूँ, इसलिये मेरी रक्षा करिये। हे नाथ ! मैं जब तक आपकी शरण मे नहीं आती तभी तक मुझे भय रहता है, आपकी शरण मिलते ही मैं शंकारहित हो जाती हूँ ॥२३-२५॥ भगवान् बोले—हे देवि ! तुम किसी प्रकार का भय मत करो। मैं तुम्हे अभी तुम्हारे इच्छित और पूर्व स्थान पर स्थित किये देता हूँ ॥ २६ ॥ वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! पृथिवी को आश्वासन देकर भगवान् सोचने लगे कि इसका उद्धार करने के लिये मुझे कौन-सा रूप धारण करना चाहिये ? फिर उन्होंने जलक्रीडा की इच्छा करके महावाराह रूप से पृथिवी का उद्धार करना स्थिर किया ॥२७-२९॥

अधृष्यं सर्वभूतानां वाङ्मयं ब्रह्मसंमितम् ।
दशयोजनविस्तारमुच्छ्रितं शतयोजनम् ॥३०
नीलमेघप्रतीकाशं मेघस्तनितनिःस्वनम् ।
महागिरेः संहननं श्वेतदीप्तोग्रदंष्ट्रिणम् ॥३१
विद्युदग्निप्रतीकाशमादित्यसमतेजसम् ।
पीनवृत्तायतस्कन्धं दृप्तशार्दूलगामिनम् ॥३२
पीनोन्नतकटीदेशं वृषलक्षणपूजितम् ।
रूपमास्थाय विपुलं वाराहममितं हरिः ॥३३
पृथिव्युद्धरणार्थाय प्रविवेश रसातलाम् ।
वेदपादो यूपदंष्ट्रः क्रतुदन्तश्चितीमुखः ॥३४
अग्निजिह्वो दर्भरोमा ब्रह्मशीर्षो महातपाः ।
अहोरात्रेक्षणधरो वेदाङ्गश्रुतिभूषणः ॥३५

फिर उन्होंने जो वाराह रूप धारण किया, उसका विस्तार दस योजन और ऊँचाई सौ योजन थी उस मूर्ति के समीप जाने का किसी में साहस नहीं था। उनका गर्जन नीलवर्ण के मेघ जैसा था, उनके श्वेत दाँत अत्यन्त उग्र थे जिनके द्वारा पर्वत भी सुगमता से विदीर्ण हो सकते थे ॥३०-३१॥ उनके नेत्र विद्युत, अग्नि और आदित्य के समान प्रकाशमान थे। उनका स्कध प्रदेश मोटा और गोल था तथा क्रोधित सिंह के समान भीषण पराक्रम था ॥३२॥ उनकी कटि मोटी और ऊँची थी। उनमे अत्यन्त विकासित बैल के सभी लक्षण विद्यमान थे। इस प्रकार वाराह रूप धारी भगवान् विष्णु पृथिवी का पुनरुद्धार करने की इच्छा से रसातल मे घुस गये। उनके चरण चारो वेद थे, उनकी दंष्ट्राएँ यज्ञयूप थे, यज्ञ उनकी भुजाएँ, चिति मुख, अग्नि जिह्वा, दर्भ रोम, प्रणव मस्तक, दिन-रात्रि दोनो नयन, वेदाङ्ग कुण्डल, थे ॥३३-३५॥

आज्यनासाः स्रुवस्तुण्डः सामघोषस्वरो महान् ।
सत्यधर्ममयः श्रीमान्कर्मविक्रमसत्कृतः ॥३६
क्रियासत्रमहाघोणः पशुजानुर्मखाकृतिः ।
उद्गात्रान्त्रो महालिङ्गो बीजौषधिमहाफलः ॥३७

देवताओं की उत्पत्ति के लिये जो अण्ड बनाया गया, उसके सब ओर आठ छेद बनाये गये। वही छेद दिशा और विदिशा हुए। विभाग करते समय जो छोटे टुकडे बचे, वे सब मेघ होगये ॥५-८॥

जातरूपं तदभवत्तत्सर्वं पृथिवीतले ।
तस्य यत्क्लेदार्णवौघेन प्राच्छाद्यत समन्ततः ॥८
पृथिवी निखिला राजन्युगान्ते सागरैरिव ॥९
यच्चाण्डमकरोत्पूर्वं देवलोकचिकीर्षया ।
तत्र तत्सलिलं स्कन्नं सोऽभवत्काञ्चनो गिरिः ॥१०
तेनाम्भसा प्लुताः सर्वा दिशश्चोपदिशस्तथा ।
अन्तरिक्षं च नाकं च यच्चान्यत्किंचिदन्तरम् ॥११
यत्र-यत्र जलं स्कन्नं तत्र तत्र स्थितो गिरिः ।
शैलैः समस्तैर्गहना विषमा मेदिनी भवत् ॥१२
तैः सपर्वतजालौघैर्बहुयोजनविस्तृतैः ।
पीडिता गुरुभिर्देवी पृथिवी व्यथिताऽभवत् ॥१३
महीतले भूरि जलं दिव्यं नारायणात्मकम् ।
हिरण्मयं समुद्दिष्टं तेजो विमलरूपितम् ॥१४
अशक्ता वै धारयितुमधः सा प्रविवेश ह ।
पीड्यमाना भगवतस्तेजसा तेन सा क्षितिः ॥१५

उस अण्ड के तरल अंश से पृथिवी सब ओर से आच्छादित होगई। देवताओं की उत्पत्ति के लिये हिरण्मय अण्ड के विभाजित होते समय निकलने वाले जल से कांचनगिरि की अवतारणा हुई ॥८-१०॥ बचे हुए जल से दिशा, विदिशा, अन्तरिक्ष और स्वर्गादि स्थान सिंचित हुए ॥११॥ जहाँ-जहाँ वह जल गिरा, वहीं-वहीं पर्वत होगये। इस प्रकार पर्वत और वनों के उत्पन्न होने से पृथिवी ऊँची-नीची तथा असमान होगई ॥१२॥ इन अनेक योजन लम्बे चौड़े और बहुत भार वाले पर्वतों के कारण पृथिवी बोझिल होगई, उस पर भी

नारायणात्मक दिव्य जल के बोझ से तो और भी पीडित हो उठी। इस प्रकार भार वहन करने मे असमर्थ हुई पृथिवी नीचे की ओर धँसकने लगी ॥१३-१५॥

पृथिवी विशती दृष्ट्वा तामधो मधुसूदन ।
उद्धारार्थं मनश्चक्रे लोकाना हितकाम्यया ॥१६
मत्तेज एव वलवत्समासाद्य तपस्विनी ।
रसातलं विशेद्देवी पङ्के गौरिव दुर्बला ॥१७
त्रिविक्रमायामितविक्रमायहान् सिहाय चतुर्भुजाय ।
श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय नमोऽस्तु तस्मै पुरुषो त्तमाय ॥१८
त्वयाऽऽत्मना धार्यते वै त्वया संह्रियते जगत् ।
त्वं धारयसि भूतानि भुवन त्वं बिभर्षि च ॥१९
यत्त्वया धर्यते किंचित्तेजसा च बलेन च ।
ततस्तव प्रसादेन मया पश्चात्तु धार्यते ॥२०
त्वया धृत धारयामि नाधृत धारयाम्यहम् ।
न हि तद्विद्यते रूप यत्त्वया न तु धार्यते ॥२१
त्वमेव पुरुषो वीर नारायण युगे युगे ।
मम भारावतरण जगतो हितकाम्यया ॥२२

जब भगवान् ने पृथिवी को रसातल मे धँसकते हुए देखा तो अपने तेज-बल से उसका उद्धार करने का विचार किया ॥१६॥ भगवान् सोचने लगे कि यह तपस्विनी धरा मेरे तेज को न सह कर कीच में फँसी गो के समान रसातल मे घुसी जारही है ॥१७॥ तभी पृथिवी ने कहा हे त्रिविक्रम ! हे महा नृसिह ! हे चतुर्भुज ! हे शार्ङ्गधर ! हे खड्ग, गदा और चक्रधारी पुरुषोत्तम ! आपको नमस्कार है ॥१८॥ आप ही जगत् और जीवो का पालन तथा रक्षण करते हैं एव आप ही अपने तेज और बल के कारण सब के धारण मे समर्थ हैं। इसीलिये आपके प्रभाव से मैं भी सब कुछ धारण करने वाली हुई हूँ ॥ २० ॥ आपकी धारण शक्ति से ही मुझे उस शक्ति की प्राप्ति हुई है, क्योंकि ससार का ऐसा कोई भी पदार्थ नही है, जो आपके द्वारा धारण न किया जाता हो ॥ २१ ॥ हे

वाय्वन्तरात्मा मन्त्रस्फिग्विक्रमः सोमशोणितः ।
वेदीस्कन्धो हविर्गन्धो हव्यकव्यातिवेगवान् ॥३८
प्राग्वंशकायो द्युतिमान्नानादीक्षाभिरर्चितः ।
दक्षिणाहृदयो योगी महासत्त्वमयो महान् ॥३९
उपाकर्मोष्ठरुचकः प्रवर्ग्यावर्त भूषणः ।
नानाछन्दोगतिपथो गुह्योपनिषदासनः ॥४०
छायापत्नीसहायो वै मणिश्रृङ्ग इवोच्छ्रितः ।
भूत्वा यज्ञवराहोऽसौ युगपत्प्राविशद्गुरुः ॥४१

घृत नासिका, स्रुवा तुण्ड, साम-ध्वनि स्वर, क्रियामय दानादि उनका घ्राण, पशु जानु, यज्ञ आकृति, उद्गाता आँतें, होम उपस्थ, महाफल वीर्य, पवन अन्तरात्मा, मन्त्र स्फिक् विक्रम, सोम रुधिर, वेदी स्कंध, हवि गंध, हव्य-कव्य वेग, प्राग्वंश देह, द्युति दीक्षा दक्षिणा वक्ष-स्थल, उपकरण ओष्ठ के अलंकार, होमाग्नि नाभि का अलंकार, छन्द मार्ग, गुह्य उपनिषद आसन और छाया पत्नी थी। उनका शरीर मणिमय शिखर के समान ऊँचा था। सत्य धर्म युक्त, अत्यन्त बली-पराक्रमी, श्री सम्पन्न एवं योगी वराह रूपी भगवान् पाताल में घुस गये ॥३६-४१॥

अद्भिः संछादितामुर्वीं स तामार्च्छत्प्रजापतिः ।
रसातलतले मग्नां पातालान्तरसंश्रयाम् ॥४२
प्रभुर्लोकहितार्थाय दंष्ट्राग्रेणोज्जहार गाम् ।
ततः स्वस्थानमानीय पृथिवीं पृथिवीधरः ॥४३
मुमोच पूर्वं सहसा धारयित्वा धराधरः ।
ततो जगाम निर्वाणं मेदिनी तस्य धारणात् ॥४४
चकार च नमस्कारं तस्मै देवाय शंभवे ।
एवं यज्ञवराहेण भूत्वा भूतहितार्थिना ॥४५
उद्धृता पृथिवी देवी लोकानां हितकाम्यया ।
अथोद्धृत्य क्षितिं देवो जगतः स्थापनेच्छया ॥४६

पृथिवीप्रविभागाय मतश्चक्रेऽम्बुजेक्षणः ।
रसातलगतामेवं विचिन्त्य स सुरोत्तमः ॥४७
ततो विभुः प्रवरवराहरूपधृग्वृपाकपिः प्रसभमथैकदंष्ट्रया ।
समुद्धरद्धरणिमतुल्यविक्रमो महायशाः सकलहितार्थमच्युतः ॥४८

वहाँ जाकर रसातल में घुसी और जल में डूबी हुई पृथिवी को उन्होंने अपने दाँतों के अगले भाग पर रख लिया ।४२॥ फिर उन्होंने उस पृथिवी को जल से वाहर लाकर स्थापित किया । इस प्रकार पृथिवी को धारण करने से ये 'धराधर' नाम से विख्यात हुए । उनके द्वारा धारण की गई पृथिवी भी अब मुक्त होकर भय-रहित होगई ॥४३-४४॥ यज्ञ वराह रूप में अवतीर्ण हुए भगवान् से रक्षित होकर उस पृथिवी ने उन्हें नमस्कार किया ॥४५॥ हे राजन् ! इस प्रकार भगवान् विष्णु ने यज्ञवराह रूप से लोक कल्याणार्थ पृथिवी का उद्धार किया ॥ ४६-४८ ॥

॥ हिरण्याक्ष और इन्द्र का संग्राम ॥

कदाचित्तु सपक्षास्ते पर्वता धरणीधराः ।
प्रस्थिता धरणी त्यक्त्वा नूनं तस्यैव मायया ॥१
तदाऽसुराणां निलयं हिरण्याक्षेण पालिताम् ।
दिशं प्रतीचीमागम्य ह्रदेऽमज्जन्यथा गजाः ॥२
सत्तासुरेभ्यः शंसन्त आधिपत्यं सुराश्रये ।
तच्छ्रुत्वाऽथासुराः सर्वे चक्रुरुद्योगमुत्तमम् ॥३
क्रूरा च बुद्धिमतुला पृथिवीहरणे रताः ।
आयुधानि च सर्वाणि जगृहुर्भीमविक्रमाः ॥४
चक्राशनीस्तथा खड्गान्भुशुण्डीश्च धनूंषि च ।
प्रासान्पाशांश्च शक्तीश्च मुसलानि गदास्तथा ॥५

केचित्कवचिनः सज्जा मत्तनागांस्तथा परे ।
केचिदश्वरथान्युक्ता अपरेऽश्वान्महासुराः ॥६

केचिदुष्ट्रांस्तथा खड्गान्महिषान्गर्भानपि ।
स्वबाहुबलमास्थाय केचिच्चापि पदातयः ॥७

परिवार्य हिरण्याक्षं तलबद्धाः कलापिनः ।
इतश्चेतश्च निश्चेरुर्हृष्टाः सर्वे युयुत्सवः ॥८

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! एक बार की बात है कि असुरों के पक्ष वाले पर्वतों ने पृथिवी छोड़ कर हिरण्याक्ष द्वारा पालन की जाने वाली पश्चिम दिशा को प्रस्थान किया और वहाँ जाकर वे सरोवर के जल में हाथी के समान घुस गये ॥१-२॥ उस समय दैत्य श्रेष्ठ हिरण्याक्ष दैत्यनगरी का पालक था। उन पंख वाले पर्वतों ने वहाँ जाकर देवताओं द्वारा तीनों लोकों के आधिपत्य-प्राप्ति की बात असुरों को बताई, जिसे सुनकर वे असुरगण युद्ध करने का विचार करने लगे ॥३॥ तब वे चक्र, अशनि, खड्ग, भुशुंडी, धनुष, प्रास, पाश, शक्ति, मूसल और गदा आदि अत्यंत सुतीक्ष्ण शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित हुए। वे सब क्रूर बुद्धि वाले दानव सम्पूर्ण पृथिवी पर अधिकार की अभिलाषा करते थे ॥४-५॥ कुछ दैत्य कवचादि धारण करके हाथियों, अश्वों, रथों, ऊँटों, बैलों, भैंसों और कुछ गधों पर बैठ गये तथा कुछ अपने भुजबल के भरोसे पर पैदल ही युद्ध करने को तत्पर हुए ॥६-७॥ इस प्रकार सुसज्जित हुए सभी दैत्य अपने स्वामी हिरण्याक्ष को सब ओर से घेर कर युद्ध की इच्छा से घूमने लगे ॥८॥

ततो देवगणाः पश्चात्पुरन्दरपुरोगमाः ।
दैत्यानां विदितोद्योगाश्चक्रुरुद्योगमुत्तमम् ॥९

महता चतुरङ्गेण बलेन सुसमाहिताः ।
बद्धगोधांगुलित्राणास्तूणवन्तः समार्गणा ॥१०

उग्रायुधधरा देवाः स्वेष्वनीकेष्ववस्थिताः ।
ऐरावतगतं शक्रमन्वगच्छन्त पृष्ठतः ॥११

ततस्तूर्यनिनादेन भेरीणां च महास्वनैः ।
अभ्यद्रवद्धिरण्याक्षो देवराज पुरन्दरम् ॥१२
तीक्ष्णैः परशुनिस्त्रिंशैर्गदातोमरशक्तिभिः ।
मुसलैः पट्टिशैश्चैव च्छादयामास वासवम् ॥१३
ततोऽस्त्रबलवेगेन सोचिष्मत्य सुदारुणाः ।
घोररूपा महावेगा निपेतुर्बाणवृष्टय ॥१४

जब इन्द्रादि देवताओ को दैत्यों के युद्ध के लिये सजने का समाचार मिला तब वे भी युद्ध-सामग्री एकत्र करने मे तत्पर हुए ॥६॥ वे सभी अंगुलित्राण, तूणीर, बाण आदि अत्यंत तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रो को धारण कर अपने-अपने दल मे मिल गये और तब देवराज इन्द्र को हाथी पर चढ़ा कर उनके पीछे-पीछे सभी चल दिये ॥१० ११॥ उस समय भेरी, तुरही आदि विविध प्रकार के बाजे बज उठे। इन्द्र को युद्ध क्षेत्र मे देखकर हिरण्याक्ष वेग पूर्वक उनकी ओर अग्रसर हुआ ॥१२॥ उनके सामने जाकर उस दैत्य-श्रेष्ठ ने परशु, निस्त्रिंश, गदा, तोमर, शक्ति, मूसल और भिन्दिपाल जैसे शस्त्रों को बरसा कर इन्द्र को आच्छादित कर दिया ॥१३॥ फिर अत्यंत वेग पूर्वक तेजोमय बाणो की घोर वर्षा होने लगी ॥१४॥

समुद्यतायुधं दृष्ट्वा सर्वे देवगणास्तदा ।
ते हिरण्याक्षमसुरं दैत्यानामग्रत स्थितम् ॥१५
युगान्तसमये भीमं स्थितं मृत्युमिवाग्रत ।
प्रविव्यथु सुरा सर्वे तदा शक्रपुरोगमा ॥१६
दृष्ट्वाऽऽयान्तं हिरण्याक्षं महाद्रिमिव जङ्गमम् ।
देवा स विग्नमनस प्रगृहीतशरासना ॥१७
सहस्राक्ष पुरस्कृत्य तस्थु संग्राममूर्धनि ।
सा च दैत्यचमू रेजे हिरण्यकवचोज्ज्वला ॥१८
प्रवृद्धनक्षत्रगणा शारदी द्यौरिवामला ।
तेऽन्योन्यमपि सम्मेतु पातयन्त परस्परम् ॥१९

बभञ्जुर्बाहुभिर्बाद्विन्द्वमन्ये युयुत्सवः।
गदानिपातैर्भग्नाङ्गा बाणैश्च व्यथितोरसः ॥२०
विनिपेतुः पृथक्केचित्तथान्येऽपि विजघ्निरे।
बभञ्जिरे रथान्केचित्केचित्संमृदिता रथैः ॥२१

उस समय उद्यतायुध हिरण्याक्ष को सामने देखकर सभी देवगण उसे सब ओर से मारने को दौड़े ॥१५-१६॥ इस पर भी वह दैत्य श्रेष्ठ आगे ही बढ़ता गया। तब उस विशाल देह वाले हिरण्याक्ष को पीछे न हटता देख कर देवताओं ने युद्ध छोड़ दिया और वे भाग-भाग कर इन्द्र के पीछे खड़े होने लगे। इधर सोने के कवचों को धारण करने वाले दैत्य नक्षत्रों से युक्त शरत्कालीन आकाश के समान सुशोभित हुए। फिर दैत्य और देवताओं में भीषण टक्कर होने लगी ॥१७-१९॥ तब किसी का हाथ, किसी का पाँव, किसी का मस्तक और किसी का पूरा शरीर ही छिन्न-भिन्न हो गया। कुछ दैत्य धराशायी हुए, कुछ चक्कर खाने लगे, कुछ देवताओं के रथों को तोड़ने लगे तथा कुछ उन रथों के नीचे आ गये ॥२०-२१॥

सम्बाधमन्ये सम्प्राप्ता न शेकुश्चलितुं रथाः।
दानवेन्द्रबलं तत्तु देवानां च महद्बलम् ॥२२
अन्योन्यबाणवर्षेण युद्धदुर्दिनमाबभौ।
हिरण्याक्षस्तु बलवान्क्रुद्धः स दितिनन्दनः ॥२३
व्यवर्द्धत महातेजाः समुद्र इव पर्वणि।
तस्य क्रुद्धस्य सहसा मुखान्निरश्चेरर्चिषः ॥२४
शस्त्रजालं बहुविधैर्धनुर्भिः परिघैरपि।
सर्वमाकाशमावव्रे पर्वतैरुत्थितैरिव ॥२५
बहुभिः शस्त्रनिस्त्रिंशैः छिन्नभिन्नशिरोरसः।
न शेकुश्चलितुं देवा हिरण्याक्षार्दिता युधि ॥२६
सर्वे वित्रासिता देवा हिरण्याक्षेण संयुगे।
न शेकुर्यत्नवन्तोऽपि यत्नं कर्तुं विचेतसः ॥२७

तेन शक्र सहस्राक्ष: स्तम्भितोऽन्येण धीमता ।
ऐरावतगत: स त्ये नाशकच्चलितु भयात् ॥२८
सर्वांश्च देवानखिलान्स पराजित्य दानव: ।
स्तम्भयित्वा च देवेशमात्मस्थं मन्यते जगत् ॥२९
सतोयमेघप्रतिमोग्रनि स्वन प्रभिन्नमातङ्ग विलास विग्रहम् ।
धनुर्विधुन्वन्तमुदारवचंस तदाऽसुरेन्द्र ददृशु. सुरा. स्थिता: ॥३०

फिर घमासान युद्ध होने के कारण रथो के लिये चलने योग्य स्थान ही न रहा । इस प्रकार दानव रूपी महामेघो के उमडने और देवताओ के विद्युत के समान अस्त्रो के चमकने तथा दोनो पक्ष द्वारा होने वाली वाण वर्षा से युक्त युद्धरूपी दुर्दिन आ गया । तब पर्व दिन पर क्षुब्ध हुए समुद्र के समान, दैत्यवर हिरण्याक्ष कुपित होकर मुख से आग उगलने लगा ।२२-२४। फिर उसके विभिन्न प्रकार के शस्त्रो से नभमण्डल ढक कर ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे वह उन्नत पर्वतो से आच्छादित हो गया हो ॥२५॥ हिरण्याक्ष द्वारा शस्त्र प्रहार होने से देवताओ के शिर कट गये और हृदय विदीर्ण हो गये । इस प्रकार घायल हुए देवताओ मे चलने फिरने की भी शक्ति न रही ॥२६॥ इससे उनमे इतना भीषण भय छा गया कि किंकर्त्तव्य विमूढ के समान खडे रहने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय उन्हे नही सूझ पडा ।२७॥ ऐरावत पर आरूढ इन्द्र भी दैत्य-राज के अस्त्र से स्तभित होकर अविचल जैसे खडे हो गये ॥२८॥ इस प्रकार मदमस्त हाथी के समान हिरण्याक्ष ने सब देवताओ को जीत कर सब लोको को अपना समझ लिया ॥२९॥ उस समय देवताओ ने जलयुक्त मेघ के समान भीषण गर्जनशील तथा मत्त गजराज के समान क्रीडायुक्त हिरण्याक्ष को धनुष की टकोर करते हुए देखा ॥३०॥

॥ वाराह भगवान द्वारा हिरण्याक्ष-वध ॥

निष्प्रयत्ने सुरपतौ धर्षितेषु सुरेषु च ।
हिरण्याक्षवधे बुद्धि चक्रे चक्रगदाधर ॥१

वाराहः पर्वतो नाम यः पूर्वं समुदाहृतः ।
स एष भूत्वा भगवानाजगामासुरान्तकृत् ॥२
ततश्चन्द्रप्रतीकाशमगृह्णाच्छङ्खमुत्तमम् ।
सहस्रारं च तच्चक्रं चक्रपर्वतसन्निभम् ॥३
महादेवो महाबुद्धिर्महायोगी महेश्वरः ।
पठ्यते योऽमरैः सर्वैर्गुह्यैर्नामभिरव्ययः ॥४
सदसच्चात्मनि श्रेष्ठः सद्भिर्यः सेव्यते सदा ।
इज्यते यः पुराणैश्च त्रिलोके लोकभावनः ॥५
यो वैकुण्ठः सुरेन्द्राणामनन्तो भोगिनामपि ।
विष्णुर्यो योगविदुषां यो यज्ञकर्मणाम् ॥६

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! इन्द्रादि देवताओं के पराजित होने पर चक्र गदा धारण करने वाले वाराह भगवान् ने हिरण्याक्ष को मारने का निश्चय किया ॥१॥ इससे पूर्व इसी रूप से उन्होंने पृथिवी का उद्धार किया था, वे ही असुरों का संहार करने वाले भगवान् विष्णु अब युद्ध क्षेत्र में जा पहुँचे ॥२॥ जहाँ उन्होंने शरद् काल के स्वच्छ चन्द्रमा के समान अपने सहस्रधार वाले चक्र को ग्रहण किया ॥३॥ जो महादेव, महाबुद्धि, महायोगी एवं महेश्वर कहे जाते हैं, जो सब जीवों में निवास करते हैं, जिन जगत् के पूज्य की सन्तजन सदा सेवा करते हैं, जो योगियों के लिये, विष्णु भोगियों के लिये अनन्त और याज्ञिकों के लिये यज्ञ है ॥४-६॥

ततः संरक्तनयनो हिरण्याक्षो महासुरः ।
कोऽयमित्यब्रवीद्रोषान्नारायणमुदैक्षत ॥७
वाराहरूपिणं देवं संस्थितं पुरुषोत्तमम् ।
शङ्खचक्रोद्यतकरं देवानामार्त्तिनाशनम् ॥८
रराज शङ्खचक्राभ्यां ताभ्यामसुरसूदनः ।
सूर्याचन्द्रमसोर्मध्ये यथा नीलपयोधरः ॥९
ततोऽसुरगणाः सर्वे हिरण्याक्षपुरोगमाः ।
उद्यतायुधनिस्त्रिंशा दृष्ट्वा देवमुपाद्रवन् ॥१०

पीड्यमानोऽतिबलिभिर्दैत्यैः सर्वायुधोद्यतैः ।
न चचाल हरिर्यद्वेऽरभ्यमान इवाचल ॥११

ततः प्रज्वलिता शक्ति वाराहोरसि दानव ।
हिरण्याक्षो महातेजा पातयामास वीर्यवान् ॥१२
तस्या शक्त्या प्रभावेण ब्रह्मा विस्मयमागतः ।
समीपमागता दृष्ट्वा महाशक्ति महाबल ॥१३
हुंकारेणैव निर्भर्त्स्य पातयामास भूतले ।
तस्या प्रतिहताया तु ब्रह्मा साध्विति चाब्रवीत् ॥१४

तब वह घोर दैत्य हिरण्याक्ष अपने नेत्रों को क्रोध से रक्त वर्ण करके 'यह कौन है ?' सोचता हुआ वाराह भगवान् को टकटकी लगा कर देखने लगा ॥७॥ इस प्रकार उन शंख चक्रधारी देव दु ख-नाशक पुरुषोत्तम वाराह भगवान् को उसने अपने सामने अवस्थित देखा ॥८॥ उनके एक हाथ मे शंख और दूसरे में चक्र था । उस समय वे सूर्य और चन्द्रमा के मध्य स्थित नील मेघ के समान प्रतीत हो रहे थे ॥९॥ इसके पश्चात् हिरण्याक्ष आदि सभी दैत्यगण विविध प्रकार के श्रेष्ठ शस्त्रास्त्रो को लेकर वेग पूर्वक उनकी ओर दौडे ॥१०॥ समीप मे पहुंचकर वे दैत्यगण वाराह भगवान् पर घोर प्रहार करने लगे । परन्तु भगवान् उन प्रहारों से किंचित् भी विचलित न होकर पर्वत के समान दृढ रूप से खडे रहे ॥११॥ तब उस तेजस्वी दैत्यराज ने उनके वक्षस्थल पर महातेजोमय शक्ति से आघात किया ॥१२॥ उस शक्ति के महान् प्रभाव के निष्फल होने से ब्रह्माजी को बडा आश्चर्य हुआ, क्योंकि वराह भगवान् ने उस शक्ति को एक हुंकार मात्र से पृथिवी पर गिरा दिया । उस समय ब्रह्माजी 'साधु-साधु' कह उठे ॥१३ १४॥

य प्रभु सर्वभूताना वराहस्तेन ताडित ।
ततो भगवता चक्रमाविध्यादित्यसन्निभम् ॥१५
पातित दानवेन्द्रस्य शिरस्युत्तमकर्मणा ।
तत स्थितस्यैव शिरस्तस्य भूमौ पपात ह ।
हिरण्मय वज्रहत मेरुशृङ्गमिवोत्तमम् ॥१६

हिरण्याक्षे हते दैत्ये शेषा ये तत्र दानवाः ।
सर्वे तस्य भयत्रस्ता जग्मुराशु दिशो दश ।।१७
स सर्वलोकाप्रतिचक्रचक्रो महाहवेष्वप्रतिमोग्रचक्रः ।
बभौ वराहो युधि चक्रपाणिः कालो युगान्तेष्विव दण्डपाणिः ।।१८

उन्होंने कहा--जो सभी देवताओं के ईश्वर हैं, उनके लिये यह तुच्छ शक्ति क्या महत्व रखती है ? ।।१५।।.हे राजन् ! फिर भगवान् वाराह ने अपने सूर्य के समान प्रकाशमान सुदर्शन चक्र को हिरण्याक्ष पर छोड़ा, जिससे वह दैत्य स्तंभित हो गया और तभी छिन्न-भिन्न हुए मेरुशृङ्ग के समान उसका सिर कट कर पृथिवी पर गिर गया ।।१६।। उसकी मृत्यु होते ही बचे हुए सभी दैत्य भय से अत्यत व्याकुल होकर सब दिशाओं में भाग निकले ।।१७।। इधर वाराह भगवान् युग का अन्त करने वाले दण्डधारी यम के समान चक्र धारण किये रणभूमि में अविचल भाव से खड़े रहे ।।१८।।

।। नृसिंहावतार की कथा ।।

वाराह एष कथितो नारसिंहमतः शृणु ।
यत्र भूत्वा मृगेन्द्रेण हिरण्यकशिपुर्हतः ।।१
पुरा कृतयुगे राजन्हिरण्यकशिपुः प्रभुः ।
दैत्यानामादिपुरुषश्चकार सुमहत्तपः ।।२
दश वर्षसहस्राणि शतानि दश पञ्च च ।
जलवासी समभवत्स्थानमौनव्रतस्थितः ।।३
ततः शमदमाभ्यां च ब्रह्मचर्येण चैव हि ।
ब्रह्मा प्रीतोऽभवत्तस्य तपसा नियमेन च ।।४
ततः स्वयंभूर्भगवान्स्वयमागत्य तत्र ह ।
विमानेनार्कवर्णेन हंसयुक्तेन भास्वता ।।५
आदित्यैर्वसुभिः साध्यैर्मरुद्भिर्दैवतैः सह ।
रुद्रैर्विश्वसहायैश्च यक्षराक्षसकिन्नरैः ।।६

दिग्भिश्चाथ विदिग्भिश्च नदीभिः सागरैस्तथा ।
नक्षत्रैश्च मुहूर्तैश्च खचरैश्च महाग्रहैः ॥७
देवैर्ब्रह्मर्षिभिः सार्द्धं सिद्धैः सप्तर्षिभिस्तथा ।
राजर्षिभिः पुण्यकृद्भिर्गन्धर्वैरप्सरोगणैः ॥८

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! इस प्रकार वाराह भगवान् का वृत्तान्त हुआ, अब तुम्हें नृसिंहावतार की कथा सुनाता हूँ, जिसके द्वारा उन्होंने हिरण्यकशिपु को मारा था ॥१॥ पूर्वकाल की बात है कि दैत्यों के आदि पुरुष हिरण्यकशिपु ने सत्ययुग में घोर तप का आरम्भ किया ॥२॥ उसने प्रथम मौन पूर्वक जल में निवास करते हुए साढ़े ग्यारह हजार वर्ष तक तपस्या की थी ॥३॥ उसके शमदम आदि गुण ब्रह्मचर्य-पालन और तप तथा नियमों को देखकर लोक पितामह ब्रह्माजी उस पर अत्यंत प्रसन्न हुए ॥४। इस प्रकार प्रसन्न हुए ब्रह्माजी अपने सूर्य के समान तेजस्वी हंसाकार विमान पर चढ़ कर उसके पास गये ॥५॥ उस समय उनके साथ आदित्य, वसु, साध्य, मरुत्, रुद्र यक्ष, राक्षस, किन्नर, गन्धर्व, अप्सरा, नद, नदी, समुद्र, नक्षत्र, मुहूर्त्त, देवर्षि, ब्रह्मर्षि, सप्तर्षि और सिद्ध आदि भी वहाँ पहुँचे ॥६ ८॥

चराचरगुरुः श्रीमान्वृतो देवगणैः सह ।
ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठो दैत्यं वचनमब्रवीत् ॥९
प्रीतोऽस्मि तव भक्तस्य तपसाऽनेन सुव्रत ।
वरं वरय भद्रं ते यथेष्टं काममाप्नुहि ॥१०
ततो हिरण्यकशिपुः प्रीतात्मा दानवोत्तम ।
कृताञ्जलिपुटः श्रीमान्वचनं चेदमब्रवीत् ॥११
न देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः ।
न मानुषाः पिशाचाश्च निहन्युर्मां कथंचन ॥१२
ऋषयो नैव मां क्रुद्धाः सर्वलोकपितामह ।
शापेयुस्तपसा युक्ता वर एष वृतो मया ॥१३
न शस्त्रेण न चास्त्रेण गिरिणा पादपेन च ।
न शुष्केण न चार्द्रेण स्यान्न चान्येन मे वधः ॥१४

तब देवताओं से घिरे हुए चराचर गुरु और वेदज्ञानियों में पूज्य ब्रह्माजी ने हिरण्यकशिपु से कहा—हे सुव्रत ! तुम मेरे अत्यंत भक्त और प्रीति-भाजन हो, तुम्हारे कठोर तप से मैं अत्यंत संतुष्ट हूँ। तुम्हारा मंगल हो, तुम्हें जो चाहिये, वही मुझसे माँग लो ॥९-१०॥ यह सुन कर हिरण्यकशिपु ने हाथ जोड़ कर उनसे कहा—हे सर्वलोक पितामह ! मुझे यह वर दीजिये कि देवता, दैत्य, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, मनुष्य और पिशाचादि में से कोई भी मेरे वध में समर्थ न हो सके ॥११-१२॥ तपस्वी ऋषिगण मुझे शाप न दे पावें और कोई भी शस्त्र, अस्त्र, पर्वत, वृक्ष, सूखे या गीले पदार्थ मेरी मृत्यु के कारण न बनें ॥१३-१४॥

न स्वर्गेऽप्यथ पाताले नाकाशे नावनिस्थले ।
न चाभ्यन्तरराज्यह्नोर्न चाप्यन्येन मे वधः ॥१५
पाणिप्रहारेणैकेन सभृत्यबलवाहनम् ।
यो मां नाशयितुं शक्त. स मे मृत्युर्भविष्यति ॥१६
भवेयमहमेवार्कः सोमो वायुर्हुताशनः ।
सलिलं चान्तरिक्षं च नक्षत्राणि दिशो दश ।
अहं क्रोधश्च कामश्च वरुणो वासवो यम. ॥१७
धनदश्च धनाध्यक्षो यक्षःकिंपुरुषाधिपः ।
मूर्तिमन्ति च दिव्यानि ममास्त्राणि महाहवे ।
उपतिष्ठन्तु देवेश सर्वलोकपितामह ॥१७
एते दिव्या वरास्तात मया दत्तास्तवाद्भुताः ।
सर्वान्कामानल्पभावात्प्राप्स्यसि त्वं न संशयः ॥१९
एवमुक्त्वा स भगवाञ्जगामाकाशमेव च ।
वैराज्यं ब्रह्मसदनं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥२०
ततो देवाश्च नागाश्च गन्धर्वा मुनिभि. सह ।
वरप्रदानं श्रुत्वैव पितामहमुपस्थिताः ॥२१

स्वर्ग, आकाश, पृथिवी आदि किसी भी स्थान अथवा दिवस-रात्रि आदि किसी भी समय मैं न मर सकूँ। मेरी यही कामना है ॥१५॥ यदि मृत्यु हो तो

उसी के हाथ से जो एक ही थप्पड के प्रहार से मेरी सेना के सहित मुझे मार सके ॥१६॥ सूर्य, चन्द्र वायु अग्नि, जल, आकाश, नक्षत्र, दसो दिशायें, काम, क्रोध, वरुण और कुबेर मैं स्वय ही हो जाऊँ। सभी दिव्य शस्त्रास्त्र साकार रूप मे सदा मेरी सेवा मे तत्पर रहे ॥१७ १८॥ इस पर ब्रह्माजी ने कहा—हे वत्स! तुम्हारे माँगे हुए सभी अद्भुत वरो को मैं तुम्हे प्रदान करता हूँ। तुम्हारी सब इच्छाएँ नि सदेह पूर्ण होगी। हे राजन्! यह कह कर ब्रह्माजी आकाश मार्ग से अपने स्थान को चले गये। तदनन्तर देवता ऋषि गधर्वादि न जब इस वरदान के विषय मे सुना तो वे सब एकत्रित होकर ब्रह्माजी के पास गये ॥१६ २१॥

वरेणानेन भगवन्वधिष्यति स नोऽसुर ।
तत्प्रसीदस्व भगवन्वधोऽप्यस्य विचिन्त्यताम् ॥२२
भगवान्सर्वभूतानामादिकर्ता स्वय प्रभु ।
स्रष्टा च हव्यकव्यानामव्यक्तप्रकृतिध्रुव ॥२३
सर्वलोकहित वाक्य श्रुत्वा देव प्रजापति ।
आश्वासयामास सुरान्सशीतैर्वचनाम्बुभि ॥२४
अवश्य त्रिदशास्तेन प्राप्तव्य तपस फलम् ।
तपसोऽन्ते स भगवान्वध विष्णु करिष्यति ॥२५
एतच्छ्रुत्वा सुरा सर्वे वाक्य पङ्कजजन्मन ।
स्वानि स्थानानि दिव्यानि प्रतिजग्मुर्मुदान्विता ॥२६
लब्धमात्रे वरे तस्मिन्सर्वा सोऽबाधत प्रज ।
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो वरदानेन दर्पित ॥२७
आश्रमेषु मुनीन्सर्वान्ब्राह्मणान्स शितव्रतान् ।
सत्यधर्मरतान्दान्तान्धर्षयामास वीर्यवान् ॥२८

वहाँ पहुँच कर देवगण बोले—हे भगवान्! आपने वरदान से गर्वित हुआ हिरण्यकशिपु हमारा सहार कर देगा, इसलिये अब आप हम पर प्रसन्न होकर उसकी मृत्यु का भी कोई उपाय निश्चित कीजिये ॥२२॥ यह सुन कर लोक कर्ता भगवान् ब्रह्माजी ने उन देवताओ को शीतल जल जैसी अपनी शान्त

वाणी मे आश्वासन दिया ।।२३-२४।। हे देवताओ ! तप का फल तो मिलेगा ही, परतु जब उसका पुण्य क्षीण हो जायगा तब स्वय भगवान् विष्णु उसे मारेगे ।।२५।। पद्मयोनि श्री ब्रह्माजी के आश्वासन को सुनकर हर्षित हुए देवता अपने-अपने स्थान को लौट गये ।।२६।। वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! दैत्यराज हिरण्यकशिपु अत्यन अहकारी होकर विश्वभर के सब जीवो पर अत्याचार मे प्रवृत्त हुआ ।।२७।। आश्रमो मे निवास करने वाले, सत्य-धर्म का आचार करने वाले, शान्त एव व्रती विप्रगण उससे अत्यत क्षुब्ध हुए ।।२८।।

देवास्त्रिभुवनस्थांश्च पराजित्य महासुरः ।
त्रैलोक्य वशमानीय स्वर्गे वसति दानव ।।२९
यदा वरमदोन्मत्तश्चोदितः कालधर्मणा ।
यज्ञियानकरोद्दैत्यान्देवतानप्ययज्ञियान् ।।३०
तदादित्याश्च साध्याश्च विश्वे च वसवस्तथा ।
रुद्रा देवगणा यक्षा देवद्विजमहर्षयः ।।३१
शरण्यं शरणं विष्णुमुपतस्थुर्महाबलम् ।
देवं देवमय यज्ञं ब्रह्म दैवं सनातनम् ।।३२
भूतं भव्यं भविष्यं च प्रजालोकनमस्कृतम् ।
नारायण महाभाग देव त्वा शरणं गताः ।।३३
त्वं हि नः परमो धाता त्वं हि न. परमो गुरुः ।
त्वं हि नः परमो देवो ब्रह्मादीना सुरोत्तम ।।३४
त्वं पद्मामलपत्राक्ष शत्रुपक्षभयावह ।
क्षयाय दितिवंशस्याक्षयाय भव नः प्रभो ।।३५

इस प्रकार उस दैत्य ने तीनो लोको को परास्त कर अपने आधीन कर लिया और स्वर्ग मे रहकर सम्पूर्ण विश्व पर शासन करने लगा ।।२९।। फिर उसने देवताओं से यज्ञ-भाग का अधिकार छीन कर दैत्यो को उसका अधिकारी बनाया ।।३०।। तब आदित्य, साध्य, विश्वेदेवा, वसु, रुद्र, देवता, यक्ष, ब्राह्मण और महर्षि आदि एकत्रित होकर उन एक मात्र शरण योग्य, देवमय, यज्ञ तथा

वेदमय, त्रिकाल स्वरूप, सर्वलोक पूज्य भगवान् विष्णु की शरण में गये और उनसे निवेदन करने लगे—हे प्रभो ! हे देव ! हे नारायण ! हम आपकी शरण में उपस्थित हुए हैं ॥३१-३३॥ हे देवोत्तम ! आप ही हम सब के धाता, परम-गुरु तथा परम देवता हैं ॥३४॥ हे पद्माक्ष ! हे महाप्रभो ! इस शत्रु के मारने के लिये कोई उपाय करके हमें बचाइये ॥३५॥

त्रायस्व जहि दैत्येन्द्र हिरण्यमोकशिपु प्र ।
भय त्यजध्वममरा अभय वो ददाम्यहम् ॥३६
तथैव त्रिदिव देवा प्रतिपत्स्यथ मा चिरम् ।
एप त सगण दैत्य वरदानेन दर्पितम् ॥३७
अवध्यममरेन्द्राणा दानवेन्द्र निहन्म्यहम् ।
एवमुक्त्वा स भगवान्विसृज्य त्रिदिवौकस ॥३८
वध स कल्पयित्वा तु हिरण्यकशिपो प्रभु ॥३६
सोऽचिरेणैव कालेन हिमवत्पार्श्वमागत ।
किं नु रूप समास्थाय निहन्म्येन महासुरम् ॥४०
यत्सिद्धिकरमाशु स्याद्वधाय विबुधद्विष ।
अनुत्पन्न ततश्चक्रे सोऽत्यन्त रूपमास्थित ॥४१
नारसिंहमनाधृष्य दैत्यदानवरक्षसाम् ।
सहाय तु महाबाहुर्जग्राहोकारमेव च ॥४२
अथोङ्कारसहायोऽसौ भगवान्विष्णुरव्यय ।
हिरण्यकशिपो स्थान जगाम प्रभुरीश्वर ॥४३

हे नाथ ! किसी भी प्रकार इसे नष्ट कीजिये । तब भगवान् ने कहा—हे देवगण ! तुम भयभीत मत होओ ॥३४॥ आपको स्वर्ग का आधिपत्य पुन प्राप्त होगा । मैं शीघ्र ही उसे उसकी सेना के सहित मार डालूँगा । वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! यह कहकर भगवान ने देवताओ को विदा किया और स्वय हिमालय पर्वत के निकट जाकर विचार करने लगे कि हिरण्यकशिपु को मारने के लिये मुझे कौन-सा रूप धारण करना चाहिये ॥३५-४०॥ देवताओ का वैरी

वह दैत्य किस रूप के द्वारा मारा जा सकता है ? इस पर विचार करके उन्होंने नृसिंह रूप धारण करना स्थिर किया । क्योंकि वह रूप अत्यंत भयभीत करने और साहस छुड़ाने वाला था । तब इस रूप को ओंकार के सहित धारण करके वे हिरण्यकशिपु के पास पहुंचे ॥४१-४३॥

तेजसा भास्कराकारः कान्त्या चन्द्र इवापरः ।
नरस्य कृत्वार्द्धतनुं सिंहस्यार्द्धतनुं विभुः ॥४४
नारसिंहेन वपुषा पाणिं संस्पृश्य पाणिना ।
ततोऽपश्यत विस्तीर्णां दिव्यां रम्यां मनोरमाम् ॥४५
सर्वकामयुतां शुभ्रां हिरण्यकशिपोः सभाम् ।
विस्तीर्णां योजनशतं शतमध्यर्द्धमुच्छ्रिताम् ॥४६
विहायसीं कामगमां पञ्चयोजनमुच्छ्रिताम् ।
जराशोकक्लमत्यक्तां निष्प्रकम्प्यां शिवां शुभाम् ॥४७

उनके उस नृसिंह रूप का सूर्य के समान तेज था, उनकी सौम्यता चन्द्रमा के समान थी, उनका आधा देह मनुष्य जैसा और आधा सिंह के समान था ॥४४॥ वे भगवान् नृसिंह हिरण्यकशिपु की अत्यंत विस्तार वाली सभा में जाकर उसकी शोभा देखने लगे ॥४५॥ आकाश में बनी हुई वह सभा सौ योजन विस्तार वाली तथा डेढ़ सौ योजन लम्बी और पाँच योजन ऊँची थी । उस सभा को इच्छानुसार चाहे जहाँ लाया ले जाया जा सकता था । उसमें किसी वस्तु का अभाव नहीं था । वहाँ जाते ही अजरत्व, अमरत्व की प्राप्ति और शोकादि से मुक्ति होती थी ॥४६-४७॥

॥ प्रह्लाद को नृसिंह का दर्शन ॥

ततो दृष्ट्वा महाबाहुं कालचक्रमिवागतम् ।
नारसिंहवपुश्छन्नं भस्मच्छन्नमिवानलम् ॥१
विस्फुल्लितसटं तस्य नारसिंहस्य भारत ।
रूपोदग्रं बभौ तत्र गन्धर्वशशिसन्निभम् ॥२

अहो रूपमिदं चित्रं शङ्खकुन्देन्दुसन्निभम् ।
अब्रुवन्दानवाः सर्वे हिरण्यकशिपुश्च सः ।।३
एवं हि ब्रुवतां तेषां निर्दग्धानां महात्मनाम् ।
नारसिंहेन चक्षुर्भ्यां चोदिताः कालधर्मणा ।।४
हिरण्यकशिपोः पुत्रः प्रह्लादो नाम वीर्यवान् ।
दिव्येन चक्षुषा सिंहमपश्यद्देवमागतम् ।।५
तं दृष्ट्वा रुक्मशैलाभमपूर्वां तनुमास्थितम् ।
विस्मिता दानवाः सर्वे हिरण्यकशिपुश्च सः ।।६
महाराज महाबाहो दैत्यानामादिसंभव ।
न श्रुतं नैव दृष्टं च नारसिंहमिदं वपुः ।।७
अव्यक्तप्रभवं दिव्यं किमिदं रूपमद्भुतम् ।
दैत्यान्तकरणं घोरं शंसतीव मनांसि नः ।।८

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! भस्म मे दबी हुई अग्नि के समान और सहस्र पूर्ण चन्द्र के समान नृसिंह भगवान् को वहाँ आये हुए देख कर दानवगण परस्पर मे बोले—अरे, शख, कुन्द और चन्द्रमा के समान आभा युक्त ऐसा अद्भुत रूप इससे पहिले कभी नही देखा ।।१-३।। इस प्रकार कहते हुए सभी दैत्य उन नृसिंह भगवान् को टकटकी लगाकर देखने लगे थे ।।४।। हिरण्यकशिपु के पुत्र प्रहलाद ने भी उस दिव्य स्वरूप के भले प्रकार दर्शन किये ।।५।। इस प्रकार उस अद्भुत स्वरूप को देखकर सभी दैत्य अत्यत विस्मित हुए ।।६।। तभी प्रहलाद ने अपने पिता हिरण्यकशिपु से कहा—हे महाराज ! आप तो दैत्यो के आदि पुरुष हैं, मैंने तो ऐसा अद्भुत नृसिंह रूप कभी भी देखा-सुना नही ।।७।। यह रूप अत्यन्त विस्मयोत्पादक है, इस रूप को देखकर मुझे प्रतीत होता है कि इसी के द्वारा हम दैत्यो का सहार होने वाला है ।।८।।

अस्य देवाः शरीरस्थाः सागराः सरितस्तथा ।
हिमवान्पारियात्रश्च ये चान्ये कुलपर्वताः ।।९
चन्द्रमाः सह नक्षत्रैरादित्याश्चाश्विनौ तथा ।
धनदो वरुणश्चैव यमः शक्रः शचीपतिः ।।१०

मरुतो देवगन्धर्वा मुनयश्च तपोधनाः ।
नागा यक्षाः पिशाचाश्च राक्षसा भीमविक्रमाः ॥११
ब्रह्मदेवः पशुपतिर्ललाटस्था विभान्ति वै ।
स्थावराणि च भूतानि जङ्गमानि तथैव च ॥१२
भवांश्च सहितोऽस्माभिः सर्वैर्दैत्यगणैर्वृतः ।
विमानशतसंकीर्णा तथाऽभ्यन्तरजा सभा ॥१३
सर्वं त्रिभुवने राजँल्लोकधर्मश्च शाश्वतः ।
दृश्यते नारसिंहेऽस्मिन्यथेन्दौ विमलं जगत् ॥१४
प्रजापतिश्चात्र मनुर्महात्मा ग्रहाश्च योगाश्च मही नभश्च ।
उत्पातकालश्च धृतिः स्मृतिश्च रजश्च सत्त्वं च तमो दमश्च ॥१५
सनत्कुमारश्च महानुभावो विश्वे च देवाप्सरसश्च सर्वाः ।
क्रोधश्च कामश्च तथैव हर्षो दर्पश्च मोहः पितरश्च सर्वे ॥१६

इस नृसिंह के देह मे मुझे सभी देवता, समुद्र, नदी, पर्वत, पारियात्र, कुलाचल, चन्द्रमा, नक्षत्र, आदित्य, अग्नि, वरुण, कुवेर, यम, इन्द्र, मरुत, गधर्व, ऋषि, तपस्वी, नाग, यक्ष, पिशाच और राक्षसादि सभी स्थित दिखाई दे रहे हैं ॥९-११॥ जैसे चन्द्रमा की किरणो से सब ससार प्रकाशित होने लगता है, वैसे ही इनके ललाट मे मुझे स्थावर-जगम विश्व, आप, मैं, हमारे विमान, यह सभा, सभी लोकधर्म और तीनो लोक ही विद्यमान प्रतीत हो रहे हैं ॥१२-१५॥ प्रजापति, मनु, धरातल, नभ, ग्रह, उत्पातकाल, धृति, स्मृति, गुण, दम, सनत्कुमार, विश्वेदेव वसु, काम, क्रोध, लोभ, मोह, हर्ष, गर्व तथा सभी पितरगण इनके देह में विद्यमान दिखाई दे रहे हैं ॥१५-१६॥

॥ कर्मफल वर्णन ॥

प्रह्लादस्य च तच्छ्रुत्वा हिरण्यकशिपुर्वचः ।
उवाच दानवान्सर्वान्सगणाश्च गणाधिपः ॥१
मृगेन्द्रो गृह्यतां शीघ्रमपूर्वां तनुमास्थितः ।
यदि वा संशयः कश्चिद्वध्यतां वनगोचरः ॥२

तच्छ्रुत्वा दानवा सर्वे मृगेन्द्र भीमविक्रमम् ।
परिक्षिपन्तो मुदितास्त्रासयामासुरोजसा ॥३
सिंहनाद नदित्वा नु पुन सिंहो महावल ।
वभञ्ज ता सभा रम्या व्यादितास्य इवान्तक ॥४
सभाया भज्यमानाया हिरण्यकशिपु स्वयम् ।
चिक्षेपास्त्राणि सिंहस्य रोषव्याकुललोचन ॥५

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! प्रहलाद के वचनो को सुनकर दैत्यराज हिरण्यकशिपु ने अपने अनुचरों से कहा—हे दैत्यो ! इस अद्भुत रूप वाले नृसिंह को तुरत पकड लो और यदि कोई शका हो तो इसका वध कर डालो ॥१-२॥ आदेश मिलते ही दैत्यगण अत्यन प्रसन्न होकर नृसिंह भगवान् को ताल ठोक कर भयभीत करने लगे ॥३॥ यह देखकर उन महाबली नृसिंह भगवान् ने मुख खोल हुए यमराज के समान घोर गर्जना कर उस सभा मे भगदड मचा दी ॥४॥ सभा के भग होते ही दत्यराज हिरण्यकशिपु ने उन पर शस्त्र वर्षा आरम्भ की, क्रोध से उसके नेत्र अत्यत व्याकुल दिखाई दे रहे थे ॥५॥

अस्त्रै प्रज्वलितै सिंहमावृणोदसुराधिप ।
विवस्वान्घर्म समये हिमवन्तमिवाशुभि ॥६
स ह्यमपानिलोद्धूतो दैत्याना सैन्यसागर ।
क्षणेनाप्लावयर्त्सिह मैनाकमिव सागर ॥७
प्रासै पाशैस्तथा शूलैर्गदाभिर्मुसलैस्तथा ।
वज्रैरशविकल्पैश्च शिलाभिश्च महाद्रुमै ॥८
मुद्गरै कूटपाशैश्च शूलोलूखलपर्वतै ।
शतघ्नीभिश्च दीप्ताभिर्दण्डैरपि सुदारुणै ॥६
परिवार्य समन्तात्तु निघ्नन्नस्त्रैर्हरि तदा ।
स्वल्पमप्यस्य न दुष्णमूर्जितस्य महात्मन ॥१०
ते दानवा पाशगृहीतहस्ता महेन्द्रवज्राशनितुल्यवेगा ।
समन्ततोऽभ्युद्यतबाहुहस्ता स्थितास्त्रिशीर्षा इव पन्नगेन्द्रा ॥११

सुवर्णमालाकुलभूषिताङ्गा नानाङ्गवाभोगपिनद्धगात्राः ।
मुक्तावलीदामविभूषिताङ्गा हंसा इवाभान्ति विशालपक्षाः ॥१२

जैसे ग्रीष्म-ऋतु मे आदित्य अपनी रश्मियो के द्वारा हिमालय को आच्छादित कर देते हैं, वैसे ही हिरण्यकशिपु ने अपने चमचमाते हुए शस्त्रों से नृसिंह भगवान् को आच्छादित कर दिया ॥६॥ जैसे समुद्र ने मैनाक पर्वत को अपने जल में निमग्न कर रखा है, वैसे ही दैत्य सेना ने उन्हे अपने क्रोध मे डुबो लिया ॥७॥ फिर प्रास, पाश, खड्ग, गदा, मूसल, वज्र, अशनि, शिला, वृक्ष, मुद्गर, कूटपाश, ऊखल, शूल, शतघ्नी और दण्ड आदि ले-लेकर दैत्यो ने नृसिंह भगवान् पर प्रहार किया, परतु वे उससे किंचित् भी चलायमान् नही हुए ॥८-१०॥ दानवगण पाशास्त्र ग्रहण कर उनके चारो ओर खडे हुए ऐसे लगते थे, जैसे तीन सिर वाले नाग खडे हो ॥११॥ उन दानवो के कठ मे स्वर्ण की माला तथा सभी अगो मे आभूषण सुशोभित थे, हाथो मे केयूर और ऊपरी भाग मे मुक्तामाल धारण की हुई थी, इस प्रकार वे सब दैत्य पख फैलाये हुए हंस जैसे लग रहे थे ॥१२॥

तैः प्रक्षिपद्भिर्ज्वलितानलोपमैर्महास्त्रपूगैः स समावृतो बभौ ।
गिरिर्यथा सततवर्षिभिर्घनैः कृतान्धकारोऽद्भुतकन्दरद्रुम. ॥१३
तैर्हन्यमानोऽपि महास्त्रजालैः सर्वैस्तदा दैत्यगणैः समेतैः ।
नाकम्पताजो भगवान्प्रतापवान्स्थित. प्रकृत्या हिमवानिवाचलः ॥१४
संतापितास्ते नरसिंहरूपिणा दितेः सुताः पावकदीप्ततेजसा ।
भयाद्विचेलुः पवनोद्धता यथा महोर्मयः सागरवारिसंभवाः ॥१५
शतैर्घनैर्भिः सुमहातिवेगा युगान्तकालप्रतिमाञ्छरौघान् ।
एकायनस्था मुमुचुर्नृसिंहे महासुराः क्रोधविदीपिताङ्गाः ॥१६

उसी समय अग्नि के समान प्रकाशमान् शस्त्रास्त्र सब ओर से बरसने लगे। सैनिको के शस्त्रो से आच्छादित हुए नृसिंह भगवान् वृक्ष और मेघों से आवृत्त पर्वत-गुफाओ के समान अधकार से ढँक गये ॥१३॥ उन महाबली दैत्यों

ने भीषण बाण-वर्षा की तो भी नृसिंह भगवान् पर्वत के समान अचल भाव से खडे रहे ॥१४॥ फिर सहसा अग्नि के समान तेजस्वी वे दैत्य ही उनके रूप से डर कर समुद्र मे उठी हुई तरंगो के समान क्षुब्ध हो उठे ॥१५॥ तब वे क्रोध से लाल हुए दैत्य प्रलय के समान अपने भीषण बाणो मे नृसिंह भगवान् पर प्रहार करने लगे ॥१६॥

॥ नृसिंह द्वारा हिरण्यकशिपु वध ॥

तत्रादित्याश्च साध्याश्च वसवो मरुतस्तथा ।
रुद्रा देवा महात्मानो विश्वेदेवा महाबलाः ॥१
आगम्य ते मृगेन्द्रस्य सकाशं सूर्यवर्चसः ।
ऊचुः संत्रस्तमनसो देवा लोकक्षयार्दिताः ॥२
जहि देव दितेः पुत्त्रं दानवं लोकनाशनम् ।
दुर्वृत्तमसदाकारं सह सर्वैर्महासुरैः ॥३
त्वं ह्येषामन्तकृन्नान्यो दैत्यानां दैत्यनाशन ।
तन्नाशय हितार्थाय लोकानां स्वस्ति वै कुरु ॥४
त्वं गुरुः सर्वलोकानां त्वमिन्द्रस्त्वं पितामहः ।
ऋते त्वदन्यच्छरणं न भूतं न भविष्यति ॥५
तच्छ्रुत्वा वचनं देवो देवानामादिसंभवः ।
ननाद सुमहानादमतिगम्भीरनिःस्वनम् ॥६
पातितान्यसुरेन्द्राणां मृगेन्द्रेण महात्मना ।
सिंहनादेन महता हृदयानि मनांसि च ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! उस समय लोक नाश के भय से त्रस्त हुए आदित्य, साध्य, वसु, मरुद्गण, रुद्र, विश्वेदेवा आदि सब देवता मिल कर उन अत्यन्त तेजस्वी नृसिंह भगवान् के समीप गये और कहने लगे—हे देव ! लोक-नाश के मूल कारण रूप हिरण्यकशिपु को उसके सब अनुचरों सहित नष्ट कीजिये ॥१-३॥ हे दैत्यनाशन ! आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी इन दैत्यों का

सहार नही कर सकता, इसलिये अब आप लोक-रक्षा के लिये इनका शीघ्र ही वध करिये ॥ ४ ॥ भूतल के सभी देह धारियों के गुरु, इन्द्र और पितामह आप ही हैं, इनका कोई अन्य सहायक न तो रहा है और न कभी होगा ॥५॥ उनकी स्तुति सुन कर नृसिंह भगवान् ने दैत्यो के सामने घोर सिंहनाद किया ॥ ६ ॥ उनके सिंहनाद को सुन कर देवताओ को बड़ी प्रसन्नता हुई और दैत्यों के वक्षःस्थल फट गये ॥७॥

गणः क्रोधवशो नाम कालकेयस्तथाऽपरः ।
वेगश्च वैंगलेयश्च सैंहिकेयश्च वीर्यवान् ॥८
संह्लादीयो महानादो महावेगस्तथाऽपरः ।
कपिलश्च महीपुत्रो व्याघ्राक्षः क्षितिकम्पनः ॥९
खेचराश्च निशापुत्राः पातालतलचारिण. ।
गणस्तथाऽपरोरौद्रो मेघनादोऽङ्कुशायुधः ॥१०
ऊर्ध्वगो भीमवेगश्च भीमकर्माऽर्कलोचनः ।
वज्री शूली करालश्च हिरण्यकशिपुस्ततः ॥११
जीमूतघनसंकाशो जीमूत इव वेगवान् ।
जीमूतघनसंनादो जीमूतसदृशद्युतिः ॥१२
देवारिर्दितिजो दृप्तो नृसिंहं समुपाद्रवत् ।
समुत्पत्य ततस्तीक्ष्णैर्मृगेन्द्रेण महानखैः ॥१३
तसोङ्कारसहायेन विदार्य निहतो युधि ॥१४
मही च लोकश्च शशी नभश्च ग्रहाश्च सूर्यश्च दिशश्च सर्वाः ।
नद्यश्च शैलाश्च महार्णवाश्च गताः प्रकाशं दितिपुत्रनाशात् ॥१५
ततः प्रमुदिता देवा ऋषयश्च तपोधनाः ।
तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैरादिदेवं सनातनम् ॥१६

इसके पश्चात् कालकेश, वेग, वैंगलय, सैंहिकेय, संह्लादीय, महानदी, महावेग, कपिल, व्याघ्राक्ष, क्षितिकम्पन, खेचर, अंकुशायुध, ऊर्ध्वगो, भीमवेग, गर्जन युक्त तथा वज्र और शूल के समान दीप्तिवाला हिरण्यकशिपु तुरन्त ही

नृसिंह भगवान् की ओर झपटा। यह देख कर भगवान् ने ऊँची छलांग भर कर ओंकार के प्रभाव से दैत्यराज पर भीषण नखाघात किया, जिससे उसका हृदय विदीर्ण होकर मृत्यु को प्राप्त हुआ ॥८-१४॥ इस प्रकार उस दानवराज का वध होने पर पृथिवी, सब प्राणी, आकाश, आकाश के जीव, सूर्य, चन्द्र, दसों दिशाएँ, नदी, पर्वत और समुद्रादि को अत्यन्त आनन्द हुआ ॥१५॥ तब सब देवता, ऋषि, तपस्वी आदि ने मिल कर उन आदि देव नृसिंह भगवान् की स्तुति की ॥१६॥

यत्त्वया विहितं देव नारसिंहमिदं वपुः ।
एतदेवार्चयिष्यन्ति परावरविदो जनाः ।
मृगेन्द्रत्व च लोकेषु सर्वसत्वेषु या विभो ॥१७
गायन्ति त्वा च मुनयो मृगेन्द्र इति नित्यशः ।
त्वत्प्रसादात्स्वकं स्थान प्रतिपन्ना. स्म वै विभो ॥१८
एवमुक्तो देवसंघैर्नरसिंहो महामनाः ।
ब्रह्मा च परमप्रीतो विष्णो स्तोत्रमुदीरयत् ॥१९
भवानक्षरमव्यक्तमचिन्त्यं गुह्यमुत्तमम् ।
कूटस्थमकृतं कर्तृ सनातनमनामयम् ॥२०
सांख्ययोगे च या बुद्धिस्तत्त्वार्थपरिनिष्ठिता ।
भगवान्वेद विद्यात्मा पुरुषः शाश्वतो ध्रुव. ॥२१

देवताओं ने कहा—हे देव ! आपके इस नृसिंह रूप का तत्व-ज्ञानी जन सदा पूजन किया करेंगे। सभी मुनियों, लोकों और प्राणियों में आपका यह मृगेन्द्र स्वरूप प्रतिष्ठ हो जायगा और वे सदैव आपका गुणगान करेंगे। हे प्रभो ! आपकी परम दया से ही हमें अपने-अपने अधिकार की पुनः प्राप्ति हुई है ॥१७-१८॥ जब देवगण इस प्रकार स्तुति करके मौन हुए तब ब्रह्माजी ने महात्मा नृसिंह भगवान् की इस प्रकार स्तुति की—हे देव ! आप अक्षर, अव्यक्त, अचिन्त्य, गुह्य, कूटस्थ, सनातन एवं अनामय हैं ॥१९-२०॥ सांख्य योग में जिस

तत्त्व का निरूपण हुआ है, वह तत्त्व आप ही हैं, आप इस विश्व के आत्मा, शाश्वत, सूक्ष्म तथा स्थूल पुरुष हैं ॥२१॥

परं शरीरं परमं च धाम परं च योगं परमां च वाणीम् ।
परं रहस्यं परमां गतिं च त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥२२
परं परस्यापि परं च यत्परं परं परस्यापि परं च देवम् ।
परं परस्यापि परं प्रभुं च त्वामाहुरग्रयं पुरुषं पुराणम् ॥२३
परं परस्यापि परं प्रधानं परं परस्यापि परं च तत्त्वम् ।
परं परस्यापि परं च धाता त्वामाहुरग्रयं पुरुषं पुराणम् ॥२४
परं परस्यापि परं रहस्यं परं परं यत् ।
परं परस्यापि परं तपो यत्त्वामाहुरग्रयं पुरुषं पुराणम् ॥२५
परं परस्यापि परं च गुह्यं च परं च धाम ।
परं च योगं परमं प्रभुत्वं त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥२६
एवमुक्त्वा स भगवान्सर्वलोकपितामहः ।
स्तुत्वा नारायणं देवं ब्रह्मलोकं गतः प्रभुः ॥२७
ततो नदत्सु तूर्येषु नृत्यन्तीष्वप्सरःसु च ।
क्षीरोदस्योत्तरं कूलं जगाम प्रभुरीश्वरः ॥२८
नारसिंही तनुं त्यक्त्वा स्थापयित्वा च तद्वपुः ।
पौराणं रूपमास्थाय ययौ स गरुडध्वजः ॥२९
अष्टचक्रेण यानेन भूतियुक्तेन शोभिना ।
अव्यक्तः प्रकृतिर्देवः स्वस्थानमगमत्प्रभुः ॥३०
एवं महात्मना तेन नृसिंहवपुषा तदा ।
देवेन निहतः पूर्वं हिरण्यकशिपुश्च सः ॥३१

आप परम शरीर, परमधाम, परमयोग एवं परम वाणी हैं आप ही परम रहस्य, परमगति एवं पुराण पुरुष हैं ॥२२॥ आप ही परात्पर, परम पद तथा उससे भी उत्कृष्ट एवं पर तत्त्व और उससे भी श्रेष्ठ हैं, आप से बढ़ कर अन्य कोई नहीं है। आप ही पुरातन पुरुष कहे जाते हैं ॥२३॥ आप परम से

भी परम तथा परमतप हैं, ज्ञानी जन आपको ही धाता एवं पुराण पुरुष कहते हैं ॥२४॥ आप ही परात्पर, परम रहस्य तथा परम से भी परे हैं, इसीलिये बुद्धिमानों ने आपको पुराण पुरुष कहा है ॥२५-२६॥ वैशम्पायनजी बोले—हे राजन्! लोक पितामह ब्रह्माजी भगवान् नृसिंह देव की इस प्रकार स्तुति करके अपने लोक को गये। उस समय तुरही बज उठी और अप्सराएँ नृत्य करने लगी, तभी भगवान् नारायण उस नृसिंह रूप को छोड़ कर अपने पूर्व स्वरूप को धारण कर सम्पूर्ण ऐश्वर्यों सहित गरुड पर चढ कर क्षीर सागर के उत्तरीय तट स्थित अपने धाम को गये ॥ २७-३० ॥ हे राजन्! इस प्रकार नृसिंह रूप में भगवान् विष्णु ने ही देवताओं के शत्रु हिरण्यकशिपु को नष्ट किया था ॥३१॥

॥ श्रीकृष्ण का कैलास जाने का विचार ॥

केशवेन पुरा विप्र कुर्वता तप उत्तमम् ॥१
अर्चितो देवदेवेन शंकरश्चेति नः श्रुतम् ॥२
देवौ तत्र जगन्नाथौ दृष्टवन्तौ पुरातनौ ॥३
अर्चयाचक्रिरे देवा इन्द्राद्या शंकरं हरिम् ॥४
तौ हि देवौ महादेवावेकीभूतौ द्विधा कृतौ।
एकात्मानौ जगद्योनी सृष्टिसंहारकारकौ ॥५
परस्परसमावेशाज्जगतः पालने स्थितौ।
तयोस्तत्र यथावृत्तं कैलासे पर्वतोत्तमे ॥६
श्रपमः किमचेष्टन्त दृष्ट्वा तौ पुरुषोत्तमौ।
एतत्सर्वमशेषेण वक्तुमर्हसि सत्तम ॥७
यथा गतो हरिर्विष्णुः कृष्णो जिष्णुः पुरातनः।
तथा च शंकरः साक्षात्कृतवान्नागभूषणः।
एतत्सर्वं विप्रवर्य ब्रूहि तत्त्वेन यत्नतः ॥८

उपरोक्त कथा सुनने के पश्चात् राजा जनमेजय ने कहा—हे भगवन्! सुना जाता है कि पूर्वकाल में भगवान् विष्णु ने घोर तपस्या द्वारा देवदेव भगवान् शंकर की उपासना की थी ॥ १-२ ॥ उसी पर्वत पर भगवान् श्रीहरि और

महादेवजी का इन्द्रादि देवताओ ने भी पूजन किया था ।।४।। वे दोनो देव एकात्म रूप होकर भी पृथक्‌पृथक् कल्पित हुए हैं । परन्तु वे ही ससार की सृष्टि के मूल कारण और सहार करने वाले हैं ।।५।। वे परस्पर मिल कर ही जगत् का पालन करते हैं । इसलिये कैलाश पर्वत पर उन दोनो के मिलने पर जो कुछ हुआ हो वह सम्पूर्ण वृत्तान्त जानने की मेरी इच्छा है, उसे आप कहने की कृपा करिये ।। ६ ७ ।। पुरातन पुरुष भगवान् विष्णु जिस कारण कैलाश पर्वत पर गये और भगवान् शकर से जिस प्रकार साक्षात्कार हुआ उसी वृत्तान्त को आप मुख से कहिये ।। ८ ।।

शृणुष्वावहितो राजन्यथा कृष्णो गतो नगम् ।
यथा च दृष्टो देवेश शंकरो वृषवाहन ।।९
यथा चचार स तपो यथा ते मुनयो गता ।
एव तयोर्यथा वृत्त तथा श्रृणु नरोत्तम ।।१०
द्वैपायनोऽथ भगवान्यथा प्रोवाच मा तथा ।
नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि केशव खगवाहनम् ।।११
यथाशक्ति यथाप्रज्ञ श्रृणु यत्नेन सुव्रत ।
न चाशुश्रुषवे वाच्यं नृश सायातपस्विने ।।१२
नानधीताय वक्तव्य पुण्य पुण्यवता सदा ।
स्वर्ग्यं यशस्य धन्य च बुद्धिशुद्धिकर सदा ।।१३
ध्येय पुण्यात्मना नित्यमिद वेदार्थनिश्चितम् ।
अनेकारण्यस युक्त सेवन्ते नित्यमीदृशम् ।।१४
मुनयो वेदनिरता नारदाद्यास्तपोधना ।
आत्यद्भुत महापुण्य वृत्त कैलासपर्वते ।।१५

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्ण के कैलाश पर्वत पर जाकर देवदेव शिवजी से साक्षात्कार करने विषयक वृत्तान्त मैंने भगवान् व्यासजी के मुख से सुना था । जैसे अनेक मुनियो ने वहाँ जाकर शिवजी का दर्शन और घोर तप किया था, वह भी तुम से कहता हूँ ।।९-१०।। अब मैं गरुड़-

वाहन भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार करके, जिस कथा को कहता हूँ उसे सुनो। परन्तु यह कथा अनिच्छुक, कुपढ क्रूर और तप-रहित मनुष्यों से कभी न कहे ॥११ १२॥ यदि यह कथा पुण्यवान् पुरुषो के समक्ष कही जाय तो अत्यन्त शुभ, शुद्ध बुद्धि वाली और स्वर्ग प्रदान करने वाली हो जाती है ॥१३॥ वेदार्थ का निश्चय करने वाली यह कथा पुण्यात्माओ के लिये अवश्य श्रवणीय है। इसीलिये नारदादि वेद परायण देवर्षि और तपस्वी गण भी इस अत्यन्त पवित्र और विस्मय जनक कैलास वृत्तान्त को सुनते और मनन करते हैं ॥१४ १५॥

शिवयोर्देवयोस्तत्र हररेश्चैव भवस्य ह ।
हतेष्वसुरसङ्घेषु नरकादिषु भूमिप ॥१६
हतेष्वथ न पेष्वेव किंचिच्छिष्टेषु शत्रुषु ।
शासति स्म सदा विष्णु पृथिवी पुरुषोत्तम ॥१७
द्वारवत्या जगन्नाथो वसन्वृष्णिभिरीश्वर ।
रुक्मिण्या स गतो देवो वस स्तत्र पुरे हरि ॥१८
कदाचिच्च तथा सार्द्ध शेते रात्रो जगत्पति ।
विहरश्च यथायोग प्रोत प्रीतियुजा तया ॥१६
अथोवाच तदा देवी रुक्मिणी रुक्मभूषणा ।
पुत्रमिच्छामि देवेश त्वत्तो माधव नन्दनम् ॥२०
बलिन रूपसम्पन्न त्वयैव सदृश प्रभो ।
वृष्णीनामपि नेतार वीर्यवन्त तपोनिधिम् ॥२१
सर्वशास्त्रार्थकुशल राजविद्यापुरस्कृतम् ।
एवमादिगुणैर्युक्त दातुमर्हसि सत्तम ॥२२
त्वयि सर्वस्य दातृत्व नित्यमेव प्रतिष्ठितम् ।
त्व हि सर्वस्य कर्ता च दाता भोक्ताजगत्पति ॥२३

नरकादि दैत्यो और अन्यान्य शत्रु राजाओ के नष्ट होने पर वृष्णियों से घिरे हुए भगवान् श्रीकृष्ण अत्यन्त आनन्द पूर्वक द्वारका मे निवास करते हुए पृथिवी का पालन कर रहे थे ॥१६ १७॥ तभी एक रात्रि मे भगवान् श्रीकृष्ण

से सम्भाषण करती हुई रुक्मिणीजी ने उनसे कहा—हे देव ! यदि आपकी कृपा हो तो मैं आपके समान बलवान्, रूपवान्, सर्व शास्त्रों और नीतियों का ज्ञाता एक सुन्दर पुत्र चाहती हूं । आप चाहें तो ऐसा होना कोई असंभव बात नहीं है, क्योंकि आप सम्पूर्ण विश्व के कर्त्ता, दाता, भोक्ता और संसार के स्वामी हैं, इसलिये आप सभी कामनाओं को पूर्ण करने में समर्थ हैं ॥१८-२३॥

विशेषतस्तु भृत्यानां शुश्रूषानियतात्मनाम् ।
वक्तव्यं किम देवेश यदि भक्ताऽस्मि केशव ॥२४

अनुग्रहो यदि स्यान्मे देवदेव जगत्पते ।
दातुमर्हसि पुत्रं त्वं वीर्यवन्तं जनार्दन ॥२५
इत्युक्तो देवदेवेशः प्रियया प्रीयमाणया ।
तया महिष्या रुक्मिण्या रुक्मिशल्यंदूद्वहः ॥२६

प्रोवाच वचनं काले रुक्मिणी यादवेश्वरः ।
दातास्मि तादृशं पुत्रं यं त्वमिच्छसि भामिनि ॥२७
नित्यं भक्तासि मे देवि नात्र कार्या विचारणा ।
अवश्यं तव दास्यामि पुत्रं शत्रुनिबर्हणम् ॥२८
पुत्रेण लोकाञ्जयति सतां कामदुघा हि ये ।
नरकं पुदिति स्यातं दुःखं च नरकं विदुः ॥२९
पुदत्राणात्ततः पुत्रमिहेच्छन्ति परत्र च ।
अनन्ताः पुत्रिणो लोका पुरुषस्य प्रिये शुभाः ॥३०

शुश्रूषा करने वाले भक्तों पर कृपा करना आपके लिये कुछ आश्चर्य जनक नहीं है । इसलिये आप मुझे भी एक तुच्छ भक्तिन समझ कर यदि मुझ पर कृपा करें तो मैं एक अत्यन्त श्रेष्ठ पुत्र की प्राप्ति कर सकूंगी ॥२४-२५॥ वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! अपनी प्राण-वल्लभा रुक्मिणीजी की बात सुन कर भगवान् को बड़ा हर्ष हुआ और वे उनसे कहने लगे—हे प्रिये ! तुम जैसा पुत्र चाहती हो, वैसा ही पुत्र मैं तुम्हें प्रदान करूंगा ॥२६-२७॥ हे देवि ! तुम मेरी अनन्य भक्तिन एवं पूर्णतया अनुरक्ता हो, इसमें किसी प्रकार का

विचार ही क्या करना है, मैं तुम्हे अवश्य ही शत्रुओ का नाश करने वाला पुत्र प्रदान करूँगा ॥ २८ ॥ पुत्र से सभी लोक जीते जा सकते है । पुन्नाम नरक से बचने के लिये ही इहलोक और परलोक मे पुत्र की कामना की जाती है, क्योंकि पुत्रवान् व्यक्ति के लिये असख्य लोक सुलभ हैं ॥२९-३०॥

पतिर्जायां प्रविशति गर्भो भूत्वा स मातरम् ।
तस्यां पुनर्नवो भूत्वा दशमे मासि जायते ॥३१
पुत्रवन्तं बिभेतीन्द्रः किन्नु तेनाजितं भवेत् ।
नापुत्रो विन्दते लोकान्कुपुत्राद्वन्ध्यता वरा ॥३२
कुपुत्रो नरको यस्मात्सुपुत्रात्स्वर्ग एव हि ।
तस्माद्विनीतं सत्पुत्रं श्रुतवन्तं दतापरम् ॥३३
विद्यया विनयो यस्माद्विद्यायुक्तं सुधार्मिकम् ।
इच्छेत्पुत्रं पुत्रकामः पुरुषो यत्नवान्बुधः ॥३४
तस्माद्दास्यामि ते पुत्रं विद्यावन्तं सुधार्मिकम् ।
एप गच्छामि पुत्रार्थं कैलासं पर्वतोत्तमम् ॥३५
तत्रोपास्य महादेवं शंकरं नीललोहितम् ।
ततो लब्धास्मि पुत्रं ते भवाद्भूतहिते रतात् ॥३६

पति ही पुत्र रूप मे पत्नी के गर्भ से नवीन देह धारण पूर्वक उत्पन्न होता है । पुत्रवानो के लिये कोई भी लोक अप्राप्य नही है, उनसे इन्द्र भी भय-भीत रहते हैं । परन्तु पुत्रहीन को किसी भी लोक मे ठिकाना नहीं रहता और यदि कुपुत्र का जन्म हो तो वह उससे भी अधिक दुःखदायी होता है ॥३१-३२॥ कुपुत्र साक्षात् नरक और सुपुत्र स्वर्ग है । विद्या से विनय की उपलब्धि होती है, इसलिये दयालु, विनीत, धार्मिक और विद्वान् पुत्र की ही कामना करनी चाहिये ॥३३-३४॥ इसलिये मैं तुम्हें एक विद्वान्, धार्मिक और ज्ञानी पुत्र दूँगा, इसके लिये मैं आज ही कैलास पर्वत के लिये प्रस्थान कर रहा हूँ ॥३५॥ यहाँ जाकर भगवान् नीलकण्ठ की आराधना करके उनसे इस प्रकार का श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त करूँगा ॥३६॥

।। श्रीकृष्ण का बदरिकाश्रम पहुँचना ।।

तत स चिन्तयामास गरुड पक्षिपुङ्गवम् ।
आगच्छ त्वरित तार्क्ष्य इति विष्णुर्जगत्पति ।।१
तत स भगवांस्तार्क्ष्यो वेदराशिरिति स्मृत ।
बलवान्विक्रमी योगी शास्त्रनेता कुरूद्वह ।।२
यज्ञमूर्ति पुराणात्मा साममूर्द्धा च पावन ।
ऋग्वेदपक्षवान्पक्षी पिङ्गलो जटिलाकृति ।।३
ताम्रतुण्ड सोमहर शक्रजेता महाशिरा ।
पन्नगारि पद्मनेत्र साक्षाद्विष्णुरिवापर ।।४
वाहन देवदेवस्य दानवीगर्भकृन्तन ।
राक्षसासुरसङ्घाना जेता पक्षबलेन य ।।५
प्रादुरासीन्महावीर्य केशवस्याग्रतस्तदा ।
जानुभ्यामपतद्भूमौ नमो विष्णो जगत्पते ।।६
नमस्ते देवदेवेश हरे स्वामिन्निति ब्रुवन् ।
पस्पर्श पाणिना कृष्ण स्वागत तार्क्ष्यपुङ्गवम् ।।७
इत्युवाच तदा तार्क्ष्यं यास्ये कैलासपर्वतम् ।
शूलिन द्रष्टुमिच्छामि शकर शाश्वत शिवम् ।।८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! फिर भगवान् श्रीहरि ने गरुड का स्मरण करते हुए मन ही मन कहा—हे तार्क्ष्य ! शीघ्र ही यहाँ आओ। उनके स्मरण करते ही वेदराशि रूप, अत्यन्त बल-विक्रम से सम्पन्न, योगी, शास्त्रज्ञ गरुड यज्ञ रूप मे भगवान् के सामने आ उपस्थित हुए। उनका मस्तक सामवेद, और पक्ष ऋग्वेद था। वे पिंगल वर्ण और जटिल आकार वाले थे। लाल चोंच, और कमल जैसे नेत्र थे। व सोम रस पीने वाले, नागों और असुरो के विजेता, दानव-नारियो के गर्भ नष्ट करने वाले गरुड भगवान् के सामने जाते ही मस्तक झुका कर प्रणाम करते हुए बोले—हे देवेश आपको नमस्कार है। गरुड को देख

कर भगवान् ने उनके देह को स्पर्श करते हुए कहा—हे खग श्रेष्ठ ! भगवान्
ाकर के दर्शनार्थ कैलास पर्वत पर चलने की मेरी इच्छा है ॥१-८॥

वाढमित्यब्रवीत्तार्क्ष्य आरुह्य न जनार्दनः ।
तिष्ठध्वमिति होवाच यादवान्पार्श्ववर्तिन. ॥६
ततो ययौ जगन्नाथो दिशं प्रागुत्तरा हरि. ।
रवेण महता तार्क्ष्यस्त्रैलोक्य समकम्पयत् ॥१०
सागर क्षोभयामास पक्षाघा पक्षी व्रज स्तदा ।
पक्षेण पर्वतान्सर्वान्देवं जनार्दनम् ॥११
ततो देवाः सगन्धर्वा आकाशेऽधिष्ठितास्तदा ।
तुष्टुवु पुण्डरीकाक्षं वाग्भिरिष्टाभिरीश्वरम् ॥१२
जय देव जगन्नाथ जयविष्णो जगत्पते ।
जयाजेय नमो देव भूतभावन भावन ॥१३
नम परमसिंहाय दैत्यदानवनाशन ।
जयाजेय हरे देव योगिध्येय परागते ॥१४
नारायण नमो देव कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
आदिकर्त: पुराणात्मन्ब्रह्मयोने सनातन ॥१५
नमस्ते सकलेशाय निर्गुणाय गुणात्मने ।
भक्तिप्रियाय भक्ताय नमो दानवनाशन ॥१६

'जो आज्ञा' कह कर गरुड ने सहमति प्रकट की और तब भगवान् यादवों को सावधानी पूर्वक रहने को कह कर गरुड की पीठ पर चढ़े और उत्तर दिशा की ओर चल दिये। उस समय गरुड के पंखो को विक्षेप से तीनो लोक काँपने लगे ॥६-१०॥ उनके पदाघात से समुद्र क्षुब्ध होगये और पंख की वायु से पर्वत हिल गये ॥ ११ ॥ उस समय भगवान् के दर्शनार्थ सभी देवता और गन्धर्वगण आकाश में अवस्थित हुए और मधुर वचनो से उनकी स्तुति करने लगे—हे देव ! हे जगन्नाथ ! हे विष्णो ! हे जगत्पते ! आपकी जय हो। हे अजेय हे भूतभावन आपकी सदा जय हो, हे प्रभो आपको नमस्कार है ॥१२-१३॥ हे दैत्यों के संहा-

रक ! हे परम सिद्ध आपको नमस्कार है, हे अजेय ! हे देव ! हे योगीध्येय ! हे हरे ! आपकी जय हो ॥१४। हे नारायण ! हे कृष्ण ! हे हरे ! आप आदिकर्त्ता, पुराणात्मा, ब्रह्मयोनि एवं सनातन पुरुष हैं आपके लिये हमारा बारबार नमस्कार है ॥१५॥ हे सर्वेश्वर ! हे निर्गुण ! हे गुणात्मन् ! हे भक्तिप्रिय ! हे भक्त ! हे दानव-संहारक आपको नमस्कार है ॥१६॥

अचिन्त्यमूर्तये तुभ्यं नमस्ते सकलेश्वर ।
इत्यादिभिस्तदा देवं वाग्भिरीशानमव्ययम् ॥१७
तुष्टुवुर्देवगन्धर्वा ऋषयः सिद्धचारणाः ।
शृण्वन्नेवं जगन्नाथः स्तुतिवाक्यानि तानि च ॥१८
ययौ सार्द्धं सुरगणैर्मुनिभिर्वेदपारगैः ।
यत्र पूर्वं स्वयं विष्णुस्तपस्तेपे सुदारुणम् ॥१९
लोकवृद्धिकरः श्रीमाँल्लोकानां हितकाम्यया ।
वर्षायुतं तपस्तप्तं विष्णुना प्रभविष्णुना ॥२०
यत्र विष्णुर्जगन्नाथस्तपस्तप्त्वा सुदारुणम् ।
द्विधाऽकरोत्स्वमात्मानं नरनारायणाख्यया ॥२१

हे अचिन्त्य रूप ! हे सर्वेश्वर ! आपको बारबार नमस्कार है । इस प्रकार से देवता, गन्धर्व चारण, ऋषि, सिद्ध आदि ने उनकी स्तुति की। तब भगवान् श्रीकृष्ण उन देवताओं और ऋषियों के सहित कैलास पर्वत पर पहुँचे, जहाँ कभी भगवान् विष्णु ने अत्यन्त घोर तपस्या की थी ॥१७-१९॥ उन लोकों की वृद्धि करने वाले भगवान् विष्णु ने जगत् के कल्याण की कामना से वहाँ दस हजार वर्ष तक तप किया था ॥२०॥ फिर यहीं उन्होंने अपने देह के दो भाग कर लिये और नर नारायण रूप में प्रकट होगये थे ॥२१॥

गङ्गा यत्र सरिच्छ्रेष्ठा मध्ये धावति पावनी ।
यत्र शक्रः स्वयं हत्वा वृत्रं वेदार्थतत्त्वगम् ॥२२
ब्रह्महत्याविनाशार्थं तपो वर्षायुतं चरत् ।
यत्र सिद्धाश्च सिद्धा. ह्युद्ध्यातिसा देवं जनार्दनम् ॥२३

यत्र हत्वा रणे रामो रावणं लोकरावणम् ।
एतच्छासनमिच्छंश्च तपो घोरमतप्यत ॥२४
देवाश्च मुनयश्चैव सिद्धि यान्ति शुचिव्रताः ।
यत्र नित्यं जगन्नाथः साक्षाद्वसति केशवः ॥२५
सिद्धक्षेत्रमिदं प्राहुर्ऋषयो वीतमत्सराः।
विशालां वदरी विष्णुस्ता द्रष्टुं सकलेश्वरः ॥२६
सायाह्ने चामरगणैर्मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
प्रविवेश महापुण्यमृषिजुष्टं तपोवनम् ॥२७

सरिताओं में श्रेष्ठ गंगाजी जहाँ प्रबल वेग से बहती है। जहाँ देवराज इन्द्र ने वृत्रासुर को मार कर ब्रह्म-हत्या दूर करने के लिये दस हजार वर्ष तक तपस्या की थी। जहाँ भगवान् श्रीहरि का ध्यान करने वाले सिद्धों ने सिद्धि को प्राप्त किया था। जहाँ लोक को भय प्रदान करने वाले रावण को मार कर भगवान् श्रीराम ने घोर तप किया था। जहाँ अनेक देवताओं और महर्षियों ने पवित्र व्रत पूर्वक तप करके सिद्धि को प्राप्त किया था तथा जहाँ स्वयं भगवान् केशव का नित्य निवास है ॥२२-२५॥ जिसे वीतरागी मुनियों ने सिद्ध क्षेत्र कहा है, उसी ऋषियों से युक्त बदरी नामक तपोवन के दर्शनार्थ अनेकों ऋषियों और देवताओं के सहित भगवान् श्रीकृष्ण सायं समय पहुँच गये ॥२६-२७॥

अग्निहोत्राकुले काले पक्षिव्याहारसंकुले ।
नीडस्थेषु विहङ्गेषु दुह्यमानासु गोषु च ॥२८
ऋषिष्वप्यथ तिष्ठत्सु मुनिवीरेषु सर्वतः ।
समाधिस्थेषु सिद्धेषु चिन्तयत्सु जनार्दनम् ॥२९
अधिश्रितेषु हविषु ज्वाल्यमानेषु चाग्निषु ।
हूयमानेषु तत्रैव पावकेषु समन्ततः ॥३०
अतिथौ पूज्यमाने च संध्याविष्टे जगन्मये ।
स तस्यामथ वेलाया देवैः सह जनार्दनः ॥३१

विवेश बदरीं विष्णुर्मुनिजुष्टां तपोमयीम्।
आश्रमस्याथ मध्यं तु प्रविश्य हरिरीश्वरः ॥३२
गरुडादवरुह्याथ दीपिकादीपिते तदा।
प्रदेशे पुण्डरीकाक्षः स्थितस्तावत्सहामरैः ॥३३

उस समय वहाँ यज्ञ हो रहा था, पक्षिगण अपने-अपने स्थानों में जाकर मधुर शब्द कर रहे थे और गौओं का दोहन हो रहा था ॥२८॥ कुशों के आसनों पर प्रतिष्ठित हुए मुनिजन भगवान् का ध्यान कर रहे थे ॥२९॥ प्रदीप्त अग्नि में आहुतियाँ दी जा रही थी। अतिथियों का सब स्थानों पर सत्कार हो रहा था। धीरे-धीरे सम्पूर्ण विश्व भर अंधकार छागया। उस समय भगवान् श्रीकृष्ण देवता आदि के सहित उस पवित्र बदरी वन के मध्य में अवस्थित हुए ॥३०-३२॥ तभी दीपक जल उठे, पृथिवी जगमगा उठी, गरुड से उतर कर भगवान् कृष्ण भी देवताओं के तुल्य विश्राम करने लगे ॥३३॥

॥ ऋषियों द्वारा भगवान की स्तुति ॥

ततो मुनिगणा दृष्ट्वा देवदेवमुपस्थितम्।
समाप्य चाग्निहोत्राणि संपूज्यातिथिसत्तमान् ॥१
मुनयो दीर्घतपसः समाधौ कृतनिश्चयाः।
जटिनो मुण्डिनः केचिच्छिराधमनिसंतताः ॥२
निर्मज्जा नीरसाः केचिद्वैताला इव केचन।
अश्मकुट्टाशनपराः पणभक्षास्तथाऽपरे ॥३
ते च गत्वा हरिं कृष्णं विष्णुमीशं जनार्दनम्।
भक्तिनम्रास्तदा देवं प्रणेमुर्भक्तवत्सलम् ॥४
नमोऽस्तु कृष्ण कृष्णेति देवदेवेति केशवम्।
प्रणवात्मञ्जगन्नाथ नताः स्म शिरसा हरे ॥५
कृष्ण विष्णो हृषीकेश केशवेति च सर्वदा।
प्रणामप्रवणा विप्राः प्राहुरित्थं जगत्पतिम् ॥६
इदमर्घ्यमिदं पाद्यमिदं विष्टरमेव च।
कृतार्थाः सर्वदा देव प्रसन्नो नो जगत्पतिः ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! तपस्वी मुनियों ने अपना अग्निहोत्र और आतिथ्य-सत्कार वाला नित्य कर्म समाप्त किया और भगवान् श्रीकृष्ण के पास चल दिये ॥१॥ वे मुनिगण वहाँ दीर्घकाल से तपस्या करते थे और समाधि की प्राप्ति के लिये उनका दृढ़ निश्चय था। उनमें कुछ सिर मुंडाये हुए और कुछ जटा रखे हुए थे, किसी के देह पर शिराएँ उभड़ी हुई थीं, कुछ सूखे और निर्बल देह वाले, कुछ संज्ञा-रहित और कुछ उन्मत्त थे। कुछ मुनि भिक्षा से उदर पालन करते और कुछ पत्थर से कुटे हुए अनाज का भक्षण करते थे ॥ २-३ ॥ उन मुनिगणों ने भगवान् श्रीकृष्ण के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और उनकी स्तुति करने लगे—हे कृष्ण ! हे देवदेव ! हे प्रणवात्मन् ! हे हरे ! हे जगदीश्वर ! आपको नमस्कार है ॥४-५॥ हे कृष्ण ! हे विष्णो ! हे हृषीकेश ! हे केशव ! इस प्रकार कह कर उन बहुत-से ब्राह्मणों ने उन जगत्पति को प्रणाम किया ॥ ६ ॥ तदनन्तर उन मुनियों ने पुनः कहा—हे भगवन् ! यह अर्घ्य, पाद्य और आसन ग्रहण करिये, अब आपकी प्रसन्नता प्राप्त कर लेने पर हम हर प्रकार से धन्य हो गये हैं ॥७॥

किं कुर्मः किं नु नः कृत्यं कश्चिद्दोषः प्रभो हरे।
इति प्राञ्जलयः सर्वे प्राहुर्देवस्य पश्यतः ॥८
कृष्णोऽपि तद्यथायोगमुपयुज्य सहामरैः।
कृतं सर्वं मुनिवरा वर्द्धतां तप उत्तमम् ॥९
इति ब्रुवन्पुराणात्मा प्रीतस्तेन गरुत्मता।
आसनं लम्भयामास रात्री देवो जनार्दनः ॥१०
कुशलं पृष्टवान्भूयो मुनीनां भावितात्मनाम्।
अग्निहोत्रेषु तपसि यथा भृत्येषु सर्वतः ॥११
एवमादि जगन्नाथः पृष्टवानीश्वरस्तदा।
सर्वत्र कुशलं तेऽत्र ब्रूयुः कृष्णस्य सर्वतः ॥१२
आतिथ्यं चक्रिरे ते तु नीवारैः फलमूलकैः।
देवानामथ सर्वेषां विष्णोः कृष्णस्य यत्नतः।
आतिथ्यमुपयुञ्जानस्ततः प्रीतोऽभवद्धरिः ॥१३

हे प्रभो ! हे हरे ! हम में कोई दोष तो नहीं है ? हे नाथ ! अब हमारा क्या कर्त्तव्य है ? यह आप हमें बताइये । ऐसा कह कर सभी मुनिगण भगवान् के समक्ष हाथ जोड़ कर खड़े हो गये ॥८॥ तब भगवान् ने उनसे आदर पूर्वक कहा—हे मुनियो ! आप सब ने अपने-अपने अनुरूप ही कार्य किया है, आपकी तप-वृद्धि हो ॥९॥ यह कह कर भगवान् श्रीकृष्ण ने गरुड़ से उन्हें आसन प्रदान कराया ॥१०॥ जब वे मुनि सुखपूर्वक आसन पर स्थित होगये तब भगवान् ने उन सब से कुशल प्रश्न किया ॥११॥ इस पर मुनियों ने अपना-अपना कुशल वृत्तान्त कह कर फल, पुष्प, नीवार आदि के प्रदान द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण का सत्कार किया । इस प्रकार उनके आतिथ्य सत्कार को प्राप्त करके वे अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ १२-१३ ॥

॥ भयभीत मृगों और दो पिशाचों का आना ॥

ततः स भगवान्विष्णुर्दुर्विज्ञेयगतिः प्रभुः ।
तत्र पूर्वं तपस्तप्तमात्मना यादवेश्वरः ॥१
गङ्गायाश्चोत्तरे तीरे देशं द्रष्टुमुपागतः ।
स्वयमेव हरिः साक्षात्प्रविवेश तपोवनम् ॥२
प्रविश्य सुचिरं देशं ददर्श च मनोरमम् ।
निषसाद ततस्तस्मिन्नाश्रमे पुण्यदर्शनः ॥३
समाधौ योजयामास मनः पद्मनिभेक्षणः ।
निमेषेण जगन्नाथो ध्यात्वा देवेश्वरः स्थितः ॥४
स्थिते देवगुरौ तत्र समाधौ दीपवद्धरौ ।
तत्र शब्दो महाघोरः प्रादुरासीत्समन्ततः ॥५
खाद खादत मोदेत यात यात मृगानिमान् ।
प्रेषयेद्य पुनः सर्वान्प्रनादाल्लाङ्गू घ्नतः ॥६
एष विष्णुरयं कृष्णो हरिर्गोप इतोऽच्युतः ।
नमोऽस्तु विष्णो देवेश स्वामिन्माधव मेऽनघ ॥७

इत्यादिशब्द सुमहानाविरासीत्तदा निशि ।
ततश्च सुमहानाद सिहाना मृगविद्विषाम् ॥८
धावता च शुना राजन्मृगाननु विनर्दताम् ।
मृगाणा भीतियुक्तानामृक्षाणा द्वीपिना ॥६

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! भगवान् की इच्छा को कौन जान सकता है ? वे सर्व प्रथम गगाजी के उत्तरीय किनारे जाकर उस तपस्थली का निरीक्षण करने लगे ॥ १-२ ॥ वहाँ जाकर वे बहुत देर तक स्थान खोजते रहे और अन्त मे एक श्रेष्ठ स्थान पर आश्रम देख कर उसी में बैठ कर ध्यानावस्थित होगये । परन्तु, वे किस का ध्यान कर रहे थे, इसे कोई न जान सका ॥३-४॥ उनके समाधिस्थ होने के पश्चात् जब दीपक जल उठे, तब वहाँ एक भीषण कोलाहल होने लगा ॥५॥ उसमें सुनाई पड रहा था—इसे खाओ, खाकर मौज करो, उन मृगो को घेरो, भगवान् की प्रसन्नता के लिये उन्हें इधर भेजो ॥६॥ अरे यही भगवान विष्णु, ईश्वर एव अच्युत हैं । हे विष्णो ! हे माधव ! हे केशव ! हे देवदेव ! इत्यादि की भयानक पुकार होने लगी और साथ ही भयभीत मृगो, भालुओ सिंहो और कुत्तो के भूँकने का घोर शब्द व्याप्त हो उठा ॥ ७-९ ॥

ततो मृगा समाधावन्यत्र तिष्ठति केशव ।
ताश्चैवानुचरो राजन्सगण रामपद्यत ॥१०
अथ वै दीपिका राजञ्छतशोऽथ सहस्रश ।
ततस्तमोऽपि व्यनशद्दिवेव समपद्यत ॥११
ततोऽनु भूतसङ्घाश्च समदृश्यन्त तत्र ह ।
पिशाचाश्च महाघोरा नदन्तो बहुविस्वनम् ॥१२
भक्षयन्तोऽथ पिशित पिबन्तो रुधिर बहु ।
प्रादुरासन्महाघोरा पिशाचा विकृतानना ॥१३
हन्यमाना हता राजन्पतन्त पतिता मृगा ।
इतश्चेतश्च धावन्तो बाणै विद्धा मृगा द्विपा ॥१४

ततो मृगसहस्राणि समुदीर्णानि भारत।
यत्रासौ तिष्ठते देवस्तत्र याता निरन्तरम् ॥१५
अन्तरीकृत्य देवेशं स्थितानीत्यनुशुश्रुम।
पिशाच्यो विकृताकाराः कराला रोमहर्षणाः ॥१६

उसी समय सब ओर से भयभीत होकर भागते हुए मृग भगवान् के पास आने लगे, उनके पीछे-पीछे बहेलिये भी वहाँ आये ॥१०॥ हे राजन् ! उस समय वहाँ हजारों मशालें जल उठीं और दिन के समान प्रकाश फैल गया ॥११॥ उसके कुछ समय पश्चात् ही भयंकर आकार के अनेक भूत-पिशाच विविध प्रकार की विकृत बोली बोलते हुए वहाँ आये ॥१२॥ उनमें से कुछ पिशाच मांस रक्त का भक्षण कर रहे थे। बहेलियों के द्वारा मारे जाते हुए मृगों में से जो बच रहे थे, वे भगवान् की शरण में आये। उसी समय वहाँ बहुत-सी भयंकर आकार की पिशाचिनी भी आगईं ॥१३-१६॥

पुत्रवत्यः समापेतुर्यत्र तिष्ठति केशवः।
श्वगणस्तत्र राजेन्द्र चरत्येव ततस्ततः ॥१७
ततः स भगवान्विष्णुः सर्वमालोक्य वेष्टितः।
विस्मयं परमं गत्वा पश्यन्नास्ते स्म केशवः १८
कस्यैष विस्तृतो नादः कस्य वाय जनोऽगतत्।
को नु मां स्तौति भक्त्या वै भविष्ये प्रीतिमानहम् ॥१९
कस्य मुक्तिः समायाता प्रीते मयि सुदुर्लभा।
इति संचिन्त्य भगवानास्ते प्राकृतवद्धरिः ॥२०

हे राजन् ! कुत्तों के दल के दल इधर-उधर घूम रहे थे। उस दृश्य को [illegible] कर भगवान् अत्यन्त आश्चर्य चकित हुए और सोचने लगे कि यह कैसा [illegible]कर कोलाहल है ? यह विशाल प्राणी-समूह इस समय यहाँ कैसे आया ? [illegible]न मेरी कृपा के लिये प्रार्थना कर रहा था ? कौन पुण्यात्मा इस समय मोक्ष प्रतीक्षा कर रहा है ? सामान्य मनुष्य के समान ही भगवान् श्रीकृष्ण इन बातों को सोचने लगे ॥१७-२०॥

तेषामनु महाघोरौ पिशाचौ विकृताननौ ।
प्रांशू पिङ्गलरोमाणौ दीर्घजिह्वौ महाहनू ॥२१
लम्बकेशौ विरूपाक्षौ हा हा हा हेति वादिनौ ।
खादन्तौ मांसपिटकं पिबन्तौ रुधिरं बहु ॥२२
वदन्तौ कृष्ण कृष्णेति माधवेति च स ततम् ।
कदा नु द्रक्ष्यते विष्णुः स इदानीं क्व तिष्ठति ॥२३
स्वामिनः कुत्र वसति. कुतो द्रष्टुं यतामहे ।
अत्र वा कुत्र देवेश. कुतो नु स्थास्यते हरिः ॥२४

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! उसके बाद ही दो भयंकर ऊँचे आकार वाले पिंगल वर्ण,लम्बी जिह्वा और विस्तृत चिबुक वाले पिशाच वहाँ उपस्थित हुए ॥२१॥ उनके केश बड़े लम्बे और नेत्र अत्यन्त भीषण थे, बोलने में हा-हा करते हुए वे दोनों मांस भक्षण और रुधिर पान कर रहे थे ॥२२॥ वे दोनों हे कृष्ण ! हे माधव ! पुकारते हुए परस्पर कहने लगे कि इस समय विष्णु कहाँ हैं ? वे मुझे कब दर्शन देंगे ? उन्हें कहाँ देखा जा सकता है ? वे देवेश इस समय कहाँ होंगे ? ॥२३-२४॥

॥ घण्टाकर्ण को समाधि-लाभ ॥

ततः स भगवान्विष्णुः पिशाचौ मांसभक्षकौ ।
ददर्शाथ महाघोरौ दीपिकाधारिणौ हरिः ॥१
विलोकयाञ्चक्रतुस्तौ पिशाचौ देवकीसुतम् ।
स्थितं सुखासने विष्णुं दृष्ट्वा लोकेश्वरेश्वरम् ॥२
तौ च गत्वा समुद्देशं पिशाचौ केशवस्य ह ।
ततस्ताव् चतुर्विष्णुमन्तरीक्षस्य केशवम् ॥३
को भवान्कस्य वा मर्त्यः कुतश्चागम्यते त्वया ।
किमर्थमिह संप्राप्तो वने घोरे मृगाकुले ॥४

निर्मनुष्ये द्वीपिवृते पिशाचगणसेविते ।
श्वापदैः सेव्यमाने च विपिने व्याघ्रसंकुले ॥५
सुकुमारोऽनवद्याङ्गः साक्षाद्विष्णुरिवापरः ।
पद्मपत्रेक्षणः श्यामपद्माभः श्रीपतिः स्वयम् ॥६
अस्मत्प्रीतिकरः साक्षात्प्राप्तो विष्णुरिवापरः ।
देवो वा यदि वा यक्षो गन्धर्वः किन्नरोऽपि वा ॥७
इन्द्रो वा धनदो वापि यमोऽथ वरुणोऽपि वा ।
एकाकी विपिने घोरे ध्यानार्पितमना इव ॥८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन्! फिर भगवान् श्रीकृष्ण ने उन दोनों मांस भक्षक राक्षसों की ओर देखा और तभी उन दोनों ने सुखपूर्वक आसन लगाये हुए उन तीनों लोकों के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण को वहाँ देखा ॥१-२॥ तब वे भगवान् के पास जाकर भी उन्हें न पहचान सके और बोले—तुम कौन हो? किसके पुत्र और कहाँ से आये हो? इस मृगों से परिपूर्ण भयंकर विपिन में तुम्हारा आगमन किस लिये हुआ है? ॥३-४॥ इस वन में सिंह, श्वापद, व्याघ्र और पिशाचों का साम्राज्य है, मनुष्य के कहीं दर्शन भी नहीं हैं, इसलिये तुम्हें यहाँ देख कर हमें अत्यन्त विस्मय होरहा है ॥५॥ साथ ही तुम अत्यन्त सुन्दर रूप वाले हो, तुम्हारा श्याम वर्ण और कमल जैसे विशाल नेत्र हमें बड़ा आनन्द दे रहे हैं। तुम्हें देख कर ऐसा लगता है, जैसे साक्षात् भगवान् विष्णु ही विराजमान हों। क्या तुम देवता, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, इन्द्र, कुबेर, यम, वरुण में से कोई हो? और तुम यहाँ समाधि में क्यों स्थित होना चाहते हो? ॥६-८॥

ब्रूहि सत्यं यथातत्त्वं ज्ञातुमिच्छामि मानद ।
एवं पृष्टः पिशाचाभ्यामाह विष्णुरुरुक्रमः ॥९
क्षत्रियोऽस्मीति मामाहुर्मनुष्याः प्रकृतिस्थिताः ।
यदुवंशे समुत्पन्नः क्षात्रं वृत्तमनुष्ठितः ॥१०
लोकानामस्य पाताऽस्मि शास्ता दुष्टस्य सर्वदा ।
कैलासं गन्तुकामोऽस्मि द्रष्टुं देवमुमापतिम् ॥११

इत्येवं मम वृत्तान्त. कथ्यतां कौ युवामिति ।
युवामिह समायातौ किमर्थं ब्राह्मणाश्रमम् ॥१२
एषा हि महती पुण्या नानाविप्रनिषेविता ।
बदरीयं समाख्याता न क्षुद्रै राश्रिता क्वचित् ॥१३

हम तुम्हारा वृत्तान्त जानना चाहते हैं, इसलिये उसे पूर्ण रूप से हमसे कहो। यह सुन कर भगवान् श्रीकृष्ण ने उनसे कहा—मैं क्षत्रिय हूँ, यदुवंश मे उत्पन्न हुआ हूँ, इसलिये क्षात्र धर्म परायण रहता हूँ ॥९-१०॥ मैं दुष्टो का संहारक और साधुजनो का रक्षक हूँ, तथा इस समय भगवान् शंकर के दर्शनार्थ कैलास पर्वत पर जाने का इच्छुक हूँ ॥ ११ ॥ मेरा यही वृत्तान्त है, जो तुमसे कह चुका। अब तुम अपने विषय मे बताओ कि कौन हो और ब्राह्मणो के इस आश्रम मे किस लिये आये हो ? ॥१२॥ इस पवित्र स्थान का नाम बदरीवन है यहाँ ब्राह्मणगण नित्य निवास करते हैं,क्षुद्र पुरुषों का यहाँ आना वर्जित है ॥१३॥

श्रूयतामभिधास्यामि समाहितमना भव ।
नमस्कृत्य जगन्नाथं हरिं कृष्णं जगत्पतिम् ॥१४
आदिदेवमजं विष्णुं वरेण्यमनघं शुचिम् ।
वक्ष्यामि सकलं यद्वत्तया शृणु यदीच्छसि ॥१५
घण्टाकर्णोऽस्मि नाम्नाऽहं पिशाचो घोरदर्शनः ।
मासादो विकृतो घोरः साक्षान्मृत्युरिवापरः ॥१६
धनदस्यानुगन्ताऽहं साक्षाद्रुद्रसखस्य च ।
ममायमनुजः साक्षादन्तकस्यान्तको ह्यहम् ॥१७
मृगयेयं सुमहती विष्णो. पूजार्थमित्युत ।
ममेयं वर्त्तते सेना श्वगणोऽपि ममैव तु ॥१८
आगतोऽहं महाशैलात्कैलासाद्धूनसेवितात् ।
अहं पिशाचवेषेण संविष्टः पापकर्मकृत् ॥१९
सततं दूषयन्विष्णुं घण्टामाबध्य कर्णयो. ।
मम न प्रविशेन्नाम विष्णोरिति विचिन्तयन् ॥२०

पिशाच ने कहा—अब मैं उन अनादि देव, निष्पाप, परम पवित्र, एवं नमस्कार योग्य भगवान् विष्णु को नमस्कार करके अपने विषय मे कहता हूँ, यदि आप चाहें तो सुनिये ॥ १४-१५ ॥ मे घण्टाकर्ण नामक एक मासाहारी पिशाच हूँ और मेरी आकृति को तो तुम मृत्यु के समान देख ही रहे हो ॥१६॥ मैं भगवान् शकर के प्रिय सखा कुनेर का अनुचर हूँ और यह यमराज के समान दूसरा पिशाच मेरा भाई है ॥१७॥ यह पिशाच कुत्तो का समूह मेरा ही है, इस समय भगवान् विष्णु के पूजनार्थ ही मैं मृगया मे तत्पर हुआ हूँ ॥१८॥ इस समय मैं कैलास पर्वत से यहाँ आरहा हूँ। घोर पाप करने के कारण ही मुझे इस पिशाच योनि की प्राप्ति हुई है ॥१९॥ मैं भगवान् विष्णु का इतना कट्टर द्वेषी था कि उनका नाम न सुन सकूँ इसके लिये कानो से घटे बांध कर विचरण करता था ॥२०॥

अहं कैलासनिलयमासाद्य वृषभध्वजम् ।
आराध्य तं महादेवमस्तुवं सततं शिवम् ॥२१
ततः प्रसन्नो मामाह वृणीष्वेति वरं हरः ।
ततो मुक्तिर्मया तत्र प्रार्थिता देवसन्निधौ ॥२२
मुक्ति प्रार्थयमानं मां पुनराह त्रिलोचनः ।
मुक्तिप्रदाता सर्वेषां विष्णुरेव न संशयः ॥२३
तस्माद्गत्वा च बदरीं तत्राराध्य जनार्दनम् ।
मुक्तिं प्राप्नुहि गोविन्दान्नरनारायणाश्रमे ॥२४
इत्युक्तो देवदेवेन शूलिना ज्ञातवानहम् ।
तमेव परमं मत्वा गोविन्दं गरुडध्वजम् ॥२५
तस्मात्प्रार्थयमानः सन्मुक्तिदेशममुं गतः ।
अन्यच्च शृणु मे कार्यं यदि कौतूहलं तव ॥२६
पुरी द्वारावती नाम पश्चिमस्योदधेस्तटे ।
यदुवृष्णिसमाकीर्णा सागरोर्मिसमाकुलाम् ॥२७
अध्यास्ते स हरिर्विष्णुस्तां पुरीं पुरुषोत्तमः ।
द्रष्टुं लोकहितार्थाय वसन्तं द्वारकापुरे ॥२८

निर्गतः साम्प्रतं मर्त्यं वयमेतैः सहानुगैः ।
विष्णुः सर्वेश्वरः साक्षाद्द्रष्टव्योऽस्माभिरद्य वै ॥२६

फिर मैं कैलास पर्वत पर जाकर भगवान् रुद्र की आराधना करने लगा, जिससे प्रसन्न होकर उन्होंने मुझ से कहा—हे वत्स ! अपना इच्छा वर मांगो । यह सुन कर मैंने उनसे मोक्ष माँगी । तब भगवान् शंकर मुझसे बोले—सब को भगवान् विष्णु ही मोक्ष प्रदान करते हैं ॥२१-२३॥ इसलिये तुम बदरी वन मे जाकर उनकी उपासना करो तो तुम्हें उसी नर नारायण आश्रम मे मोक्ष की प्राप्ति होगी ॥ २४ ॥ भगवान् शंकर के उक्त वचनो से मैं जान गया कि विष्णु ही सर्वोपरि देव है ॥२५॥ इसलिये मोक्ष की कामना से ही मैं इस वन मे उपस्थित हुआ हूँ । इसके अतिरिक्त एक और भी उद्देश्य है, यदि चाहो तो उसे भी सुन लो ॥ २६ ॥ पश्चिमी समुद्र के किनारे द्वारका नाम की पुरी मे यादवगण निवास करते हैं और उस पुरी मे ही भगवान् श्रीकृष्ण भी लोक-कल्याण के लिये रहते हैं । यदि मुझे यहाँ उनके दर्शन न हुए तो अपने अनुचरो सहित द्वारका के लिये प्रस्थान करूँगा, क्योकि उनके दर्शन आज मैं अवश्य ही करना चाहता हूँ ॥२७-२६॥

॥ घण्टाकर्ण को भगवान का साक्षात्कार ॥

ततः स भगवान्विष्णुः पिशाचं दृष्टवांस्तदा ।
चिन्तयंतं स्वमात्मानं शुद्धबुद्धिसमन्वितम् ॥१
आत्मन्यवस्थितं साक्षात्पठन्तं प्रणवं सकृत् ।
प्रार्थयन्तं स्वमात्मानमेकान्ते नियतं हरिः ॥२
अचिन्तयज्जगन्नाथः कारणं पुण्यसंचये ।
ध्यात्वा तु सुचिरं विष्णुः कारणं पुण्यकर्मणः ॥३
धनदस्योपदेशेन पठन्सुबहुशः क्षितौ ।
वासुदेवेति कृष्णेति माधवेति च मां सदा ॥४
जनार्दन हरे विष्णो भूतभावन भावन ।
नराकार जगन्नाथ नारायणपरायण ॥५

इति मां नामभिर्नित्यं पठत्येव दिवानिशम् ।
स्वपञ्जाग्रंस्तथा तिष्टन्भुञ्जन्गच्छंस्तथा वदन् ॥६

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! उसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण ने देखा कि वह पिशाच उन्हीं के ध्यान में तन्मय होगया है ॥१॥ इसके साथ ही उसके मुख से ओंकार का जाप भी ध्वनित होरहा था ॥२॥ यह देख कर भगवान् सोचने लगे कि इसके संचित पुण्यों का उदय ही इसे इस मार्ग मे प्रवृत्त करने का मुख्य कारण हो सकता है ॥ ३ ॥ यह कुबेर के उपदेश से बारम्बार जप पूर्वक हे वासुदेव ! हे कृष्ण ! हे माधव ! हे जनार्दन ! हे हरे ! हे विष्णो ! हे भूत-भावन ! हे नराकार प्रभो ! हे जगन्नाथ ! हे नारायण आदि नामों का निरन्तर उच्चारण किये जारहा है ॥४-६॥

भक्षयन्मांसपिटकं पिबञ्छोणितमेव वा ।
बाधमानं च सुचिरं हत्वा चापि मृगान्बहून् ॥७
हनने भोजने चैव जाग्रत्स्वप्ने तथैव च ।
सर्वेष्वपि च कार्येषु कर्त्ताहमिति मन्यते ॥८
एतस्य कर्मणः पाक ए घोरस्य कर्मणः ।
निश्चित्यैवं जगन्नाथः प्रीतस्तस्य बभूव ह ॥९
अदर्शयत्स्वमात्मानमनन्यस्य जगत्पतिः ।
शुद्धेऽन्तःकरणे तस्य पिशाचस्यापि भूमिप ॥१०
स च घोरः पिशाचोऽपि ददर्शात्मनि केशवम् ।
पीतकौशेयवसनं पद्माक्षं श्यामलं हरिम् ॥११
शङ्खिनं चक्रिणं विष्णुं स्रग्विणं गदिनं विभुम् ।
किरीटिनं कौस्तुभिनं श्रीवत्साच्छादितोरसम् ॥१२
नीलमेघनिभं कान्तं गरुडस्थं प्रभञ्जनम् ।
चतुर्भुजं शुभगिरं निश्चलं सर्वगं शिवम् ॥१३
अनादिनिधनं नित्यं मायाविनममायिनम् ।
सत्ययुक्तं सदा शुद्धं बुद्धिगम्यं सदाऽमलम् ॥१४

मनस्येवं जगन्नाथं दृष्ट्वा विष्णुमनेकधा ।
अनुन्मील्यैव नयने कृतार्थोऽस्मीत्यमन्यत ॥१५

यह मांस भक्षण, रक्त-पान और असंख्य पशुओं को नष्ट करता हुआ भी सोते, बैठते, जागते सब समय और सभी कार्यों में मुझे कर्त्ता मानता है ॥७-८॥ इसलिये, यह इसके श्रेष्ठ कर्मों का फल ही हो सकता है। ऐसा स्थिर कर भगवान् उसके अन्तःकरण में साक्षात् हुए ॥९-१०॥ तब वह भयंकर पिशाच अपने हृदयस्थ पीताम्बरधारी, पद्म नेत्र, श्याम देह, शंख-चक्र-गदा संयुक्त, माला, किरीट, कौस्तुभ और श्रीवत्स से विभूषित हृदय, नील मेघ जैसी कान्ति, चार भुजा, श्रेष्ठ वाणी, स्थिर बुद्धि, आदि और अन्त से रहित, मायातीत, सत्यमय, शुद्ध, बुद्ध, निर्मल भगवान विष्णु के अनेक रूपों का अपने हृदय में दर्शन कर अपने भाग्य को धन्य मानने लगा ॥११-१५॥

अथ दृष्टो हरिर्विष्णुः साक्षात्सर्वंगः शुभः ।
प्रसन्नो हि हरिर्मह्यं तेनाहं दृष्टवान्हरिम् ॥१६
सिद्धं मे जन्मनः कृत्यं किमतः कृत्यमस्ति मे ।
ग्रन्थयो मम निर्भिन्ना वश्यान्येवेन्द्रियाणि मे ॥१७
प्रायेण जितमित्येव मनो मन्ये स्मृते हरौ ।
ईषणा च निरस्ता मे प्रसन्नोऽहं तथाऽभवम् ॥१८
एतेभ्योऽपि पिशाचेभ्यो निर्मुक्तः साम्प्रतं तथा ।
योऽसौ ममानुजः साक्षात्स च भक्तस्तथा हरौ ॥१९
कालेन चैव निर्मुक्तो विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् ।
इत्येवं चिन्तयित्वा स आन्त्रपाशं विभिद्य च ॥२०
क्रमेण प्राणानुन्मुच्य विलोक्य च दिशस्तथा ।
शरीरं सुगमं कृत्वा प्राविशत्स सुखेन ह ॥२१

उसने सोचा कि भगवान् ने मुझे दर्शन दिया है तो अवश्य ही वे मुझ पर अत्यन्त प्रसन्न प्रतीत होते हैं। मेरे हृदय की गाँठें खुल गईं और इन्द्रियाँ वशीभूत होगईं। आज मेरा जीवन सफल होगया। मेरा मन मेरे आधीन होने

से अब मैं नितान्त प्रसन्न हूँ ॥१६-१८॥ अब मैं पिशाच शरीर से मुक्त होगया। मेरा यह छोटा भाई भी प्रभु-भक्त है, इसलिये यह भी कुछ समय में मुक्त हो जायगा। ऐसा विचार करते हुए घण्टाकर्ण ने आन्त्र पाश को काट कर और प्राण वायु को रोक कर एक बार सब ओर देखा और फिर आनन्द समुद्र में डुबकियाँ लगाने लगा ॥१६-२१॥

॥ श्रीकृष्ण की कैलास पर तपस्या ॥

ततः स भगवान्विष्णुर्मुनिभ्यस्तत्त्वमादितः।
कथयामास यद्वृत्तं पिशाचस्य महात्मनः ॥१
तच्छ्रुत्वा मुनयः सर्वे विस्मयं परमं गताः।
अहोऽस्य कर्मणः पाकस्तव संदर्शनादिति ॥२
अर्चितो मुनिभिः सर्वैः प्रीतः प्रीतिमतां प्रियः।
ततः प्रभाते विमले सूर्ये चाभ्युदिते सति ॥३
आरुह्य गरुडं विष्णुर्ययौ कैलासमुत्तमम्।
भवद्भिस्तत्र गन्तव्यमित्युक्त्वा मुनिसत्तमान् ॥४
यत्र विश्वेश्वराः सिद्धास्तपस्यन्ति यतव्रताः।
यत्र वैश्रवणः साक्षादुपास्ते शंकरं सदा ॥५
यत्र तन्मानसं नाम सरो हंसालयं महत्।
यत्र भृङ्गी रिटिर्देवमुपास्ते शंकरं शिवम् ॥६
गाणपत्यमवाप्याथ हरपार्श्वचरः सदा।
यत्र सिंहा वराहाश्च द्विपद्वीपिमृगैः सह ॥७
क्रीडन्ति वन्यरतयः परस्परहिते रताः।
यत्र नद्यः समुत्पन्ना गङ्गाद्याः सागरंगमाः ॥८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन्! फिर उस पिशाच का सम्पूर्ण वृत्तान्त भगवान् श्रीकृष्ण ने मुनियों से कहा ॥१॥ जिसे सुन कर अत्यन्त विस्मित होते हुए मुनियों ने कहा—उस पिशाच का इस प्रकार मुक्त होना आपके दर्शनों का

ही फल है ।।२।। फिर उन मुनियो द्वारा पूजित हुए भगवान् अत्यन्त प्रसन्न हुए और रात्रि के व्यतीत होने पर सूर्य के समान सुशोभित होते हुए गरुड पर चढ कर मुनियो से बोले—हे मुनिगण ! मैं अब कैलास पर्वत पर जारहा हूं ।।३-४।। इतना कह कर भगवान् श्रीकृष्ण ने कैलास की ओर प्रस्थान किया । हे राजन् ! जहां सिद्ध गण तपस्या करते और कुबेर भी रुद्र भगवान् की उपासना मे लगे रहते हैं ।।५।। जहां हसो से परिपूर्ण मानसरोवर स्थित है तथा जहां भृ गी और रिटि द्वारपाल के रूप में भगवान् शकर की नित्य उपासना करते रहते हैं । जहां सिह व्याघ्र, वराहादि अहिंसक बन कर घूमते हैं और जहां से निकल कर गगा आदि सरिताएं समुद्र मे जा मिली हैं ।।६ ८।।

यत्र विश्वेश्वर शम्भुरच्छिनद्ब्रह्मण शिर ।
यत्रोत्पन्ना महावेला भूताना दण्डता ययु ।।९
उमया यत्र सहित श करो नीललोहित ।
ऋषिभि प्रार्थित पूर्वं ददौ यत्र गिरि सुताम् ।।१०
श कराय जगद्धात्रे शिवाय जगतीपते ।
यत्र लेभे हरिश्चक्रमुपास्य बहुभिर्दिनै ।।११
पुष्करै शतपत्रैश्च नेत्रेण च जगत्पतिम् ।
गुहा यत्र समाश्रित्य क्रीडन्ते सिद्धकिन्नरा ।।१२
प्रियाभि सह मोदन्ते पिबन्ते मधु चोत्तमम् ।
यमुद्धृत्य भुजै सर्वै पौलस्त्यो विरराम ।।१३
तमारुह्य महाशैल देवकीनन्दनो हरि ।
मानसस्योत्तर तीर जगाम यदुनन्दन ।।१४
तपश्चतु किल हरिर्विष्णु सर्वेश्वर शिव ।
जटी चीरी जगन्नाथो मानुष वपुरास्थित ।।१५
तपसे धृतचित्तस्तु शुचौ भूमावुपाविशत् ।
अवरुह्य ततो यानाद्गरुडाद्वेदसम्मितात् ।।१६

विश्वेश्वर रुद्र ने ब्रह्मा का पाँचवां मस्तक छिन्न जहां कर दिया था

और जहाँ नेत्रों ने उत्पन्न होकर जीवों के दण्ड-विधान में सहायता दी है ॥९॥ जहाँ भगवान् शंकर और भगवती पार्वतीजी का मिलन होता रहता है तथा जहाँ मुनियों से प्रार्थित पर्वतराज ने अपनी कन्या उमा शिवजी को प्रदान की थी ॥१०॥ जिस स्थान पर भगवान् विष्णु ने दीर्घकाल तक भगवान् रुद्र की आराधना की थी और उनसे चक्र प्राप्त किया था। जहाँ सिद्ध और किन्नर सोम-पान करते हुए नित्य विहार करते रहते हैं और जिसे रावण ने अपनी विशाल भुजाओं से उठाना चाहा था, परन्तु वह अपने प्रयत्न में निष्फल रहा था। उसी कैलास पर्वत पर जाकर भगवान् श्रीकृष्ण मान सरोवर के उत्तर-तट पर पहुँचे ॥ ११-१४ ॥ वहाँ उन्होंने तप करने के लिये जटी चीरी मनुष्य रूप बनाया और फिर गरुड़ से उतर कर एक शुद्ध स्थान पर विराजमान हुए ॥१५-१६॥

द्वादशाब्दं तपश्चर्तुं मनो दध्रे ततो हरिः।
फाल्गुनेन तु मासेन समारेभे जगत्पतिः ॥१७
शाकभक्षः कृतजपो वेदाध्ययनतत्परः।
किमुद्दिश्य जगन्नाथस्तपश्चरति मानवः। १८
तं न विद्मो यथाकामं दुर्ज्ञयेश्वरचिन्तना।
तपस्यति तदा विष्णौ पर्वते भूतसेविते ॥१९
गरुडः कश्यपसुत इन्धनानि समाचिनोत्।
होमार्थं वासुदेवस्य चरतस्तप उत्तमम् ॥२०
चक्रराजोऽथ पुष्पाणि संचिनोति तदा हरेः।
दिक्षु सर्वासु सर्वं न ररक्ष जलदस्तदा ॥२१
खंग आहृत्य यत्नेन कुशान्सुबहुशस्तदा।
गदा कौमोदकी चैव परिचर्यां चकार ह ॥२२
धनुःप्रवरमत्युग्रं शार्ङ्गं दानवभीषणम्।
स्थितं हि पुरतस्तस्य यथेष्टं भृत्यवत्स्वयम् ॥२३
जुहोति भगवान्विष्णुरेधोभिर्वं द्रुमैः सदा।
आज्यादिभिस्तदा हव्यं रग्निं संपूज्य माधवः ॥२४

फिर उन्होने बारह वर्ष तक तपस्या करने का विचार किया और फाल्गुन मास मे वेदाध्ययन पूर्वक केवल शाक भोजन करते हुए तप का आरम्भ किया। परन्तु उन जगदीश्वर का तप करने में क्या उद्देश्य था, इसे वही जानें ॥ १७-१६ ॥ उस समय होम के लिये ईंधन गरुड़ एकत्र करते थे, चक्र पुष्प सचित करते थे। शंख उनकी सब ओर से रक्षा करता था, खंग कुश लाता था, गदा उनकी सेवा करती थी और शार्ङ्ग धनुष भृत्य के समान सदा उनके समक्ष स्थित रह कर परिचर्या में लगा रहता था ॥१६-२३॥ इस प्रकार ईंधन से अग्नि को प्रज्वलित करके भगवान् श्रीकृष्ण आज्यादि की आहुतियाँ देने लगे ॥२४॥

सप्तार्चिषः समाप्ति च समस्तव्यस्ततः कृती ।
एकस्मिन्नेकदा मासे भुञ्जानो नियतात्मवान् ॥२५
द्वितीये स्वय पर्याये भुञ्जन्नेकेन केशवः।
एकस्मिन्वत्सर भुञ्जास्तथैवैकेन केनचित् ॥२६
समाप्य तत्तपः सर्वमेवमेव जगत्पतिः ।
द्वादशाब्दे तथा पूर्णे ऊनमासे जगत्पतिः ॥२७
जुह्वन्नग्नि समास्थाय पठन्मन्त्रं जनार्दनः ।
आरण्यकं पठन्विष्णुः साक्षात्सर्वेश्वरो हरिः ।
आस्ते ध्यानपरस्तत्र पठन्प्रणवमुत्तमम् ॥२८

यथाविधि होमों के सम्पन्न होने पर उद्यापन करने लगे। वे प्रथम एक मास में एक दिन और फिर एक वर्ष में एक दिन भोजन करते रहे ॥२५-२६॥ इस प्रकार बारह वर्ष पूर्ण होने मे जब एक मास शेष रह गया, तब उन्होंने पूर्णाहुति दी, और फिर अग्नि का ध्यान करके आरण्यक आदि मन्त्रों के जप पूर्वक ओंकार उच्चारण करते हुए भगवान् शंकर के ध्यान में तल्लीन होगये ॥ २७-२८ ॥

॥ श्रीकृष्ण को शिवजी का दर्शन देना ॥

ततः इन्द्रः स्वयं तत्र आगत्य गजवाहनः ।

ततो यमस्तु भगवानारुह्य महिषं वरम् ।
किंकरैश्च स्वयं साक्षादययौ नगमुत्तमम् ॥२
श्वेतच्छत्रसमायुक्तः श्वेतव्यजनवीजितः ॥३
ययौ कैलासशिखरं द्रष्टुं केशवमञ्जसा ।
अन्ये चापि तथा देवा आदित्या वसवस्तथा ॥४
रुद्राश्चैव तथा राजन्द्रष्टुं केशवमाययुः ।
सिद्धाश्च मुनयश्चैव गन्धर्वा यक्षकिन्नराः ॥५
सर्वाश्चाप्सरसो राजन्नृत्यगीतविशारदाः ।
ततो देवगणाः सर्वे कैलासं समपद्यत ॥६

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! जब भगवान् श्रीकृष्ण तपस्या कर रहे थे, तब उनके दर्शनार्थ देवराज इन्द्र कैलास पर्वत पर आये ॥१॥ यमराज भी अपने भैंसा पर चढ़ कर अनुचरों के सहित उनके दर्शन की अभिलाषा से वहाँ पहुँचे ॥२॥ जलराज वरुण अपने वाहन हंस पर बैठ कर अपने किंकरों के साथ वहाँ आये और अन्य सभी देवता, आदित्य, वसु, रुद्र आदि तथा सिद्ध, मुनि, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, अप्सरादि सभी भगवान् के दर्शन के लिये वहाँ आकर एकत्र हुए ॥३-६॥

पर्वतो नारदश्चैव तथाऽन्ये मुनिसत्तमाः ।
विस्मयस्थितलोलाक्षाः सर्वदेवगणास्तथा ॥७
आश्चर्यं खलु पश्यध्वं न भूतं न भविष्यति ।
योगिध्येयः स्वयं कृष्णो यत्तप्यति गुरुः स्वयम् ॥८
को न्वत्र समयो भूयादिति ते मेनिरे गणाः ।
ततः समाप्ते सकले जगत्पतेर्व्रते समूले सकलेश्वरः शिवः ।
द्रष्टुं हरिर्लोकहितं पिणं प्रभुं ययौ भवान्या सह भूतसंघैः ॥९
सार्द्धं कुबेरेण सगुह्यकेन सख्या प्रियेण प्रभुरीश्वरः शिवः ।
स्वयं जटी भूतपिशाचसंवृतः शरी चशृंगी शशिखण्डशेखरः ॥१०
करेण बिभ्रन्महद्दर्भकुण्डिकां करेण साक्षादपरेण दीपिकाम् ।
अन्येन बिभ्रन्महतो सदण्डमांशूलं च बिभ्रन्नपरेण बाहुना ॥११

गुणान्स रुद्राक्षकृतान्समुद्वहञ्जटाभिरापिंगलताम्रमूर्तिः ।
विराजमानः प्रभुरिन्दुशेखरो वृषेण युक्तः स सितेन शंकरः ॥१२

सभी पर्वत, अन्य सभी मुनिजन और अन्यान्य देवताओ ने आश्चर्य युक्त नेत्रो से कहा—अहो, कैसा विस्मय है कि जिनका योगीजन प्रयत्न-पूर्वक ध्यान करते हैं, वही जगद्गुरु भगवान श्रीकृष्ण स्वयं ही तपस्या करते हैं । ऐसी घटना तो कभी देखी, सुनी नही ॥ ७-८ ॥ उनके द्वारा तपस्या करने मे अवश्य ही कोई कारण होगा । इस प्रकार का वार्तालाप चल ही रहा था, तभी भगवान् श्रीकृष्ण की तपश्चर्या पूर्ण होने पर भगवती पार्वती के सहित भगवान् शकर साक्षात् रूप मे उनके पास आये ॥९॥ उस समय भगवान् शकर जटा धारण किये हुए थे, उनके साथ कुबेर और बहुत-से यक्षगण थे, उनके मस्तक पर चद्रमा और हाथो मे बाण तथा खड्ग सुशोभित थे ॥१०॥ उनके हाथो मे कुश की पिंडी, कमण्डलु, दीपक, वीणा, डमरू और त्रिशूल भी थे ॥११॥ कठ मे रुद्राक्ष धारण किये हुए थे, जटाओ के कारण उनकी देह कान्ति ताम्र और पिंगल वर्ण की थी, उस समय वे वृषभ पर आरूढ थे ॥१२॥

एवं बहुविधैर्भूतैः पिशाचैरुरगैः सह ।
आगत्य भगवान्रुद्रः शकरो वृषवाहनः ॥१३
ददर्श विष्णुं देवेशं तपन्तं तप उत्तमम् ।
जुह्वानमग्निं विधिवद्द्रव्यैर्मेध्यैर्जगत्पतिम् ॥१४
गरुडाहृतकाष्ठं तु जटिलं चीरवाससम् ।
चक्रेणानीतकुसुमं खगानीतकुशं तथा ॥१५
गदाकृतसमाचारं देवदेवं जनार्दनम् ।
इन्द्राद्यैर्देवसंघैश्च वृतं मुनिगणैः सह ॥१६
अचिन्त्यं सर्वभूतानां ध्यायन्तं किमपि प्रभुम् ।
अवरुह्य वृषाच्छर्वो भगवान्भूतभावनः ॥१७
ततः प्रीतः प्रसन्नात्मा ललाटाक्ष उमापतिः ।
ततो भूतपिशाचाश्च राक्षसा गुह्यकास्तथा ॥१८

मुनयो विप्रर्याश्च जयशब्दं प्रचक्रिरे ।
जय देव जगन्नाथ जय रुद्र जनार्दन ॥१९
जय विष्णो हृषीकेश नारायणपरायण ।
जय रुद्र पुराणात्मञ्जय देव हरेश्वर ॥२०
आदिदेव जगन्नाथ जय शंकर भावन ।
जय कौस्तुभदीप्ताङ्ग जय भस्मविराजित ॥२१
जय चक्रगदापाणे जय शूलिंस्त्रिलोचन ।
जय मौक्तिकदीप्ताङ्ग जय नागविभूषण ॥२२

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! असंख्य भूतादि के साथ गये हुए भगवान् शंकर ने भगवान् श्रीकृष्ण को तपश्चर्या में निमग्न देखा। उस समय वे प्रज्वलित अग्नि मे आहुतियाँ प्रदान कर रहे थे ॥१३-१४॥ गरुड काष्ठ ला-रहे हैं, चक्र पुष्प और खग कुश एकत्र कर रहे हैं, गदा उनकी सुश्रूषा में लगी है। उन जटा एवं वल्कल धारी श्रीकृष्ण को इन्द्रादि देवताओं और मुनियो ने सब ओर से घेर रखा है ॥ १५-१६ ॥ प्राणियों के चिन्तन मे न आने वाले व महाप्रभु उस समय ध्यान मे रत थे, तभी भूत भावन भगवान् शंकर अपने वृषभ से उतर कर उस भव्य वातावरण को देखा । उसी समय सभी भूत, पिशाच, राक्षस, गुह्यक और मुनि आदि ने सब ओर से जय-जयकार किया—हे जगन्नाथ देव ! आपकी जय हो, हे रुद्र ! हे जनार्दन ! आपकी जय हो ॥ १७-१८ ॥ हे विष्णो ! हे हृषीकेश ! हे नारायण-परायण आपकी जय हो, हे रुद्र ! हे पुण्यात्मन् ! हे देव ! हे हरेश्वर ! आपकी सदा जय हो ॥२०॥ हे आदिदेव ! कौस्तुभ दीप्तांग ! भस्म विराजित ! हे शंकर ! हे जगन्नाथ ! आपकी जय हो ॥२१॥ हे चक्रगदापाणे ! हे शूलिन् ! हे त्रिलोचन ! हे मौक्तिक दीप्तांग ! हे नाग विभूषण ! आपकी जय हो ॥२२॥

इति ते मुनयः सर्वे प्रणामं चक्रिरे हरिम् ।
स उत्थाय भगवान्दृष्ट्वा देवमवर्ग्यितम् ॥२३

वृषध्वज विरूपाक्ष शङ्कर नीललोहितम् ।
ततो हृष्टमना विष्णुस्तुष्टाव हरमीश्वरम् ॥२४
नमस्ते शितिकण्ठाय नीलग्रीवाय वेधसे ।
नमस्ते शोचिषे अस्तु नमस्ते उपवासिने ॥२५
नमस्ते मीढुषे चास्तु नमस्ते गदिने हर ।
नमस्ते विश्वतनवे वृषाय वृषरूपिणे ॥२६
अमूर्त्ताय च देवाय नमस्तेऽस्तु पिनाकिने ।
नम कुब्जाय कूप्याय शिवाय शिवरूपिणे ॥२७
नमस्तुण्डाय तुष्टाय नमस्तुटितुटाय च ।
नम शिवाय शान्ताय गिरिशाय च ते नम ॥२८
नमो हराय हिप्राय नमो हरिहराय च ।
नमोऽघोराय घोराय घोरघोरप्रियाय च ॥२९
नमोऽघण्टाय घण्टाय नमो घटिघटाय च ।
नम शिवाय शान्ताय गिरिशाय च ते नम ॥३०

यह कह कर उन मुनिगण आदि ने रुद्रदेव को प्रणाम किया, फिर उन्हे अपने सामने स्थित देख कर भगवान् कृष्ण हाथ जोड़ कर उनकी स्तुति करने लगे ॥ २३ २४ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—हे शितिकण्ठ ! आपको नमस्कार है। हे नीलग्रीव ! हे वेध ! हे शोचि ! हे उपवासिन ! आपको मेरा नमस्कार है ॥ २५ ॥ हे मीढुष ! हे गदाधर ! हे विश्वतनो ! हे वृष ! हे वृषरूपिन् ! आपको नमस्कार है ॥ २६ ॥ हे अमूर्त्त ! पिनाकिन् ! कुब्ज ! कूप्य ! शिव ! शिवरूपिन् ! आपको नमस्कार है ॥२७॥ हे तुण्ड ! तुष्ट ! तुटितुट ! शिव ! शान्त ! गिरीश ! आपको नमस्कार है ॥ २८ ॥ हे हर ! हिप्र ! हरिहर ! अघोर ! घोर ! घोरघोर प्रिय ! घण्ट ! अघण्ट ! घटिघट ! शिव ! शान्त ! गिरीश ! आपको बारबार नमस्कार है ॥२९-३०॥

नमः सर्वात्मने तुभ्यं नमस्ते भूतिदायक ।
नमस्ते वामदेवाय महादेवाय ते नमः ॥३१
का नु वाक्स्तुतिरूपा ते को नु स्तोतुं प्रशक्नुयात् ।
कस्य वा स्फुरते जिह्वा स्तुतिमतां वर ॥३२
क्षमस्व भगवान्देव भक्तोऽहं त्राहि मां हर ।
सर्वात्मन्सर्वभूतेश त्राहि मां सततं हर ॥३३
रक्ष देव जगन्नाथ लोकान्सर्वात्मना हर ।
त्राहि भक्तान्सदा देव भक्तप्रिय सदा हर ॥३४

हे सर्वात्मन् ! आपको नमस्कार है, हे भूतिदायक ! हे वामदेव ! हे महादेव ! आपको नमस्कार है ॥३१॥ हे प्रभो ! ऐसा कोई वाक्य समझ में नहीं आता, जिसके द्वारा आपका स्तव करूँ । फिर ऐसा है भी कौन जिसकी जिह्वा आपकी भले प्रकार स्तुति करने में समर्थ हो ? ॥३२॥ हे भगवन् ! हे देव ! हे हर ! आप अपने मुझ भक्त की रक्षा करिये, हे सर्वात्मन् ! हे सर्वभूतेश ! आप सदैव ही मेरी रक्षा करने वाले रहें ॥३३॥ हे देव ! हे जगन्नाथ ! आप सदा ही सब लोकों के रक्षक रहें । हे देव ! हे महादेव ! आप भक्तों पर प्रीति करने वाले हैं, इसलिये अपने भक्तों की सदा रक्षा करें ॥३४॥

॥ शिव द्वारा कृष्ण-स्तुति ॥

ततो वृषध्वजो देवः शूली साक्षादुमापतिः ।
करं करेण संस्पृश्य विष्णोश्चक्रधरस्य ह ॥१
प्रोवाच भगवान्रुद्रः केशवं गरुडध्वजम् ।
शृण्वतां सर्वदेवानां मुनीनां भावितात्मनाम् ॥२
किमिदं देवदेवेश चक्रपाणे जनार्दन ।
तपश्चर्या किमर्थं ते प्रार्थना तव का विभो ॥३
स्वयं विष्णुर्भवान्नित्यस्तपस्त्वं तपसां हरे ।
पुत्रार्थं यदि ते देव तपश्चर्या जनार्दन ॥४

पुत्रो दत्तो मया देव पूर्वमेव जगत्पते ।
शृणु तथापि भगवान्कारणं कारणात्मक ॥५
तपश्चर्तुं प्रवृत्तोऽहं कुत्रश्चित्कारणाद्धर ।
वर्षायुतं महाघोरं पुरा कृतयुगे तदा ॥६
भवानी तत्र मे देव परिचर्तुं तदाऽभवत् ।
पित्रा नियुक्ता देवेश उमा सा वरवर्णिनी ॥७
भीत इन्द्रस्तदा देव मारं मां प्रैषयत्तदा ।
मधुना सह स युक्तो मारो मामागतस्तदा ॥८

वैशम्पायनजी बोले—हे राजन् ! फिर शूलपाणि वृषभवाहन भगवान् शंकर ने सुनने के लिये उत्कंठित हुए देवताओं और मुनियों के सामने ही चक्रपाणि गरुड़वाहन भगवान् श्रीकृष्ण रूप विष्णु के कर स्पर्श पूर्वक कहा ॥१-२॥ हे देवदेवेश ! हे चक्रपाणे ! हे जनार्दन ! आपके ऐसी घोर तपश्चर्या में प्रवृत्त होने का क्या कारण है ? हे विभो ! आप क्या चाहते हैं ? ॥३॥ आप तो स्वयं ही विष्णु हैं इसलिये स्वयं ही सब तपों में परम तप हैं। हे जनार्दन ! यदि आपका यह कार्य पुत्र की अभिलाषा से हो तो वह तो मैंने आपको पहिले ही दे दिया है ! अब आपकी इस तपस्या को जो कारण मैं समझता हूँ उसे भी सुनिये ॥४-५॥ सत्ययुग की बात है कि मैंने दश हजार वर्षों में पूर्ण होने वाली कठोर तपस्या की ॥ ६ ॥ उस समय वरवर्णिनी उमा अपने पिता हिमराज की आज्ञा से मेरी परिचर्या में नियुक्त हुई ॥७॥ तभी मेरे कठिन तप को देख कर इन्द्र को भय उत्पन्न हुआ और विघ्न उपस्थित करने के उद्देश्य से उन्होंने कामदेव को मेरे पास भेजा, जो कि अपने वसन्त-काल आदि साधनों के साथ वहाँ आ गया ॥ ८ ॥

लक्ष्यं मामकरोत्तत्र बाणस्य प्रेषितस्य ह
एषा मा सेवते तत्र दानात्पुष्पादिना हरे
ततः क्रुद्धोऽहमभवं दृष्ट्वा मारं तथाविधं
क्रुद्धस्तो मम देवेश नेत्रदग्निः पपात ह

सोऽयमग्निस्तदा मारं भस्मसात्कृतवान्हरे ।
अचिन्तयं तदा विष्णो शक्रस्य तच्चिकीर्षितम् ॥११
ततः प्रभृति देवेश दया तं प्रति पर्वते ।
ब्रह्मणा च नियुक्तोऽस्मि प्रीतस्तत्र जनार्दन ॥१२
नियुक्तः पुत्ररूपेण स ते देव जगत्पते ।
ज्येष्ठस्तव सुतो देव प्रद्युम्नेत्यभिविश्रुतः ॥१३
स्मरं तं विद्धि देवेश नात्र कार्या विचारणा ।
इत्युक्त्वा पुनराहेदं याथात्म्यं दर्शयन्निव ॥१४

मेरे पास आकर उसने मुझ पर अपना बाण चलाया, उस समय पुष्पादि संचय पूर्वक उमा मेरी सेवा करती थी ॥६॥ फिर भी कामदेव को विघ्न रूप मे उपस्थित देख मेरे नेत्रो से क्रोध के कारण अग्नि की लपटें निकलने लगी ॥१०॥ हे हरे ! उस क्रोधाग्नि मे पड कर कामदेव तुरन्त ही भस्म होगया, फिर मुझे ज्ञात हुआ कि वह कुचाल इन्द्र की ही थी ॥११॥ फिर ब्रह्माजी के प्रयत्न से प्रसन्न होकर मैं कामदेव के प्रति दयार्द्र हो उठा ॥१२॥ हे जगत्पते ! तभी मैंने उस कामदेव को 'प्रद्युम्न' रूप से आपका-ज्येष्ठ पुत्र निश्चित किया ॥१३॥ वही कामदेव आपका ज्येष्ठ पुत्र प्रद्युम्न है, इसमे कोई संदेह न करिये ॥१४॥

मुनीनां श्रोतुकामानां याथात्म्यं तत्र सत्तमः ।
अञ्जलि संपुटं कृत्वा विष्णुमुद्दिश्य शंकरः ॥१५
उमया सार्द्धमीशानो याथात्म्यं वक्तुमर्हत ।
हरे कुर्वति तत्र वमञ्जलि कुरुसत्तम ॥१६
मुनयो देवगन्धर्वाः सिद्धाश्च सह किन्नरैः ।
अञ्जलि चक्रिरे विष्णौ देवदेवेश्वरे हरौ ॥१७
यत्तत्कारणमाहुस्तत्सांख्याः प्रकृतिसंज्ञकम् ।
ततो महान्समुत्पन्नः प्रकृतिर्यस्य कारणम् ॥१८
त्रिधा भूतं जगद्योनि प्रधानं कारणात्मकम् ।
सत्त्वं रजस्तमो विष्णो जगदण्डं जनार्दन ॥१६

तस्य कारणमाहुस्त्वां सांख्यप्रकृतिसंज्ञकम् ।
तद्रूपेण भवान्विष्णो परिणम्याधितिष्ठति ॥२०
तस्मात्तु महतो घोरादहंकारो महानभूत् ।
स त्वमादौ जगन्नाथ परिणामस्तया हि सः ॥२१

हे राजन् ! भगवान् शङ्कर ने उपरोक्त वाक्य पूर्ण करके मुनियों पर विष्णुत्व प्रकट करने केलिये श्रीकृष्ण के लिये हाथ जोड़े। उनके ऐसा करते ही सब मुनि, देवता, गन्धर्व, सिद्ध, किन्नर आदि ने भी उनके लिये हाथ जोड़े ॥ १५-१७ ॥ तभी भगवान् शङ्कर ने उनसे कहा—हे जनार्दन ! आप ही साख्य योगियों द्वारा वर्णित प्रकृति सज्ञक त्रिगुणात्मक कारण हैं ॥१८॥ आपके अतिरिक्त अन्य कोई नही है। जिस प्रकृति के आप कारण है, उसी से महत्तत्व उत्पन्न हुआ है। उस महत्तत्व के रूप मे भी आप ही परिवर्तित होते तथा आप ही सर्वत्र व्याप्त रहते हैं ॥ १६-२० ॥ उस महत्तत्व से ही अहकार तत्व की उत्पत्ति हुई। हे जगदीश्वर ! यह सब आपके परिणाम और आप इन सब के मूल कारण हैं ॥२१॥

अहंकारात्प्रभो देव कारणानि महान्ति च ।
तन्मात्राणि तथा पञ्च भूतानि प्रभवन्त्युत ॥२२
तानि त्वामाहुरीशानं भूतानीह जगत्पते ।
पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम् ॥२३
चक्षुर्घ्राणं तथा स्पर्शो रसनं श्रोत्रमेव च ।
मनः षष्ठं तथा देव प्रेरकं तत्र तत्र ह ॥२४
कर्मेन्द्रियाणि चान्यानि वागादीनि जनार्दन ।
त्वमेव तानि सर्वाणि करोषि नियतात्मवान् ॥२५
स्वेषु जगन्नाथ विषयेषु तथा हरे ।
निवेशयसि देवेश योग्यामिन्द्रियपद्धतिम् ॥२६
यदा त्वं रजसा युक्तस्तदा भूतानि सृष्टवान् ।
यदा च सत्त्वयुक्तोऽसि तदा पाता जगत्त्रयम् ॥२७

यदा त्वं तमसाक्रुष्टस्तदा संहरसे जगत् ।
त्रिभिरेव गुणैर्युक्तः सृष्टिरक्षाविनाशने ॥२८

उसी अहंकार तत्व से पृथिवी, पवन, आकाश, जल और अग्नि इन पंच महाभूतों की उत्पत्ति हुई। हे प्रभो! वे पंच महाभूत आप ही हैं। उन पंच महाभूतों को प्रेरण करने वाली छः इन्द्रियाँ नेत्र, नासिका, स्पर्श, रसना, श्रोत्र और मन हैं ॥२२-२४॥ इनके अतिरिक्त कर्मेन्द्रिय और वाणी आदि अन्यान्य इन्द्रियाँ भी आपके द्वारा ही उत्पन्न हुई हैं ॥२५॥ हे जगन्नाथ! इन इन्द्रियों को आपने ही अपने अपने कार्यों में नियुक्त किया है ॥२६॥ आप रजोगुण से युक्त होकर सब प्राणियों की रचना और सत्वगुण से युक्त होकर तीनों लोकों का पालन करते हैं ॥२७॥ तमोगुण से युक्त होकर आप ही विश्व का संहार करते हैं। इस प्रकार आप पृथक्-पृथक् तीनों गुणों से मिल कर सृष्टि, पालन और विनाश करते रहते हैं ॥२८॥

यत्त्वं से त्रिविधा भूतिमादाय नियतात्मवान् ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु नियोजयसि माधव ॥२९
प्राणिनामुपभोगार्थमन्त स्थित्वा जगद्गुरो ।
तस्मात्सर्वम भूतेषु वर्तते सर्वभोगवान् । ३०
ब्रह्मा त्वं सृष्टिकाले तु स्थितो विष्णुरसि प्रभो ।
संहारे रुद्रनामासि त्रिधामा त्वमसि प्रभो ॥३१
आदिस्त्वं सर्वभूतानां मध्यमन्तस्तथा भवान् ।
त्वत्तः सम्भवद्विश्वं त्वयि सर्वं प्रलीयते ॥३२
अहं त्वं सर्वगो देव त्वमेवाहं जनार्दन ।
आवयोरन्तरं नास्ति शब्दैरर्थैर्जगत्पते ॥३३
नामानि तव गोविन्द यानि लोके महान्ति च ।
तान्येव मम नामानि नात्र कार्या विचारणा ॥३४
त्वदुपासा जगन्नाथ सैवास्तु मम गोपते ।
यश्च त्वां द्वेष्टि देवेश स मां द्वेष्टि न संशयः ॥३५

हे माधव ! आप एक ही काल मे तीनो रूपा के धारण मे समर्थ हैं । आप ही जीवों के प्राण धारणार्थ अन्न उत्पन्न कर इन्द्रियो को उनके निश्चित कार्यों मे नियुक्त करते हैं तथा आप ही सब भूतो मे भोगवान् रूप से स्थित रह कर सब भोगो को भोगते हैं ।।२६ ३०।। हे प्रभो ! आप ही त्रिगुणात्मक हैं तथा सृष्टि काल में ब्रह्मा, स्थिति काल मे विष्णु और प्रलय काल मे रुद्र हो जाते हैं ।।३१।। आप ही सब जीवो के आदि, मध्य और अन्त हैं । यह जगत् आप से ही उत्पन्न हुआ है और अन्त मे आप मे ही मिल जायगा ।।३२।। आप और मैं दोनो ही सर्वगत हैं, आप मे और मुझ मे शब्द से या अर्थ से भी भेद नही है ।।३३।। हे गोविन्द ! इस लोक में आपको जिन-जिन नामो से पुकारा जाता है, उन-उन नामो से मैं भी प्रसिद्ध हूँ, यह निस्सन्देह सत्य है ।।३४।। हे जगन्नाथ ! आपकी आराधना से ही मेरी आराधना सम्पन्न हो जाती है और आपके प्रति वैर-भाव का होना मुझसे ही शत्रुता होना है ।।३५।।

त्वद्विस्तारो यतो देव अहं भूतपतिस्ततः ।
न तदस्ति विना देव यत्ते विरहितं हरे ।।३६
यदासीद्वर्त्तते यच्च यच्च भावि जगत्पते ।
सर्वं त्वमेव देवेश विना किंचित्त्वया न हि ।।३७
स्तुवन्ति देवा सततं भवन्तं स्वैर्गुणैः प्रभो ।
ऋचश्च त्वं यजुरेवासि सामासि सततं प्रभो ।।३८
किमुच्यते मया देव सर्वं त्वं भूतभावन ।
नमः सर्वात्मना देव विष्णो माधव केशव ।।३९
नमस्करोमि सर्वात्मन्नमस्तेस्तु सदा हरे ।
नमः पुष्करनाभाय वन्दे त्वामहमीश्वर ।।४०

आपकी महिमा जिससे विस्तीर्ण होती है, उसी से मेरी भी महिमा बढ़ जाती है और मैं भूतनाथ हो जाता हूँ । आपके बिना किसी भी कार्य की सिद्धि सभव नहीं है ।। ३६ ।। भूत, भविष्यत, वर्तमान मे जो कुछ भी है, वह आपके बिना कुछ भी नहीं है ।।३७।। अपने गुणो के द्वारा देवता भी आपका यश गाते

हैं। हे प्रभो ! आप ही ऋक्, यजु और साम स्वरूप हैं ॥ ३८ ॥ हे देव ! हे विष्णो ! हे माधव ! हे केशव ! अब मैं अधिक क्या कहूँ ? हे भूत भावन ! मैं जो कुछ भी कह कर पुकारूँ वह सभी कुछ आप हैं ॥३९॥ इसलिये हे सर्वात्मन् ! मेरा आपको नमस्कार है। हे पुष्करनाभ ! हे ईश्वर ! मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥४०॥

॥ श्रीकृष्ण का बदरिकाश्रम लौटना ॥

ततः स भगवान् रुद्रः सर्वान्विस्मापयन्निव ।
स्तुत्या प्रचक्रमे स्तोतुं विष्णुं विश्वेश्वरं हरिम् ।
अर्थ्याभिस्तु तदा वाग्भिर्मुनीनां शृण्वतां तथा ॥१
नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय धीमते ।
यस्य भासा जगत्सर्वं भासते नित्यमच्युत ॥२
नमो भगवते देव नित्यं सूर्यात्मने नमः ।
यः शीतयति शीतांशुर्लोकान्सर्वानिमान्विभुः ॥३
नमस्ते विष्णवे देव नित्यं सोमात्मने नमः ।
यः प्रजाः प्रीणयत्येको विश्वात्मा भूतभावनः ॥४
नमः सर्वात्मने देव नमो याम्यात्मने हरे ।
यो दधार करेणासौ कुशचीरादि यत्सदा ॥५
दधार वेदान्सर्वांश्च तुभ्यं ब्रह्मात्मने नमः ।
सर्वान्संहरते यस्तु संहारे विश्वदृक्सदा ॥६
क्रोधात्माऽसि विरूपोऽसि तुभ्यं रुद्रात्मने नमः ।
सृष्टौ स्रष्टा समस्तानां प्राणिनां प्राणदायिने ॥७
अजाय विष्णवे तुभ्यं स्रष्ट्रे विश्वसृजे नमः ।
आदौ प्रकृतिमूलाय भूतानां प्रभवाय च ॥८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! तदनन्तर भगवान् शंकर ने
... के सामने ही वेदार्थमयी वाणी से उन जगदीश्वर विष्णु की स्तुति ...

जिसे सुनते हुए मुनियो को अत्यंत विस्मय हुआ ॥१॥ भगवान् महेश्वर ने कहा—हे वासुदेव ! जिन सूर्य की किरणो से यह जगत् प्रकाशमान है, आप उन्ही सूर्य के स्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। जो अपनी शीतल किरणों से सुख-शान्ति प्रदान करते हैं आप उन चन्द्र स्वरूप को नमस्कार है। जो विश्वात्मा सब को जीवन प्रदान करते हैं, आप वह वायु रूप हैं, इसलिये हे वाय्वात्मन् ! आपको नमस्कार है। जो ब्रह्माजी अपने शरीर से कुशादि धारण करते हैं तथा जो वेदो के भी धारक हैं, आप वही ब्रह्मात्मा को नमस्कार है। जो क्रोधात्मा रुद्र देव प्रलयकाल मे विश्व का लय करते हैं, आप उन रुद्रात्मा को नमस्कार है। जो अजन्मा विष्णु सृष्टि को रच कर प्राणियो को प्राण देते हैं, उन आप सृष्टिकर्त्ता को नमस्कार है। आपने ही सर्व प्रथम प्रकृति के अवलम्ब से सृष्टि उत्पन्न की है, इसलिये आप सर्व प्रधान को नमस्कार है ॥६-८॥

नमस्ते देवदेवेश प्रधानाय नमो नमः।
पृथिव्या गन्धरूपेण संस्थितः प्राणिना हरे ॥६
दृढाय दृढरूपाय तुभ्यं गन्धात्मने नमः।
अपां रसाय सर्वत्र प्राणिना सुखहेतवे ॥१०
नमस्ते विश्वरूपाय रसाय च नमो नमः।
तेजसा भास्करो यस्तु घृणो जन्तुहितः सदा ॥११
तस्मै देव जगन्नाथ नमो भास्कररूपिणे।
वायोः स्पर्शगुणो यत्र शीतोष्णसुखदुःखदः ॥१२
नमस्ते वायुरूपाय नमः स्पर्शात्मने हरे।
आकाशेऽवस्थितः शब्दः सर्वश्रोत्रनिवेशनः ॥१३
नमस्ते भगवन्विष्णो तुभ्यं शब्दात्मने नमः।
यो दधार जगत्सर्वं मायामानुषदेहवान् ॥१४
नमस्तुभ्यं जगन्नाथ मायिनेऽमायदायिने।
नम आद्याय बीजाय निर्गुणाय गुणात्मने ॥१५

आप ही पृथिवी पर गंध रूप से विद्यमान हैं, अतः ! हे गंधात्मन् आपको नमस्कार है। आप सब प्राणियों के सुख के लिये रस रूप होते हैं, इसलिये हे रसात्मन् ! आपको प्रणाम है। आप सदा प्राणियों का हित करते हुए अपने तेज से सब कुछ प्रकाशित करते रहते हैं, इसलिये हे भास्कर रूप ! आपको नमस्कार है ॥६-११॥ वायु में शीत, उष्ण, सुख-दुःख आदि का अनुमान कराने वाला जो स्पर्श गुण है, आप ही उससे सम्पन्न हैं, इसलिये हे स्पर्शात्मन् ! आपको नमस्कार है। आकाश का गुण शब्द पृथिवी के सब प्राणियों के श्रोत्र पर रहता है, और आप ही वह शब्द रूप हैं, इसलिये आप शब्दात्मा को नमस्कार है। जिन माया मय देव ने माया मानव रूप से इस विश्व को धारण किया हुआ है, वे आप ही हैं, अतः हे मायाविन् ! आपको नमस्कार है। हे जगन्नाथ ! हे आदिबीज ! हे निर्गुण ! हे गुणात्मन् ! आपको नमस्कार है। ॥१२-१५॥

अचिन्त्याय सुचिन्त्याय तस्मै चिन्त्यात्मने नमः।
हराय हरिरूपाय ब्रह्मणे ब्रह्मदायिने ॥१६
नमो ब्रह्मविदे तुभ्यं ब्रह्मब्रह्मात्मने नमः।
नमः सहस्रशिरसे सहस्रकिरणाय च ॥१७
नमः सहस्रवक्त्राय सहस्रनयनाय च।
विश्वाय विश्वरूपाय विश्वकर्त्रे नमो नमः ॥१८
विश्ववक्त्र नमो नित्यं भूतावास नमो नमः।
इन्द्रियायेन्द्ररूपाय विषयाय सदा हरे ॥१९
नमोऽश्वशिरसे तुभ्यं वेदाभरणरूपिणे।
अग्नयेऽग्निपते तुभ्यं ज्योतिषां पतये नमः ॥२०
सूर्याय सूर्यपुत्राय तेजसां पतये नमः।
नमः सोमाय सौम्याय नमः शीतात्मने हरे ॥२१

हे विष्णो ! आप अचिन्त्य, सुचिन्त्य, चिन्त्यात्मा, शिव, हरि, ब्रह्म, ब्रह्मपददाता, ब्रह्मज्ञानी, सहस्रशिर, सहस्रकिरण, ब्रह्म और ब्रह्मात्मा हैं, आपको

नमस्कार है ॥१६-१७॥ हे सहस्रमुख ! हे सहस्रनेत्र ! हे विश्व ! हे विश्व-रूप ! हे विश्वकर्त्तार ! आपको नमस्कार है ॥१८॥ आप विश्ववक्ष, भूतवास, इन्द्रिय एवं विषय रूप हैं । हे हरे ! आपको नमस्कार है ॥१९॥ आप अश्वशिर, वेदाभरण, अग्नि, अग्नि-पति, ज्योतिष-पति, सूर्य, सूर्यतनय, तेजो के स्वामी, सोम तथा सौम्य हैं । हे शीतात्मन् ! हे हरे ! आपको नमस्कार है ॥२०-२१॥

नमो यज्ञाय इज्याय हविषे हव्यसंस्कृते ।
नमः स्रुवाय पात्राय यज्ञाङ्गाय पराय च ॥२२
नमः प्रणवदेहाय क्षराय्याप्यक्षराय च ।
वेदाय वेदरूपाय शास्त्रिणे शास्त्ररूपिणे ॥२३
गदिने खड्गिने तुभ्यं शंखिने चक्रिणे नमः ।
शूलिने चर्मिणे नित्यं वरदाय नमो नमः ॥२४
बुधप्रियाय बुद्धाय प्रबुद्धाय सुखाय च ।
हरये विष्णवे तुभ्यं नतः सर्वात्मने गुरो ॥२५
नमस्ते सर्वलोकेश सर्वकर्त्रे नमो नमः ।
नमः स्वभावशुद्धाय नमस्ते यज्ञसूकर ॥२६
नमो विष्णो नमो विष्णो नमो विष्णो नमो हरे ।
नमस्ते वासुदेवाय वासुदेवाय धीमते ॥२७
नमः कृष्णाय कृष्णाय सर्वावास नमो नमः ।
नमो भूयो नमस्तेऽस्तु पाहि लोकाञ्जनार्दन ॥२८

आप ही यज्ञ, इज्य, हवि, हव्य संस्कृत, स्रुव, यज्ञाङ्ग, पर, प्रणव-शरीर, क्षर, अक्षर, वेद, वेदमूर्ति और शास्त्र स्वरूप हैं ॥२२-२३॥ आप ही गदा-खग, शंख-चक्र के धारण करने वाले, शूल-चर्म से युक्त तथा वर-प्रदायक हैं । आपको नमस्कार है ॥२४॥ आप ही ज्ञानप्रिय, बुद्ध, प्रबुद्ध, सुख, हरि, विष्णु, गुरु और सर्वात्मा हैं, आपको नमस्कार है ॥२५॥ हे सर्वलोकेश्वर ! आप सर्वकर्त्ता, शुद्धस्वभाव हैं आपको नमस्कार है ॥२६॥ हे विष्णो ! हे विष्णो ! हे हरे ! हे धीमान् ! हे वासुदेव ! आपको नमस्कार है ॥२७॥ हे कृष्ण ! हे सर्ववास

श्रीकृष्ण ! आपको नमस्कार है। हे जनार्दन ! आप सब प्रकार से सब भूतो की रक्षा कीजिये, आपको बारंबार नमस्कार है ॥२८॥

इति स्तुत्वा जगन्नाथमुवाच मुनिसत्तमान् ।
इमं स्तोत्रमधीयाना नित्यं व्रजत केशवम् ॥२९
शरण्यं सर्वभूतानां तत्र श्रेयो विधास्यति ।
ये चेमं धारयिष्यंति स्तवं पापविमोचनम् ॥३०
तेषां प्रीतः प्रसन्नात्मा पठतां शृण्वतां हरिः ।
श्रेयो दास्यति धर्मात्मा नात्र कार्या विचारणा ॥३१
अवश्यं मनसा ध्यात केशवं भक्तवत्सलम् ।
श्रेयः प्राप्तुं यदीच्छन्ति भवन्तः शंसितव्रताः ॥३२
इत्युक्त्वा भगवान् रुद्रस्तत्रैवान्तरधीयत ।
सगणः शंकरः साक्षादुमया भूतभावनः ॥३३
नेमुस्तं मुनयः सर्वे परां निर्वृतिमाययुः ।
तमेव परमं तत्त्वं मत्वा नारायणं हरिम् ।
विस्मयं परमं गत्वा मेनिरे स्वकृतार्थताम् ॥३४
लोकपालास्तदा विष्णुं नमस्कृत्य हरिं तदा ।
जग्मुः स्वान्यथ वेश्मानि गणैः सर्वैर्नृपोत्तम ॥३५
आरुह्य भगवान्विष्णुर्गरुडं पक्षिपुंगवम् ।
शंखी चक्री गदी शार्ङ्गी शार्ङ्गी तूणी तनुत्रवान् ॥३६
यथागतं जगन्नाथो ययौ बदरिकामनु ।
सायाह्ने पुण्डरीकाक्षो नित्यं मुनिनिषेविताम् ॥३७
तत्र गत्वा यथायोग विनम्य हरिरीश्वरः ।
अर्चितो मुनिभिः सर्वैर्निषसाद सुखासने ॥३८

भूतभावन भगवान् शंकर जगदीश्वर विष्णु की इस प्रकार स्तुति करके मुनिजनों से बोले—हे मुनिगण ! आप इस स्तोत्र का नित्य प्रति पाठ करते हुए भगवान् विष्णु की शरण को प्राप्त हो ॥२९॥ इससे शरणागतों की रक्षा

करने वाले भगवान् आप सब की रक्षा मे तत्पर होंगे और जो इस पाप विमोचन स्तोत्र हृदय में धारण करेंगे या पढ़ेंगे-सुनेंगे उनका निस्सदेह सब प्रकार से मगल होगा ॥३०-३१॥ हे मुनिगण ! यदि आप अपनी कल्याण-कामना करते हैं तो भगवान् विष्णु को प्रसन्न करो ॥३२॥ यह कह कर अपने गणो तथा पार्वतीजी के सहित भगवान् शंकर उसी समय अंतर्धान होगये ॥३३॥ फिर उन मुनियो ने भगवान् कृष्ण को ही परमतत्व मानकर उन्हे प्रणाम किया तथा हरि-हर को इस लीला को देखकर वे अत्यत विस्मित हुए ॥३४॥ हे राजन् ! इसके पश्चात् लोकपाल भी भगवान् को प्रणाम कर अपने अनुचरो के सहित स्वधाम को गये ॥३५॥ तब शख, चक्र, गदा, धनुष, तरकस और कवच धारी भगवान् कृष्ण गरुड पर आरूढ होकर मुनिजनो द्वारा सेवित बदरी वन मे आगये और गरुड से उतर कर वहाँ सुख से विराजमान हुए, उस समय सब ओर से एकत्रित हुए मुनिगण उनका पूजन करने लगे ॥३८॥

॥ पौण्ड्रक के दर्पपूर्ण वचन ॥

एतस्मिन्नेव काले तु पौण्ड्रो नृपवरोत्तमः ।
बलवान्सत्वसंपन्नो योद्धा विपुलविक्रमः ॥१
चूर्णिशत्रुस्तदा राजा कृष्णद्वेषी बलात्तदा ।
नृपान्सर्वान्समाहूय प्रोवाच नृपसंसदि ॥२
जिता च पृथिवी सर्वा जिताश्च नृपसत्तमाः ।
वृष्णयस्ते बलोन्मत्ता. कृष्णामाश्रित्य गर्विताः ॥३
दास्यन्ति मे करं सर्वे न हि ते वृष्णसंश्रयात् ।
स तु कृष्णश्चक्रबलान्मामवज्ञाय तिष्ठति ॥४
अहं चक्रीति गर्वोऽभूत्तस्य गोपस्य सर्वदा ।
शङ्खी चक्री गदी शार्ङ्गी शरी तूणी सहायवान् ॥५
एवमादिर्महागर्वस्तस्य सप्रति वर्त्तते ।
लोके च मम यन्नाम वासुदेवेति विश्रुतम् ॥६
अगृह्णन्मम तन्नाम गोपो [illegible]

तस्य चक्रस्य यच्चक्रं ममापि निशितं महत् ॥७
गर्वं हन्तुं सदा तस्य नाम्ना चापि सुदर्शनम् ।
सहस्रारं महाघोरं तस्य चक्रस्य नाशनम् ॥८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! इन्हीं दिनों राजाओं में अत्यंत बलशाली, वीर्यशाली पौण्ड्रक यादवों सहित भगवान् श्रीकृष्ण का वैरी बन गया और एक दिन उसने अनेक राजाओं को अपनी सभा में बुला कर उनसे कहा—हे राजागण ! मैंने इस सम्पूर्ण पृथिवी पर विजय प्राप्त करली है और प्रायः सब राजा मेरे आधीन हो चुके हैं। केवल यादव ही ऐसे हैं जो कृष्ण की सहायता के कारण गर्वित हो रहे हैं ॥१-३॥ उनके अतिरिक्त अन्य सभी राजा मुझे कर देते हुए, मेरा सम्मान करते हैं, परन्तु कृष्ण ही अपने चक्र के अभिमान में मदमत्त होकर मेरा तिरस्कार करता है ॥४॥ वह समझता है कि मैं शंख, चक्र, गदा और शार्ङ्ग धारी हूं, मेरे समान बाण-तूणीर धारी और संहारकर्त्ता अन्य कोई नहीं है ॥५॥ इस प्रकार वह इतना मदान्ध होगया है कि उस गोपपुत्र ने मेरे नाम वासुदेव को ही स्वयं रख लिया है। परन्तु उसे यह विदित नहीं है कि मेरा हजार धार का चक्र उसके चक्र से अधिक तीक्ष्ण है। मैं अपने इसी चक्र से उस छद्मवेशी वासुदेव के चक्र का अहंकार नष्ट कर डालूंगा ॥६-८॥

अनेकमहतं चक्रं गोपजस्य नृपोत्तमाः ।
ममाप्येतद्धनुर्दिव्यं शार्ङ्गं नाम महारवम् ॥९
गदा कौमोदकी नाम ममेयं बृहती दृढा ।
कालायससहस्रस्य भारेण सुकृता मया ॥१०
खंगो नन्दकनामाऽसौ ममायं विपुलो दृढः ।
अन्तकस्यान्तको घोरस्तस्य खंगस्य नाशकः ॥११
तस्मायं च गदी खंगी शंखी चक्री तनुत्रवान् ।
युधि जेता च कृष्णस्य नात्र कार्या विचारणा ॥१२
मां संब्रूत नृपाश्चैव गदिनं चक्रिणं तथा ।
शंखिनं शार्ङ्गिणं वीरं ब्रूत नित्यं नृपोत्तमाः ॥१३

वासुदेवेति मां ब्रूत न तु गोपं यदूत्तमम् ।
एकोऽहं वासुदेवो हि हत्वा तं गोपदारकम् ॥१४
सख्युर्मम बलाद्धन्ता नरकस्य महात्मनः ।
मां तथा यदि न ब्रूत दण्ड्या भारशतैः शतम् ॥१५
सुवर्णस्य च निष्कस्य ग्रहीष्ये बहुशस्तदा ।
तथा ब्रुवति राजेन्द्रे मनसा दुःसह यथा ॥१६
केचिल्लज्जासमायुक्ता आसंस्ते बलवत्तराः ।
रसज्ञा बलवीर्यस्य राजानस्ते सदा नृप ॥१७
अपरे तु नृपा राजन्नेवमेवेति चुक्रुशुः ।
अन्ये बलमदोत्सिक्ता जेष्यामः केशव रणे ॥१८

हे राजाओ ! मेरे पास भी शार्ङ्ग नामक घोर टकोर वाला यह भीषण धनुष तथा कौमोदकी नाम वाली अत्यत सुदृढ तथा हजार भार की लौहमयी गदा विद्यमान है । ९-१०॥ मैं भी नन्दक नाम का अत्यत तीक्ष्ण खंग सदैव अपने पास रखता हूं । मेरा यह खंग काल का भी काल और कृष्ण के खग को काट देने मे पूर्ण रूपेण समर्थ है ॥११॥ इस प्रकार मैं भी शख, चक्र, गदा, खङ्ग और शार्ङ्ग धनुष का धारण करने वाला हूं, इसलिये उस कृष्ण का युद्ध मे अवश्य ही वध कर डालूंगा ॥१२॥ हे राजागण ! अब से आप सभी मुझे शख-चक्र-गदा धारी भगवान् वासुदेव कहा करें, परंतु इस बात को भी न भूलें कि मैं यदुवशी ग्वाला नही हूं । इस जगत मे अकेला वासुदेव मैं ही हूं और उस गोप बालक को मैं ही मारूंगा ॥१४॥ मेरे प्रिय मित्र नरकासुर का उसी ने वध किया था । यदि आप मेरी आज्ञा के अनुसार मुझे वासुदेव न कहेगे तो मैं स्वर्ण, मुद्रा और अन्नादि वस्तुओं का आपको दण्ड दूंगा । हे राजन् ! पौण्ड्रक की इस असंगत बात को सुनकर भगवान् कृष्ण के पराक्रम को जानने वाले राजा लज्जा से झुक गये ॥१५-१७॥ तथा अन्य राजाओं ने 'ऐसा ही होगा' कहा और कुछ मदोन्मत्त राजा तो युद्ध मे कृष्ण को मारेंगे—कहते हुए कोलाहल करने लगे ॥१८॥

॥ पौण्ड्रक नारद संवाद ॥

ततः कैलासशिखरान्निर्गतो मुनिसत्तमः ।
नारदः सर्वलोकज्ञः पौण्ड्रस्य नगरं प्रति ॥१
अवतीर्य नभोभागात्प्रत्यागम्य नरोत्तमम् ।
द्वारस्थेन च समाज्ञप्तः प्रविवेश गृहोत्तमम् ॥२
अर्घादिसमुदाचारं नृपाल्लब्ध्वा महामुनिः ।
निषसादासने शुभ्रे ह्यास्तृते शुभवाससा ॥३
कुशलं पृष्टवान्भूयो नृपः स मुनिसत्तमम् ।
उवाच नारदं भूयः पौण्ड्रको बलगर्वितः ॥४
भवान्सर्वत्र कुशलः सर्वकार्येषु पण्डितः ।
प्रथितो देवसिद्धेषु गन्धर्वेषु महात्मसु ॥५
सर्वत्रगो निराबाधो गत्वा सर्वत्र सर्वदा ।
अगम्यं तव विप्रेन्द्र ब्रह्माण्डे न हि किंचन ॥६
नारदेदं वद त्वं हि यत्र यत्र गतो भवान् ।
तत्र तत्र तपः सिद्धो लोके प्रथितवीर्यवान् ।
पौण्ड्र एव च विख्यातो वासुदेवेति शब्दितः ॥७
शंखी चक्री गदी शार्ङ्गी खड्गी तूणी तनुत्रवान् ।
विजेता राजसिंहानां दाता सर्वस्य सर्वदा ॥८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! उसी अवसर पर देवर्षि नारदजी ने कैलास पर्वत से चल कर राजा पौण्ड्र के नगर की ओर प्रस्थान किया और वहाँ जाकर द्वारपाल के द्वारा राजसभा में पहुँच गये ॥१-२॥ राजा ने उन्हें देख कर तुरन्त ही अर्घ्य-पाद्य आदि प्रदान किया और तब वे देवर्षि राजा द्वारा प्रदत्त एक उज्ज्वल आसन पर बैठ गये ॥३॥ तदनन्तर पौण्ड्रक ने मुनिश्रेष्ठ नारदजी से कुशल प्रश्न के पश्चात् इस प्रकार कहा—हे भगवन् ! आप सभी कार्यों के ज्ञाता हैं तथा सब देवता, सिद्ध, गंधर्व और महात्मा आदि में आप प्रतिष्ठित हैं ॥४-५॥ आपकी सर्वत्र अबाध गति है, ब्रह्माण्ड में कहीं भी जाने में आप नहीं

रुक सकते ।।३।। इसलिये, आप यह बताने की कृपा करिये कि आपका जहाँ-जहाँ जाना हुआ है, वहाँ-वहाँ मैं तपसिद्ध और लोक प्रतिष्ठित वासुदेव के रूप में प्रसिद्ध हूँ अथवा नहीं ? ।।७।। मैं शख, चक्र, गदा, शार्ग धनु, तूणीर और कवच धारण करने, भूतल के सब राजाओ को हराने और प्रचुर दान देने वाला हूँ ।।८।।

भोक्ता राज्यस्य सर्वस्य शास्ता राजा बलाद्बली ।
अजेयः शत्रुसैन्यानां रक्षिता स्वजनस्य ह ।।९
योऽद्य गोपकनामाऽसौ वासुदेवेति शब्दितः ।
तस्य वीर्यबले न स्तो नाम्नोऽस्य मम धारणे ।।१०
स हि गोपो वृथा बाल्याद्धारयत्येव नाम मे ।
इद निश्चिनु विप्रेन्द्र एक एव भवाम्यहम् ।।११
वासुदेवो जगत्यस्मिन्निर्जित्य वलिनं यदुम् ।
वृष्णीन्सर्वान्बलात्क्षिप्त्वा निहनिष्ये च ता पुरीम् ।।१२
द्वारका विष्णुनिलया योद्धा चाहं महामते ।
एते च बलिनः सर्वे नृपा मम समागताः ।।१३
अश्वाश्च वेगिनः सन्ति रथा वायुजवा मम ।
नानामन्त्रा. सहस्रं च गजा नियुतमेव च ।।१४
एतैमाहं वलेनाजौ हनिष्ये केशव रणे ।
तस्मादेव सदा विप्र वद ब्रह्मन्पुरे मम ।।१५
इन्द्रस्यापि सदा विप्र वद नारद साम्प्रतम् ।
प्रार्थनं पा मम विभो नमस्ये त्वां तपोधन ।।१६

मैं सभी राज्यो का भोक्ता, शासक और महाबली राजा हूँ। अपने जनो का रक्षक तथा शत्रुओं के लिये अजेय हूँ ।।९।। वह बल-वीर्य-हीन ग्वाला कृष्ण मेरे नाम को मिथ्या रूप से धारण करता हुआ अपने को वासुदेव कहता है ।।१०।। उसने अपने छिछोरेपन से ही मेरा यह नाम ग्रहण कर लिया है, परन्तु यथार्थ रूप में तो मेरे अतिरिक्त अन्य कोई भी वासुदेव इस लोक मे नहीं

है ॥११॥ इसलिये मैं अपने महान् पराक्रम से सब यादवों को परास्त और द्वारका को ध्वस्त कर डालूँगा ॥१२॥ हे महामते ! यह सम्पूर्ण गजागण यहाँ इसी कार्य में एकत्र हुए हैं ॥१३॥ फिर मेरे पास भी अत्यत वेगवान् असङ्ख्य अश्व, वायु के समान प्रचंड गति वाले रथ, एक सहस्र ऊँट और दस सहस्र मत्त गजराज सदा तैयार रहते हैं ॥१४॥ अपनी इस विशाल सेना के बल से उस छद्मवेशी वासुदेव को मैं शीघ्र ही युद्ध में पछाड़ दूँगा। इसलिये हे ब्रह्मन् ! आप मेरे इस विचार मेरे नगरवासियों और स्वर्ग में रहने वालों को शीघ्र ही अवगत कराने की कृपा करें। अच्छा अब आपको मेरा नमस्कार है ॥१५-१६॥

सर्वत्रगः सदा चास्मि यावद्ब्रह्माण्डसंस्थितिः ।
आचार्यः सर्वकार्येषु गमने केनचिन्नृप ॥१७
किन्तु वक्तुं तथा राजन्नुत्सहे नृपसत्तम ॥
मही शासति देवेशे चक्रपाणौ जनार्दने ॥१८
विष्णौ सर्वगे देवे दुष्टान्हत्वा सबान्धवान् ।
वासुदेवेति को नाम तिष्ठत्यस्मिन्हराविति ॥१९
को नाम वक्तुमेवेदं कृष्णे शासति गोमती ।
अज्ञानाद्वक्तुमेवं च समर्था प्राकृता जनाः ॥२०
हरिः सर्वसगो विष्णुर्दर्पं ते व्यपनेष्यति ।
अचिन्त्यविभवो विष्णुः शार्ङ्गधन्वा गदाधरः ॥२१
आदिदेवः पुराणात्मा दर्पं ते व्यपनेष्यति ।
हास्यमेतन्महाराज यच्च वं तत्र संस्थितम् ॥२२
शार्ङ्गं खड्गं तथा राजन्महाघोरं न दाप्यते ।
अतीव हासकालोऽयं तव सम्प्रति वर्त्तते ॥२३

नारदजी ने कहा—हे राजन् ! मैं इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में भ्रमण करता हूँ और कहीं भी किसी कार्य के लिये जाने में मुझे बाधा नहीं होती ॥१७॥ यद्यपि कहना नहीं चाहता, फिर भी कहता हूँ, कि जब स्वयं चक्रपाणि जनार्दन इस पृथिवी का पालन कर रहे हैं, तब अन्य कौन पुरुष वासुदेव नाम को

धारण कर उनके समान हो सकता है ? ॥१८ १६॥ उन भगवान् के शासन मे ऐसा करने का साहस केवल प्रमाद अथवा अज्ञान के कारण ही किया जा सकता है ॥२०॥ वे भगवान् महान् पराक्रमी शार्ङ्गधनु और गदाधारी, आदि देव पुराणात्मा हैं। तुम्हारे इस अहङ्कार को वे ही नष्ट करेंगे। तुम्हारे पास भी शार्ङ्गधनु और खग आदि हैं, परन्तु उनके द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण के आयुधो का सामना नही किया जा सकेगा। मैं तो समझता हूँ कि तुम अपना परिहास कराना चाहते हो ॥२१ २३॥

॥ पौण्ड्रक का द्वारका पर आक्रमण ॥

तत क्रुद्धो महाराज पौड्रो मदबलान्वित ।
नारद विप्रवर्यं त प्रोवाच नृपससदि ॥१
किमिद प्राह विप्रर्षे राजाऽह च द्विजै सह ।
गच्छ त्व काममथ वा मुने शापप्रद सदा ॥२
भीतस्त्वत्तो महाबुद्ध गच्छ त्व काममद्य हि ।
इत्युक्तो नृपवर्येण तूष्णीमेव स नारद ॥३
जगामाकाशगमनो यत्र तिष्ठति केशव ।
स गत्वा विष्णुसकाश विष्णो सर्वं शशस ह ॥४
तच्छ्रुत्वा भगवान्विष्णुर्यथेष्ट वदतामिति ।
दर्प तस्यापनेष्यामि श्वोभूते द्विजसत्तम ॥५
इत्युक्त्वा विररामैव तस्मिन्बदरिकाश्रमे ।
तत पौण्ड्रो महाबाहुर्बलैर्बहुभिरीश्वर ॥६
अश्वैरनेकसाहस्रैर्गजैर्बहुभिरन्वित ।
शस्त्रकोटिसमायुक्त स राजा सत्यसगर ॥७
अनेकशतसाहस्रै पत्तिभिश्च समन्वित ।
एव लब्धप्रमृतिभी राजभिश्च समन्तत ॥८

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! देवर्षि नारदजी के वचनो से क्रुद्ध

हुए बल के मद मे मत्त पौण्ड्र ने कहा—हे ब्रह्मर्षि ! आप क्या कहते हैं ? आप विप्र है और मैं राजा हूं। परन्तु आप शाप न दे दें, इसी से कुछ भय है। अच्छा, अब आप यहाँ से चले जाने की कृपा करें। पौण्ड्र की बात सुन कर नारदजी तुरन्त ही आकाश मार्ग से बदरीवन के लिये चल दिये और वहाँ पहुँच कर उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण को पौण्ड्र के अभिप्राय से पूर्ण प्रकारेण अवगत किया ॥१-४॥ जिसे सुन कर श्रीकृष्ण ने कहा—हे देवर्षि ! मैं उसके अहंकार को कल नष्ट करूँगा ॥५॥ यह कह कर भगवान् मौन होगये। उधर युद्ध की प्रतिज्ञा किये हुए राजा पौण्ड्र ने असंख्य गजराज, अश्व, रथ एवं हजारों पदाती सेना के सहित अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों से अपने को सुसज्जित किया। उसके साथ एकलव्य आदि बहुत-से राजा भी तैयार होकर निकले ॥६-८॥

अष्टौ रथसहस्राणि नागानामयुतं तथा ।
अर्बुदं पत्तिसङ्घानां तद्बलं समपद्यत ॥९
एतेन च बलेनाजौ प्रस्फुरन्नृपसत्तमः ।
विरराज महाराज उदयस्थो महारविः ॥१०
स ययौ मध्यरात्रेण नगरीं द्वारकामनु ।
पदातयो दीपकाहस्ता रात्रौ तमसि दारुणे ॥११
ययुर्विविधशस्त्रौघा संपतन्तो महाबलाः ।
द्वारका वीर्यसम्पन्ना महाघोरा नृपोत्तमाः ॥१२
रथं महान्तमारुह्य शस्त्रौघैश्च समावृतम् ।
पट्टिशासिसमाकीर्णं गदापरिघसंकुलम् ॥१३
शक्तितोमरसंकीर्णं ध्वजमालासमाचितम् ।
किङ्किणीजालसंयुक्तं शरासिप्रासंसंयुतम् ॥१४
महाघोरं महारौद्रं युगान्तजलदोपमम् ।
धनुर्गदासमाकीर्णं महावाद्योपमं महत् ॥१५

उस प्रयाण में आठ हजार रथ, दस हजार गज और अर्बुद संख्या में पदाती सज गये ॥९॥ राजा पौण्ड्र इन सब सेनाओं से घिर कर उदय काल के

भास्कर के समान सुशोभित हुआ ॥१०॥ फिर आधीरात के समय वह द्वारका पर चढ चला। उस समय सर्वत्र रात्रि का घोर अंधकार छाया हुआ था, इसलिये सेना मशाल लेकर चल रही थी ॥११॥ वह सेना अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों से सजी हुई अत्यंत भयकर प्रतीत होरही थी। वह सेना वेग से द्वारका की ओर अग्रसर हुई ॥१२॥ श्रेष्ठ रथो पर रथी चढ़े हुए थे और उनके साथ पट्टिश, तलवार, गदा, परिघ, शक्ति, तोमर आदि शस्त्रास्त्र उन रथों पर रखे थे, ध्वजा-पताकायें सब ओर उड रही थी और उनमे लटकी हुई घटियो से शब्द निकल रहा था ॥१३-१४॥ उस असख्य सेना को देख कर प्रतीत होता था कि आकाश मे प्रलय कालीन बादल छा गये हो। सैनिको के शस्त्रास्त्र उस समय एक विशाल बाजे जैसे दिखाई दे रहे थे ॥१५॥

अग्न्यर्कसदृशाकारं ययौ द्वारवतीमनु।
गृहीतदीपिको राजा वीर्यवान्बलवान्नृप ॥१६
हन्तुमिच्छञ्जगन्नाथ वृष्णींश्चैव समन्ततः।
आकर्षन्बलमुख्यांस्तान्राजः सर्वान्महाद्युतिः ॥१७
पुरद्वारं समासाद्य बलं संस्थाप्य यत्नतः।
इदं प्रोवाच राजा तु नृपान्सर्वानवस्थितान् ॥१८
ताड्यतामत्र भेरी तु नाम विश्राव्य मामकम्।
युध्यतां युध्यतामत्र देयं वा प्रतिदीयताम् ॥१९
आगतः पौण्ड्रको राजा युद्धार्थी वीरवत्तरः।
हन्तुकामः समग्रान्वः कृष्णबाहुबलाश्रयान् ॥२०

हे राजन्! उस समय सब ओर आग धधकती हुई और सूर्योदय होता हुआ प्रतीत हुआ। महाबली राजा पौण्ड्र भी भगवान् श्रीकृष्ण और समस्त यदुवंशियों का सहार करने की अभिलाषा से हाथ मे प्रज्ज्वलित मशाल लेकर द्वारका की ओर आगे-आगे बढ रहा था। उसके पीछे पीछे अनुयायी राजाओं की विशाल सेनाएँ चल रहीं थीं ॥१६-१७॥ द्वारका पुरी के द्वार पर जाकर पौण्ड्र ने शिविरों की स्थापना की और फिर वहाँ उपस्थित सब राजाओं से

कहा—हे राजाओ ! अब आप मेरे नाम से भेरी बजवा कर यह घोषणा करा दीजिये कि महाबली महाराज पौण्ड्र कृष्ण के बल-भरोसे पर रहने वाले द्वारका निवासियों के विध्वमार्थ यहाँ आये हैं ॥१८-१९-२०॥

इति ते प्रेषिताः सर्वे समीयुः सूचकान्बहून् ।
दीपिकाश्च प्रदीप्यन्ते वह्नयः शतसहस्रशः ॥२१
इतश्चेतश्च राजानो युध्यन्ते युद्धलालसाः ।
पुरी ते पुरतस्तत्र क्षत्रियाः शस्त्रिणस्तथा ॥२२
सिंहनादं प्रकुर्वन्तः शस्त्रधारासमाकुलाः ।
कुतोऽयं वृष्णिप्रवरः कुतो राजा जगत्पतिः ॥२३
कुतोऽयं सात्यकिर्वीरः कुतो हार्दिक्य एव च ।
कुतो न बलभद्रश्च सर्वयादवसत्तमः ।
इत्येवं कथयन्तो वै राजानः सर्व एव ते ॥२४
आदाय शस्त्राणि बहूनि सर्वतः शरांश्च चापानि सर्वे ।
युद्धाय सन्नाहनिबद्धशो ययुर्हरेः पुरी द्वारवती नृपोत्तमाः ॥२५

इसलिये अब तुम लोग राज्य का परित्याग करो अथवा युद्ध के लिये सामने आओ । यह सुनते ही उन राजाओं ने सूचना प्रसारित कराने के लिये हजारों मशालें जलवाईं ॥२१॥ तथा वे सब शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर पुरी के द्वार पर सिंहनाद करते हुए पुकार उठे—इस समय वे जगत्पति राजा, वीर सात्यकि, हार्दिक्य और यादवों में श्रेष्ठ बलरामजी कहाँ है ? वे यहाँ आकर हमसे युद्ध करें । यह कह कर वे युद्धाकांक्षी राजागण कोलाहल करते हुए द्वारकापुरी के द्वार पर घूमने लगे ॥२२-२५॥

॥ यादवों द्वारा पौण्ड्रक की सेना का संहार ॥

ततश्च यादवाः सर्वे दृष्ट्वा सैनिकसंचयम् ।
रात्रौ च व्यसनं प्राप्तं महादारुसमाकुलम् ॥१

महावातसमुद्भूतं कल्पान्ते समरोपमम् ।
सन्नद्धा समपद्यन्त शस्त्रिणो युद्धलालसा: ।।२
गृहीतदीपिका: सर्वे यादवा: शस्त्रयोधिन: ।
सात्यकिर्बलभद्रश्च हार्दिक्यो निशठस्तथा ।।३
उद्धवोऽथ महाबुद्धिरुग्रसेनो महाबल: ।
अन्ये च यादवा: सर्वे कवचप्रग्रहे रता: ।।४
समस्तयुद्धकुशला रात्रौ सन्नाहयोधिन: ।
शस्त्रिण: खड्गिनश्चैव सर्वे शस्त्रसमाकुला: ।।५
युद्धाय समपद्यन्त बहवो बाहुशालिन: ।
रथिनो गदिनश्चैव सादिन: सायुधास्तथा ।।६
नित्ययुक्ता महात्मानो धन्विन: पुरुषोत्तमा: ।
निर्ययुर्नगरात्तूर्णं दीपिकाभि: समन्तत: ।।७
क्वास: पौण्ड्रक इत्येवं वदन्त: सर्वसात्वता: ।
दीपिकादीपिता देशा निस्तमा: समद्यत ।।८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! उस आधी रात के समय उस प्रलय कालीन मेघ के समान उमड़ते हुए सैन्य समूह को देख कर यादवों को बड़ा असमंजस हुआ। सब ओर दीपक जलने आरम्भ हुए और शस्त्रास्त्रों में पारंगत यादव वीर कुछ क्षणों में ही युद्ध के लिये सुसज्जित हो गये। सात्यकि, बलराम, हार्दिक्य, निशठ, उद्धव तथा अन्यान्य महाबली और रणकुशल यादव गण बात की बात में तैयार होगये। वे सब प्रकार के युद्धों में निपुण यादव विभिन्न प्रकार के आयुधों को लेकर रथ, पैदल, धनुर्धर आदि के सहित मशाल लिये हुए नगर से बाहर आकर 'पौण्ड्र कहाँ है' ऐसा कहते हुए सब ओर फिरने लगे। उस समय रात्रि का सम्पूर्ण अंधकार मशालों के प्रकाश से नष्ट होगया ।।१-८।।

ततो वितिमिरो देश: समन्तात्समपद्यत ।
युद्धं समभवद्धोरं वृष्णिभि: शत्रुभि: सह ।।९
ततो महान्समभवत्सन्नादो रोमहर्षण: ।
हया हयै: समायुक्ता गजाश्च गजयूथपै: ।।१०

रथा रथैः समायुक्ता सादिभिः सादिनस्तथा ।
खड्गिनः खड्गिभिः सार्द्धं गदिभिर्गदिनस्तथा ।।११

परस्परव्यतीकरो रणः आसीत्सुदारुणः ।
महाप्रलयसंक्षोभः शब्दस्तेषां महात्मनाम् ।।१२

धावन्तः प्रहरन्त्येतान्हन्त्येतान्सर्वतो नृपान् ।
अयमेष महाबाहुः खड्गी पतति वीर्यवान् ।।१३

अयमेष शरो घोरो वर्ततेऽतिसुदारुणः ।
गदी चायं महावीर्यः सर्वानो बाधते नृप ।।१४
अयं रथी शरी चापी गदी तूणी तनुत्रवान् ।
यादृशः सर्वतो याति कुन्तपाणिरयं बली ।।१५
अयमत्र महाशूली स श्रितः सर्वतो दिशम् ।
गजोऽयं सविषाणाग्रो वर्तते सर्वतः प्रति ।।१६

इसके पश्चात् पौण्ड्र के सैनिकों और यादवों में भयंकर युद्ध छिड़ गया। उस समय वीरों ने भीषण सिंहनाद किया जिससे समस्त दिशाएँ गूँजने लगीं। घोड़े, हाथी, रथ, गधे आदि सब अपने अपने समान जोड़ वाले से भिड़ रहे थे। खड्ग वाला खड्ग वाले से धनुर्धर धनुर्धर से युद्ध करते हुए वीर परस्पर में प्रतीकार करते हुए उत्साहपूर्वक संग्राम में जुटे हुए थे। उनके उस समय के घोर शब्द से ऐसा प्रतीत होता था कि प्रलय काल का घोर निनाद हो रहा है ।।६-१२।। उस समय सुनाई पड़ रहा था कि देखो, वे अत्यन्त वेगपूर्वक झपट्टा मारते हुए हम पर प्रहार करते हैं। कोई कहता था कि यह देखो उन राजाओं को यह योद्धा किस बुरी तरह मारे डाल रहा है। अरे, यह खड्गधारी वीर तो इधर ही बढ़ा चला आरहा है। उधर देखो, उसकी गदा कितनी भीषण और विनाशक है, उसके द्वारा यह हम यहाँ तक पीड़ित कर रहा है। देखो यह रथी, यह बाण धारी वीर यह धनुर्धारी किस वेग से घूम रहा है। यह गदा धारण किये, यह तरकस और कवच से सुसज्जित, यह पट्टिश ग्रहण किये तथा यह भाला लिये हुए इधर उधर विचर रहा है। यह देखो, महाशूल लेकर यह वीर

सब ओर ताक रहा है, वह विशाल दाँतो वाला गजराज सब ओर झपट कर प्रहार करता हुआ घूमता है ॥१३ १६॥

अतिसर्वत्र शूरो वेगवान्वातसन्निभ ।
शराञ्छरै समाहन्ति दण्डान्दण्डैर्जगत्पते ॥१७
कुन्तान्कुन्तै समाजघ्नुर्गदाभिश्च गदास्तथा ।
परिघान्परिघै सार्द्धं शूलञ्छूलै समन्तत ॥१८
एव तेषा महाराज कुर्वता रणमुत्तमम् ।
संग्राम सुमहानासीच्छब्दश्चापि महानभूत ॥१९
भूतानि सुबहून्याजौ शब्दवन्ति महान्ति च ।
प्रादुरासन्सहस्राणि शङ्खाना भीमनि स्वन ॥२०
रात्रौ प्रादुरभूच्छब्द सग्रामे रोमहर्षण ।
वर्तमाने महायुद्धे वृष्णीना चैव तै सह ॥२१
केचिद्ग्रस्ता समापेतु पृथिव्या पृथिवीक्षित ।
केचित्पतितश्लिष्टाश्च विप्रकीर्ण शिरोधरा ॥२२
पेतुरुर्व्या महावीर्या राजान शस्त्रपाणय ।
केचित्तु भिन्नवर्माण समापेतु सहस्रधा ॥२३
परस्पर समाश्रित्य परस्परवधैषिण ।
न्यस्तशस्त्रा महात्मान समन्तात्क्षतविग्रहा ॥२४

उस योद्धा को देखो—वह वायु जैसे वेग से सब ओर झपटता हुआ बाण से बाण को काटता और दण्ड से दण्ड को व्यर्थ करता है ॥१७॥ वह भाले वाला अपने भाले से उसके भाले को काट रहा है, वह गदा वाला विपक्षी की गदा मे गदा मार रहा है परिघ से परिघ और शूल से शूल काटे जा रहे हैं ॥१८॥ हे राजन् ! इस प्रकार कुशलता पूर्वक युद्ध करते हुए ये वीर भयकर रूप से भिड रहे थे और उनके शब्द कोलाहल बन कर दिशाओ को गु जित कर रहे थे ॥ १९ ॥ उस समय हजारो विकट आकार वाले भूत गण भयकर शब्द करते हुए वहाँ आ उपस्थित हुए। उस भीषण रात्रि काल म युद्ध क्षेत्र में होने वाली

शंख-ध्वनि भयंकर हो उठी ॥ २०-२१ ॥ बहुत-से राजागण उस युद्ध में मृत्यु को प्राप्त होकर गिर गये । कुछ छिन्न केशों वाले नरेश रण भूमि में धराशायी होकर पहिले से ही पतित हुए वीरों के देह से भिड़ गये थे । २२॥ कुछ योद्धा शस्त्रों के हाथ मे रहते हुए भी पतित होगये और अनेक वीर कवच के विदीर्ण होने से मृत्यु को प्राप्त हुए धरती पर गिर गये ॥२३॥ इस प्रकार उस युद्ध क्षेत्र मे एक-दूसरे को मार डालने के लिये उद्यत हुए वीरो के शस्त्र प्रहार से आहत हुए बिना कोई भी नही रहा ॥२४।

पेतुर्गतासवः केचिद्यमराष्ट्रविवर्द्धनाः ।
एवं ते निहता राजन्योधिताः सर्व एव तु ॥२५
एतस्मिन्नन्तरे शूर एकलव्यो निषादप. ।
धनुर्गृह्य महाघोरं कालान्तकयमोपमः ॥२६
शरैरनेकसाहस्त्रैरर्दयामास यादवान् ।
परं शतैः शराणां तु निशितैर्मर्मभेदिभिः ॥२७
वृष्णीनां च बलं सर्वं योधयामास सर्वतः ।
युद्धयतः शस्त्रपाणींश्च क्षत्रियान्वीर्यवत्तरान् ॥२८
निशठं पञ्चविंशत्या शराणां नतपर्वणाम् ।
सारणं दशभिर्विद्ध्वा हार्दिक्यं पञ्चभिः शरैः ॥२९
उग्रसेनं नयत्याशु वसुदेवं च सप्तभिः ।
उद्धवं दशभिश्चैव ह्यक्रूरं पञ्चभिः शरैः ३०
एवमेकैकशः सर्वे निहता निशितैः शरैः ।
विद्राव्य यादवीं सेनां नाम विश्राव्य वीर्यवान् ॥३१
एकलव्यो यदुवृपान्वीर्यवान्बलवानहम् ।
इदानीं सार्यकिर्वीरः क्व यास्यति महावनः ॥३२
मदमत्तो हली साद्यात्क्व यातीह गदाधरः ।
इत्याह सिंहनादेन सिंहान्विस्मारयन्निव ॥३३

हे राजन् ! द्वारका पुरी की श्रीवृद्धि करने वाले अनेकानेक योद्धागण

उस युद्ध क्षेत्र में काम आगये, वे सभी वीरता पूर्वक लड़ते हुए ही सद्गति को प्राप्त हुए थे ॥ २५ ॥ तभी कालान्तक के समान भयंकर निपादों का अधिपति एकलव्य अपने हाथ में एक भीषण तथा विशाल धनुष ग्रहण करके उस पर अत्यन्त तीक्ष्ण और मर्मभेदी हजारों बाणों के सधान द्वारा यादव सेना के सहार में प्रवृत्त हुआ। उसके प्रहार से सभी शस्त्रास्त्र धारी महाबली क्षत्रिय वीर त्रस्त हो उठे ॥२६-२८॥ फिर उसने अपने पच्चीस झुके हुए पर्व वाले बाणों के प्रहार से निशठ को, दस बाणों के प्रहार से सारण को तथा पाँच बाणों के प्रहार से हार्दिक्य को बींध दिया ॥२९॥ फिर नब्बे बाणों से उग्रसेन को, सात बाणों से वसुदेव को, दस बाणों से उद्धव को और पाँच बाणों से अक्रूर को आहत कर डाला ॥३०॥ इस प्रकार उसने अपने तीक्ष्ण बाणों की मार से एक-एक कर सभी यादवों को बींध कर गिरा दिया, जिससे समस्त यादव-सेना भाग खड़ी हुई। फिर उसने सिंहनाद करते हुए कहा—मैं एकलव्य सम्पूर्ण यादव वीरों का विजेता हूँ। अब वह महाबली सात्यकि, और मदोन्मत्त गदाधर बलराम मेरे हाथों से कैसे बच सकते हैं! यह कह कर वह बारबार गर्जना करने लगा, उसकी वह गर्जना सिंहों को भी भयभीत करने वाली थी ॥३१-३३॥

॥ पौण्ड्रक सात्यकि संवाद ॥

निवृत्तेऽथ सैन्येषु वृष्णिवीरेषु चैव हि।
भीतेष्वथ महाराज हतेषु युधि सर्वतः ॥१
दीपिकासु प्रशान्तासु निःशब्दे सति सर्वतः।
जितमित्येव यन्मत्वा वृष्णीना बलमुत्तमम् ॥२
ततः पौण्ड्रो महावीर्यो बभाषे सैनिकान्स्वकान्।
शीघ्रं गच्छत राजेन्द्राष्टङ्कैः कुन्तैः पुरीमिमाम् ॥३
कुठारैः कुन्तलैश्चैव पाषाणैः सर्वतो दिशम्।
कर्पणस्थैः सुपाषाणैः सर्वतो यात भूमिपाः ॥४
भिद्यन्तां प्राकारचया प्रासादाश्च समन्ततः।
गृह्यन्तां कन्यकाः सर्वा दास्यश्चैव समन्ततः ॥५

गृह्णन्ता वसुमुख्यानि धनानि सुबहून्यथ ।
ते तथेति महात्मानो राजान. सर्व एव तु ॥६
कुठारैः सर्वतश्चैव चिच्छिदु पौण्ड्रकाज्ञया ।
प्राकाराश्चैव सर्वत्र प्रासादान्नरस चयान् ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! तब शेष रही यादव सेना और वृष्णिगण भाग खडे हुए और वहाँ मशालो का प्रकाश भी नही रहा । सर्वत्र शान्ति छागई, इसलिये पौण्ड्रक ने वृष्णियो को परास्त हुआ समझ लिया और वह अपने सैनिको से कहने लगा—हे वीरो ! अब तुम टक, कुन्त, कुठार, पाषाण और कर्पणी आदि शस्त्राओ के साथ द्वारकापुरी मे घुस कर वहाँ के सभी प्राकारो और अट्टालिकाओ को गिरा दो और सभी कन्याओ तथा दासियो को पकड लाओ ॥ १-५ ॥ उनकी प्रमुख सम्पत्तियो और श्रेष्ठ धनो पर तुरन्त अपना अधिकार करलो । यह सुनते ही सैनिक कुठारादि औजारो तथा शस्त्रास्त्रो को लेकर वहाँ से चल दिये और उच्च अट्टालिकाओ तथा भवनो को सब ओर से गिराने लगे ॥ ६-७ ॥

अथ तत्र महाशब्दः प्रादुरासीत्समन्ततः ।
टङ्केषु पात्यमानेषु प्राकारेषु महाबलैः ॥८
पूर्वद्वारे महाराज भिन्नाः प्राकारसंचयाः ।
श्रुत्वा शब्द महाघोरं सात्यकि. क्रोधमूर्च्छितः ॥९
मयि सर्वं समारोप्य केशवो यादवेश्वर. ।
गतः कैलासशिखरं द्रष्टुं शंकरमव्ययम् ॥१०
अवश्य हि मया रक्ष्या पुरी द्वारावती त्वियम् ।
इति स चिन्त्य मनसा धनुरादाय सत्वरम् ॥११
रथं महान्तमारुह्य दारुकस्य महात्मनः ।
पुत्रेण संस्कृतं घोरं यन्ता च स्वयमेव हि ॥१२
धनुर्गृहीत्वादाय शरांश्चाशीविषोपमान् ।
आमुच्य कवचं घोरं दत्तसंपाउदु.सहम् ॥१३

ते समेत्य यथायोगं स्थितास्तत्र महाबलाः ।
स्थिते सैन्ये महाघोरे दीपिकादीपिते पथि ॥२१
शिनिर्वीरः शरी चापी गदी तूणीरवान्विभो ।
वायव्यास्त्रं समादाय योजयित्वा महाशरम् ॥२२
आकर्णं पूर्वमाकृष्य धनु प्रवरमुत्तमम् ।
मुमोच परसैन्येषु शिनिर्वीर प्रतापवान् ॥२३

धीरे-धीरे वह दीपक से प्रकाशित हुए क्षेत्र में पहुँच गये और उधर महाबली बलरामजी गदा और बाणादि से सुसज्जित होकर संग्राम के लिये चल पड़े। उस समय वह एक अत्यन्त तेजोमय रथ पर चढ़ कर भीषण गर्जना एवं चीत्कार कर रहे थे ॥१५-१६॥ सभी यादव श्रेष्ठ उद्धवजी भी युद्ध-नीति विषयक विचार करते हुए अपने अत्यन्त प्रिय तथा घोर गर्जन करने वाले श्रेष्ठ गजराज पर चढ़ कर युद्ध क्षेत्र के लिये अग्रसर हुए। उनके अतिरिक्त हार्दिक्य आदि अनेकों यादव भगवान् श्रीकृष्ण के वचनों को याद करते हुए रथों और हाथियों आदि पर चढ़ कर घोर गर्जना करते हुए पुरी के पूर्वीय द्वार पर युद्ध के लिये इकट्ठे होने लगे, उन सभी ने मशालें जला रखी थीं ॥१७-२०॥ इस प्रकार जब सम्पूर्ण यादव-सेना पुरी के पूर्वीय द्वार पर इकट्ठी हो गई तब महाबली सात्यकि ने अपने विशाल धनुष पर वायव्यास्त्र चढ़ाया और उसे शत्रु-सेना को लक्ष्य करके छोड़ा ॥२१-२३॥

वायव्यास्त्रेण ते सर्वे तत्रस्था नरसत्तमाः ।
विजित ह्यस्त्रवीर्येण यत्र तिष्ठति पौण्ड्रकः ॥२४
तत्र गत्वा स्थिताः सर्वे निर्धूता वाततंहसा ।
यत्र पूर्वं स्थिताः सर्वे विद्रुता राजसत्तमाः ॥२५
तत्र स्थित्वा च शैनेयः शरमादाय सत्वरम् ।
निशितं सर्पभोगाभं बभाषे सात्यकिस्तदा ॥२६
क्व इदानीं महाबुद्धिः पौण्ड्रको राजसत्तमः ।
स्थितोऽस्मि व्यवसायेन शरी चापी महाबलः ॥२७

यदि द्रष्टा दुरात्मानं नतो हन्ता नृपाधमम् ।
भृत्योऽस्मि केशवस्याहं जिघांसुः पौण्ड्रकं स्थितः ॥२८

तब उस एक अस्त्र की मार से ही प्राचीर आदि के तोड़ने में लगे हुए शत्रु पक्षीय सैनिक व्याकुल होगये और भयभीत होकर राजा पौण्ड्र के पास तेजी से चले ॥२४॥ वायव्यास्त्र के कारण वायुवेग से उड़ते हुए अनेकों राजागण भी पौण्ड्र के पास जाकर वहीं खड़े होगये, जहाँ युद्ध से भाग कर आये हुए बहुत से वीर पहिले ही आकर खड़े होगये थे ॥२५॥ उसी समय अपने धनुष पर नाग-फन के समान भयंकर विष वाले एक अन्य बाण को चढ़ाते हुए सात्यकि ने उच्च स्वर से कहा—मैं धनुष-बाण धारण करके युद्ध करने के लिये उपस्थित हूँ। इस समय वह महाबुद्धि, राजाओं में श्रेष्ठ पौण्ड्र कहाँ निवास किये हुए हैं? ॥२६ २७॥ मैं भगवान् श्रीकृष्ण का अत्यन्त तुच्छ सेवक राजा पौण्ड्र को मारने की इच्छा से यहाँ आया हूँ। यदि मैं उस नृपाधम को कहीं भी देख पाऊँ तो तत्काल ही उसका वध कर डालूँ ॥२८॥

छित्वा शिरस्तु तस्यास्य सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ।
बलिं दास्यामि गृध्रेभ्यः श्वभ्यश्चैव दुरात्मनः ॥२९
को नाम ईदृशं कर्म चौरवच्च समाचरेत् ।
सुप्तेषु निशि सर्वेसु यादवेषु महात्मसु ॥३०
चोरोऽयं सर्वथा राजा न हि राजा बलान्वितः ।
यदि शक्तो न कुर्याच्च चौर्यमेवं नृपाधमः ॥३१
अहोऽस्य बलिनो राज्ञश्चौरकार्यं प्रकुर्वते ।
सर्वथागमनं तस्य न हि पश्यामि साम्प्रतम् ॥३२
इत्युक्त्वा सात्यकिर्वीरः प्रजहास महाबलः ।
विस्फार्य सुदृढं चापं कार्मुके स दधे शरम्॥३३
आकर्ण्य वचनं वीरः सात्यकेस्तस्य धीमतः ।
क्व नु कृष्णः क्व गोपालः कुतः सोऽथ प्रवर्त्तते ॥३४
स्त्रीहन्ता पशुहन्ता च क्व स्वामीति सेवितः ।
स इदानीं क्व वर्तेत गृहीत्वा मम नाम तत् ॥३५

मैं, इन सब क्षत्रियो की उपस्थिति में ही उसका शीश काट कर गिद्धो और श्वानों को भक्षण करा दूँगा ॥२९॥ रात्रि काल मे वीर यादवो के शयन करते हुए ऐसा कौन-सा बहादुर राजा होगा जो इस प्रकार चोर के समान कुत्सित कर्म करेगा ? ॥३०॥ इसलिये वह नृपाधम राजबल से सम्पन्न कदापि नही माना जा सकता, क्योकि राजा कभी चोरो जैसा कार्य नही करते, इसलिय वह चोर ही है ॥ ३१ ॥ इस प्रकार के चोरवृत्ति परायण व्यक्ति के भुजबल को धिक्कार है, इस समय वह कहाँ जाकर छिप गया है ? ॥ ३२ ॥ यह कह कर वीर सात्यकि ने भीषण अट्टहास किया और अपने धनुष को खोल कर उस पर बाण संधान किया ॥३३॥ सात्यकि के वचनो से क्रोधित हुए राजा पौण्ड्र ने तुरन्त ही सामने आकर कहा—वह स्त्री हत्यारा, पशुओ का वधिक, गौओ का पालक और स्वयं को सर्वकर्त्ता समझने वाला कृष्ण इस समय कहाँ है, वह मेरे 'वासुदेव' नाम को ग्रहण करके कहाँ जा छिपा है ? ॥३४-३५॥

हन्ता सख्युर्महावीर्यो नरकस्य महात्मन ।
ममैव तात युद्धेऽस्मिन्हते तस्मिन्दुरात्मनि ॥३६
गच्छ त्वं कामतो वीर योद्धु न क्षमते भवान् ।
अथ वा तिष्ठ किंचित्तु ततो द्रष्टाऽसि मे बलम् ॥३७
शिरस्ते पातयिष्यामि शरैर्घोरैर्दुरासदैः ।
हतस्य तव वीरेह भूमि पास्यति शोणितम् ॥३८
श्रोष्यते स तथा गोपो हत सात्यकिरित्यपि ।
यो गर्वस्तस्य गोपस्य सर्वदा वर्तते महान् ॥३९
विनश्यति स तु क्षिप्र हते त्वयि यदूत्तमम् ।
त्वयि रक्षा समादिश्य गोप कैलासपर्वतम् ॥४०
गत इत्येवमस्माभि श्रुत पूर्वं महामते ।
शरं गृहाण निशितं यदि शक्तोऽसि सात्यके ।
इत्युक्त्वा बाणमादाय ययौ योद्धु व्यवस्थित ॥४१

उसी ने मेरे परम सखा नरकासुर की हत्या की थी, आज उस संग्राम

मे उसका वध करके ही मैं अपने घर को लौटूंगा ॥३६॥ हे सात्यके ! तुम मेरे समक्ष युद्ध करने में समर्थ नही हो, इसलिये अपने को मेरे समान न समझ कर तुम तुरन्त ही पलायन कर जाओ, अथवा एक क्षण युद्ध मे ठहर कर मेरे पराक्रम को देख लो ॥३७॥ मैं अभी अपने सुतीक्ष्ण शरो के द्वारा तुम्हारे मस्तक को काट डालूंगा और तब यह रण भूमि तुम्हारे शोणित का पान करेगी ॥ ३८ ॥ वह ग्वाला तुम्हारे ही बल से गर्वित हो उठा है, परन्तु जब वह तुम्हारी मृत्यु का समाचार सुन लेगा, तब उसका गर्व नष्ट हो जायगा ॥ ३९ ॥ मुझे मालुम हुआ कि वह ग्वाला तुम पर द्वारकापुरी की रक्षा का भार देकर स्वयं कैलास पर्वत पर भाग गया है। इसलिये, यदि तुम्हे ही युद्ध करना है तो अपने बाण को संभाल कर आजाओ। यह कह कर पौण्ड्र बाण ग्रहण करके युद्ध के लिये प्रस्तुत हुआ ॥४०-४१॥

॥ पौण्ड्रक सात्यकि युद्ध [१] ॥

ततः क्रुद्धो महाराज सात्यकिर्वृष्णिपुङ्गवः।
उवाच वचनं राजन्वासुदेवं स्मरन्निव ॥१
अवोचदीदृशं वाक्यं वासुदेवं नृपाधमः।
को नाम जगतां नाथमित्थं ब्रूयाज्जिजीविषुः ॥२
मृत्युस्त्वां सर्वथा याति वदन्तं तादृशं वचः।
जिह्वा ते शतधा दीर्याद्वदतस्तादृशं वचः ॥३
एष ते पातयिष्यामि शिरः कायाच्च पौण्ड्रक।
यन्नाम वासुदेवेति तव सम्प्रति वर्तते ॥४
यावत्पतति कायात्ते शिरस्तावत्प्रवर्त्तते।
स एव श्वो न भगवान्वासुदेवो भविष्यसि ॥५
एक एव जगन्नाथः कर्त्ता सर्वस्य सर्वगः।
दुरात्मन्सर्वथा देवो भविष्यति न संशयः ॥६
एष तेऽहं शिरः कायात्पातयिष्यामि राजक।
यदसौ भगवान्विष्णुर्नागमिष्यति साम्प्रतम् ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! फिर वृष्णि श्रेष्ठ सात्यकि ने अत्यंत क्रुद्ध होकर भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुए उससे कहा—अरे, राजाओं में अधम ! ऐसा कौन होगा जो अपने जीवन को इच्छा रहते हुए भगवान् वासुदेव के प्रति ऐसे वचन मुख से निकालेगा ? इस प्रकार के अनर्गल प्रलाप के कारण तेरी जिह्वा के सैकडो खण्ड हो जायेंगे और मृत्यु तुझे अपना शिकार बना लेगी ।। १-३ ।। हे पौण्ड्र ! जब तक तुम्हारा शीश कट नहीं जाता, तब तक तुम अपने वासुदेव नाम के व्यामोह में पड़े रहोगे, इसलिये मैं तुम्हारा शिर उड़ा दूँगा और कल तक तुम्हारे दर्शन भी नहीं होंगे ।।४-५।। जो एक ही जगदीश्वर, सब प्राणियों के उत्पन्न करने वाले और सर्वत्र गमनशील हैं, कल से एक मात्र वासुदेव भी वे ही रह जायँगे ।। ६ ।। यदि भगवान् श्रीकृष्ण शीघ्र ही यहाँ नहीं आ सके तो फिर तुम्हारे शिर को मैं ही काट डालूँगा ।।७।।

अस्त्रवीर्यं बलं चैव सर्वं दर्शय साम्प्रतम् ।
नातः परतरं राजन्वीर्यं च तव वर्तते ।।८
सर्वं दर्शय यत्नेन स्थितोऽस्मि व्यवसायवान् ।
शरी चापी गदी खड्गी सर्वथाऽहमुपस्थितः ।।६
नैतन्नगरमायासीः सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ।
सर्वथा कृतकृत्योऽस्मि दृष्ट्वा त्वां वासुदेवकम् ।।१०
तवाङ्गं तिलशः कृत्वा श्वभ्यो दास्यामि राजक ।
इत्युक्त्वा बाणमादाय वासुदेवं महाबलः ।।११
आकर्णपूर्णमाकृष्य विव्याध निशितं शरम् ।
स तेन विद्धो यदुना वासुदेवः प्रतापवान् ।।१२
वमञ्छोणितमत्युष्णमङ्गान्नेत्रान्नृपोत्तम ।
ततश्चु क्रोध नृपतिर्वासुदेवः प्रतापवान् ।।१३
नवभिर्दशभिश्चैव शरैः सन्नतपर्वभिः ।
विव्याध सात्यकिं राजा नदंश्च बहुधा किल ।।१४

तुम अपने सम्पूर्ण अस्त्र बल और पराक्रम का भले प्रकार प्रदर्शन कर

लो, क्योंकि थोड़ी देर मे ही वह सब नष्ट होने वाला है। इसीलिये तो मैं धनुष, बाण, गदा और खड्ग आदि ग्रहण करके मैं तुम्हारे सामने डट गया हूँ ॥८-६॥ मैं तुमसे यह सत्य ही कह रहा हूँ कि अब तुम इस नगर में अपने प्रवेश करने की आशा को छोड दो। अहा, आज मैं तुम्हारे जैसे छद्मवेशी वासुदेव के दर्शन करके धन्य होगया हूँ! ॥१०॥ हे राजन्! आज जबमैं तुम्हारे देह के खण्ड-खण्ड कर दूँगा, तब श्वानगण इसका भोजन करेंगे। यह कह कर सात्यकि ने एक सुतीक्ष्ण बाण का सधान करके पौण्ड्र पर छोड दिया। तब उन महाबली सात्यकि के बाण से बिंध कर राजा पौण्ड्र अपने सभी अगो और नेत्रादि से उष्ण रुधिर प्रवाहित करता हुआ अत्यन्त कुपित होगया ॥११ १३॥ तब उसने विह्वल होकर घोर गर्जना की और झुके हुए पर्व वाले नौ या दस बाणों के प्रहार से सात्यकि को बीध डाला ॥१४॥

ततो नाराचमादाय निशित यमसनिभम् ।
धनुराकृष्य भगवान्वासुदेवो नृपोत्तम ॥१५
विव्याध सात्यकि भूयो निशि प्रह्लादयन्स्वकान् ।
नाराचेन समाविद्ध सात्यकि सत्यसङ्गर ॥१६
ललाटे सुदृढ वीरो वृष्णीनामग्रणीस्तदा ।
निषसाद रथोपस्थे निश्चेष्ट इव सत्तम ॥१७
तत स पौण्ड्रको राजा विद्ध्वा दशभिराशुगं ।
सारथिम्पञ्चविंशत्या हयाश्च चतुरो नृप ॥१८
ते हया रुधिराक्ताङ्गा सारथिश्च समन्तत ।
विह्वला समपद्यन्त वासुदेवस्य पश्यत ॥१९
वासुदेवो रथे चापि सिहनाद समाददे ।
तेन नादेन तत्राभूद्विबुद्ध सात्यकिर्नृप ॥२०
विद्धान्हयास्तथा दृष्ट्वा सारथिं च तथागतम् ।
शैनेयोऽथ महावीर्यो रुषितो नृपसत्तम ॥२१
अल द्रक्ष्यामि ते वीर्यमित्युक्त्वा बाणमाददे ।
विव्याध येन बाणेन वक्षस्येन महाबल ॥२२

फिर उसने एक क्षण पीछे ही यम के समान भीषण एक और बाण संधान कर सात्यकि के शिर पर प्रहार किया। उससे वह सत्य-प्रतिज्ञ वीर सात्यकि गम्भीर घाव हो जाने से व्याकुल होकर मूर्च्छा को प्राप्त हुए और उसी अवस्था में अपने रथ पर बैठे रहे॥ १५-१७॥ तभी पौण्ड्र ने दस बाणों के प्रहार से सात्यकि के सारथी को आहत किया और पच्चीस बाण चला कर रथ के अश्वों को बींध डाला॥१८॥ इस आघात से सारथी और अश्वों के देह से रक्त प्रवाहित होने लगा, इससे वे व्याकुल हो उठे। यह देख कर पौण्ड्र घोर गर्जना करने लगा, परन्तु उसकी गर्जना सुन कर सात्यकि को चेत हो गया और अपने सारथी तथा घोड़ों की इस दशा को देख कर उन्हें अत्यन्त क्रोध हुआ और उन्होंने कहा —अच्छा, अब तुम्हारे पराक्रम को देखूँगा। यह कह कर उन्होंने एक श्रेष्ठ बाण ग्रहण करके, उसे संधान कर पौण्ड्र के हृदय को लक्ष्य किया॥१९-२२॥

ततश्चचाल तेनाजौ वासुदेवः शरेण ह।
सुस्राव रुधिरं घोरमत्युष्णं वक्षसो नृप॥२३
रथोपस्थे पपाताशु निश्वसन्नुरगो यथा।
कृत्यं चापि न जानाति केवलं निषसाद ह॥२४
सात्यकिस्तु रथं विद्ध्वा दशभिः सायकैस्तथा।
ध्वजं चिच्छेद भल्लेन वासुदेवस्य वृष्णिपः॥२५
हयांश्च चतुरो हत्वा बाणैः सारथिमेव च।
युयुधानोऽथ राजेन्द्र पौण्ड्रकस्य च पश्यतः॥२६
सारथेश्च शिरः कायादहरत्स रथात्तदा।
रथग्रन्थिं च चिच्छेद हयाश्च व्यसवोऽभवन्॥२७
चक्रं च तिलशः कृत्वा बाणैर्दशभि रंहसा।
जहास विपुलं राजन्वासुदेवं महाबलः॥२८

इस बाण के प्रहार से पौण्ड्र के हृदय से शोणित की उष्ण धारा प्रवाहित होने लगी और वह एक ओर को लुढ़क गया॥२३॥ तब वह फुंकार छोड़ते हुए नाग के समान श्वास छोड़ने लगा, उस समय उसका कर्त्तव्य-ज्ञान भी लुप्त

होगया ॥२४॥ यह अवसर देख कर सात्यकि ने दस वाण चला कर उसके रथ को जीर्ण कर दिया और एक भाले के प्रहार से उसकी ध्वजा भंग करके गिरा दी ॥२५॥ फिर उन्होने बाणो की वर्षा करके पौण्ड्र के रथ के चारो घोडे और सारथी का भी संहार कर दिया और फिर रथ को छिन्न-भिन्न कर डाला ॥२६-२७॥ तदनन्तर दस बाणो के प्रहार से उसके पट्टियों को तिल के समान खण्ड-खण्ड कर दिया और अट्टहास करने लगे ॥२८॥

ततः परं महत्कायं सात्यकिर्वृष्णिनन्दनः ।
शब्दं कृत्वा बली साक्षात्सर्वं क्षत्रस्य पश्यतः ॥२९
शरैः साप्ततिसंख्याकैरर्दयामास सत्वरम् ।
ते शराः शलभाकारा निपेतुः सर्वशस्तदा ॥३०
शिरस्तः पार्श्वतश्चैव पृष्ठतः पुरतस्तथा ।
केवलं धैर्यनिचयस्तृषार्तः शरवान्यथा ॥३१
यथा मनस्वी रिक्तश्च तथा तिष्ठति पौण्ड्रकः ।
ततश्च क्रोध बलवान्वासुदेवः प्रतापवान् ॥३२
अर्धचन्द्रं समादाय विव्याध युधि सात्यकिम् ।
विद्ध्वा सप्तभिरायान्त क्रोधेन प्रस्फुरन्निव ॥३३
विद्धोऽथ सात्यकिस्तेन शरैः पञ्चभिराशुगैः ।
चाप चिच्छेद पौण्ड्रस्य सिंहनादं व्यनीनदन् ॥३४

फिर उन्होने भयकर चीत्कार की और समस्त राजाओ के देखते-देखते सत्तर बाणो के प्रहार से उस छद्मवेशी पौण्ड्र को बीध डाला। उस समय वे बाण अग्नि के पतंगो के समान सब ओर से गिरते हुए पौण्ड्र के मस्तक, पृष्ठ भाग, पार्श्व भाग और सामने की ओर घायल करने लगे ॥ २९-३१ ॥ जिस प्रकार कोई मनस्वी दानी सम्पूर्ण धन का दान करके खाली हाथ हो जाता है, वैसे ही बाणो से बिधा हुआ पौण्ड्र कुछ देर तक निस्तब्ध खडा रहा। कुछ कालोपरान्त कुछ स्वस्थ और अधिक क्रोधित होकर उसने अपने सात अर्द्धचन्द्राकार बाणों को चढा कर उन्हे सात्यकि पर छोडा। इस प्रकार घायल होने पर

सात्यकि ने भी क्रोधपूर्वक अपने पाँच वेगवान् वाणों से पौण्ड्र का धनुष काट दिया और घोर गर्जना की ॥३२ ३४॥

वासुदेवो गदा गृह्य भ्रामयित्वा पदात्पदम् ।
त्वरित पातयामास सात्यकेवक्षसि प्रभो ॥३५
सव्येन ता समाकृष्य करेण यदुनन्दन ।
शर प्रगृह्य विव्याध सात्यकिर्युधि पौण्ड्रकम् ॥३६
तमन्तरे गृहीत्वाऽऽशु वासुदेव प्रतापवान् ।
शक्तिभिर्दशभिश्चैव सात्यकि निजघान ह ॥३७
ताभिर्विद्धो रणे वीर सात्यकि सत्यस गर ।
अपास्य धनुरन्यत्तद्धनुरादाय सत्वरम् ।
आजघान तदा वीरो वृष्णीनामग्रणीर्नृप ॥३८

तभी पौण्ड्र ने अपनी गदा ग्रहण की और उसे वेग पूर्वक घुमा कर सात्यकि के हृदय पर दे मारी ॥३५॥ परन्तु सात्यकि ने अपने हृदय पर लगने से पूर्व ही उस गदा को अपने बाँए हाथ से थाम लिया और फिर अपने बाणों की मार से पौण्ड्र को बींध डाला ॥ ३६ ॥ तदनन्तर पौण्ड्र ने भी दस शक्तियाँ एक साथ ग्रहण कर उनसे सात्यकि पर जोर से प्रहार किया ॥ ३७ ॥ सात्यकि उस प्रहार से अत्यन्त व्याकुल होगये, फिर भी उन्होने एक धनुष ग्रहण करके पौण्ड्र पर भीषण बाण वर्षा आरम्भ कर दी ॥३८॥

॥ पौण्ड्रक सात्यकि युद्ध [२] ॥

तत क्रुद्धो गदापाणि सात्यकिर्वृष्णिनन्दन ।
वासुदेव जघानाशु गदया तीक्ष्णया नृप ॥१
सात्यकिं वासुदेवस्तु गदयाऽभ्यहनद्बली ।
तावुद्यतगदौ वीरौ शुशुभाते सुदारुणौ ॥२
दृप्तौ वने यथा सिंहौ परस्परवधैषिणौ ।
तत स सात्यकि क्रुद्ध सव्य मण्डलमागमत् ॥३

दक्षिणं वासुदेवस्तु तं जघान स्तनान्तरे ।
युयुधानोऽथ वीरस्तु वाह्वोर्मध्यमताडयत् ॥४
दृढं स ताडितो वीरो जानुभ्यामपतद्भुवि ।
तत उत्थाय वीरस्तु ललाटेऽभ्यहनद्गदाम् ॥५
विपण्णः किञ्चिदास्थाय तत उत्थाय सत्वरम् ।
गदयाऽभ्यहनद्वीरः सात्यकिं पौण्ड्रसत्तमम् ॥६
वासुदेवो बलिर्वीरः साक्षान्मृत्युरिवापरः ।
जघान गदया वृष्णिं निर्दहन्निव चक्षुपा ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! तभी वृष्णि श्रेष्ठ सात्यकि ने अत्यंत क्रोध पूर्वक उस छद्म नाम धारी वासुदेव पर अपनी तीक्ष्ण गदा चलाई ॥१॥ उसी समय पौण्ड्र ने भी सात्यकि पर अपनी गदा से प्रहार किया । इस प्रकार गदा युद्ध करते हुए वे दोनों महावीर परस्पर में वध करने की कामना से वन में घूमने वाले दो सिंहो के समान प्रतीत होते थे । तभी सात्यकि ने मण्डल बना कर पैंतरे बदलना आरम्भ किया और अपने दक्षिण पार्श्ववर्ती पौण्ड्र के हृदय पर गदा का भीषण प्रहार कर दिया । उससे अत्यन्त घायल हुआ पौण्ड्र पृथिवी पर बैठ गया और थोड़ी देर बाद संभल कर उठा, तब उसने तत्काल ही सात्यकि के सिर पर गदा से प्रहार कर दिया ॥२-५॥ इस प्रहार से विपण्ण हुए सात्यकि गिर कर तुरन्त ही उठ पड़े और उन्होंने पौण्ड्र पर गदा से भीषण प्रहार किया। उस समय यमराज के समान भयंकर हुआ पौण्ड्र सात्यकि पर इस प्रकार दृष्टि-पात करने लगा, जैसे उन्हें नेत्रों की अग्नि से ही भस्म कर देगा ॥६-७॥

स तया ताडितो वृष्णिर्गदया बाहुमुक्तया ।
आलम्ब्य भूमिं सहसा मृत्योरङ्कगतो यथा ॥८
सत्ता पुनः समालम्ब्य पाणिभ्यां दृढमेव च ।
गदां तस्य महाराज गृहीत्वा प्रग्रहेण ह ॥९
द्विधा कृत्वा महागुर्वी गदां कालायसीं शुभाम् ।
उत्सृज्य सहसा वीरः सिंहनादं व्यनीनदत् ॥१०

तत उत्सृज्य राजा तु वासुदेवो महाबल ।
सव्येन सात्यकिं गृह्य दक्षिणेन करेण ह ॥११

मुष्टिं कृत्वा महाघोरा वासुदेव प्रतापवान् ।
ताडयामास मध्ये तु स्तनयो सात्यकेर्नृप ॥१२

शैनेयो वृष्णिवीरस्तु गदामुत्सृज्य सत्वरम् ।
तलेनाभ्यहनद्वीरो वासुदेव रणाजिरे ॥१३

तलेन वासुदेवोऽपि सात्यकिं सत्यस गरम् ।
तयोरव महाघोर तलयुद्ध प्रवर्तते ॥१४

तभी उसने सात्यकि पर पुन गदा-प्रहार किया, जिसके कारण वह बेहोश होकर पृथिवी पर मृतक के समान बैठ गये ॥८॥ हे राजन् ! कुछ देर मे ही उनकी मूर्च्छा नष्ट होगई और तब उन्होने उठ कर पौण्ड्र की वह अत्यन्त भारी गदा उसके हाथ से छीन ली और उसके दो खण्ड करके घोर गर्जना करने लगे ॥९-१०॥ तभी उस महाबली राजा पौण्ड्र ने अपने बाँए हाथ से सात्यकि को पकड कर उनके हृदय मे अपने दाँए हाथ की मुष्टिका से प्रहार किया ॥ ११-१२ ॥ तभी सात्यकि ने अपनी गदा फेंक दी और पौण्ड्र के मुख पर एक जोर का तमाचा जड दिया ॥१३॥ इस पर पौण्ड्र ने भी सात्यकि के थप्पड मारा । इस प्रकार अब दोनो ही वीर थप्पड-मार युद्ध मे प्रवृत्त हुए ॥१४॥

जानुभ्या मुष्टिभिश्चैव वाहुभ्या शिरसा तदा ।
उरसोर समाहत्य जानुभ्या जानुनी तथा ॥१५

कराभ्या करमाहत्य तौ युद्ध सप्रचक्रतु ।
तालयोस्तत्र राजेन्द्र वृक्षयो सनिकर्षयो ॥१६

वने यथाऽग्निरुत्पन्नस्तथैवाभून्महास्वन ।
तावाजौ प्रथितौ वीरावुभौ पौण्ड्रकसात्यकी ॥१७

निशि स्तिमितमूकाया शस्त्र त्यक्त्वा महाबली ।
युयुधाते महार गे मल्लौ द्वाविव विश्रुतौ ॥१८

उभे सेने महराज्ञोः संशयं जग्मतुस्तदा ।
किं नु स्यात्सात्यकिर्वीरो हतस्तेन भविष्यति ॥१९
आहोस्विद्वासुदेवस्तु हतस्तेन महात्मना ।
अद्य वै तौ महावीरौ परस्परवधैषिणौ ॥२०
युध्यमानौ महावीरौ नरौ स्वर्गं गमिष्यतः ।
अन्यथा नोपरम्येतां युद्धाद्वीरौ सुनिश्चितौ ॥२१

थप्पड़-मार युद्ध के पश्चात् दोनों वीर घुटनों से घुटनों में प्रहार करते, मुक्के से मुक्का मारने, भुजा से भुजा, हृदय से हृदय और मस्तक से मस्तक को टकराते हुए युद्ध में प्रवृत्त थे। हे राजन् ! जिस प्रकार वन में स्थित दो ताल वृक्षों के घर्षण से अग्नि उत्पन्न होने पर शब्द होता है, वैसे ही उनके संघर्ष से शब्द निकल रहा था। फिर उस रात्रि काल में ही वे दोनों प्रसिद्ध रणबाँकुरे दो प्रसिद्ध मल्लों के समान युद्ध करने लगे ॥ १५-१८ ॥ वे दोनों ही वीर अत्यन्त भयंकर रूप से युद्ध में लगे हुए थे, उस समय उभय पक्ष के व्यक्ति यह समझने लगे कि आज या तो सात्यकि पौण्ड्र को मार देगा अथवा पौण्ड्र के द्वारा सात्यकि मारा जायगा। क्योंकि यह दोनों वीर एक दूसरे का वध करने के लिये कटिबद्ध हैं ॥ १९-२० ॥ या यह दोनों ही इस युद्ध में मृत्यु को प्राप्त होकर स्वर्ग-गमन करेंगे अथवा यह दोनों इसी प्रकार न जानें कब तक युद्ध करते रहेंगे ॥२१॥

अहो वीर्यमहो धैर्यमेतयोर्बलशालिनोः ।
एतौ महाबलौ लोके एतौ प्रकृतिसत्तमौ ॥२२
नैवं युद्धं महाघोरमासीद्देवासुरेष्वपि ।
न श्रुतो न च या दृष्टः संग्रामोऽयं कदाचन ॥२३
एते वै सैनिका ऊचुः सेनयोरुभयोरपि ।
रात्रौ निशीथे मेघौघे दृष्ट्वा युद्धं सुदारुणम् ॥२४
अथ तौ बाहुभिर्वीरौ संनिपेततुरञ्जसा ।
दशभिर्मुष्टिभिर्जघ्ने सात्यकिः पौण्ड्रकं तदा ॥२५
पञ्चभिः सात्यकिं पौण्ड्रः समाजघ्ने महाबलः ।
तयोश्चटचटाशब्दो ब्रह्माण्डक्षोभणो महान् ।
प्रादुरासीत्त सर्वेषां सर्वोन्विस्मापयन्निव ॥२६

देखो, यह दोनो वीर कैसे पराक्रमी और धैर्यवान् हैं, यथार्थ रूप से तो सम्पूर्ण जगत् मे यह दो पुरुष ही बल सम्पन्न दिखाई देते हैं ।। २२ ।। देवासुर-संग्राम में भी कभी ऐसा युद्ध हुआ हो, यह बात न कभी देखी और न सुनी हो गई ।। २३ ।। हे राजन् ! उस भीषण रात्रि काल मे आकाश मे बादल छाये हुए थे, तभी उन्हें वैसा भयंकर युद्ध करते देख कर दोनों पक्ष के सैनिको ने उपरोक्त विचार प्रकट किये थे ।।२४।। तभी वे दोनो वीर मल्लयुद्ध करते हुए पृथिवी पर गिर पड़े, उस दशा मे भी सात्यकि ने पौण्ड्र पर दस मुक्को से और पौण्ड्र ने सात्यकि पर पाँच मुक्को से प्रहार किया। उस मुष्टिका-प्रहार के शब्द से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड क्षुब्ध होगया, जिससे सभी लोक आश्चर्य चकित होगये ।।२५-२६।।

।। एकलव्य की सेना संहार ।।

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्ध एकलव्यो निषादपः ।
वलभद्रमभि क्षिप्रं धनुरादाय सत्वरम् ।।१
नाराचं दशभिर्विद्ध्वा बाणैश्च दशभिः परैः ।
चिच्छेद धनुरद्धं तत्सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ।।२
सूतं दशभिराहत्य रथं त्रिंशद्भिरेव च ।
ध्वजं चिच्छेद भल्लेन निषादस्य जगत्पतिः ।।३
ततः परं महच्चापं निषादो वीर्यसंमतः ।
दृढमौर्व्या समायुक्तं दशतालप्रमाणतः ।।४
कामपाल शरेणाशु जघान जनमध्यतः ।
वलदेवो महावीर्यः सर्पः शेष इव श्वसन् ।।५
दशभिस्मद्धनुर्दिव्यं शरैः सर्पसमैर्वलः ।
चिच्छेद मुष्टिदेशे तु माधवो माधवाग्रजः ।।६
एकलव्यो निषादेशः खड्गमादाय सत्वरः ।
प्राहिणोद्वलमादाय निशितं घोरविग्रहम् ।।७
तमन्तरे पटुर्वीरो वृष्णिवीरः प्रतापवान् ।
तिलशः पञ्चभिर्बाणैश्चकार यदुनन्दनः ।।८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! उधर निषाद राज और बलरामजी का जो युद्ध चल रहा था, उसमे क्रोधित हुआ एकलव्य धनुष ग्रहण करके बलरामजी की ओर वेग से बढा ॥ १ ॥ तभी बलरामजी ने दस बाणो के प्रहार से एकलव्य को आहत कर दिया और दस बाण पुन. छोड कर उसके धनुष के टुकडे कर दिये ॥२॥ फिर उन्होने दस बाणो के प्रहार से सारथी को मार डाला और तीन बाणो से उसका रथ ध्वस्त कर दिया। फिर उन्होंने एक भाला मार कर एकलव्य की ध्वजा खडित कर दी ॥३॥ फिर महाबली एकलव्य ने सुदृढ प्रत्यचा वाला तथा दस ताल ऊँचा एक अन्य धनुष ग्रहण करके बलरामजी को बींध दिया। तब बलरामजी ने भी एक दीर्घ फुंकार छोडते हुए सर्प के समान बाणो से एकलव्य के धनुष का मुष्टिदेश छिन्न-भिन्न कर दिया ॥ ४-६ ॥ फिर निषादराज ने भी शीघ्रतापूर्वक एक महती खड्ग लेकर बलरामजी पर वेग से प्रहार किया, परन्तु बलरामजी ने उस खड्ग का वार होते होते ही उसे पांच बाणो के लक्ष्य से टुकडे-टुकडे कर दिया ॥७-८॥

ततोऽपरं महत्खड्गं सर्वकालायसं शुभम् ।
प्राहिणोत्सारथेः कायमालोक्याथ निषादजः ॥९
तं चापि दशभिर्वीरो माधवो यदुनन्दनः ।
बाह्वोरन्तरयोश्चैव निर्बिभेद महारणे ॥१०
तत. शक्तिं समादाय घण्टामालाकुलां नृप ।
निषादो बलदेवाय प्रेषयित्वा महाबलः ॥११
सिंहनादं महाघोरमकरोत्स निषादपः ।
सा शक्तिः सर्वकल्याणी बलदेवमुपागमत् ॥१२
उत्पतन्तीं महाघोरां बलभद्रः प्रतापवान् ।
आदायाय निषादेशं सर्वान्विस्मापयन्निव ॥१३
तयैव तं जघानाशु वक्षोदेशे च माधवः ।
स तया ताडितो वीरः स्वदारत्याय निषादपः ॥१४
विह्वलः सर्वगात्रेषु निपपात महीतले ।
प्राणसंशयमापन्नो निषादो रामताडितः ॥१५

यह देख कर एकलव्य ने काले लोहे का एक अन्य खड्ग ग्रहण कर उससे बलरामजी के सारथी पर प्रहार किया, परन्तु उन्होंने उस खड्ग को भी दस बाण चला कर छोटे-छोटे टुकडो मे विभाजित कर दिया ।। ६-१० ।। फिर एकलव्य ने घण्टामाल से युक्त एक शक्ति ग्रहण कर बलरामजी के ऊपर चलाई और फिर घोर गर्जना करने लगा । परन्तु, सब का कल्याण करने वाली उस शक्ति को अपने निकट आते ही बलरामजी ने हाथ से पकड लिया और फिर उसी शक्ति से उन्होंने एकलव्य के हृदय पर प्रहार किया । बलरामजी की यह शूरता देख कर सभी उपस्थित जन आश्चर्य करने लगे और एकलव्य अपनी ही शक्ति से घायल होकर अत्यन्त व्याकुल होकर पृथिवी पर लुढक पडा, उस समय उसकी मरणासन्न अवस्था होगई ।।११-१५।।

निषादास्तस्य राजेन्द्र शतशोऽथ सहस्रश ।
अष्टाशीतिसहस्राणि निषादास्तस्य योधिन ।।१६
गदिन. खड्गिनश्चैव महेष्वासा महाबलाः ।
शरैरनेकसाहस्रै. शक्तिभिश्च परश्वधै. ।।१७
गदाभि पट्टिशैः शूलै परिघैः प्रासतोमरः ।
कुन्तै रथ कुठारैश्च यादवाना महौजसाम् ।।१८
शलभा इव राजेन्द्र दीप्यमान हुताशनम् ।
ते शरैः पातयाचक्रू राम राममिवापरम् ।।१६
केचित्कुठारै राजघ्नु केचित्कुन्तैः परश्वधै ।
गदाभिः केचिदाघ्नन्ति शक्तिभिश्च तथा परे ।।२०

एकलव्य की ऐसी दुर्दशा देख कर उसके अट्ठासी हजार अत्यत बलवान् सैनिक गदा, तलवार, धनुष, बाण, फरसा, पट्टिश, शूल, परिघ, प्रास, तोमर, भाले, कुठार प्रभृति अनेकानेक शस्त्रास्त्र ग्रहण कर शलभ के अग्नि की ओर जाने के समान ही, यादवो पर दौड पडे और तुरन्त ही वे बलरामजी पर अपने विभिन्न शस्त्रास्त्रो से प्रहार करने लगे ।।१६-२०।।

निजघ्नुः सहसा रामं स्फुरन्तं पावकं यथा ।
ततः क्रुद्धो हली साक्षाद्धलमुद्यम्य सत्वरम् ॥२१
सर्वानाकर्षयामास मुसलेन हि पीडयन् ।
ते हन्यमाना राजेन्द्र निषादाः पर्वताश्रयाः ॥२२
निपेतुर्धरणीपृष्ठे शतशोऽथ सहस्रशः ।
क्षणेन तन्महाराज हत्वा सर्वान्महाबलान् ॥२३
सिंहवद्वचनदं स्यत्र तस्थौ रामो महाबल. ।
ततो रात्रौ महाघोराः पिशाचाः पिशिताशनाः ॥२४
आकृष्य शवयूथानि भक्षयन्त. समासते ।
पिबन्तः शोणितं कोष्ठात्स छिद्य च शवं बहु ॥२५

उस सेना के प्रहारो से क्रोधित हुए बलरामजी ने अपना हल उठाया और उससे उन निषाद-सैनिको को एक-एक कर खीचते और मूसल मार कर कुचलने लगे । हे राजन् ! बलरामजी के इस कार्य से कुचले जाते हुए सैकडो हजार निषाद मर-मर कर पृथिवी पर गिर गये । इस प्रकार क्षण भर मे ही सम्पूर्ण निषाद-सेना नष्ट होगई तब बलरामजी घोर गर्जना करने लगे । उस भयकर रात्रि काल मे असंख्य पिशाच रणक्षेत्र मे शवो को नोच-नोच कर उनका मास-भक्षण और रुधिर पान करते हुए घूमने लगे ॥२१-२५॥

॥ बलदेव-एकलव्य युद्ध ॥

क्रव्यादाः सर्वं एवाशु भक्षयन्तस्तदा शवम् ।
हसन्तो विविधं घोरं नादयन्तो वसुंधराम् ॥१
राक्षसाश्च पिशाचाश्च पिबन्तः शोणितं बहु ।
आशिखं भुञ्जते राजन्छवस्य पिशिताशनाः ॥२
नृत्यन्ति स्म तदा राजन्नगर्यां रणतोषिताः ।
काका बलाका गृध्राश्च श्येना गोमायवस्तथा ॥३
भक्षयन्तः प्रवर्तन्ते राक्षसाश्चैव दारुणा. ।
एतस्मिन्नन्तरे वीरो निषादो सव्यसञ्ज्ञकः ॥४

हतान्सर्वान्समालोक्य निषादान्नगचारिणः ।
गदामादाय कुपितो राममेव जगाम ह ॥५
जघान गदया राजश्छत्रदेशे निषादपः ।
ततो रामो गदी राजन्निषाद बाहुशालिनम् ॥६
आजघ्ने गदया क्रूरं मदमत्तो हलायुधः ।
तयोश्च तुमुलं युद्धं गदाभ्यां समवर्त्तत ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! उस समय वे मासभोजी पिशाचगण जिस प्रकार अट्टहास कर रहे थे, उससे सम्पूर्ण धरातल गुंजित हो गया ॥ १ ॥ सभी मास लोलुप राक्षसगण अत्यन्त रक्त पीकर और मास भक्षण कर आनन्द से नृत्य करने लगे । उसी प्रकार काक, बलाक, गृध्र, बाज और शृगाल इत्यादि तृप्त होकर इधर-उधर झपट रहे थे । इसी अवसर पर निषादपति एकलव्य की चेतना लौट आई ॥ २-४ ॥ तब उसने अपनी सम्पूर्ण सेना को छिन्न-भिन्न और मृत्यु को प्राप्त हुई देखा तो उसे अत्यन्त क्रोध हुआ और वह अपनी गदा उठा कर तेजी से बलरामजी की ओर दौड़ा ॥५॥ जैसे ही वह बलरामजी के पास पहुँचा, वैसे ही उसने उनके कंधे पर वेग पूर्वक गदा का प्रहार किया । फिर बलरामजी ने भी अपनी गदा उठा कर वेग से चलाई । इस प्रकार उन दोनों वीरो में गदा युद्ध आरम्भ होगया ॥६-७॥

आकाशे शब्द आसीत्तु तयोर्युद्धे महाभुज ।
समुद्राणां तथा घोषः सर्वेषां सन्निगच्छताम् ॥८
कल्पक्षये महाराज शब्दः सुतुमुलोऽभवत् ।
क्षोभितो नागराजश्च नागाः क्षोभं समाययुः ॥९
पृथिवी चान्तरिक्षं च सर्वं शब्दमयं बभौ ।
ततः स पौण्ड्रको राजा सात्यकिं वृष्णिनन्दनम् ॥१०
गदयैव जघानाशु सत्वरं रणशोभिदः ।
युयुधानो बली राजन्वासुदेवं जघान ह ॥११
तयोश्च तुमुलः शब्दः प्रादुरासीन्महारणे ।
चतुर्णां युध्यता राजन्परस्परवधैषिणाम् ॥१२

ब्रह्माण्डक्षोभणो राजञ्छब्द आसीत्सुदारुण ।
तत रज प्रादुरभूत्तस्मिन्सग्राममूर्धनि ॥१३
तारका निष्प्रभा राजस्तमस्येव क्षय गते ।
उपसि प्रतिबुद्धाया ततो नि शेपता ययौ ॥१४
उदितो भगवान्सूर्यश्चन्द्रश्च क्षयमाययौ ।
तयोर्युद्ध प्रादुरभूच्चतुर्णां बाहुशालिनाम् ।
देवासुरसम राजन्नुदिते भास्करे महत् ॥१५

तब वे दोनो ही महावीर उस गदा युद्ध मे लगे रहे और उनकी गदाओं की टक्कर अथवा एक दूसरे के शरीर मे लगने से जो शब्द होता था, वह आकाश तक को व्याप्त कर देता था। जैसा शब्द प्रलय कालीन समुद्रो के उल्लघन से उनकी एकाकारिता द्वारा उठने लगता है वैसा ही शब्द उनके गदा युद्ध मे होने लगा था। उस विकराल शब्द से नागगण और उनके अधीश्वर भगवान् शेष भी क्षुब्ध होगये थे ॥ ८ ९ ॥ पृथिवी और नभ-सर्वत्र ही वह भीषण शब्द गूँज रहा था। उसी समय पौण्ड्र ने भी सात्यकि पर अत्यन्त वेगपूर्वक अपनी गदा चलाई, तभी युयुधान ने भी राजा पौण्ड्र पर भीषण गदा प्रहार किया ॥१० ११॥ इस प्रकार यह सभी महाबली परस्पर में एक दूसरे को नष्ट करने की अभिलाषा से घोर सग्राम कर रहे थे ॥ १२ ॥ उस सग्राम से उठने वाले भीषण शब्द ने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को क्षुब्ध कर दिया था। उस युद्ध क्षेत्र मे धीरे धीरे उत्पन्न हुई धूल ने आकाश को व्याप्त कर सम्पूर्ण तारामण्डल को ढक दिया, जिससे सर्वत्र अधकार का साम्राज्य छागया कहीं कुछ भी दिखाई नहीं पड़ रहा था। वह अधकार प्रात काल होने पर मिट सका ॥ १३-१४ ॥ उस समय पश्चिम मे चन्द्रमा अस्त हुआ और प्राची में सूर्योदय होगया, तब भी उन महारथियों का युद्ध भयानक रूप से एव निरतर चलता रहा ॥१५॥

॥ श्रीकृष्ण पौण्ड्रक युद्ध ॥

तत प्रभाते विमले भगवान्देवकीसुन ।
गन्तुमैच्छज्जगन्नाथ पुर बदरिकाश्रमात् ॥१

नमस्कृत्य मुनीन्सर्वान्ययौ द्वारवती नृप ।
आरुह्य गरुडं विष्णुर्वेगेन महता प्रभु ॥२
सुमहाञ्छुश्रुवे शब्दस्तेषां युद्धं प्रकुर्वताम् ।
गच्छता देवदेवेन पुरी द्वारवतीं नृप ॥३
अचिन्तयज्जगन्नाथः को न्वयं शब्द उत्थितः ।
सग्रामस भवो घोर आयंशं नेयसयुत ॥४
व्यक्तमागतवान्पौण्ड्रो नगरी द्वारकामनु ।
तेनप्युद्धं समभवत्पौण्ड्रकेण दुरात्मना ॥५
यदूनां वृष्णिवीराणां युद्धचतामितरेतरम् ।
शब्दोऽयं सुमहान्व्यक्तो नात्र कार्या विचारणा ॥६
इत्येव चिन्तयित्वा तु दध्मौ शङ्खं महारवम् ।
पाञ्चजन्यं हरिः साक्षात्प्रीणयन्वृष्णिपुङ्गवान् ॥७
रोदसी पूरयामास तेन शब्देन केशवः ।
यादवा वृष्णयश्चैव श्रुत्वा शङ्खस्य तं रवम् ॥८
व्यक्तमायाति भगवान्पाञ्चजन्यरवो ह्ययम् ।
इति ते मेनिरे राजन्वृष्णयो यादवास्तथा ॥९

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! स्वच्छ प्रभात की उपस्थिति पर जगन्नाथ भगवान् श्रीकृष्ण ने बदरीवन से द्वारकापुरी जाने का विचार किया ॥ १ ॥ उस समय उन्होने वहाँ उपस्थित हुए मुनिजनो से नमस्कार पूर्वक विदा लेकर अपने गरुड वाहन द्वारा बडे वेग से प्रस्थान किया ॥२॥ द्वारका के निकट पहुँचने पर उन्हें दूर से ही उस महा भयकर युद्ध का कोलाहल सुनाई देने लगा ॥३॥ उस शब्द को सुन कर वे विचार करने लगे कि यह कोलाहल कहाँ होरहा है ? मैं समझता हूँ कि उसमें सात्यकि की ललकार का शब्द भी सम्मिलित है ॥४॥ इससे प्रतीत होता है कि पौण्ड्र अवश्य ही द्वारका पर चढ आया है, जिसकी रक्षा के लिये सात्यकि का उसस युद्ध होरहा है। निस्सदेह यह कोलाहल उसी सग्राम का है ॥५-६॥ यह सोच कर उन्होने वृष्णियो का उत्साह बढ़ाने के उद्देश्य से अपने पाञ्चजन्य को बजा कर घोर शब्द किया, जिससे सम्पूर्ण नभ-

मण्डल परिपूर्ण होगया। उस शंख-ध्वनि को सुन कर सब यादवों और वृष्णियों ने सोचा कि यह पाञ्चजन्य शंख की ही ध्वनि है, इससे प्रतीत होता है कि भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ आ पहुँचे हैं ॥७-९॥

निर्भयाः समपद्यन्त वृष्णयो यादवाश्च ते ।
तस्मिन्नेव क्षणे दृष्टस्तार्क्ष्यश्च पतता वरः ।।१०
ततश्च देवकीसूनुर्हस्तेर्यादवेश्वरः ।
सूताश्च मागधाश्चैव पुरा यान्ति जगत्पतेः ॥११
स्तुत्या स्तुतं हरिं विष्णुमीश्वरं कमलेक्षणम् ।
ततश्च यादवा. सर्वे परिवव्रुर्जनार्दनम् ॥१२
कृष्णस्तु गरुडं भूयो गच्छ त्वं नाकमुत्तमम् ।
इत्युक्त्वा गरुडं विष्णुर्विसृज्य यदुनन्दनः ॥१३
दारुकं पुनराहेदं रथमानय मे प्रभो ।
स तथेति प्रतिज्ञाय रथमादाय सत्वरम् ।।१४
रथोऽयं भगवन्देव किमतः कृत्यमस्ति मे ।
इत्युक्त्वा रथमादाय प्रणम्याग्रे स्थितो हरेः ॥१५

उस समय सभी यादवों में नवीन साहस और उत्साह भर गया, उनका भय दूर होगया। तभी गरुडध्वज भगवान् यादवेश्वर श्रीकृष्ण सब के देखते-देखते वहाँ आगये। उनके आते ही सूतों और वन्दीजनों ने आगे बढ़ कर उनकी स्तुति की ॥ १०-११ ॥ फिर यादवगण उन्हें सब ओर से घेर कर खड़े होगये। उस समय भगवान् श्रीकृष्ण ने गरुड से उतरते हुए कहा—हे गरुड ! तुम अब स्वर्ग लोक के लिये प्रस्थान करो। यह कहने पर गरुड वहाँ से चले गये, तब उन्होंने अपने सारथी को पुकारा—हे दारुक ! तुम मेरे रथ को शीघ्र यहाँ लाओ। दारुक ने 'जो आज्ञा' कह कर तुरन्त ही रथ लाकर उनके आगे खड़ा कर दिया और बोला ॥१२-१४॥ हे भगवन् ! यह रथ उपस्थित है, अब आगे का कर्त्तव्य बताइये। यह कहता हुआ दारुक उनके सामने स्थित हुआ ॥ १५ ॥

गतेऽथ गरुडे विष्णू रथमारुह्य सत्वरम् ।
यत्र युद्धं समभवत्तत्र याति स्म केशव. ॥१६
तत्र गत्वा महाराज युध्यतां च महात्मनाम् ।
पाञ्चजन्यं महाशंख दध्मौ यदुवृषोत्तमा ॥१७
पौण्ड्रोऽथ वासुदेवस्तु कृष्णं दृष्ट्वा रणोत्सुकम् ।
सात्यकिं पृष्ठतः कृत्वा वासुदेवमुपागमत् ॥१८
क्रुद्धोऽथ सात्यकी राजन्वारयामास पौण्ड्रकम् ।
न गन्तव्यमितो राजन्नेष धर्म. सनातनः ॥१९
जित्वा मां गच्छ राजेन्द्र परं योद्धुं महारणे ।
क्षत्रियोऽसि महावीर स्थिते मयि रणोत्सुके ॥२०
एष ते गर्वमखिलं नाशयिष्यामि संयुगे ।
इत्युक्त्वा चाग्रतस्तस्थौ गच्छतो यादवेश्वरः ॥२१

गरुड के प्रस्थान करने पर भगवान् श्रीकृष्ण उस रथ पर चढ़ कर अत्यंत वेगपूर्वक युद्ध क्षेत्र की ओर अग्रसर हुए ॥१६॥ वहाँ असंख्य वीरों के मध्य में पहुँच कर उन्होंने अपने पाञ्चजन्य शंख की ध्वनि की ॥१७॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण को युद्ध के लिये तत्पर देख कर राजा पौण्ड्र ने सात्यकि को छोड़ कर श्रीकृष्ण का सामना किया ॥१८। तब उसे सात्यकि ने क्रोध पूर्वक ललकारा—हे राजन् ! मुझ लड़ते हुए को छोड़ कर अन्य के पास जाकर भिड़ना कदापि उचित नहीं है। युद्ध के नियमों के अनुसार तुम मुझे परास्त करके ही अन्यत्र जा सकते हो। हे वीर श्रेष्ठ ! तुम क्षात्र धर्म के पालन करने वाले हो, जब मैं युद्ध में उत्सुकता पूर्वक सामना कर रहा हूँ तब दूसरे के पास जाना धर्म के विरुद्ध ही है ॥१९-२०॥ अब तुम यहीं ठहरो, मैं तुम्हारे अहंकार को चूर्ण किये डालता हूँ । यह कहते हुए सात्यकि राजा पौण्ड्र के सामने खड़े हो-गये ॥ २१ ॥

पौण्ड्रस्य शिनिनप्ता तु पश्यतः केशवस्य ह ।
अपक्षाप शिनेः पौत्रं कृष्णमेव जगाम ह ॥२२

निर्भर्त्स्य सहसा भूय सात्यकि क्रोधमूर्च्छितः ।
गदया प्राहरत्पौण्ड्र वासुदेवस्य पश्यत ॥२३

यथाप्राणं यथायोग सात्यकि सत्यविक्रम ।
दृष्ट्वाऽथ भगवानेव सात्यकि प्रशश स ह ॥२४

निवार्य सात्यकि कृष्णो यथेष्ठ क्रियतामसौ ।
उपारमद्यथायोग सात्यकि कृष्णवारित. ॥२५

स तत पौण्ड्रको राजा वासुदेवमुवाच ह ।
भो भो यादव गोपाल इदानी क्व गतो भवान् ॥२६

त्वा द्रष्टुमथ सप्राप्तो वासुदेवोऽस्मि साम्प्रतम् ।
हत्वा त्वा सबल कृष्ण बलैर्बहुभिरन्वित ॥२७

अहमेको भविष्यामि वासुदेवो महीतले ।
यच्चक्र तव गोविन्द प्रथित सुप्रभ महत् ॥२८

यह सम्भाषण श्रीकृष्ण की उपस्थिति मे ही होरहा था । उस समय पौण्ड्र सात्यकि को छोड कर भगवान् की ओर ही अग्रसर होता रहा ॥२२॥ इस पर सात्यकि ने अत्यन्त क्रोधित होकर उसकी निन्दा की और भगवान् के सामने ही उसके वक्ष स्थल पर उल पूर्वक गदा से प्रहार किया ॥२३॥ सात्यकि के इस साहस और वीरता को देख कर भगवान् श्रीकृष्ण ने उनकी भूरि भूरि प्रशसा की ॥ २४ ॥ तदनन्तर भगवान् ने सात्यकि को निवारण करते हुए कहा—हे सात्यके ! जैसी उसकी इच्छा हो, वैसा ही उसे करने दो । भगवान् के द्वारा इस प्रकार शान्त किये जाने पर सात्यकि ने उसे छोड दिया ॥२५॥ तब राजा पौण्ड्र ने भगवान् श्रीकृष्ण से कहा—हे यादव ! हे ग्वाले ! तुम अब तक कहाँ थे ? देखो, मैं वासुदेव तुमसे मिलने के लिये यहाँ आया हूँ । अभी कुछ देर में तुम्हें सेना के सहित नष्ट करके इस विश्व में मैं ही अकेला वासुदेव रह जाऊँगा ॥ २८ ॥

अनेन तव चक्रेण पीडितोऽस्मि च तद्रणे ।
चक्रमस्तीति तद्वीर्य तव माधव साम्प्रतम् ॥२९

नाशयिष्यामि तत्सर्वं सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ।
शार्ङ्गीति मां विजानीहि न त्वं शार्ङ्गीति शिष्यते ॥३०
शङ्खमस्तीति तद्वीयं तव माधव साम्प्रतम् ।
नाशयित्वाऽऽहवे चाहं गदी चाहं जनार्दनम् ॥३१
मामेव हि सदा ब्रूयुर्जानन्तो वीर्यशालिनः ।
आदौ त्वं बलवद् वृद्धान्हत्वा स्त्रीबालकान्बहून् ॥३२
गाश्च हत्वा महागर्वस्तव सम्प्रति वर्त्तते ।
तत्तेऽहं व्यपनेष्यामि यदि तिष्ठसि मत्पुरः ॥३३
शस्त्रं गृहाण गोविन्द यदि योद्धुं व्यवस्थितः ।
इत्युक्त्वा बाणमादाय तस्थौ पार्श्वे जगत्पते ॥३४

तुम्हारे अत्यन्त तेजस्वी चक्र ने मुझे बड़ा दुःख दिया है इसलिये तुम्हारे उस चक्र को मैं इन सभी क्षत्रियों की उपस्थिति में नष्ट कर डालूँगा तुम समझते हो कि शार्ङ्गधर तुम्हीं अकेले हो ? देखो मेरे पास भी शार्ङ्ग धनुष विद्यमान है ॥२६ ३०॥ तुम गदा धारण करने वाले कहे जाते हो परन्तु मैं तुम्हारे उस गर्व को भी नष्ट कर दूँगा । क्योंकि मैं भी गदा चक्र और गदाधारी हूँ । विश्व के सभी बल सम्पन्न पुरुषों में मेरी गदा चक्र और गदाधारी कह कर प्रसिद्धि है । अपने प्रारम्भ काल में तुमने अनेकों बलहीन वृद्ध, स्त्री और बालकों को नष्ट किया था तुम्हारे द्वारा गो-हत्याएँ भी हुई थीं इसी कारण तुम अपने वीरत्व के गर्व में फूल गये हो इसलिये यदि तुम युद्ध भूमि से भाग न गये तो मैं तुम्हारे उस गर्व का खण्डन कर दूँगा । ३१ ३३॥ हे गोविन्द ! यदि मेरे साथ युद्ध करने का साहस हो तो शस्त्र ग्रहण करो । यह कह कर पौण्ड्र ने धनुष बाण ग्रहण किया और भगवान् जगन्नाथ के सामने तन कर खड़ा होगया ॥३४॥

एतद्वचनमाकर्ण्य वासुदेवस्य भाषितम् ।
स्मितं कृत्वा हरिः कृष्णो बभाषे पौण्ड्रकं नृपम् ॥३५
भाम वद नृप त्वं हि पातकस्मि सदा नृप ।
[illegible]तौ गोघाती च स्त्रीहन्ता सर्वथा नृप ॥३६

चक्री भव गदी राजञ्छार्ङ्गी च सततं भव ।
नामधेयं वृथा मह्यं वासुदेवेति च प्रभो ॥३७
शार्ङ्गी चक्री गदी शंखीत्येवमादि वृथा मम ।
किं तु वक्ष्यामि किंचित्तु शृणुष्व यदि मन्यसे ।
क्षत्रिया बलिनो ये तु स्थिते मयि जगत्पतौ ॥३८
तथाऽनुव्रवते त्वां हि जीवत्येव मयि प्रभो ।
यत्ते चक्रं महाघोरमसुरान्तकरं महत् ॥३९
तत्तुल्यं मम चक्रं तु वृत्तातो न तु वीर्यतः ।
आयुधेष्वथ सर्वत्र शब्दसादृश्यमस्ति ते ॥४०

उसकी बात सुन कर भगवान् श्रीकृष्ण ने किंचित् मुसकाते हुए कहा—'हे राजन् ! तुम मुझे गौ, बालक, स्त्री, वृद्ध आदि का हत्यारा और पापी आदि चाहे जो कहलो ॥ ३४-३६ ॥ चाहे मेरा शख-चक्र गदापाणि नाम निरर्थक ही क्यों न हो और चाहे तुम ही शख-चक्र-गदा-शार्ङ्ग धारी क्यों न बन जाओ, परन्तु यदि तुम्हारी इच्छा हो तो मेरी बात सुन लो—मुझ पृथिवी का शासन करने वाले के स्थित रहते हुए कौन-सा क्षत्रिय तुम्हें तुम्हारी इच्छानुसार कह सकता है ? तुमने मेरे असुरान्तक चक्र के विषय में जो कहा है, वह यथार्थ है और तुम्हारा चक्र भी मेरे समान रूप, रंग वाला तो हो सकता है—परन्तु उसकी महिमा ऐसी नहीं हो सकती। तुम्हारे अन्यान्य आयुध भी मेरे आयुधों जैसे रूप वाले हो सकते हैं, परन्तु उनका गुण वैसा नहीं हो सकता ॥३७-४०॥

गोपोऽहं सर्वदा राजन्प्राणिनां प्राणदः सदा ।
गोप्ता सर्वेषु लोकेषु शास्ता दुष्टस्य सर्वदा ॥४१
कत्थनं सर्वकार्ये हि जित्वा शत्रून्नृपाधम ।
अजित्वा किं भवान्त्र ते स्थिते मयि च शास्तरि ॥४२
हत्वा मां ब्रूहि राजेन्द्र यदि शक्तोऽसि पौण्ड्रक ।
स्थितोऽहं चक्रमाश्रित्य रथी चापी गदासिमान् ॥४३

रथमारुह्य युद्धाय सन्नद्धो भव मानद ।
इत्युक्त्वा भगवान्विष्णु सिंहनादं व्यनीनदत् ॥४४

मैं एक तुच्छ ग्वाला होकर भी सदैव सब प्राणियो को जीवन प्रदान करता रहता हूँ । मैं ही इस विश्व मे साधुजन का रक्षक और दुष्टो का दमन करने वाला हूँ ॥४१॥ परन्तु, जब मै शस्त्र ग्रहण करके तुम्हारे सामने युद्ध भूमि मे उपस्थित हूँ, तब जब तक तुम मुझे परास्त न कर लो, तब तक इस प्रकार की आत्म प्रशसा से क्या लाभ है ? ॥४२॥ यदि तुम में सामर्थ्य हो तो मेरा वध करने के पश्चात् ही इस प्रकार कहना । अब मैं अपने चक्र, धनुष, गदा, तलवार आदि आयुधो के सहित रथारूढ हुआ तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ, इसलिये तुम भी कवच धारण पूर्वक रथ पर चढ कर युद्ध करो । यह कह कर भगवान् श्रीकृष्ण सिंहनाद करने लगे ॥४३-४४॥

॥ श्रीकृष्ण द्वारा पौण्ड्रक वध ॥

ततः शरं समादाय वासुदेवः प्रतापवान् ।
पौण्ड्रं जघान सहसा निशितेन शरेण ह ॥१
पौण्ड्रोऽथ वासुदेवस्तु शरैर्दशभिराशुगैः ।
वासुदेवं जघानाशु वार्ष्णेयं वृष्णिनन्दनम् ॥२
दारुकं पञ्चविंशत्या हयान्दशभिरेव च ।
सप्तत्या वासुदेवं तु यादवं वासुदेवकः ॥३
ततः प्रहस्य सुचिरं केशवः केशिसूदनः ।
दृष्टोऽसावितिं मनसा सपूज्य यदुनन्दनः ॥४
आकृष्य शार्ङ्गं बलवान्सधाय रिपुसूदनः ।
नाराचेन सुतीक्ष्णेन ध्वजं चिच्छेद केशवः ॥५
सारथेश्च शिरः कायादाहृत्य यदुनन्दनः ।
आश्वाश्च चतुरो हत्वा चतुर्भिः सायकोत्तमैः ॥६

रथं राज्ञः समाहृत्य तदोभौ पार्ष्णिसारथी ।
चक्रं च तिलश. कृत्वा हसन्किंचिदिव स्थितः ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! इसके पश्चात् अत्यंत पराक्रमी भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने तीक्ष्ण बाण से पौण्ड्र पर आघात किया ॥१॥ तब पौण्ड्र ने भी दस बाण चला कर कृष्ण को और पच्चीस बाण चला कर उनके सारथी दारुक को बींध दिया, फिर दस बाणो से घोडो पर और सत्तर बाणो से श्रीकृष्ण पर पुनः प्रहार किया ॥२-३॥ उसके इस साहस पर श्रीकृष्ण कुछ समय तक मुसकाते रहे और सोचने लगे कि चलो इसने सामना तो किया ॥४॥ फिर भगवान् ने भी अपने शार्ङ्ग धनुष पर एक सुतीक्ष्ण बाण चढाया और उससे पौण्ड्र के रथ की ध्वजा काट डाली ॥५॥ तथा उसके सारथी का मस्तक भी उसी बाण से कट कर गिर गया। तब उन्होने चार बाण प्रहार करके पौण्ड्र के रथ मे जुडे हुए चारो अश्व मार डाले ॥६॥ उसी प्रहार के द्वारा उसका रथ विचूर्ण हो गया और दो पार्ष्णि सारथी भी नष्ट होगये। रथ के पहियो के टुकडे-टुकडे हो कर इधर उधर फैल गये। उस समय भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ खडे हुए मुसकरा रहे थे ॥७॥

पौण्ड्रको वासुदेवस्तु रथादुत्प्लुत्य सत्वरः ।
आदाय निशितं खड्गं प्राहिणोत्केशवाय सः ॥८
स खड्गं शतधा कृत्वा तूष्णीमासीच्च केशवः ।
ततः परं महाघोरं परिघं कालसंमितम् ॥९
गृहीत्वा वासुदेवाय वासुदेव. प्रतापवान् ।
प्राहिणोद्वृष्णिवीराय सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ॥१०
तद्द्विधा जगतां नाथश्चकार यदुनन्दन. ।
ततश्चक्रं महाघोरं सहस्रारं महाप्रभम् ॥११
त्रिशाद्धारसमायुक्तमायसास्यसर्मामसहा ।
आदायाथ महाराज केशवं वाक्यमब्रवीत् ॥१२
पश्येदं निशितं घोरं तव चक्रविनाशनम् ।
अनेन तव गोविन्द दर्पं दर्पवतां वर ॥१३

अपनेष्यामि वार्ष्णेय सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ।
त्वामुद्दिश्य महाघोरं कृतमन्यद्दुरासदम् ।।१४

यह देख कर राजा पौण्ड्र अपने टूटे हुए रथ से उछल कर पृथिवी पर खड़ा हुआ और उसने एक तीक्ष्ण खड्ग का प्रहार श्रीकृष्ण पर किया ।।८।। परन्तु श्रीकृष्ण ने उस खड्ग के सौ खण्ड कर डाले। तब उसने एक भीषण परिघ से उन पर बलपूर्वक प्रहार किया ।।९-१०।। इस पर उन्होंने उस परिघ के भी दो खण्ड कर डाले। फिर उसने अपना सहस्रधार, अत्यंत विकट, लौहमय तेजस्वी चक्र हाथ में लेकर उनसे कहा—हे कृष्ण ! मेरे इस अत्यन्त भयानक और तुम्हारे चक्र के नाशक चक्र की ओर देखो। हे गोविन्द ! हे गर्वितो में श्रेष्ठ ! मैं इसी चक्र से इन राजाओं की उपस्थिति में तुम्हारे अहंकार को नष्ट कर डालूँगा, यह महाघोर चक्र तुम्हारे लिये ही निर्मित कराया गया है ।।११-१४।।

यदि शक्तो हरे कृष्ण दारयेद महास्पदम् ।
इत्युक्त्वा तच्छतगुण भ्रामयित्वा महाबलः ।।१५
चिक्षेपाथ महावीर्यः पौण्ड्रको नृपसत्तम. ।
अवप्लुत्य ततो देशात्तदुत्सृज्य महाबलः ।।१६
सिंहनाद महाघोर व्यनद्वीर्यवांस्तदा ।
ततो विस्मयमापन्नो भगवान्देवकीसुतः ।।१७
अहो वीर्यमहो धैर्यमस्य पौण्ड्रस्य दु.सहम् ।
इति मत्वा जगन्नाथ ८रिणतश्च रथोत्तमात् ।।१८
ततः शिला समादाय प्रेषयामास केशवम् ।
ता शिला प्रेषयामास तस्मै यदुकुलोद्वहः ।।१९

हे कृष्ण ! यदि तुम मे सामर्थ्य हो तो मेरे इस भयकर चक्र के वेग को रोको। यह कह कर उसने अपने चक्र को सौ बार घुमाकर भगवान् श्रीकृष्ण पर छोड़ा और सिंहगर्जना करने लगा। उसको उस समय की वीरता को देख कर भगवान् विस्मित हो उठे ।।१५-१७।। भगवान् ने पौण्ड्र के घोर पराक्रम,

साहस और धैर्य की बड़ी प्रशंसा की और अपने रथ पर खड़े हो गये ।।१८।। फिर उसने एक बहुत भारी तथा बहुत बड़ी शिला लेकर भगवान् के ऊपर फेंकी, परन्तु उन्होंने उसे हाथ मे लपक कर पुनः पौण्ड्र पर ही फेंक दिया ।।१६।।

पौण्ड्रेण सुचिरं कालं विक्रीड्य भगवान्हरिः ।
ततश्चक्रं समादाय निशित रक्तभोजनम् ।।२०
दैत्यमांसप्रदिग्धाङ्गं नारीगर्भविमोचनम् ।
शातकुम्भमय घोरं दैत्यदानवनाशनम् ।।२१
सहस्रार शतारं तदद्भुत दैत्यभीषणम् ।
ऐश्वर्यवर्म परम नित्य सुरगणार्चितम् ।।२२
विष्णुः कृष्णस्तथा शार्गी निन्ययुक्तः सदा हरिः ।
जघान तेन गोविन्द. पौण्ड्रक नृपसत्तमम ।।२३
तस्य देह विदार्याशु चक्र पिशितभोजनम् ।
कृष्णस्याथ करं भूयः प्राप सर्वेश्वरस्य ह ।।२४
तत. स पौण्ड्रको राजा गतासु प्रापतद्भुवि ।
निहत्य भगवान्विष्णुर्दुर्विज्ञेयगतिः प्रभुः ।
प्रतिपेदे सुधर्मा तु यादवै. पूजितो हरिः ।।२५

इस प्रकार वे उसके साथ बहुत समय तक लीला करते रहे। फिर उन्होंने दैत्यों को सशंकित करने वाले तथा देवताओं द्वारा पूजित अपने अत्यन्त तीक्ष्ण, रक्त-शोषक, गर्भ-विमोचक, दैत्य विदारक, स्वर्ण मंडित सहस्रधार चक्र को ग्रहण किया ।।२०-२२।। वह चक्र महान् महिमा सम्पन्न तथा भगवान् श्रीकृष्ण के पास सदैव रहने वाला था। उसी चक्र को उन्होंने राजा पौण्ड्र पर प्रेरित किया और सभी पौण्ड्र के देह को विदीर्ण करके वह चक्र भगवान् के हाथ मे पुनः आगया ।।२३-२४।। तब मृत्यु को प्राप्त हुआ वह पौण्ड्र धराशायी हो गया और उसकी मृत्यु से हर्षित हुए यादव भगवान् श्रीकृष्ण का पूजन करने लगे। फिर भगवान् श्रीकृष्ण अपनी सुधर्मा सभा मे चले गये ।।२५।।

।। पौण्ड्रक वध के पश्चात् ।।

निषादेश ततो राम शक्त्या वीर्यवता वर: ।
आजघान स्तनद्वन्द्वे सिंहनाद व्यनीनदत् ।।१
तत क्रुद्धो निषादेशो राम मत्त महाबलम् ।
गदया लोकविख्यातो जघान स्तनवक्षसि ।।२
आहतः स तु तेनाशु बलभद्रो महाबल ।
उभाभ्या चैव रामस्तु कराभ्या वृष्णिपुङ्गव ।।३
गदा गृह्य महाघोरामायान्ती प्राणहारिणीम् ।
दुद्रावाथ निषादेश समुद्र मकरालयम् ।।४
धावत्येव तदा राज्ञि एकलव्ये निषादपे ।
धावत्येव च रामोऽपि यत्र यातो निषादप ।।५
सागर स प्रविश्याशु गत्वा योजनपञ्चकम् ।
भीत एव तदा राजन्नेकलव्यो निषादप ।।६
कश्चिद्द्वीपान्तर राजन्प्रविश्यन्यवसत्तदा ।
ततो रामो निषादेश जिगाय यदुनन्दन ।।७
ता सभा मणिरत्नाढ्या प्रविवेश हलायुध ।
सात्यकिर्युद्धससक्तस्ता सभा प्रविवेश ह ।।८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! इधर अत्यत बलशाली बलरामजी ने एकलव्य के हृदय पर एक अत्यंत घोर शक्ति का प्रयोग करके सिंहनाद किया ।।१।। तब उस प्रहार से अत्यत क्रोधित हुए एकलव्य ने भी उनके वक्ष-स्थल पर गदा मारी ।।२।। इस प्रकार घायल हुए बलरामजी ने एक अत्यत भयकर और प्राणों के नष्ट करने वाली गदा उठानी, जिसके कारण अत्यत भयभीत हुआ एकलव्य युद्धक्षेत्र छोड़ कर समुद्र की ओर भाग गया ।।३-४।। तब बलरामजी भी गदा ग्रहण किये हुए उसके पीछे-पीछे दौडे । इस प्रकार पाँच योजन तक भागने के पश्चात् एकलव्य समुद्र मे गोता लगाकर अदृश्य होगया और जल के

भीतर ही चलता हुआ एक द्वीप मे जाकर रहने लगा। इधर एकलव्य को परास्त और अदृश्य हुआ देख कर बलरामजी वहाँ से लौटे और यादवो की उसी सुधर्मा सभा मे जा पहुँचे। उसी समय बलवान सात्यकि भी उस सभा मे आ उपस्थित हुए ॥५-८॥

अन्ये च यादवा राजन्यथायोगमुपस्थिता ।
आसीनेपु च सर्वेपु वृष्णिवीरेपु सर्वत. ॥६
अभिवाद्य यथायोग वृष्णिन्सर्वांश्च केशवः ।
उवाच वचन काले भगवान्देवकीसुतः ॥१०
दृष्टं कैलासशिखरं शकरो नीललोहितः ।
स तु मह्य यदुवराः प्रीतिमाश्च ददौ वरम् ॥११
तत्र देवा समायाता मुनयश्च तपोधना ।
दृष्ट्वा मा शंकरश्चैव प्रीत स्तुत्वा समाययौ ॥१२
अत्यद्भुत मया दृष्ट रात्रौ यादवसत्तमा. ।
पिशाचौ द्वौ महाघोरौ वदन्तौ मामिका कथाम् ॥१३
मृगया चक्रतुस्तौ तु चिन्तयन्तौ तु मा सदा ।
दृष्ट्वा मा तौ तु राजेन्द्राः प्रीतिमन्तौ तपस्विनौ ॥१४
भक्तिनम्रौ महात्मानौ प्रणाम चक्रतुस्तदा ।
ततोऽह सर्वथा प्रीतस्तौ नीतौ स्वर्गमुत्तमम् ॥१५

कुछ समय मे अन्यान्य सभी यादव वहाँ आ-आ कर अपने-अपने स्थान पर बैठ गये। तब भगवान् श्रीकृष्ण ने उन सब को सत्कारित करके कहा— हे यादव वीरो ! कैलास पर्वत अत्यत ही सुरम्य है, मैंने वहाँ भगवान् शकर के भी दर्शन कर लिये और उन्होने प्रसन्न होकर मुझे वर भी प्रदान किया है ॥११॥ उस समय वहाँ अनेको देवगण और मुनिगण भी उपस्थित हुए थे। सभी भगवान् ने शंकर ने वहाँ आकर मेरी स्तुति की ॥१२॥ किन्तु वहाँ मुझे एक ·स्मयजनक घटना दिखाई दी। एक रात्रि के समय दो भयकर पिशाच

मृगया करते हुए वहाँ आकर मेरे विषय में चर्चा करने लगे। फिर उन्होंने मेरे पास आकर अत्यंत हर्ष सहित मुझे प्रणाम किया और फिर वहीं तपश्चर्या आरंभ कर दी। उनकी अपने प्रति असाधारण भक्ति देख कर मैंने उन्हे स्वर्गलोक प्राप्त कराया ॥१३-१५॥

तोषयित्वा महादेवं मया चाद्य समागतम् ।
ततस्ते वृष्णयः सर्वे देवदेवं शशंसिरे ॥१६
सर्वथा कृतकृत्यास्ते वृष्णयः केशवाश्रयाः ।
यादवाः सर्व एवैते स्वं स्वं जग्मुर्यथालयम् ॥१७
अभ्यन्तरे जगन्नाथः प्रविश्य हरिरीश्वरः ।
रुक्मिणीसत्यभामाभ्यामाचचक्षे यथाऽभवत् ॥१८
ते प्रीते प्रीतियुक्तेन केशवेन समन्विते ।
एतत्ते सर्वमाख्यातं केशवस्य विचेष्टितम् ॥१९
शशास पृथिवी कृत्स्नां दुष्टान् हत्वा महाबलान् ।
नरकं घोरकर्माणं पौण्ड्रकं नृपसत्तमम् ॥२०
हयग्रीवं निशुम्भं च तथा सुन्दोपसुन्दकौ ।
ररक्ष विप्रान्देवेशो मुनीन्मुनिवरार्चितः ॥२१
विप्रेभ्यश्च ददौ वित्तं गाश्च दत्वा॥ केशवः ।
अग्निहोत्रं प्रयुञ्जानो ब्राह्मणांश्च सुतर्पयन् ॥२२
मुनींश्च ब्रह्मचर्य ण देवान्यज्ञैरनेकधा ।
स्वधया च पितृन्सर्वान्प्रीणयन्नेव सर्वदा । ॥२३
तस्मिञ्छासति देवेशे राज्यं निष्कण्टकं प्रभो ।
सुखमेव प्रजाः सर्वा जीवन्ति ब्राह्मणादयः ॥२४

इसके पश्चात् मैंने भगवान् शकर को प्रसन्न किया और फिर आज ही यहाँ आरहा हूँ। वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! यह सुन कर सभी वृष्णियो ने भगवान् श्रीकृष्ण की प्रशंसा की और कहने लगे—आपका आश्रय प्राप्त करके हम सब धन्य होगये हैं। यह कहते हुए सभी यादव अपने-अपने निवास स्थान

को चले गये ॥१६-१७॥ फिर भगवान् श्रीकृष्ण भी अपने भवन में जा पहुँचे और उन्होंने अपनी रुक्मिणी-सत्यभामा आदि रानियों को अपनी यात्रा सब वृत्तान्त सुनाया ॥१८॥ भगवान् के आगमन से वे सब रानियाँ अत्यन्त हर्षित हुईं। हे राजन्! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण का सम्पूर्ण वृत्तान्त मैंने तुम से कहा है ॥१९॥ उन्होंने महाबली नरकासुर, पौण्ड्रक, हयग्रीव, निशुम्भ, सुन्द, उपसुन्द आदि को मार फिर पृथिवी का शासन व्यवस्थित किया। उनके इस कार्य से असंख्य मुनि और ब्राह्मण संकट से छूट गये। फिर उन्होंने ब्राह्मणों को बहुत-सा धन तथा असंख्य गौएँ दान दी और तदनन्तर अग्निहोत्र से ब्राह्मणों को, ब्रह्मचर्य से मुनियों को, यज्ञों से देवताओं को और स्वधा से पितरों को तृप्त किया ॥२०-२३॥ उनके शासन काल में राज्य की सुरक्षा में कोई कण्टक नहीं था और ब्राह्मणादि चारों वर्ण सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते थे ॥२४॥

॥ हंस-डिम्भक उपाख्यान ॥

भूय एव द्विजश्रेष्ठ शंखचक्रगदाभृतः ।
चरितं श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण तपोधन ॥१
न हि मे तृप्तिरस्तीह शृण्वतः केशवीं कथाम् ।
को नु नाम हरेर्विष्णोर्देवदेवस्य चक्रिणः ॥२
शृण्वंस्तथा स्मरन्वाऽपि तृप्तिं याति दिवानिशम् ।
पुरुषार्थोऽप्ययमेवं को यत्कथाश्रवणं हरेः ॥३
कथमासीज्जगद्धेतोर्हंसस्य डिम्भकस्य च ।
समितिः सर्वभूतानां सदा विस्मयदायिनी ॥४
विचक्रस्य कथं युद्धं दानवस्य महात्मनः ।
स तयोर्मित्रतां यात इत्येवमनुशुश्रुम ॥५

राजा जनमेजय ने कहा—हे तपोधन! भगवान् श्रीकृष्ण के निर्मल चरित्र को बारबार सुन कर भी मैं तृप्ति को प्राप्त नहीं हो रहा हूँ। इसलिये आप उनके पवित्र चरित्र को और भी विस्तारपूर्वक कहिये। उनके चरित्र

को दिन-रात्रि निरंतर रूप से सुनने पर भी कोई पूर्ण तृप्त नहीं हो सकता। क्योंकि प्रभु का चरित्र क्या, वह तो एक महान् पुरुषार्थ ही है ॥१-३॥ हे भगवन्! अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि भगवान् श्रीकृष्ण और हंस-डिम्भक में संसार को आश्चर्य में डालने वाला संग्राम क्यों हुआ था? दानव श्रेष्ठ विचक्र और उनके मध्य युद्ध होने का क्या कारण था? सुना जाता है कि विचक्र और वे परस्पर में मित्र थे ॥५॥

तौ सुतौवीर्य सपन्नौ शिष्यौ भृगुसुतस्य ह।
सर्वास्त्रकुशलौ वीरौ हरेर्लब्धवरौ किल ॥६
संग्रामः सुमहानासीदित्युक्तं भवता पुरा।
तयोश्च नृपयोर्विप्र केशवस्य जगत्पते. ॥७
कस्य पुत्रौ समुत्पन्नौ यथाऽभूद्विग्रहो महान्।
अष्टाशीतिसहस्राणि दानवाना तरस्विनाम् ॥८
बलान्यथ विचक्रस्य शितशूलधराणि च।
आसन्युद्धे महाराज दानवस्य महात्मनः ॥९
यदूनामन्तरं प्रेप्सुर्यदूना युद्धकाङ्क्षया।
देवासुरे महायुद्धे देवाञ्जयति दुर्धरः।
तद्वधार्थं सदा यत्नमकरोच्चैव केशव. ॥१०

वे हंस-डिम्भक महाबली, परम शास्त्रज्ञ और भार्गव के शिष्य थे तथा उन्होंने भगवान् से वर भी प्राप्त किया था ॥६॥ उन दोनों के पिता कौन थे? उनमें युद्ध किस लिये हुआ था? विचक्र के पास अट्ठासी हजार दानव सैनिक थे, जिनके पास सुतीक्ष्ण त्रिशूल थे और वे विचक्र की विजय-कामना करते रहते थे। युद्ध की इच्छा से वे सदा ही यादवों के छिद्र खोजते रहते। एक बार जब देवासुर-संग्राम उपस्थित हुआ था, तब उसने देवताओं को हराया था। इधर भगवान् श्रीकृष्ण भी उसे मारने का विचार करते रहते थे। इसलिये मैं इन सब वृत्तान्तों को भले प्रकार सुनने के लिये उत्कंठित होरहा हूँ ॥७-१०॥

असीच्छाल्वेषु राजेन्द्र ब्रह्मदत्तो नृपोत्तमः।
नाम्ना राजन्स पूतात्मा सर्वभूतदयापरः ॥११

पञ्चयज्ञपरो नित्यं जितात्मा विजितेन्द्रियः ।
ब्रह्मविद्वेदविच्चैव सदा यज्ञमयः शिवः ॥१२
तस्य भार्ये महीपाल रूपौदार्यगुणान्विते ।
बभूवतुः सुसंपन्ने अनपत्ये नृपोत्तम ॥१३
स ताभ्यां मुमुदे राजा शच्या शक्र इवाम्बरे ।
नाम्ना मित्रसहो नाम सखा चासीद्द्विजोत्तमः ॥१४
तस्य राज्ञो महायोगी वेदवेदान्ततत्परः ।
अनपत्यः स विप्रेन्द्रो यथा राजा बभूव ह ॥१५
स राजा सहितस्ताभ्यामर्चयामास शंकरम् ।
पुत्रार्थं शूलिनं शर्वं दश वर्षाण्यनन्यधीः ॥१६
स विप्रो वैष्णवं सत्रं पुत्रार्थं समयोजयत् ।
अर्चितस्तेन राजेन्द्र शंकरो नीललोहितः ॥१७
आत्मानं दर्शयामास स्वप्ने राजानमब्रवीत् ।
प्रीतोऽस्मि तव भद्रं ते वरं वरय सुव्रत ॥१८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! शाल्व नामक एक नगर में अत्यन्त पवित्र विचार वाला ब्रह्मदत्त नामक राजा निवास करता था ॥ ११ ॥ वह पंच यज्ञ-रत, जितात्मा, ब्रह्मज्ञानी, वेद विज्ञ यज्ञमय एवं श्रेष्ठ विचारों से युक्त था ॥१२॥ उसकी दो अत्यन्त रूपवती पत्नियाँ थीं, परन्तु दोनों में से किसी के भी कोई सन्तान नहीं हुई थी ॥१३॥ जैसे स्वर्गस्थ सुरपति इन्द्राणी शची के साथ सानन्द रहते हैं, वैसे ही अपनी रानियों के साथ ब्रह्मदत्त भी सुख से जीवन यापन करता था। उसका मित्रसह नामक ब्राह्मण सखा था ॥१४॥ मित्रसह भी वेद-वेदान्तों में पारगामी विद्वान् और योग-परायण था, वह भी राजा के समान ही निःसंतान था ॥ १५ ॥ राजा ब्रह्मदत्त ने पुत्र-प्राप्ति की कामना से भगवान् शंकर की उपासना करके उन्हें प्रसन्न किया था ॥१६॥ राजा के सखा मित्रसह ने भी पुत्र की कामना से विष्णु भगवान् की आराधना के लिये यज्ञ का अनुष्ठान किया था। हे राजन् ! राजा ब्रह्मदत्त और उनकी रानियों की आराधना से प्रसन्न हुए भगवान् शंकर ने एक रात्रि के समय स्वप्न में प्रकट होकर उनसे

कहा था—हे सुव्रत ! मैं तुम पर अत्यन्त प्रसन्न होगया हूँ, इसलिये तुम अपना अभिलषित वर माँगो ॥१७-१८॥

अथ राजा जगन्नाथमुवाचेदं स्मयन्निव ।
पुत्रौ मम भवेतां हि तथेत्युक्त्वा वृषध्वजः ॥१९
अन्तर्धानं गतः शम्भुः प्रतिबुद्धस्ततो नृपः ।
सोऽपि मित्रसहो विद्वान्देवं केशवमव्ययम् ॥२०
पञ्चवर्षं जगन्नाथमर्चयामास भक्तितः ।
अर्चितस्तेन विप्रेण देवदेवो जनार्दनः ॥२१
पुत्रमेकं ददौ तस्मै स्वात्मना सदृशं हरिः ।
ते भार्ये गर्भमाधत्तां तेजसा शंकरस्य ह ॥२२
विप्रभार्या महाराज वैष्णवं तेज आदधत् ।
महिष्यौ ते महावीर्ये पुत्रौ शंकरनिर्मितौ ॥२३
असूयेता महीपाल क्रमेणैव नृपस्य ह ।
स तयोश्च महाराज नामकर्मादिकाः क्रियाः ॥२४
चकार विधिवत्सर्वा विप्रेभ्योऽदान्महद्धनम् ।
स च विप्रो विनीतात्मा पुत्रमेकं हि लब्धवान् ॥२५
साक्षादिव जगन्नाथं स्थितं पुत्रात्मना नृप ।
जातकर्मादिकं सर्वं ब्राह्मणः स चकार ह ॥२६

इस पर प्रसन्न मुख हुए राजा ब्रह्मदत्त ने उनसे निवेदन किया—हे प्रभो ! मैं दो पुत्रों की कामना करता हूँ । यह सुन कर भगवान् शंकर ने 'ऐसा ही होगा' कहा और अन्तर्धान होगये । इस स्वप्न के पश्चात् ही राजा की निद्रा टूट गई । उधर मित्रसह ब्राह्मण भी निरन्तर पाँच वर्ष तक भगवान् विष्णु का आराधन करता रहा, तब उसके आराधन से प्रसन्न हुए भगवान् विष्णु ने उसे अपने ही समान श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न एक पुत्र होने का वर प्रदान किया । भगवान् शंकर की अनुकम्पा से राजा की दोनों रानियों ने और भगवान् विष्णु की कृपा से मित्रसह ब्राह्मण की भार्या ने गर्भ धारण किया ॥१९-२२॥ फिर समय

आने पर राजा ब्रह्मदत्त की दोनो रानियो ने एक-एक पुत्र प्रसव किया तब राजा ने अत्यन्त आनन्दपूर्वक उन पुत्रो का नामकरण आदि किया और फिर ब्राह्मणो को बहुत-सा धन प्रदान किया। मित्रसह ब्राह्मण की पत्नी ने भी साक्षात् विष्णु भगवान् के समान एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया, तब मित्रसह ने अत्यन्त उमग पूर्वक अपने उस पुत्र का जात कर्मादि संस्कारो को सम्पन्न किया ॥२३-२६॥

तौ कुमारावयं चैव त्रयः सवयसोऽभवन् ।
वेदानधीष्य ते सर्वाञ्छ्रुत्वा चान्वीक्षिकीं तथा ॥२७
धनुर्वेदे तथाऽस्त्रे च निपुणास्तेऽभवंस्तदा ।
हंसो ज्येष्ठो नृपसुतो डिम्भकोऽनन्तरोऽभवत् ॥२८
स च विप्रसुतो राजञ्जनार्दन इति स्मृतः ।
अन्योन्यं मित्रतां याताः सर्वे चैव कुमारकाः ॥२९

राजा ब्रह्मदत्त के दोनो पुत्र तथा मित्रसह ब्राह्मण का पुत्र यह तीनों अत्यन्त ही रूपवान् और सम वयस्क थे। धीरे-धीरे वयस्क होते हुए वे तीनो कुमार सभी वेदो और नीति शास्त्रो का अध्ययन करने लगे। इस प्रकार वे कुछ वर्षो में ही धनुर्वेद तथा सम्पूर्ण शस्त्र-विद्या मे पारगत होगये। उन राजा के पुत्रो मे से बडे का नाम हंस और छोटे का डिम्भ हुआ तथा मित्रसह के पुत्र का नाम जनार्दन पड़ा। उन तीनो कुमारो मे गहरी मित्रता स्थापित होगई थी ॥२७-२९॥

॥ हंस-डिम्भक की तपस्या ॥

हंसश्चं तपश्चतुं तथा डिम्भो महामतिः ।
मनश्चक्रतुरात्मांशौ शंकरस्य नृपोत्तम ॥१
गत्वा तु हिमवत्पार्श्वं तपश्चक्रतुरञ्जसा ।
उद्दिश्य शंकरं शर्वं नीलग्रीवमुमापतिम् ॥२
योर्याक्षौ चैव नौ स्यातामित्याध्याय तु मानसे ।
एकाग्रौ प्रयतौ भूत्वा वाय्वम्बुप्राशिनौ नृप ॥३

त्रियज्ञः शंकरः शर्वः शूलपाणिरुमापतिः ।
अग्रतः संस्थितं शर्वं चन्द्रार्द्धकृतशेखरम् ।
तौ दृष्ट्वा प्रीतमनसौ नमश्चक्रतुरञ्जसा ॥१०
वरं वरय भद्रं वां यथेच्छा वा तथास्तु वै ।
तावूचतुस्तदा राजन्प्रीतस्त्वं भगवन्यदि ॥११
देवीसुरचमूमुख्यैर्यक्षैर्गन्धर्वदानवैः ।
आवामजय्यौ सर्वात्मन्नेष नौ प्रथमो वरः ॥१२
द्वितीयो नौ विरूपाक्ष रौद्रास्त्राणां च संग्रहः ।
माहेश्वरं तथा रौद्रमस्त्रं ब्रह्मशिरो महत् ॥१३
अभेद्यं कवचं दिव्यमच्छेद्यं चापि कार्मुकम् ।
परशुं च तथा शर्व सदा रक्षार्थमेव च ॥१४

इस प्रकार वे दोनों अहंकार और ममता को त्याग कर, मौन में अव लम्ब पूर्वक पाँच वर्ष तक कठोर तपस्या करते रहे तब उन्हें शिवजी की प्रसन्नता प्राप्त हुई। उस समय भगवान् शंकर उन दोनों के समक्ष प्रकट होगये ॥८-९॥ वे भगवान् त्रियज्ञोपवीत और हाथ में शूल धारण किये हुए थे। उन दोनों कुमारों ने उन उमापति चन्द्रशेखर भगवान् शंकर के दर्शन करते ही परम प्रसन्न मनसे उनको नमस्कार किया॥ १० ॥ तब भगवान् शंकर बोले—हे पुत्रो ! तुम्हारी जो कामना हो वही मुख से माँग लो। यह सुन कर उन दोनों ने निवेदन किया—हे भगवन् ! यदि आप हम पर प्रसन्न हुए हैं तो हमारी कामना सुनें—हम देवता, दैत्य, राक्षस, गन्धर्व और असुर आदि से कभी भी न हारें तथा हमारे पास सब प्रकार के घोर कर्म वाले अस्त्रशस्त्र स्वयं ही एकत्र हो जाँय। माहेश्वरास्त्र, रौद्रास्त्र, ब्रह्मशिरास्त्र, अभेद्य कवच, दिव्य धनुष और फरसा हमें बिना प्रयत्न ही उपलब्ध हो जाँय ॥११-१४॥

सहायौ द्वौ महादेव भूतौ युद्धे हि गच्छताम् ।
एवमस्त्विति देवेश आह भृङ्गिरिटी हरः ॥१५

ततः स्वभवनं गत्वा पितुः पादावगृह्णताम् ।
पितुश्च सखुबलिनौ मातुश्च चरणौ तदा ॥२३
जनार्दनोऽपि धर्मात्मा कालेन महता नृप ।
विद्यापारं महाबुद्धिर्युक्तेनासावुपेयिवान् ॥२४
स च विष्णुं हृषीकेशं पीतकौशेयवाससम् ।
ब्रह्मतत्त्वपरो नित्यमुपास्ते विजितेन्द्रिय. ॥२५
हंसश्च डिम्भकश्चैव कृतदारौ बभूवतुः ।
जनार्दनोऽपि धर्मात्मा कृतदारो बभूव ह ॥२६
सर्वे ते यज्ञनिरताः पञ्चयज्ञपरास्तथा ।
स्वदारनिरता. सर्वे गुरुशुश्रूषणे रता. ।
धर्म एव परं श्रेय इति ते मेनिरे नृप ॥२७

इसके पश्चात् उन दोनो ने अपने घर जाकर माता-पिता के चरणों मे पड़ कर उनकी वन्दना की ॥२३॥ उधर मित्रसह का पुत्र धर्मात्मा जनार्दन भी जितेन्द्रिय रह कर और बुद्धिमत्ता पूर्वक पीताम्बर धारी भगवान् विष्णु की उपासना मे तन्मय रह कर ब्रह्मतत्व का चिन्तन करने लगा ॥२४-२५॥ फिर हंस, डिम्भ और जनार्दन—इन तीनो का ही विवाह संस्कार सम्पन्न हुआ और तब यह पंच यज्ञ के अनुष्ठान, एक पत्नी व्रत पालन और गुरु-सेवा मे तत्पर रहते हुए केवल धार्मिक कार्यों के अनुष्ठान मे ही लगे रहते थे ॥२६-२७॥

॥ हंस-डिम्भक का दुर्वासा से वार्तालाप ॥

जनार्दनश्च धर्मात्मा हंसो डिम्भक एव च ।
सदः प्रविश्य सत्त्वस्य नमश्चक्रुर्मुनीश्वरान् ॥१
तानागतान्महात्मानो मुनयः शिष्यसयुताः ।
अर्घ्यपाद्यासनादीनि चक्रुः पूजा प्रयत्नतः ॥२
तौ नृपौ स च विप्रेन्द्रः ९पर्या प्रतिगृह्य च ।
प्रीतात्मानो महात्मान आसते सम्मुखं नृप ॥३

ततो हंसो बभाषे तान्मुनीन्संयनवाङ् नृप ।
पिता हि नौ मुनिश्रेष्ठा यष्टुमिच्छत्ससाधनम् ॥४
गन्तव्यं तत्र युष्माभिः सत्रान्ते मुनिसत्तमाः ।
राजसूयेन यज्ञेन कृत्वा दिग्विजयं वयम् ॥५
याजयिष्याम हे विप्राः पितरं धार्मिकं नृपम् ।
आयान्तु तत्र विप्रेन्द्राः न सशिष्याः सपरिच्छदाः ॥६
वयमद्यैव सहितौ दिशो जेष्यामहे वयम् ।
शक्ता वयमिहैवैतत्कर्तुं सैनिकसंचयैः ॥७
आवयोः पुरतः स्थातुं न शक्ता देवदानवाः ।
कैलासनिलयाद्देवाद्वरं लब्ध्वा स्वयत्नतः ॥८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! फिर वे धर्मात्मा जनार्दन, हंस और डिम्भक—तीनों ही यज्ञ क्षेत्र में गये और वहां पहुँच कर उन्होंने मुनियों को नमस्कार किया ॥१॥ शिष्यों सहित स्थित उन मुनियों ने तुरन्त ही उन्हें अर्घ्य, पाद्य और आसनादि देकर उनका सत्कार किया ॥२॥ तब इस प्रकार सत्कृत हुए वे तीनों अत्यन्त प्रसन्न होकर श्रेष्ठ आसनों पर विराजमान होगये ॥३॥ फिर संयत वाणी वाले हंस ने उन मुनियों से कहा—हे तपस्वियो ! हमारे पिता एक अत्यन्त साधन सम्पन्न यज्ञ का अनुष्ठान करने के लिये इच्छुक हैं ॥४॥ इसलिये हे मुनिश्रेष्ठो ! आप अपने इस यज्ञ को पूर्ण करके मेरे यहां पधारने की कृपा करें। क्योंकि हम अपने पिताजी के द्वारा दिग्विजय वाले राजसूय यज्ञ को करायेंगे, इसलिये आप अपने शिष्यों और यज्ञ के उपकरणों के सहित आने का कष्ट करें ॥ ५-६ ॥ हम अपनी सेना के बल पर दिग्विजय की सहज ही आशा करते हैं। हमने कैलास-पति भगवान् शंकर को प्रसन्न करके सब प्रकार के दिव्य शस्त्रास्त्र प्राप्त कर लिये हैं, इसलिये मनुष्य तो क्या, देवता और दैत्य भी हमारा सामना नहीं कर सकते ॥७-८॥

अजय्यौ शत्रुसंघानामस्त्राणि विविधानि च ।
इत्युक्त्वा विरराजैव हंसो मदबलान्वितः ॥९

यदि स्यात्तत्र गच्छामो वयं शिष्यैर्नृपोत्तम ।
आस्महे वाऽन्यथा राजन्नित्यूचुः किल तापसाः ॥१०
ततो देशान्महाराज गन्तुं निश्चितमानसौ ।
पुष्करस्योत्तरं तीरं दुर्वासा यत्र तिष्ठति ॥११
यतयो नियता भूत्वा मन्त्रब्रह्मनिषेविणः ।
ब्रह्मसूक्तपदे सक्तास्तदर्थालोकतत्पराः ॥१२
निर्ममा निरहंकाराः कौपीनाच्छादनव्रताः ।
तमात्मानं जगद्योनिं विष्णुं विश्वेश्वरं विभुम् । १३
ब्रह्मरूपं शुभं शान्तमक्षरं सर्वतोमुखम् ।
वेदान्तमूर्तिमव्यक्तमनन्तं शाश्वतं शिवम् ॥१४
नित्ययुक्तं विरूपाक्षं भूताधारमनामयम् ।
ध्यायन्तं सर्वदा देवं मनसा सर्वतोमुखम् ।१५

हमारे पास असह्य आयुध विद्यमान हैं, इसलिये कोई भी शत्रु हमें जीतने मे समर्थ नही है । यह कह कर बलमद से अन्धा हंस चुप होगया ॥६॥ इस पर मुनियो ने कहा—हे नृपोत्तम ! यदि राजसूय यज्ञ का आपके यहाँ आयोजन हुआ तो हम अपने शिष्यादि के साथ उसमे अवश्य सम्मिलित होंगे ॥१०॥ वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! फिर हंस-डिम्भ ने चलने का विचार किया और फिर पुष्कर क्षेत्र के उत्तरीय तट पर स्थित महर्षि दुर्वासा के आश्रम को चल दिये ॥ ११ ॥ वहाँ ब्रह्मोपासन मे तत्पर, वेद निरत, लोकहित की आकांक्षा वाले कौपीन धारी जितेन्द्रिय योगीजन ममता और अहंकार को त्याग कर शान्त, शुभ, अक्षर, सर्वतोमुख, वेदान्त मूर्ति, अव्यक्त, अनन्त, शाश्वत, शिव, नित्ययुक्त, विरूपाक्ष, भूताधार, अनामय भगवान् विष्णु की सदा आराधना करते रहते थे ॥१२-१५॥

दुर्वाससा सदोपास्यं वेदान्तैकरसं गुरुम् ।
तर्कनिश्चिततत्त्वार्था ज्ञाननिर्मलचेतसः ॥१६
हंसाः परमहंसाश्च शिष्या दुर्वाससः प्रभो ।
गत्वा तत्र महात्मानो तौ दृष्ट्वा तूर्ध्वरेतसम् ॥१७

दुर्वाससं महाबुद्धि विचिन्वानं परं पदम् ।
क्रुद्धो यदि स दुर्वासा दग्धुं लोकानिमान्क्षमः ॥१८
देवा अपि च य द्रष्टुं क्रुद्धं वै न क्षमाः सदा ।
रोषमूर्तिः साद यस्तु रुद्रात्मा विश्वरूपधृक् ॥१९
रक्तकौपीनवसनो हंसः परम एव च ।
दृष्ट्वं नं च तयोरेवं बुद्धिरासीन्महामते ॥२०
को नामासौ महाभूतः काषायी वर्णवित्तमः ।
कश्चायमाश्रमो नाम विहाय च गृहाश्रमम् ॥२१

वहाँ महर्षि दुर्वासा के शिष्य अपने गुरु के सहित भगवान् की उपासना मे सदा तत्पर रहते थे । उन दोनों भाइयों ने वहाँ ऊर्ध्वरेता दुर्वासा को परब्रह्म के ध्यान मे मग्न देखा, वे महर्षि दुर्वासा यदि क्रोधित हो जाँय तो तीनो लोकों को भस्म करने में समर्थ थे ॥१६-१८॥ उस अवस्था मे देवता भी उनकी ओर देखने का साहस नही कर सकते थे । वे रोष मूर्ति एव विश्वरूप धारी महर्षि दुर्वासा मूर्तमान् क्रोध जैसे प्रतीत होरहे थे ॥१९॥ उन महामुनि को इस प्रकार लाल कौपीन धारण किये देख कर हंस-डिम्भ ने विचार किया कि ये काषाय वस्त्र वाला महाभूत कौन है ? जो गृहस्थाश्रम को छोड़ कर अब किस आश्रम का आश्रित है ॥२०-२१॥

गृहस्थ एव धर्मात्मा गृहस्थो धर्मवित्तमः ।
गृहस्थो धर्मरूपस्तु गृहस्थो वर्ण एव च ॥२२
गृहस्थश्च सदा माता प्राणिना जीवनं सदा ।
त विनाऽन्येन रूपेण वर्त्तते योऽतिमूर्खवत् ॥२३
उन्मत्तोऽयं विरूपोऽयमथवा मर्खं एव च ।
ध्यायन्निव सदा चायमास्ते वञ्चयिताऽपि वा ॥२४
किमेते प्राकृतज्ञाना ध्यायन्त इति किंचन ।
वयमेतान्दुरारोहानाश्रमान्तरकल्पकान् ॥२५
स्थापयिष्यामहे सर्वान्मन्दबुद्धीनिमान्हे ।
वलादेव द्विजानेतान्मूढविज्ञानतत्परान् ॥२६

असद्ग्राहगृहीतांश्च वालिशान्दुर्मतीनिमान् ।
एषा शास्ता च को मूढो न विप्रो वयमत्र ह ॥२७
धर्म्ये वर्त्मनि संस्थाप्य पुनर्यास्याव निर्वृतो ।
इति संचिन्त्य तो वीरो विप्रेण सहितो नृप ॥२८
जनार्दनेन राजानौ मोहाद्भाग्यक्षयान्नृप ।
समीप तस्य राजेन्द्र यतेः स यतचेतमः ॥२६
गत्वा च प्रोचतुरुभौ दुर्वाससमतीन्द्रियम् ।
यतीश्च नियतान्क्रुद्धो राजानौ राजसत्तम ॥३०

गृहस्थ ही धर्मात्मा, धर्मविद्, धर्मरूप और प्रधान वर्ण है। गृहस्थ ही सब प्राणियो के लिये माता स्वरूप है और वही जीवन प्रदान करने वाला है। इस प्रकार श्रेष्ठतम गृहस्थाश्रम को छोड कर अन्य आश्रम ग्रहण कर लेने वालो को उन्मत्त अथवा मूर्ख ही समझना चाहिये। इससे हम समझते हैं कि यह तपस्वी नही कोई पाखण्डी ही तपस्या के बहाने से यहाँ विराजमान है ॥२२-२४॥ इस प्रकार के साधारण ब्राह्मण आश्रम मे अन्तर करके ध्यानासक्त रहते हैं, इन मूर्खों को गृहस्थ बनाया जाना चाहिये। यदि सहज प्रयत्न से यह कार्य न हुआ तो बलपूर्वक इसकी व्यवस्था की जायगी ॥२५-२६॥ इस मूर्ख को न जाने किसने इस प्रकार के ढोग की शिक्षा दी है ? परन्तु, हम इन्हे धर्म मार्ग मे प्रवृत्त करके ही अपने घर चलेंगे। हे राजन् ! मोह मे पड कर उन क्षत्रियो ने जनार्दन को अपने साथ लिया और दुर्भाग्य के वशीभूत होकर उन सयत चित्त वाले महर्षि के पास गये ॥२७-२६॥ वहाँ आकर उन्होने दुर्वासा तथा अन्यान्य यतियो पर क्रोध पूर्वक दृष्टि-पात किया ॥३०॥

॥ हस-डिम्भक का दुर्वासा से दुर्व्यवहार ॥

ज्ञानलेशाद्विहीनात्मन् किं ते व्यवसितं द्विज ।
कश्चायमाश्रमो विप्र भवता य- समाश्रितः ॥१
गृहमेध परित्यज्य किं त्वया साधितं पदम् ।
दम्भ एव भवान्व्यक्तं शङ्के नास्त्यत्र कारणम् ॥२

लोकांश्चेमान्सदा मूढ नाशयिष्यसि निर्वृतः ।
एतान्सर्वान्विनेताऽसि नरके पातयिष्यसि ॥३
स्वयं नष्टः परान्मूर्ख नाशयिष्यसि यत्नतः ।
अहो शास्ता कथं नास्ति तव मन्दमतेर्द्विज ॥४
सर्वथा त्वद्विनेता च पापो नास्त्यत्र संशयः ।
त्यक्त्वेममाश्रमं विप्र गृही भव यतात्मवान् ॥५
पञ्च यज्ञान्सदा विप्र कुरु यत्नपरो भव ।
ततः स्वर्गं परं गत्वा स्वर्गे हि सुमहत्सुखम् ॥६
एष श्रेयः पथो विप्र जीविते चेत्स्पृहा तव ।
इत्युक्तवन्तौ धर्मात्मा श्रुत्वा विप्रो जनार्दनः ॥७
उवाच च यतिं दृष्ट्वा प्रणम्यासौ सुनीतवत् ।
मा ब्रूतामीदृशं वाक्यं राजानौ मन्दचेतसौ ॥८

हंस-डिम्भक ने कहा—हे ब्राह्मणो ! मैं आपको इस समय ज्ञान-विहीन देखता हूँ । आपका यह कौनसा आश्रम है, जिसके अनुसार आप यह सब कर रहे हैं ॥१॥ गृहस्थाश्रम को छोड कर यह किसकी साधना की जारही है । इससे स्पष्ट है कि इसमे दम्भ के अतिरिक्त कुछ नहीं है ॥२ । यह भी प्रतीत होता है कि आपके इस कर्म से सभी लोकों का नाश हो जायगा और इस अकर्म के कारण इन सब ब्राह्मणों को नरक की प्राप्ति होगी ॥३॥ अरे खोटी मति वालो ! तुम स्वयं तो नष्ट हो ही चुके हो, परन्तु इससे दूसरे भी नष्ट हो जायँगे । क्या ऐसे कर्म से तुम्हे कोई रोकने वाला नहीं है ? ॥४॥ इससे प्रतीत होता है कि आपको प्रेरित करने वाले पापात्मा हैं, इसलिये आप इस आडम्बरमय आश्रम को छोड़ कर गृहस्थ बनिये और तब पंच यज्ञो के अनुष्ठान को करते हुए आपको यथेष्ठ सुख और स्वर्ग की प्राप्ति होगी ॥५-६॥ हे विप्रो ! यदि जीवन की कामना है तो इसी कल्याण मार्ग को अपनाइये । हंस-डिम्भक के इन वचनों को सुन कर ब्राह्मण श्रेष्ठ जनार्दन भयभीत होगया और उसने दुर्वासा को प्रणाम करके उन राजकुमारो से कहा कि आप निश्चय ही मन्द बुद्धि वाले हैं ॥७-८॥

अश्राव्यमीदृशं घोरं लोकयोरुभयोरपि ।
को वस्तुमीशो मन्दात्मा यदि जीवेत्सबान्धवः ॥९
सर्वथा काल एवायं युवयोर्मन्दचेतसोः ।
समाप्त आयुषः शेषो ब्रह्मदण्डहतो युवाम् ॥१०
एते हि यतयः शुद्धा ज्ञानदीपितचेतसः ।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति ॥११
त्वत्ते वामीदृशं वाक्यं कः समर्थो ह्यनुब्रुवन् ।
सर्वथा ज्ञातमस्माभिः समाप्तमिह जीवितम् ॥१२
चत्वार आश्रमाः पूर्वमृषिभिर्विहिता नृपौ ।
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थश्च भिक्षुक. ॥१४
तेषामग्रश्चतुर्थोऽयमाश्रमो भिक्षुकः स्मृतः ।
आस्ते तस्मिन्महाबुद्धि. स हि पुण्यतरः स्मृतः ॥१४

अब फिर इस बात को आप न कहें, क्योंकि यह वचन इहलोक-परलोक—दोनो मे ही सुनने योग्य नही हैं । ऐसा कौन मूर्ख होगा जो वंश सहित जीवन की कामना करता हुआ ऐसे वाक्यो को मुख से निकालेगा ? ॥९॥ यह वाक्य तुम्हारे लिये काल के समान हैं । मुझे प्रतीत होता है कि अब तुम्हारी आयु शेष नही रही है और तुम पर ब्रह्मदण्ड का आघात होने वाला है ॥१०॥ तुम जिन शुद्ध अन्तःकरण वाले यतियो से ऐसा कह रहे हो, उनके हृदयों में ज्ञान का प्रकाश भर गया है । उस ज्ञानाग्नि से इनके सब कर्म भस्म हो चुके हैं और इस समय यह प्राणों मे अपने प्राणो का हवन कर रहे हैं ॥११॥ तुम्हारे अतिरिक्त इस प्रकार के वचन और कौन कहेगा ? मैं समझता हूँ कि तुम अब नष्ट जीवन हो चुके हो ॥ १२ ॥ प्राचीन कालीन ऋषियो ने ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास यह चार आश्रम कल्पित किये थे ॥१३॥ उन चारो में सन्यासाश्रम को ही सर्वोत्तम माना गया है । इस आश्रम मे जीवन व्यतीत करने वाला मनुष्य ही बुद्धिमान एवं पुण्यात्मा है ॥१४॥

नोपासिता मधद्रूयां च वृद्धाः सम्यग्विनीतवत् ।
ज्ञानं नाप्तं तपस्तेभ्यस्तथा वेदं वदेत कः ॥१५

अश्राव्यमीदृशं घोरं मया प्राणभृता नृप।
किं करिष्यामि मन्दात्मन्मित्रत्वाद्ध्रुवतो नृप ॥१६
ज्ञानं यदाप्तं भवता गुरुभ्यस्तदल दुःखाय हि केवलं नृप।
ज्ञानं हि धर्मप्रभवं यथेष्टं बलाद्विपापस्य विघातृरूपम् ॥१७
युवां विहाय यास्ये वा पतेयं वा शिलातलम्।
पिबेयं वा विषं घोरं पतेयं वा महोर्मिषु ॥१८
आत्मानं वात्र संत्यक्ष्ये पश्यतां शृण्वतां पुनः।
इत्युक्त्वा विललापैव मा ब्रूतमिति तौ वदन् ॥१६

तुम दोनों ने विनयपूर्वक वृद्ध जनों की कभी सेवा नहीं की है, इसीलिये तुम्हें उनके द्वारा किसी श्रेष्ठ ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई है और तुम्हारे मुख से इस प्रकार के अनर्गल प्रलाप के होने का भी यही कारण प्रतीत होता है ॥१५॥ हे राजन्! मैं तो अभी अपने जीवन की कामना किये हुए हूँ, इसलिये ऐसे अनिष्टकारी वचनों को सुनने की इच्छा नहीं करता। परन्तु तुम्हारे साथ मित्रता होने के कारण ही आज यह वाक्य सुनने को मिले हैं ॥१६॥ हे राजन्! तुमने गुरुजी से जिस ज्ञान की प्राप्ति की है, वह आज अनुभव न होने के कारण दुःख रूप होगया है, क्योंकि ज्ञान को धर्म का कारण होना चाहिये, परन्तु तुम्हारा ज्ञान पाप का कारण होता हुआ दिखाई देता है ॥१७॥ यदि फिर कभी ऐसी बात हुई तो मैं तुम्हारा त्याग कर दूँगा और पर्वत से गिर कर प्राण दे दूँगा, अथवा भयंकर विष-पान करके या समुद्र में गिर कर ही जीवन विसर्जित कर दूँगा ॥ १८ ॥ अथवा तुम्हारे सामने ही मर जाऊँगा। इस प्रकार कहते हुए जनार्दन ने पुनः वैसी बात न कहने का उन दोनों राजपुत्रों से अनुरोध किया ॥ १६ ॥

॥ महर्षि दुर्वासा का क्रोध ॥

ततः क्रुद्धोऽथ दुर्वासा दग्धानिव तयोरसून्।
एकेनाऽक्ष्णाऽथ दुर्वासा रौद्रेणाग्निजा सदा ॥१

पश्यंस्तौ च दुरात्मानौ रोषव्याकुलितेन्द्रियः ।
कुर्वन्निव तदा लोकान्भस्मभूतानिमान्नृप ॥२
ब्राह्मणं चक्षुषा पश्यन्सौम्येनान्येन केवलम् ।
उवाच वचनं राजन्त्वं सत त्वं सतेति च ॥३
इतो गच्छत राजानौ किं विलम्बत मा चिरम् ।
न वां वचनसम्भूतं रोषं धारयितुं क्षमे ॥४
अन्यथा वो महीपालान्सर्वान्दग्धुमहं क्षमः ।
किमतः साहसं वक्तुं कश्च शक्नोति मत्पुरः ॥५
दर्पं वा लोकविख्यातः शङ्खचक्रगदाधरः ।
व्यपनेष्यति मन्दज्ञौ किं वो वक्ष्यामि साम्प्रतम् ॥६
तत उत्थाय धर्मात्मा गन्तुमैच्छद्यतीश्वरः ।
ततो निषेद्धुं हंसस्तु यतते स्म यतीश्वरम् ॥७
तस्य बाहु समादाय हंसो नृपवरोत्तमः ।
कौपीनं चिच्छिदे क्रूरः कृतान्त इव सत्तम ॥८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन्! फिर महर्षि दुर्वासा ने रुष्ट होकर उन दोनों को इस प्रकार देखा जैसे उन्हें तत्काल भस्म कर देना चाहते हों। क्रोध के कारण उनकी समस्त इन्द्रियाँ जलने लगीं और उस समय वे सब लोकों को भस्म करने में उद्यत प्रतीत होने लगे ॥१-२॥ परन्तु, दूसरे नेत्र से उस जनार्दन ब्राह्मण को उन्होंने प्रीति पूर्वक देखा और फिर हंस-डिम्भक से कहा—तुम दोनों यहाँ से अविलम्ब चले जाओ। मेरे वचन मानने में किंचित् भी देर मत करो। क्योंकि तुम्हारे वचनों से मैं इतना क्रोधित हो गया हूँ कि, अब उसके वेग को नहीं रोक पा रहा हूँ ॥३-४॥ मैं क्रोधित होने पर तुम समस्त राजाओं को तत्काल भस्म करने में मैं समर्थ हूँ, मेरे सामने ऐसे वाक्य कौन बोल सकता है? ॥५॥ मैं तुमसे अधिक कुछ नहीं कहना चाहता, तुम्हारे इस गर्व को शङ्ख-चक्र-गदाधारी भगवान् श्रीहरि ही चूर्ण करेंगे ॥६॥ यह कह कर धर्मात्मा दुर्वासा वहाँ से चलने लगे तभी राजकुमार हंस ने उन्हें हाथ पकड़ कर रोका और यमराज के समान क्रूर होकर उनकी कौपीन फाड़ दी ॥७-८॥

यतयोऽन्ये पलायन्ति दिशो दश विचेतसः ।
कष्टं हंति वदन्विप्रो मित्रभावाज्जनार्दनः ॥९
न्यवारयद्यथाशक्ति किमिदं साहसं त्विति ।
दुर्वासाः सत्यधर्मस्तु हन्तुमीशोऽपि तं ततः ॥१०
मन्दं मन्दमुवाचेदं हंसं डिम्भकमेव च ।
शापेनाहं समर्थोऽपि हन्तुं राजकुलाधमौ ॥११
तथापि न करोम्यन्तं यतयो ह्यत्र ते वयम् ।
यो हि देवो जगन्नाथः केशवो यादवेश्वरः ॥१२
शङ्खचक्रगदापाणिर्गर्वं वां व्यपनेष्यति ।
लोके तस्मिन्यदुश्रेष्ठे रक्षत्येवं जगत्पतौ ॥१३
युवयोः सर्वथा जीवः सज्जीव इति मे मतिः ।
जरासन्धोऽपि वां बन्धुः स च वक्तुं न चेच्छति ॥१४

यह देख कर आश्रम में निवास करने वाले अन्यान्य मुनिगण वहाँ से भागने लगे। तभी जनार्दन ब्राह्मण ने कहा—कैसे दुःख का विषय है, आप ऐसा दुःसाहस क्यों कर रहे हैं? यह कह कर उसने राजकुमारों को निवारण करने का बहुत प्रयत्न किया। उसी समय उन्हें भस्म कर देने में समर्थ महर्षि दुर्वासा ने उनसे मधुर शब्दों में कहा—अरे राजकुल में अधम कुमारो! मैं अपने तपोबल से तुम्हें अभी नष्ट कर सकता हूँ, परन्तु यति होने के कारण हम वैसा नहीं करना चाहते। आज इस पृथिवी का शासन यादवेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण कर रहे हैं, वही तुम्हारे अहंकार मद को नष्ट करेंगे। उन जगत्पति भगवान् श्रीहरि के शासन-काल में तुम जीवन धारण किये हुए हो, यह भी तुम्हारे लिये कम सौभाग्य की बात नहीं है। यद्यपि राजा जरासन्ध तुम्हारा बन्धु है, परन्तु तुम्हारी जैसी दूषित वाणी तो उनके मुख से भी न निकलेगी ॥९-१४॥

ईदृशं लोकविद्विष्टं न हि धर्मपथं सदा ।
एतावता स वां बन्धुर्न हि भूयो भविष्यति ॥१५
विद्वेषो ह्यस्तु वां तस्य मागधस्य महीपतेः ।
भुक्त्वेदं पौरुषं तु न हि बन्धुः सहेत चेत् ॥१६

धर्मनाशो भवेत्तस्य नात्र कार्या विचारणा ।
इत्युक्त्वा गच्छ गच्छेति हंसं प्राह पुनः पुनः ॥१७
जनार्दनमुवाचेद दुर्वासा यतिसत्तमः ।
स्वस्त्यस्तु तव विप्रेन्द्र भक्तिरस्तु जनार्द्दने ॥१८
संगतिस्तव तस्यास्तु शङ्खचक्रगदाभृतः ।
अद्य श्वो वा परश्वो वा साधुरेव सदा भवान् ॥१९
न हि साधोर्विनाशोऽस्ति लोकयोरुभयोरपि ।
गच्छ सर्वं पितुर्व हि ज्ञात्वा वृत्तं यथाऽखिलम् ॥२०

तुम्हारे ऐसे व्यवहार को देख कर धर्म पथ पर चलने वाला जरासन्ध भी तुम्हें बन्धु कह कर सम्बोधित न करेगा ॥१५॥ यदि इस वृत्तान्त को वह मगधराज सुन लेगा, तो तुमसे अपनत्व का त्याग कर देगा । यदि ऐसा न करेगा तो उसका धर्म नष्ट होने मे भी सन्देह नहीं है । यह कह कर महर्षि दुर्वासा ने हंस-डिम्भक को वहाँ से चले जाने के लिये बारम्बार कहा और फिर विप्र जनार्दन से बोले—हे विप्रेन्द्र ! तुम्हारा मंगल हो और भगवान् श्रीहरि के चरणों में तुम्हारी अविचल भक्ति बनी रहे ॥१६-१८॥ तुम्हें उन शंख-चक्र-गदाधर भगवान् के दर्शन अवश्य प्राप्त होंगे और तुम आज, कल या परसों में से किसी दिन भी यथार्थ रूप मे साधु हो जाओगे ॥१९॥ इहलोक या परलोक मे—साधु का विनाश कहीं भी सम्भव नहीं है । अब तुम अपने घर जाकर अपने पिताजी को भी इस सम्पूर्ण वृत्तान्त से अवगत करो ॥२०॥

॥ दुर्वासा का द्वारका जाना ॥

ततस्तौ हंसडिम्भकौ क्रुद्धौ कालेन चोदितौ ।
शिक्यं कमण्डलुं चैव द्विदलं दारुमेव च ॥१
दण्डान्पात्रविशेषांश्च छित्वा भित्वा च सर्वशः ।
तस्मिन्देशे महाराज व्याघ्रं मौसान्यदीदहन् ॥२
भक्षयित्वा ततो देशात्स्वपुरी तौ प्रजग्मतुः ।
जनार्दनश्च धर्मात्मा स्नेहादनुययौ तयोः ॥३

नष्टाविमाविति तदा स मेने दुःखितः परम् ।
गतेषु तेषु सर्वेषु दुर्वासा यतिसत्तम. ॥४
पलायनपरान्सर्वानिदं प्राह यतीश्वरान् ।
इतो देशाद्विनिर्गत्य पुष्करात्पुण्यसंयुतात् ॥५
मन्दं मन्दं समाश्वास्य विश्रम्य च ततस्ततः ।
प्रविश्य द्वारकां देवं शंखचक्रगदाधरम् ॥६
दृष्ट्वा च तस्मै प्रभवे वक्ष्यामो यतिसत्तमाः ।
स हि रक्षञ्जगदिदं धर्मवर्त्मनि संस्थितः ॥७
आद्यो लोकगुरुर्विष्णुर्युतात्मा तत्त्ववित्प्रियः ।
उद्धृत्य कण्टकान्सर्वाञ्छशास पृथिवीमिमाम् ॥८
स च पापान्महाघोरान्सर्वान्पापकृतान्प्रभुः ।
रक्षेन्नः सकलान्सर्वाञ्ज्ञानेषु नियतात्मनः ॥९

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! फिर हंस-डिम्भक ने काल के वशीभूत होकर उन मुनियों के शिक्य, कमण्डलु, दण्ड तथा और भी अनेकों पात्रों को तोड़-फोड़ दिया और फिर अपने नगर में वापिस आगये । उस समय जनार्दन ब्राह्मण भी उनके पीछे-पीछे चल रहा था ॥१-३॥ परन्तु मार्ग में वह मन ही मन विचार कर रहा था कि यह दोनों राजा मृतक जैसे ही होगये । जब वह लोग वहाँ से चले आये, तब महर्षि दुर्वासा ने वहाँ से भागते हुए यतियों को रोकते हुए कहा—हे यतियो ! श्रम मत करो । अब इस पुण्यमय पुष्कर क्षेत्र को छोड़ कर हम शीघ्र ही द्वारकापुरी के लिये चल दें और वहाँ शंख-चक्र-गदाधर भगवान् श्रीकृष्ण को यह सब वृत्तान्त सुनावें, क्योंकि वे विश्व-शासक भगवान् संसार में धर्म के एक मात्र प्रवर्त्तक हैं ॥४-७॥ वे ही सब प्रपंच के मूल कारण, सभी के परम गुरु और संयतात्मा हैं । तत्त्व-ज्ञानियों के लिये वे अत्यन्त ही प्रिय हैं । जब वे कंटकरूपी पृथिवी के सभी कांटों को हटा कर उसका शासन करते हैं, तो वे ही दुराचरण में प्रवृत्त इन पापियों का मर्दन करके हमारी सब प्रकार रक्षा करेंगे ॥८-९॥

इदमद्य क्षमं विप्रा यानमद्य विधीयताम् ।
साहसं यत्कृतं ताभ्यां पात्रभेदादि सत्तमा. ॥१०
एतत्सर्वमशेषेण दर्शयाम जनार्दनम् ।
तथेति ते प्रतिज्ञाय यतयो ज्ञानचक्षुषः ॥११
छिन्नं ताभ्यां समादाय शिक्यं दारुमयं तथा ।
द्विदलं कर्पटं चैव कौपीनमथ वल्कलम् ॥१२
कमण्डलुं तथा राजन्नर्धप्रोतकपालकम् ।
एतानन्यान्समादाय द्रष्टुं केशवमाययुः ॥१३
पञ्च चैव सहस्राणि पुरस्कृत्य महामुनीन् ।
दुर्वाससं तपोयोनिमीश्वरस्यात्मसंभवम् ॥१४
अहोरात्रेण ते सर्वे द्वारकां कृष्णपालिताम् ।
ययुर्दान्ता महात्मानो लोमशा केशवर्जिताः ॥१५
प्रातः प्रविश्य राजेन्द्र वापिकायां यतीश्वराः ।
स्नात्वोपस्पृश्य ते सर्वे यत्नेन महता तदा ॥१६
द्रष्टुमभ्युद्यता विष्णुं वण्टकोद्धृतितत्परम् ।
एकरूपं समास्थाय सुधर्मायामवस्थितम् ॥१७

इसलिये अब हमें आज ही यहाँ से चल देना चाहिये । उन पापियों ने हमारे जिन पात्रादि को तोड़-फोड़ दिया है, उन्हें भी भगवान् को दिखाने के लिये साथ ही ले चलें । ऐसा स्थिर करके उन सभी ज्ञानचक्षु यतिगण ने अपने काष्ठयुक्त शिक्य, द्विदल, कर्पट, कौपीन, वल्कल वस्त्र, कमण्डलु आदि वस्तुओं को साथ लेकर द्वारका के लिये प्रस्थान किया ॥१०-१३॥ इस यात्रा में महर्षि दुर्वासा सब से आगे और पाँच हजार यतिगण उनके पीछे-पीछे चल रहे थे ॥१४॥ केश-रहित और केश-युक्त वे सभी महात्मा दिन-रात यात्रा करते हुए द्वारकापुरी में जा पहुँचे तब उन सब ने प्रातःकाल के समय बावली में स्नान किया और नित्य नैमित्तिक कर्म से निवृत्त हुए ॥१५-१६॥ फिर उन सब ने अद्भुत और मनोज्ञ स्वरूप धारण किया और तुरन्त ही सुधर्मा सभा में प्रतिष्ठित भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शनार्थ चल दिये ॥१७॥

।। दुर्वासा का श्रीकृष्ण से सम्भाषण ।।

अथ सर्वेश्वरो विष्णुः पद्मकिंजल्कलोचनः ।
श्यामः पीताम्बरः श्रीमान्प्रलम्बाम्बरभूषणः ॥१

किरीटी श्रीपतिः कृष्णो नीलकुञ्चितमूर्द्धजः ।
अव्यक्तः शाश्वतो देवः सकलो निष्कलः शिवः ॥२

क्रीडाविहारोपगतः कदाचिदभवद्धरिः ।
कुमारैरपरैः सार्द्धं सात्यकिप्रमुखैर्नृप ॥३

गोलक्रीडां सुधर्मायां मध्ये यादवसत्तमः ।
चकार प्रियकृत्कृष्णो युयुधानेन केशवः ॥४
ममाय प्रथमो गोलस्तव पश्चाद्भविष्यति ।
इति ब्रुवंस्तदा विष्णुः सात्यकिं कमलेक्षणः ॥५

पार्श्वस्था यादवास्तस्य वसुदेवपुरोगमाः ।
उद्धवप्रमुखा राजन्नासेदुः क्वचिदसर्वे ॥६

अन्यव्यापाररहितो भूतात्मा भूतभावनः ।
विजहार यथा रामः सुग्रीवेण पुरा नृप ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! उस समय कमल नयन, श्याम वर्ण, पीताम्बर, भव्य वसन, श्रेष्ठ अलंकार और किरीटधारी, अत्यन्त कृष्ण वर्ण के चिकने और कुंचित केश वाले सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण सात्यकि आदि यादव यतियों के साथ क्रीड़ा करने के लिये उद्यत होकर सुधर्मा सभा में विराजमान थे ॥१-३॥ यादव श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्ण उस सभा में विराजमान होकर सात्यकि के साथ गोली क्रीड़ा में लगे थे। क्रीड़ा के प्रारम्भ में ही उन्होंने सात्यकि से कहा कि—हे सात्यकि प्रथम मैं गोली फेंकूँगा, फिर तुम फेंकना ॥४-५॥ उस समय वसुदेवजी और उद्धवजी प्रभृति यादव उस सभा में वहाँ अवस्थित थे ॥६॥ जैसे त्रेतायुग में सुग्रीव के साथ भगवान् श्रीराम खेलते थे, वैसे ही कोई कार्य न होने पर भगवान् श्रीकृष्ण भी प्रेम से लग जाते थे ॥७॥

मध्यं दिने महाविष्णुः शनैयेन सहाच्युतः ।
विक्रीड्य सुचिरं कृष्ण उपारंसीत्स यादवः ॥८
द्वाःस्थेन वारिताः पूर्वं द्वार्येव च समास्थिताः ।
इदमन्तरमित्येवं विविशुस्तां सभां नृप ॥९
यतयो दीर्घतपसः पुरस्कृत्य तपोधनम् ।
दुर्वाससं सुमनसो ददृशुर्यादवेश्वरम् ॥१०
गोलक्रीडासमासक्तं करसंस्थितगोलकम् ।
पद्मपत्रविशालाक्षं विष्णुं तं सात्यकिं हरिम् ॥११
एकेनाक्ष्णा ह्लादयन्तं परेणान्येन गोलकम् ।
यतयश्च महाराज प्रत्यदृश्यन्त तत्पुरः ॥१२
वृष्णिपः पुण्डरीकाक्षः सात्यकिर्बलभद्रकः ।
वसुदेवस्तथाऽक्रूर उग्रसेनस्तथा नृप ॥१३
अन्ये च यादवाः सर्वे संभ्रमं प्रतिपेदिरे ।
इदं किमिदमित्येवं व्याशङ्कमनसोऽभवन् ॥१४
पृष्ठतोऽप्यनुगच्छन्ति दिधक्षन्त जगत्त्रयम् ।
अर्धकौपीनवसनं स्मरन्तं कमपि द्विजम् ॥१५
अन्तस्तापसमायुक्तं छिन्नदण्डधरं यतिम् ।
अन्तर्ज्वलन्तं रोषेण हंसासादितकल्मषम् ॥१६

उस क्रीडा के चलते हुए मध्याह्न काल होगया, तब उनकी एक बाजी पूर्ण हुई ॥८॥ उन तपस्वी यतियों को सभा-द्वार पर पहुँचे हुए कुछ देर हो चुकी थी और द्वारपाल द्वारा रोके जाने पर वे सभा स्थल मे प्रविष्ट नहीं हो सके थे। फिर अनुमति प्राप्त होने पर वह सम्पूर्ण मुनि-समूह सभा भवन मे आ पहुँचा ॥९-१०॥ तब उन्होंने देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण अपने हाथ मे गोली लिये हुए, सात्यकि के साथ क्रीडा मे तन्मय हो रहे हैं ॥ ११ ॥ उस समय वे एक नेत्र से क्रीडा को ओर दूसरे नेत्र से उन आये हुए यतियों को देख रहे थे ॥ १२ ॥ उन यतियो के सहित महर्षि दुर्वासा को वहाँ आये देख कर भगवान् श्रीकृष्ण, बलभद्रजी, सात्यकि, वसुदेव, अक्रूर, उग्रसेनजी तथा अन्यान्य उपस्थित

यादवगण विस्मय पूर्वक उनकी ओर देखने लगे ॥ १३ १४ ॥ उस समय महर्षि दुर्वासा की भयंकर मुद्रा को देख कर ऐसा प्रतीत होता था कि उनके क्रोधानल में पड कर तीनो लोक भस्म हो जांयगे। उनके मुख पर उनके मन का सन्तप्त और चिन्तनशील होना स्पष्ट आभासित हो रहा था। उनके हाथ मे टूटा हुआ दण्ड स्थित था तथा वे एक आधी कौपीन धारण किये हुए थे और हंस के द्वारा तिरस्कृत होने के कारण क्रोधानल का कोप बढ़ रहा था ॥१५ १६॥

नेत्रोत्थितमहार्वाह्नि प्रेक्षन्त यादवेश्वरम् ।
दुर्वासस ते ददृशुर्भीता यादवसत्तमा ॥१७
किं करिष्यत्यसौ क्रुद्ध किं वा वक्ष्यति न प्रभु ।
इति प्राञ्जलय सर्वे यादवा प्रतिपेदिरे ॥१८
इदमासनमित्येव किंचिदूचुश्च वृष्णय ।
तत कृष्णो हृषीकेश किंचिदुत्प्लुत्य तत्पुर ॥१९
इदमासनमित्येव स्थीयतामिह निर्वृत ।
अहमद्य स्थितो विप्र किंकरोऽस्मीति चाब्रवीत् ॥२०

वे जब भगवान् कृष्ण की ओर देख रहे थे तब उनके नेत्रो से रोष की ज्वाला निकलती प्रतीत हो रही थी। इससे सभी यादव नितान्त भयभीत होकर विचार करने लगे कि अब न जाने कौन-सी विपत्ति आने वाली है और हमारे स्वामी इनसे क्या कहेंगे ? ऐसा तर्क वितर्क करते हुए वे यादव महर्षि के सामने हाथ जोड कर खडे होगये ॥१७ १८॥ फिर उन यादवो ने महर्षि से कहा—हे महर्षे ! आप कृपया इस आसन पर विराजमान हों। तभी सहसा भगवान् श्री-कृष्ण भी शीघ्रता से उठ कर महर्षि के सामने जाकर बोले—हे ब्रह्मन् ! यह आसन है इस पर सुख पूर्वक बैठिये, और अपने मुझ सेवक को आज्ञा दीजिये ॥ १९-२० ॥

तत किंचिदिवासीन आसने यतिविग्रह ।
आसने स स्थिते तस्मिन्यतयो वीतमत्सरा ॥२१

आसनानि यथायोग भेजिरे निर्वृता. किल।
अर्घादिसमुदाचार चक्रे कृष्णः किरीटभृत् ।२२
आह भूयो हृषीकेशो यति दुर्वासस प्रभुम् ।
किमर्थं ब्रूहि विप्रेन्द्र अस्मिन्प्रत्यागमो हि वः ॥२३
दृष्ट वा ह्यथवा किंचित्कारण चास्ति वो महत् ।
सन्यासिनो द्विजश्रेष्ठा यय विगतकल्मषा ॥२४
निःस्पृहाश्च सदा यूयमस्मत्तो द्विजपुङ्गवाः।
प्रार्थ्य नाम न चैवास्ति स्पृहा नैवास्ति वो यत ॥२५
स्पृहाप्रेरितकर्माण. क्षत्रियान् यान्ति सुव्रताः ।
निरूप्यमाणमस्माभिर्विप्र किंचिन्न दृश्यते ॥२६
न जाने कारण ब्रह्मन्युष्मदागमन प्रति ।
एतावता चानुमेय किंचित्कारणमस्ति वै ॥२७
तद्ब्रूहि यदि विद्येत त्वत्तो ज्ञास्यामहे वयम् ।
इत्युक्तवति देवेशे चक्रपाणौ जनार्दने ॥२८
तस्यापि राणाविप्रस्य भूयः कोपो महानभूत् ।
तस्मादभ्यधिकः पूर्वात्कोपः सजायते महान् ॥२९

यह सुन कर यति श्रेष्ठ दुर्वासा उस आसन पर बैठ गये तब अन्यान्य यतिगण भी यथा योग्य स्थान पर विराजमान हुए तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्घ्य-पाद्यादि देकर यथोचित पूजन के पश्चात् उनसे कहा—हे विप्रेन्द्र ! आप अपने यहाँ पधारने का प्रयोजन बताने की कृपा करिये ॥ २१-२३ ॥ आप सब पाप-रहित देह वाले और सन्यास मार्ग पर चलने वाले श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं ॥२४॥ इसलिये हम से आपकी कुछ कामना तो हो नहीं सकती, फिर आपके आने का क्या कारण, यह बहुत कुछ विचारने के पश्चात् भी हम स्थिर नहीं कर पारहे हैं ॥२५॥ इतना ही समझ रहे हैं कि अवश्य ही कोई विशेष कारण रहा होगा, अन्यथा इतनी दूर चल कर आने से क्या तात्पर्य था ? कुछ भी हो, आपको इस स्थिति में देख कर हम अत्यन्त [illegible]

कारण कहने की कृपा कीजिये। हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्ण के वचन सुन कर महर्षि दुर्वासा के हृदयस्थ क्रोध मे कई गुणा वृद्धि होगई ॥२६-२९॥

दिधक्षन्निव लोकांस्त्रीन्भक्षयन्निव पश्यतः।
रोषरक्तेक्षण. क्रुद्धो हसन्निव दहन्निव ॥३०
उवाच वचनं विष्णुं दुर्वासाः क्रोधमूर्च्छितः।
न जाने इति कस्मात्त्वं ब्रूषे नो यादवेश्वर ॥३१
जानामि त्वां महादेवं वञ्चयन्निव भाषसे।
पुरातना वयं विष्णो पूर्ववृत्तान्तवेदिनः ॥३२
यथा हि देवदेवोऽसि मायामानुषदेहवान्।
निगूहसे प्रभुरतः कस्मान्नो जगतीपते ॥३३
सोऽसि ब्रह्मविदां मूर्तिस्तवैतत्परमं पदम्।
यदभ्यर्च्य पुरा ब्रह्मा यच्च ज्ञाना वयं पुरा ॥३४
यतो विश्वमिदं भूतं तदेतत्परमं पदम्।
यच्च स्थूलं विजानन्ति पुरा तत्त्वेन चेतसा ॥३५

उस समय उनकी आकृति ऐसी होरही थी, जैसे वे देखने मात्र से ही तीनो लोकों का भक्षण कर लेंगे अथवा उन्हें भस्म कर डालेंगे। फिर भी उन क्रोधासक्त नयनो वाले महर्षि दुर्वासा ने भगवान् श्रीकृष्ण से हँसते हुए ही कहा —हे यादवेश्वर! आप अनजान क्यों बन रहे हैं? क्योंकि मैं तो आपको महादेव समझता हूं, तब आप अपने मायामय वचनों में भ्रमाना क्यो चाहते हैं? हे विष्णो! आप पुरातन होने के कारण अनेक प्राचीन वृत्तान्तों के ज्ञाता हैं ॥३०-३२॥ आप तो देवताओं के भी देवेश्वर हैं, आपने अपनी माया से ही इस रूप को धारण किया है, फिर हे पृथिवीपते! आप अपने को हमसे क्यों छिपा रहे हैं? ॥३३॥ वेद के जानने वाले ज्ञानीजन आपके जिस रूप को मानते हैं और उन्हें ध्यानावस्था में जो रूप प्राप्त होता है, आप वही रूप एवं वही परमपद हैं। हे प्रभो! प्राचीन समय में ब्रह्माजी के सहित हम सभी मुनिजन जिस तत्त्व को पूजन करके भी न जान सके तथा बहुत-से कष्ट उठा कर अन्त में हम जिस

तत्व का निरूपण कर सके तथा जिसके द्वारा यह संसार उत्पन्न हुआ है, वह परमपद आप ही हैं ॥३४ ३५॥

पुराविदोऽथ विश्वेश तदेतत्परम वपु ।
कर्मणा प्राप्यते यत्त् यत्स्मृत्वा निर्वृता वयम् ॥३६
प्रत्यक्षमपि यद्रूप नैव जानन्ति मानुषा ।
नहि मूढधियो देव न वय तादृशा हरे ॥३७
न जाने इति यद्रूपे किमत साहम वच ।
ये हि मूल विजानन्ति तेषा तु प्रविवेचनम् ॥३८
कुर्वत किं फल देव तव केशिनिषूदन ।
वेदान्ते प्रथित तेजस्तव चेद विचार्यते ॥३९
ये च विज्ञानतृप्तास्तु योगिनो वीतकल्मषा ।
पश्यन्ति हृत्सरोजेऽपि तदेवेद वपु प्रभो ॥४०
वेदैर्यद्गीयते तेजो ब्रह्मे ति प्रतिपाद्य वै ।
तदेवेद विजानेऽह रूपमैश्वरमेव च ॥४१
वैष्णव परम तेज इति वेदेपु पठ्यते ।
अवगच्छाम्यह विष्णो तदेवेद वपुस्तव ॥४२

हे हरे ! पुरावेत्ताओ ने अपने तत्व ज्ञान की शक्ति से शरीर का स्थूल कह कर निरूपण किया है, परन्तु जिसे विविध कर्मों के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है और जो अत्यन्त आनन्ददायक है, उस रूप के प्रत्यक्ष होते हुए भी सामान्य जीव जानने मे समर्थ नही होते, उस प्रकार के मूढ बुद्धि मनुष्य हम नही हैं॥३६-३७॥ आपके द्वारा अनभिज्ञता प्रकट किये जाने पर मुझे बडा विस्मय है। हे केशव ! जिनके लिये ससार का सभी वृत्तान्त दृष्टिगोचर है, उनसे अपनी अनभिज्ञता प्रकट करने से लाभ भी क्या है ? वेदान्त के अध्ययन द्वारा आपके जिस स्वरूप का विशजन चिन्तन करते हैं और जो स्वरूप पवित्र देह वाले ज्ञानी योगियों को हृदय में दिखाई देता है, हे प्रभो ! आपका यह स्वरूप वही तो है ॥३८-४०॥ आपके जिस रूप का वेदो में प्रतिपादन होने के कारण

पण्डितजन सदा गुण गान किया करते हैं, आपके उस ईश्वरीय रूप से मैं भले प्रकार परिचित हूँ ॥ ४१ ॥ हे नाथ ! वेदों ने जिस परम तेजोमय स्वरूप का वर्णन किया है, वह तेज-सम्पन्न देह आपका ही तो है ॥४२॥

य ओमित्युच्यते शब्दो यस्य वागिति गीयते ।
स एवासि प्रभो विष्णो न जाने इति मा वद ॥४३
परोक्षं यदि किंचित्स्यात्तव वक्तुं प्रयुज्यते ।
न जाने इति गोविन्द मा वादी साहस हरे ॥४४
विश्वं यदा प्राद् रासीद्यस्मिँल्लीनं क्षये सति ।
इदं तदं श्वरं तेजस्त्ववगच्छामि केशव ॥४५
कर्ता त्वं भूतभव्येश प्रतिभासि सदा हृदि ।
यद्यद्रूपं स्मरे नित्यं तत्तदेवासि मे हृदि ॥४६
वायुरेव यदा विष्णुरिति मे धीयते मतिः ।
तदा तद्रूपमेवासि हृन्मध्ये संस्थितो विभो ॥४७
आकाशो विष्णुरित्येव कदाचिद्धीयते मतिः ।
तदा तद्रूपमेवासि हृन्मध्ये संस्थितो विभो ॥४८
पृथिवी विष्णुरित्येतत्कदाचिद्धीयते मतिः ।
तदा पार्थिवरूपस्त्वं प्रतिभासि सदा मम ॥४९

जो ओंकार एवं वाणीयुक्त यह स्वर प्रसिद्ध है, वह वाणी मय प्रणव आप ही हैं, इसलिये आपको अनजान नहीं बनना चाहिये ॥ ४३ ॥ यदि आप परोक्ष में कुछ कहना चाहते हैं तो अवश्य ही वैसा करें, परन्तु अनजान न बनें ॥४४॥ हे केशव ! यह संसार जिस देह से उत्पन्न होकर उसी में विलीन होता है, वह तेजस्वी देह आपका ही है, इसे मैं भले प्रकार जानता हूँ ॥४५॥ हे भूत भव्येश्वर ! मैं अपने हृदय में आपको कर्त्ता रूप में स्थित समझता हूँ और मैं जब जिस स्वरूप का स्मरण करता हूँ, तब आप उसी रूप से मेरे समक्ष प्रत्यक्ष होते हैं ॥४६॥ हे प्रभो ! जब मैं अपने हृदय में आपको वायु के रूप में देखना चाहता हूँ, तब आप मुझे वायु रूप से अवश्य प्रतीत होते हैं ॥ ४७ ॥ जब मैं

आपका आकाश रूप से ध्यान करता हूं तब आप आकाश स्वरूप ही दिखाई देते हैं ॥४८॥ जब ऐसी भावना होती है कि आप पृथिवी स्वरूप हैं तब आप मुझे पृथिवी के रूप मे ही दिखाई देते हैं ॥४६॥

रसोऽयं देव इत्येव कदाचिच्चिन्त्यते मया ।
तदा रसात्मना विष्णो हृन्मध्ये सस्थितो विभो ॥५०
यदा त्वं तेज इत्येवं स्मर्ता स्या पुरुषोत्तम ।
तदा तद्रूपसपन्नः प्रतिभासि सदा हृदि ॥५१
चन्द्रमा हरिरित्येवं तदा चान्द्रमसं वपु ।
निरीक्ष्य चक्षुषा देव ततः प्रीतोऽस्मि केशव ॥५२
यदा सौरं वपुरिति स्मर्त्ता स्या जगतीपते ।
तदा तद्भावनायोगात्सूर्य एव विराजसे ॥५३
तस्मात्सर्वं त्वमेवासि निश्चिता मतिरीदृशी ।
अतो न जानेऽहमिति वक्तुं नेशो जनार्दन ॥५४
इत्यर्थे संस्थितो विष्णो पीडा नो नैव चिन्त्यसे ।
अत्यन्तदुःखिता विष्णो वयं त्वामनुसंस्थिताः ॥५५
ईदृशीयमवस्था नो नैता स्मरसि केशव ।
एतत्पुनर्भाग्यमतो नष्टमित्येव चिन्तये ॥५६

जब कभी आप रस रूप मे प्रतीत होते हैं, तब आप रस स्वरूप ही दिखाई देने लगते हैं ॥५०॥ जब आपके प्रति तेज बुद्धि होती है, तब आप हृदय में तेज स्वरूप होकर ही प्रकट हो जाते हैं ॥ ५१ ॥ हे केशव ! जब मैं आपको चन्द्रमा समझता हूं तब आप चन्द्रमा रूप से प्रत्यक्ष होते हैं ॥५२॥ जब मैं सूर्य रूप से आपका स्मरण करता हूं, तब आप सूर्य रूप से हृदय मे दिखाई देते हैं ॥५३॥ इसीलिये हे जनार्दन ! मुझे विश्वास है कि आप ही सर्व स्वरूप हैं, अतः आप अपने को किसी विषय से अनभिज्ञ मत कहिये ॥५४॥ क्रीडा में तन्मय होने के कारण आप हमारे सकट की ओर ध्यान नही दे पाये हैं, हे विष्णो ! हम अत्यन्त त्रस्त हो[illegible]

घोर विपत्ति की ओर कुछ ध्यान नहीं दिया है, इसी से हमें प्रतीत होता है कि अब हमारा सौभाग्य नष्ट होरहा है ॥५६॥

मन्दभाग्या वयं विष्णो यतो नो न स्मरेः प्रभो ।
कौचित्क्षत्रियदायादौ गिरीशवरगर्वितौ ॥५७
नाम्ना हंसडिम्भको च वाधेते नो जनार्दन ।
गार्हस्थ्यं हि सदा श्रेयो वदन्ताविति केशव ॥५८
इतस्ततश्च धावन्तौ वदन्तौ बहु किल्बिषम् ।
अयुक्तं बहु भाषन्तौ धर्षयन्तौ च नः सदा ॥५९
इदमन्यत्कृतं देव असह्यं पापमुच्यते ।
पश्येदं बहुधा देव भिन्नं भिन्नं सहस्रशः ॥६०
शिक्यं च दारवं पात्रं द्विदलान्वेणुकान्वहून् ।
इदमप्यपरं पश्य तयोः साहसचेष्टितम् ॥६१
कौपीनं बहुधा छिन्नं तदस्माकं महद्धनम् ।
कृतं कपालमात्रेण कमण्डलु जगत्प्रभो ॥६२
त्वं तु नो रक्षसे नित्यं क्षात्रं यं व्रतमास्थितः ।
चित्तं चित्रमिमं देव रक्षस्यसि सदाऽनिशम् ॥६३

हे प्रभो ! इस प्रकार अब हम भाग्यहीन होगये हैं, इसीलिये तो आपने भी हमारी ओर ध्यान नहीं दिया है । हे ईश्वर ! हंस और डिम्भक नामक दो क्षत्रिय पुत्र भगवान् शंकर से वर प्राप्त करके अत्यन्त गर्वित होगये हैं, उन्होंने हमें बड़ा दुःख दिया है । उनका कहना है कि गृहस्थाश्रम ही सदा कल्याणप्रद है ॥५७-५८॥ इधर-उधर विचरण करते हुए उन दोनों ने हमसे अनेक अपमान-जनक और अयुक्त शब्द कह कर हमारा घोर तिरस्कार किया है ॥५९॥ यह देखिये हमारे शिक्य, द्विदल, वंश-दण्ड तथा अन्यान्य पात्र भी उन्होंने तोड़-फोड़ दिये और हमारे महाधन स्वरूप कौपीन को भी फाड़ डाला । उन्होंने मेरे कमण्डलु को फोड़ कर उसे भी खप्पर मात्र रहने दिया है ॥६०-६२॥ आपने क्षत्रिय धर्म

के पालन पूर्वक हमारी सदा रक्षा की है, फिर भी ऐसी विचित्र घटना घटित हो ही गई ॥६३॥

किं करिष्यामि मन्दात्मा मन्दभाग्या वयं विभो ।
किन्नः शरणमद्यैव तद्ब्रूहि जगतां पते ॥६४
जीवन्तौ तौ यदि स्यातां नष्टा लोका इमे त्रयः ।
न विप्रा न च राजानो न वैश्या न च पादजाः ॥६५
अत्यन्तबलिनौ मत्तौ तीक्ष्णदण्डधरौ नृपौ ।
न तयोः पुरतः स्थातुं शक्ता देवाः सवासवाः । ६६
न च भीष्मो न वा राजा वाह्लीको भीमविक्रमः ।
यो हि वीरो जरासन्धः क्षत्रियाणां भयंकरः ॥६७
नैव च प्रायशः स्थातुं गिरीशवरदर्पिणोः ।
तयोः कृष्ण हरे शक्तो नित्यमप्रतिसङ्गिनोः ॥६८
तस्मात्त्वं जहि तौ वीरौ रक्ष लोकानिमान्प्रभो ।
अन्यथा रक्षसीत्येव व्यर्थः शब्दोऽत्र जायते ॥६९
बहुनाऽत्र किमुक्तेन रक्ष रक्ष जगत्त्रयम् ।
इत्युक्त्वा विरराम व दुर्वासाः क्रोधमूर्च्छितः ॥७०

हे विभो ! अब हम अभागे क्या करें ? हम आपकी शरण मे आये हैं, अतः हमारी रक्षा का उपाय भी आप ही बताइये ॥६४॥ वे दोनो क्षत्रिय-कुमार नष्ट न हुए तो तीनो लोकों का ही नाश कर डालेंगे और तब विप्र, राजा, वैश्य और शूद्र मे से कोई भी शेष न बचेगा ॥६५॥ वे दोनों ही महाबली और घोर दण्ड धारण करने वाले हैं । इन्द्रादि देवता भी उनका सामना करने मे समर्थ नही हैं ॥ ६६ ॥ भीष्म, राजा वाह्लीक तथा क्षत्रियो के लिये अत्यन्त भयावह महावीर जरासंध भी उन शिव-वरदानियो के सामने नही टिक सकते । इसलिये हे हरे ! हे कृष्ण ! आप शीघ्र ही उन दोनो को मार कर त्रैलोक्य-रक्षण का कार्य कीजिये । अन्यथा आपके 'रक्षक' नाम का क्या अर्थ रह जायगा ? ॥ ६७-६९ ॥ हे नाथ ! बहुत कथन व्यर्थ है, आप शीघ्र ही तीनो लोकों को बचाइये, यह कह कर महर्षि दुर्वासा क्रोध से मूर्च्छित होगये ॥७०॥

।। भगवान के यहाँ मुनियों का भोजन ।।

यतेर्वचनमाकर्ण्य मन्दमुच्छ्वस्य केशव. ।
दुर्वाससं समालोक्य बभाषे यादवेश्वरः ।।१
क्षन्तव्यं भवता सर्वं दोष एष ममैव हि ।
शृणु वाक्यं मम तत्तु श्रुत्वा शान्तिपरो भव ।।२
जेष्यामि तौ रणे विप्र हंसं डिम्भकमेव च ।
गिरीशो वा वरं दद्याच्छक्रो वा धनदोऽपि वा ।।३
यमो वा वरुणो वाऽपि ब्रह्मा वाऽथ चतुर्मुखः ।
सबलौ सानुगौ हत्वा पुनर्दास्यामि वो रतिम् ।।४
सत्येनैव शपाम्यद्य मा रोषवशगो भव ।
रक्षा वोऽहं करिष्यामि हत्वा तौ च नृपाधमौ ।।५
जानामि तौ दुरात्मानौ युष्मद्दोषकरौ हि तौ ।
श्रुतं च पूर्वमस्माभिस्तीक्ष्णदण्डधराविति ।।६
अत्यन्तबलिनौ मत्तौ गिरीशवरदर्पितौ ।
नाल्पप्रयत्नसंसाध्यौ जरासन्धहितैषिणौ ।।७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! यति श्रेष्ठ दुर्वासाजी की बात सुन कर भगवान् श्रीकृष्ण ने एक दीर्घ श्वास छोड़ी और फिर उनकी ओर देखते हुए बोले ।।१।। हे ब्रह्मन् ! यह सभी दोष मेरा है, इसलिये मेरे अपराध को क्षमा करके मेरी बात सुनें ।।२।। भगवान् शंकर, सुरपति इन्द्र, धनपति कुबेर अथवा यम, वरुण, ब्रह्मा आदि में से किसी ने भी उन्हें वर प्रदान किया हो, तो भी मैं सत्यपूर्वक कहता हूँ कि हंस- डिम्भक को मार कर आप सब की अवश्य ही रक्षा करूँगा ।।३-५।। मुझे ज्ञात है कि उन्होंने आपको अत्यंत कष्ट दिया है, क्योंकि आपके दण्डित किये जाने का समाचार मैं पहिले ही सुन चुका हूँ ।।६।। ये महाबली भगवान् शंकर के वरदान से अत्यंत अहंकारी हो गये हैं और जरासन्ध के बांधव होने से भी न्यून बल द्वारा वश में नहीं किये जा सकते ।।७।।

प्राणानपि तयो राजा दास्यत्येव न संशयः।
जरासन्धो महीपालो विना तौ जयते महीम् ॥८
जये तयोर्विप्रवर्य तत्र श्रेयो भवेत्ततः।
यत्र यत्र तु तौ गत्वा स्थितावित्यनुशुश्रुम ॥९
तत्र तत्र च हन्ताऽहं नात्र कार्या विचारणा।
गच्छध्वं यतय. स्वरं निजकार्यपरायणाः॥१०
अचिरेणैव कालेन जेष्यामि रणपुङ्गवौ।
तत. प्रीता प्रसन्नात्मा यादवेश्वरमाह स. ॥११
स्वस्त्यस्तु भवते कृष्ण जगता स्वस्ति कुर्वते।
किन्नु नाम जगन्नाथ दु साध्य तव केशव ॥१२
त्रिलोकेश त्रिधामाऽसि सर्वसहारकारक ।
देवानामपि देवेश सर्वत्र समदर्शन. ॥१३
विष्णो देव हरे कृष्ण नमस्ते चक्रपाणये।
नमः स्वभावशुद्धाय शुद्धाय नियताय च ॥१४
शब्दगोचर देवेश नमस्ते भक्तवत्सल।
अज्ञानादथवा ज्ञानाद्यन्मयोक्तं क्षमस्व तत् ॥१५
त्वमेवाहं जगन्नाथ नवयोरन्तरं पृथक्।
अतः क्षमस्व भगवन्क्षमासारा हि साधवः ॥१६

राजा जरासन्ध उनका प्राणपन से साथ देगा, इस लिये वह उन दोनो का सहायक न हो सके, ऐसा प्रयत्न करना होगा। इसी प्रकार उन्हें जीता जा सकता है, इसके लिये मैं यथोचित उपाय करूँगा। वे जहाँ जहाँ जाँय, वहीं-वहीं उनको मारने का अवसर देखना होगा। अब आप यहाँ से पधारें, मैं अवश्य ही उनका सहार करूँगा ॥८-१०॥ भगवान् श्रीकृष्ण के सान्त्वनापूर्ण वचनो से दुर्वासाजी को अत्यत हर्ष हुआ और वे कहने लगे ॥११॥ हे कृष्ण! हे जगन्नाथ! हे केशव! आपके द्वारा ही विश्व का कल्याण सभव है, क्योंकि आपके लिये कोई भी कार्य असंभव नहीं हो सकता ॥१२॥ आप तीनों लोको के स्वामी, तीन धाम रूप, सर्व संहारी, देवताओं के भी ईश्वर, सर्व व्याप्त तथा समदर्शी

हैं ॥१३॥ हे विष्णो ! हे देव ! हे हरे ! हे चक्रपाणे ! आपको नमस्कार है। मैंने जाने, अनजाने में यदि कुछ अनुचित वचन कहे हों तो उन्हे क्षमा करने की कृपा करें ॥१४-१५॥ हे भगवन् ! हे जगन्नाथ ! आपका ही कहना है कि आप में और मुझ में कोई भेद नहीं है, फिर साधुजन तो वैसे ही क्षमावान् रहते हैं, इसलिये भी आप मुझे क्षमा कीजिये ॥१६॥

क्षन्तव्यं भवता विप्र क्षमासारा वयं सदा।
संन्यासिनः क्षमासाराः क्षमा तेषां परं बलम् ॥१७
क्षमा मोक्षकरी नित्यं तत्वज्ञानमिव द्विज।
क्षमा धर्मः क्षमा सत्यं क्षमा दानं क्षमा यशः ॥१८
क्षमा स्वर्गस्य सोपानमिति वेदविदो विदुः।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन क्षमां पालयत स्वकाम् ॥१९
प्रत्यक्षज्ञानसंयुक्ता यूयं सर्वे यतीश्वराः।
य एते यतयो विप्राः पूजनीया मयाऽद्य वै ॥२०
भोक्तव्या यतयो विप्रा भिक्षुकाः सर्व एव हि।
तथेति ते प्रतिज्ञाय भोक्तुमैच्छन्हरेगृहे ॥२१
ततः स्वभवनं विष्णुः प्रविश्य हरिरीश्वरः।
चतुर्विधं तथाऽऽहारं कारयित्वा यथाविधि ॥२२
भोजयामास तान्सर्वान्यतीन्यतिवरार्चितः।
छित्वा छित्वा च देवेशो दुकूलानि मृदूनि सः ॥२३
ददौ तेभ्यस्तदा विष्णुः सर्वेभ्यो जनमेजय।
ते च प्रीता यथायोगं यथापूर्वं ततो गताः ॥२४

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—हे ब्रह्मन् ! मैं तो सदा ही क्षमा-युक्त रहता हूँ, परन्तु इस समय तो आप मुझे क्षमा करें, क्योंकि संन्यासियों के लिये तो क्षमा ही परम बल है ॥१७॥ हे ब्रह्मन् ! तत्व ज्ञान के समान ही क्षमा से भी मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है, क्योंकि क्षमा ही धर्म, क्षमा ही सत्य, क्षमा ही दान और क्षमा ही यश है ॥१८॥ वेद-ज्ञानियों ने क्षमा को ही स्वर्ग की सोपान कहा

है, इसलिये क्षमाबल की सावधानी से रक्षा करनी चाहिये ॥१९॥ समस्त यतिगण प्रत्यक्ष ज्ञान वाले होते हैं, इसलिये जो यतिगण यहाँ पधारे है, उन सबकी आज पूजा करूँगा ॥२०॥ वैसे भी आप सब भिक्षुक हैं, इसलिये आज मेरे यहाँ भोजन करने की कृपा करें। भगवान् के इस अनुरोध को दुर्वासा आदि यतियो ने मान लिया ॥२१॥ तदनन्तर भगवान् ने अपने भवन मे जाकर उनके लिये चार प्रकार की भोजन सामग्री तैयार कराई और उन्हे यथाविधि भोजन से तृप्त किया और श्रेष्ठ मृदु वस्त्र मे से फाड़-फाड़ कर उन्हे पहनने को प्रदान किया। हे राजन्! उनके द्वारा इस प्रकार सत्कृत हुए यतिगण अत्यत प्रसन्न हुए और उनका गुण-गान करते हुए अपने नियत हुए स्थान को गये ॥२२-२४॥

॥ हंस के दूत का श्रीकृष्ण के यहाँ आना ॥

दुर्वासास्त्वथ तत्रैव नारदेन महात्मना ।
चिन्तयन्ब्रह्मणस्तत्त्वं विजहार यथासुखम् ॥१
भगवानपि गोविन्दस्तयोर्वासममन्यत ।
ततस्तौ हंसडिम्भकौ तस्मिन्काले महीपतिम् ॥२
ब्रह्मदत्तं महीपालं पितरं वीर्यशालिनम् ।
प्रावोचतामिदं वाक्यं समन्ताज्जनससदि ॥३
राजसूयं महायज्ञं पितः कुरु सुयत्नतः ।
अस्मिन्मासि नृपश्रेष्ठ यतावो यज्ञसिद्धये ॥४
आवा तेऽद्य महाराज दिशा विजयतत्परौ ।
यतिष्यावो बलैः सार्द्धं गजैरश्वै रथैरपि ॥५
संभारा यज्ञसिद्ध्यर्थ मानेतव्या नृपोत्तम ।
तथेति स महाबाहो ब्रह्मदत्तोऽब्रवीत्तदा ॥६
जनार्दनस्तु विप्रेन्द्रो दृष्ट्वा साहसतत्परौ ।
अशक्यमिति मन्वानो वयस्यं हंसमब्रवीत् ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन्! फिर महर्षि दुर्वासा ने द्वारका में नारदजी के पास निवास किया और उनके साथ ब्रह्मतत्त्व पर चर्चा करते हुए

आनन्दपूर्वक समय व्यतीत करने लगे ॥१॥ भगवान् ने भी उन दोनों के वहाँ रहने का अनुमोदन किया था । इधर हंस-डिम्भक अपने पिता के पास पहुँचे और वहाँ उन्होंने सब सभासदों की उपस्थिति में कहा—हे पिताजी ! अब आप राजसूय यज्ञ का आरम्भ कीजिये । हम इसी महीने में यज्ञ को सम्पन्न कराने के लिये विशेष रूप से प्रयत्नवान् होंगे ॥२-४॥ आज ही हम रथ, अश्व, गज, पैदल सेना और सामग्री को साथ लेकर दिग्विजय करने के लिये यहाँ से चल पड़ेंगे ॥५॥ हे नृपोत्तम ! अब आप यज्ञ की समस्त सामग्रियों के एकत्रित किये जाने विषयक आदेश दीजिये । पुत्रों की यह बात सुन कर राजा ब्रह्मदत्त ने कहा—ठीक है, यही करो ॥६॥ परन्तु उस समय हंस-डिम्भक की इस व्यर्थ दुःसाहस पूर्ण कामना को सुन कर ब्राह्मण श्रेष्ठ जनार्दन ने अपने सखा हंस से इस प्रकार कहा ॥७॥

शृणु हंस वचो मह्यं श्रुत्वा निश्चित्य वीर्यवान् ।
आयुष्मन्साहसं कर्तुमुद्यतोऽसि नृपोत्तम ॥८
स्थिते भीष्मे जरासन्धे बाह्लीके च नृपोत्तमे ।
किं च वीरेषु सर्वेषु यादवेषु नृपोत्तम ॥९
भीष्मो हि बलवान्वृद्धः सत्यसन्धो जितेन्द्रियः ।
त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं यो जिगाय भृगूत्तमः ॥१०
तं युद्धे जितवान्भीष्मः सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ।
जरासन्धस्य यद्वीर्यं तद्भवान्वेत्ति संयुगे ॥११
वृष्णिवीरास्तु ते सर्वे कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ।
तत्र कृष्णो हृषीकेशो जितशत्रुः कृती सदा ॥१२
जरासंधेन सहितः सदा युद्धे जितश्रमः ।
प्रमुखे तस्य न स्थातुं शक्तो जीवन्नृपोत्तमः ॥१३
बलभद्रस्तथा मत्तः क्रुद्धो यदि भवेद्बली ।
लोकानिमान्समाहर्तुं शक्नोतीति मतिर्मम ॥१४

हे सखे ! पहले मेरी बात पर विचार करो, फिर अपना कर्त्तव्य स्थिर करना । मैं तो समझता हूँ कि तुम्हारा यह निश्चय केवल एक दुःसाहस मात्र है

॥८॥ इस समय भीष्म, जरासंध, वाह्लीक और वीर श्रेष्ठ यादव इस पृथिवी पर विद्यमान हैं, उन सब के रहते हुए तुम्हारा ऐसे कार्य मे उद्यत होना अवश्य ही *अनुचित कार्य होगा ॥९॥ जिन भृगुवंशी परशुरामजी ने* इस पृथिवी को इक्कीस बार क्षत्रिय-विहीन किया था, उन्ही को जितेन्द्रिय भीष्म ने असंख्य क्षत्रियो की उपस्थिति में हरा दिया था। फिर जरासन्ध का पराक्रम भी तुमसे छिपा हुआ नही है ॥१०-११॥ वृष्णीवंशी वीर भी सब प्रकार के युद्धो मे कुशल हैं, उनमे भगवान् श्रीकृष्ण ने तो असख्य शत्रुओ को जीता है ॥१२॥ उन्होने अनेकों बार जरासन्ध से युद्ध किया है, रणभूमि मे उनका सामना करने वाला कोई भी राजा जीवित नही रहता ॥१३॥ बलोन्मत्त बलरामजी यदि किसी प्रकार रुष्ट हो जांय तो वे अकेले ही त्रिलोकी का विनाश करने मे समर्थ हैं ॥१४॥

तथा च सात्यकिर्वीरः शक्तो जेतुं रणे रिपून् ।
तथाऽन्ये यादवाः सर्वे कृष्णमाश्रित्य दंशिताः ॥१५
अस्माभिश्च कृतः पूर्वं विरोधो यतिभिः सह ।
दुर्वासा यतिभिः सार्द्धं गतो द्रष्टुं स केशवम् ॥१६
इति श्रुतं न पश्ये ब्राह्मणाद्भोक्तुमागतात् ।
तथा सति तथा सिद्धमेतावा चिन्त्यं च मन्त्रिभिः ॥१७
ततः पश्चाद्विधास्यामो राजसूयं महाक्रतुम् ।
को नाम भीष्मो मन्दात्मा वृद्धो हीनबलः सदा ॥१८
आवयोः पुरतः स्थातुं शक्तः स किल वृद्धकः ।
यादवा इति चिन्त्यं न शक्ताः स्थातु रणे द्विज ॥१९
कश्च कृष्णः पुरः स्थातुं बलदेवश्च मत्तकः ।
शैनेयश्चापि विप्रेंद्र स्थातुं न इति चिन्तय ॥२०

यादववीर सात्यकि भी युद्ध में शत्रुओ को परास्त करने की क्षमता रखते हैं और भगवान् श्रीकृष्ण के आश्रय में रहने वाले अन्यान्य यादवगण भी असाधारण वीर हैं ॥१५॥ भोजन करने के लिये यहाँ आने वाले ब्राह्मणो ने बताया था कि हमारे द्वारा दुर्व्यवहारग्रस्त महर्षि दुर्वासा अनेकों यतियो के

सहित भगवान् श्रीकृष्ण के पास द्वारका पहुँच गये हैं ॥१६-१७॥ यदि राजसूय यज्ञ ही करना चाहते हो तो प्रथम अपने मंत्रियों से मंत्रणा करके संभावित संकटों से बचने का उपाय करलो। जनार्दन के यह विचार सुनकर हंस बोला—अरे, मन्दात्मा भीष्म तो अब वैसे ही बलहीन हो चुका है ॥१८॥ युद्ध क्षेत्र में वह वृद्ध हमारा क्या सामना करेगा? हाँ, यादवगण हमारा सामना करें तो कोई विस्मय का विषय नहीं है ॥१९॥ परन्तु, तुम यह विश्वास रखो कि बलराम, कृष्ण या सात्यकि में से कोई भी यादव मेरा सामना करने में समर्थ नहीं होगा ॥२०॥

जरासन्धस्तु धर्मात्मा बन्धुरेव सदा मम ।
गच्छ विप्र यदुश्रेष्ठं ब्रूहि मद्वचनात्त्वरन् ॥२१
दीयतां करसर्वं स्वं यज्ञार्थं सुन्दरं बहु ।
लवणानि बहून्यद्य गृह्य केशव मा चिरम् ॥२२
आगच्छ त्वरितं कृष्ण न ते कार्यं विलम्बनम् ।
इति ब्रूहि यदुश्रेष्ठं याहि त्वरितविक्रमः ॥२३
न ब्रूयाश्चोत्तरं विप्र शपेयं त्वां प्रियोऽसि मे ।
मित्रभावादिदं ब्रूहि पश्यामि त्वां पुनः पुनः ॥२४
इति स चोदितो विप्रो नोत्तरं प्रत्यभाषत ।
मित्रभावात्तथा राजन् स्नेहाच्च जनमेजय ॥२५
जनार्दनस्तु धर्मात्मा नित्यं गन्तुं समुद्यतः ।
अद्य श्वो वा परश्वो वा गच्छामीति यतेत सः ॥२६
देवं द्रष्टुं जगद्योनिं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
एक एव च धर्मात्मा ह्यमारुह्य सत्वरम् ॥२७
प्रातरेव जगामाशु द्रष्टुं द्वारवतीं द्विजः ।
हरिं कृष्णं हृषीकेशं मनसा संस्मरन्द्विजः ॥२८

अब जरासन्ध को लो—वे धर्मात्मा मेरे बन्धु हैं। इसलिये हे मित्र! तुम तुरन्त ही कृष्ण के पास जाकर उन्हें मेरी आज्ञा सुनाओ ॥ २१ ॥ हमारे

राजसूय यज्ञ के लिये कर दो और बहुत सा लवण लेकर अविलम्ब यहाँ आजाओ। उनसे यही कहना है। हे विप्रश्रेष्ठ ! तुम मेरे मित्र हो, इसलिये मेरे इस अनुरोध को मान कर इसी समय कृष्ण के पास जाने के लिये चल दो। तुम्हे मेरी शपथ है जो अब इस विषय मे तर्क-वितर्क करो ॥२२-२४॥ हंस की बात सुन कर जनार्दन ब्राह्मण ने मित्रता के वश फिर कुछ भी नहीं कहा और तभी से यह विचार करने लगा कि मैं आज, कल अथवा परसो तक द्वारका अवश्य पहुँच जाऊँगा ॥२५-२६॥ वहाँ जाने पर मुझे शख-चक्र-गदाधारी उन भगवान् श्रीकृष्ण के अवश्य ही दर्शन होगे। फिर उसने प्रात काल होने से पहिले ही एक श्रेष्ठ अश्व पर आरूढ होकर अकेला ही द्वारका के लिये प्रस्थान कर दिया ॥ २७-२८ ॥

॥ श्रीकृष्ण द्वारा पौण्ड्रक वध ॥

ततः प्रायाद्धरिं विष्णुं ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तम. ।
हयेनैकेन राजेन्द्र त्वरित स ययो नृप ॥१
यथा निदाघसमये सूर्यांशुपरिपीडितः ।
पान्थो याति जलं दृष्ट्वा त्वरित तत्पिपासया ॥२
धावत्येवं तथा विप्रो हरिं द्रष्टुं जनार्दनः ।
गच्छन्स चिन्तयामास चोदयन्हयमुत्तमम् ॥३
हंस एव प्रियो मह्यं कुर्यात्प्रियहित मम ।
तथाहि प्रेषितस्तेन हरिं पश्याम्यह प्रभुम् ॥४
अहमेव सदा धन्यो मत्तो ह्यभ्यधिको न हि ।
यतो द्रक्ष्याम्यह विष्णुं वसन्तं द्वारकापुरे ॥५
सा हि मे जननी धन्या हरिं दृष्ट्वा पुनर्गतम् ।
कृतार्थं सर्वदा देवी द्रक्ष्यत्येषा मनस्विनी ॥६

श्री वैशम्पायनजी कहने लगे—जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु मे सूर्य के ताप तथा प्यास से पीड़ित कोई पथिक जलाशय को देखकर शीघ्रतापूर्वक उसकी

तरफ अग्रसर होता है उसी प्रकार हम का मित्र वह जनार्दन ब्राह्मण घोडे पर सवार श्रीकृष्ण की नगरी द्वारका की ओर जाने लगा ॥१-२॥ चलते-चलते वह अपने मन मे सोचता जाता था कि हंस वास्तव मे मेरा प्रिय मित्र है, क्योंकि उसी की प्रेरणा से ऐसा अवसर आ सका कि मैं द्वारका जाकर भगवान कृष्ण के दर्शनो का लाभ ले सकूँगा ॥३-४॥ आज जब मैं द्वारका पहुँच कर साक्षात् भगवान के दर्शन करके अपने नेत्रो को सफल करूँगा तब मुझ से बढ़ कर भाग्यशाली और कौन हो सकेगा ? ॥५॥ जब मैं भगवान का दर्शन करके घर लौटूँगा तो मेरे पुण्य के प्रभाव से मेरी माता भी कृतार्थ हो जायगी और अपने को धन्य मानने लगेगी ॥६॥

मुखमुन्निद्रहेमाब्जकिञ्जल्कसदृशप्रभम् ।
द्रक्ष्यामि देवदेवस्य चक्रिण शार्ङ्गधन्वन ॥७
वपुर्द्रक्ष्याम्यहं विष्णोर्नीलोत्पलदलच्छवि ।
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गवनमालाविभूषितम् ॥८
नेत्रे ते देवदेवस्य पद्मकिञ्जल्कसप्रभे ।
पश्याम्यहमदीनात्मा नष्टदु खोऽस्मि निर्वृत. ॥९
अपि द्रक्ष्यति योगात्मा सौम्येनैव स्वचक्षुषा ।
अपि वा मत्प्रिय ब्रूयात्स्वस्ति चेति च वा वदेत् ॥१०
द्रक्ष्यामि चक्रिणो वर्ष्म ततस्त्रैलोक्यसन्निभम् ।
पादाब्ज चक्रिणो द्रष्टुं त्वरत्येव च मे मनः ॥११
वक्ष स्थल सदा विष्णो स्फुरद्रत्नप्रभायुतम् ।
पश्यन्निव च गच्छामि स्मरश्चानिशमीश्वरम् ॥१२
पीतकौशेयवसनं लम्बहारविभूषितम् ।
ईषत्स्मिताधरं विष्णुं पश्यामि च पुनः पुनः ॥१३
स्मरतश्च हरे रूप रोमहर्षोऽयमीदृशः ।
गरुड्ध्वजश्च पुरो भाति शङ्खचक्रगदासिमान् ॥१४

मैं परम धन्य हूँ कि आज मैं शार्ङ्ग धनुष तथा सुदर्शन चक्र के धारण

करने वाले जगतपूज्य भगवान के स्वर्ण कमल के समान सुन्दर मुखारविन्द को देखूँगा ॥७॥ आज मैं भगवान का शंख-चक्र, गदा, शार्ङ्ग धनुष युक्त तथा वनमाला से विभूषित नील कमल के सदृश्य सुन्दर स्वरूप देख कर कृतकृत्य हो जाऊँगा ॥८। जब मैं पद्म किंजल्क के समान सुन्दर, उन भगवान के अनुपम नेत्रों को देखूँगा, तो मेरे समस्त दुःख तत्क्षण अवश्य ही दूर हुए जायेंगे ॥६॥ क्या वे योगात्मा महाप्रभु मुझे प्रेमयुक्त दृष्टि से देखेंगे ? मुझसे प्रेमपूर्वक वार्तालाप करेंगे ? मैं उनके मुख से मधुर वाक्यों को सुन सकूँगा ? ॥१०॥ मेरा मन उन चक्रपाणि भगवान कृष्ण के चरण कमलों को देखने के लिये उत्सुक हो रहा है, जिनके भव्य स्वरूप मे तत्वतः सम्पूर्ण त्रिलोकी व्याप्त है ॥११॥ मैं उन्हीं महामहिमान्वित भगवान का ध्यान करता चल रहा हूँ जिनका वक्षस्थल सदैव रत्नों से अलङ्कृत रहता है ॥१२॥ पीताम्बर तथा कौशेय वसनधारी और बड़े-बड़े हारों से सुशोभित, किंचित मुस्कराते हुये अधरों से युक्त भगवान का दर्शन मैं बारम्बार करूँगा ॥१३॥ अब भी उनके लोकोत्तर मनोरम रूप का स्मरण करके मुझे रोमांच हो रहा है। यद्यपि अभी मैं मार्ग में चल ही रहा हूँ, पर मुझे ऐसा प्रतीत होने लगता है मानो वे शंख-चक्र-गदा-पद्म धारी भगवान मेरे सम्मुख ही खड़े हैं ॥१४॥

यातीव च पुरो भाति मह्यं देवो जगद्गुरुः ।
एषोऽयमिति,मे वक्तुं जिह्वा प्रस्फुरतीव तम् ॥१५
इदं दुःखतरं मन्ये करं देहीति यद्वचः ।
इदं तरसाहसं मन्ये तद्वचस्तस्य भूपतेः ॥१६
हंसस्य करदो विष्णुस्तदाज्ञापरिचारकः ।
तस्य सर्वं पुरो गत्वा वक्ताऽहं किल निर्दयः ॥१७
मूढानामग्रणीरस्मि निर्लज्जश्च तथा वदन् ।
करं देहि हरे विष्णो हंसस्य यदुपुङ्गव ॥१८
लवणानि बहून्याशु दातव्यानि करात्मना ।
इति वक्तुं न मे युक्तं परतस्तस्य शार्ङ्गिणः ॥१९

तथाऽपि मित्रभावात्तु हंसस्य घोरमीदृशम् ।
कष्टो ह्ययं मित्रभावो मनुष्याणां कृतात्मनाम् ॥२०

इतना ही नही मुझे तो इस समय भी कि वे सामने ही जान पड़ रहे हैं और मेरी जिह्वा यह कहने के लिये फड़क रही है कि 'ये वे ही हैं' ॥१५॥ पर उनके सामने पहुँच कर हस के आदेशानुसार मैं उनसे ऐसा किस प्रकार कह सकूँगा कि—"हे कृष्ण ! तुम कर दो।" यह तो मेरे लिये अत्यन्त कष्टकर बात होगी। अथवा उनसे यह कहना कि "तुम राजा हंस के कर-दाता हो—आज्ञाकारी सेवक हो" मेरे लिये किस प्रकार संभव होगा ? ॥१६-१७॥ जब मेरे मुख से ये शब्द निकलेंगे कि "तुम कर प्रदान करो और बहुत-सा नमक इकट्ठा कराके राजा हस के पास पहुँचाओ—तो उस समय मुझसे बढ़ कर मूर्ख और लज्जाहीन और कौन कहा जायगा ? उन शाङ्र्ग धनुधारी भगवान के सामने ऐसी बात निकालना ही हास्यास्पद होगा ॥१८-१९॥ किन्तु राजा हस का दूत और मित्र होने के कारण मुझे घोर अनुचित बातें भी भगवान से कहनी पडेगी। निस्सन्देह सत्पुरुषो के लिये बड़े लोगो की मित्रता भी बड़ी कठिन होती ॥२०॥

अथवा सर्वविद्विष्णुः सर्वस्य हृदि संस्थितम् ।
जानात्येव सदा भावं प्राणिनां शोभने रतः ॥२१
तथा सति न मे दोषो मित्रभावो यतो ह्ययम् ।
सर्वथा रक्षतां विष्णुर्घोरं वक्तुं यतस्य मे ॥२२
द्रक्ष्याम्यहं जगन्नाथं नीलकुञ्चितमूर्द्धजम् ।
कम्बुग्रीवाधरं विष्णुं श्रीवत्साच्छादितोरसम् ॥२३
स्फुरत्पद्ममहाबाहुं रत्नच्छायाविराजितम् ।
द्रक्ष्यामि केशवं विष्णुं चक्रिणं यादवेश्वरम् ॥२४
अचिन्त्यविभवं देवं भूतभव्यभवत्प्रभुम् ।
आत्मेच्छया जगद्रक्षं द्रक्ष्यामि जलशायिनम् ॥२५
कृतार्थः सर्वथा चाहं भवामि विगतज्वरः ।
अद्य मे सफलं जन्म साक्षाद्दृष्टवतो हरिम् ॥२६

अद्य मे सफला यज्ञा साक्षात्कृतवतो हरिम् ।
नेत्रे मे सफले विष्णु पश्यतश्च जगन्मयम् ॥२७

पर तो भी वे विष्णु भगवान के रूप मे सबके हृदयो मे निवास करते हैं और सभी प्राणियो के वास्तविक मनोभाव को अच्छी तरह जानते ही रहते हैं। इसलिये वे स्वयमेव समझलेंगे कि यह कठिन कार्य मुझको मित्रता के कारण विवश होकर करना पड रहा है। हे भगवान्। मेरा मुख जो अत्यन्त भयकर शब्द कहने को उद्यत हो रहा है उसे मेरा दोष न समझ कर क्षमा ही करेंगे ॥२२॥ आज मैं उन भगवान को, जिन्हें जगन्नाथ, कुंचितकेश, कम्बुग्रीव, श्रीवत्सलाछित, महाबाहु रत्नबिम्बधर, केशव, विष्णु, चक्रधर, यादवेश्वर, अचित्य वैभव सम्पन्न, जलशायी आदि अनेक नामो और विशेषणो से स्मरण किया जाता, उनको इच्छा भर के देखूंगा ॥२३-२६॥ उन कृष्ण भगवान के दर्शनो से नि.स्सन्देह मैं कृतार्थ हो जाऊंगा, मेरा जीवन सफल हो जायगा, मैंने जो यज्ञादि किये है वे भगवान का साक्षात्कार होने से सफल हो जायेंगे और उन जगत्पति विष्णु भगवान को देखने मात्र से मेरे नेत्रो का होना सार्थक हो जायगा ॥२६-२७॥

प्रीतिमानस्तु मे विष्णुर्वक्तुर्घोरस्य कर्मण ।
उन्मिपन्नेत्रयुग्मेन द्रक्ष्यामि सकृदीश्वरम् ॥२८
आमूलमसकृद्विष्णु पश्यामि च पुनः पुनः ।
पिवामि नेत्रयुग्मेन वपुः कृष्णस्य केवलम् ॥२९
धारयिष्याम्यहं पांसुं तत्पादप्रभवं शिवम् ।
ततः कृतार्थतां यास्ये स्वर्गमार्गं हि तद्रजः ॥३०
मेघगम्भीरनिर्घोषं श्रोष्यामि च हरेः स्वरम् ।
पादाब्जं चक्रिणोः विष्णो पश्यामि च जगत्पते ॥३१
पश्यामि च हरेर्वक्त्रं पूर्णेन्दुसदृशप्रभम् ।
हरेरिदं जगद्रूपं पश्यामीव च सर्वतः ॥३२

प्रसीदतु सदा विष्णुरयुक्तं वक्तुमिच्छतः ।
आलोलकुण्डलयुतं हरिचन्दनचर्चितम् ।।३३
स्फुरत्केयूररत्नार्चिर्बाहुद्वयविराजितम् ।
सव्ये द्योतन्महाशंख रश्मिजालविराजितम् ।।३४
प्रोद्यद्भास्करवर्णाभ चक्रज्वालाविराजितम् ।
प्रोज्ज्वलत्कङ्कणयुत तप्तजाम्बूनदाङ्गदम् ।।३५

किन्तु उसी अवसर पर मेरे मुख से जो अशोभनीय वाक्य निकलेंगे उन्हे सुन कर वे अप्रसन्न होंगे या नहीं, इसका कोई निश्चय नहीं । तो भी आज मैं उनका मन भर कर दर्शन करूँगा इसमें सन्देह नहीं । मैं उनको नख से शिख तक बारम्बार निहारूँगा और अपने दोनों नेत्रों से उनके सौन्दर्य रूपी सुधा का इच्छानुसार पान करूँगा । आज मैं उनकी चरण रज को अपने मस्तक पर चढ़ाऊँगा और उससे अपने जीवन को शान्तियुक्त और शीतल करूँगा । उनकी चरण रज तो स्वर्ग प्रदान करने वाला है ।।२८-३० । आज मैं उनका वर्षाकाल के मेघों के समान गम्भीर निर्घोष सुनूँगा । मुझे तो अभी ऐसा जान पड़ता है कि मैं उन भगवान के चरण-कमलों के दर्शन कर रहा हूँ । उनका पूर्ण चन्द्रमा के सदृश्य सुन्दर मुख मण्डल मुझे दिखाई दे रहा है और उनका विश्वमय रूप मेरे नेत्रों के सम्मुख उपस्थित है ।।३१-३२।। जिन भगवान के कानों में कुण्डल झूल रहे हैं और समस्त शरीर मलय चन्दन से चर्चित है वे भगवान मुझ पर प्रसन्न हों और मेरे अशिष्ट वाक्यों से बुरा न मानें ।।३३।। उनकी भुजाओं में सदा रत्नजड़ित केयूर शोभायमान रहते हैं, उनके दाहिने हाथ में महाद्युति वाल शंख विराजमान रहता है । सूर्य सदृश्य तेजस्वी चक्र की प्रभा चारों ओर फैली रहती है । वे हाथों में प्रकाशयुक्त कंगण तथा स्वर्ण अगद धारण किये रहते हैं ।।३४-३५।।

प्रीतकौशेयवसनं विस्तीर्णोरस्कमच्युतम् ।
सदा द्रक्ष्यामि देवेशमिदानीमथवाऽन्यदा ।।३६

सर्वथा कृतकृत्योऽहं यद्दपुर्द्रष्टुमुद्यतः ।
नमो मह्यं नमो मह्यं यतो द्रष्टुमहं हरिम् ॥३७

उद्यतोऽस्मि जगन्नाथ वलभद्रकृतास्पदम् ।
द्रक्ष्याम्यवश्यमद्यैव जिष्णुं विष्णुं जगद्गुरुम् ॥३८

श्रीकौस्तुभोद्भवरुचिं स्फुरितोरुवक्षः पीताम्बरं मकरकुण्डलपकजाक्षम् ।
कृष्णं किरीटवरचक्रगदोर्ध्वहस्तं तेजोमयं मम हरेर्वपुरस्तु भूत्यै ॥३९

वेदोदधौ विशदशास्त्रमहाहियोगे निष्णातशुद्धमतिमन्दरमथ्यमाने ।
उद्योतमानममरैरनिशं निषेव्य नारायणाख्यममृतं प्रपिबामि चाद्य ॥४०

ध्येयं मुमुक्षुभिरमेयमनाद्यनन्तं स्थूलं सुसूक्ष्मतरमेकमनेकमाद्यम् ।
ज्योतिस्त्रिलोकजनकं त्रिदशैकवन्द्यमक्षणोर्ममास्तु सततं हृदयेऽच्युताख्यम् ॥४१

चिन्तयन्निति विप्रेन्द्रो ययौ द्वारवती पुरीम् ।
मत्वा कृतार्थमात्मानं वाहयन्हयमुत्तमम् ॥४२

उन पीताम्बर तथा कौशेय वस्त्राधारी भगवान कृष्ण को मैं शीघ्र ही अवश्य देखूंगा । इससे मैं अपने को कृतकृत्य मानता हूँ और सब प्रकार धन्य मानता हूँ । मैं स्वयं ही इस सौभाग्य के लिये अपने को नमस्कार करता हूँ ॥३६-३७॥ जब मैं बलभद्रजी के साथ विराजमान भुवनपति भगवान कृष्ण का दर्शन करने को उद्यत हूँ तो मुझ से बढकर धन्य और कौन होगा ? उनका वक्षस्थल कौस्तुभ मणि से शोभायमान रहता है, उनका परिधान पीताम्बर है, नेत्र कमल समान है, कानो मे मकराकृति कुण्डल हैं, मस्तक पर किरीट, हाथ मे चक्र और गदा विराजमान है—ऐसे भगवान मेरा कल्याण करें ॥३९॥ शास्त्र रूपी महासर्प के संयोग से

का मथन करके जो अमृत निकाला गया था और देव स्वरूप ज्ञानी जन सदैव जिस पान करते रहते हैं मैं भी आज उसी अपूर्व सुधा का पान करूँगा ॥४०॥ मुक्ति की कामना करने वाले साधक जिनका ध्यान करते रहते हैं, जो सीमातीत, अनादि और अनन्त हैं, जो स्थूल, सूक्ष्म, अद्वितीय अनेक और सब के मूल कारण स्वरूप हैं, जिनसे इस समस्त त्रिलोकी को उत्पन्न करने वाली ज्योति का आविर्भाव हुआ है, समस्त देवगण जिनकी वन्दना किया करते हैं, वे मन और वाण से अगोचर देवादिदेव मेरे हृदय और नेत्रों में विराजमान हों ॥४१॥ हे राजन ! वह हंस का मित्र जनार्दन विप्र मनमें इस प्रकार के तर्क-वितर्क करता हुआ वेग से चल कर द्वारका पुरी में प्रविष्ट हुआ ॥४२॥

॥ विप्रदूत की श्रीकृष्ण से भेंट ॥

स निवेदितसर्वस्वो द्वाःस्थेन हि जनार्दनः ।
अथ प्रविश्य धर्मात्मा सुधर्मां वै द्विजोत्तमः ॥१
अपश्यद्देवदेवेशं सुधर्माकृतिस स्थितम् ।
बलभद्रेण संयुक्तमध्यासितमहासनम् ॥२
अग्रतः स्थितशैनेयं पार्श्वतः स्थितनारदम् ।
दुर्वाससा कृतकथमुग्रसेनपुरस्कृतम् ॥३
गायद्गन्धर्वमुख्यैश्च नृत्यदप्सरसां गणैः ।
सेव्यमानं महाराज सूतमागधवन्दिभिः ॥४
उद्गीयमानयशसं माधवं मधुसूदनम् ।
उद्गीयमानं विप्रैश्च सामभिः सामगैर्हरिम् ।
दृष्ट्वा प्रीतमना विष्णुं प्रोद्भूतपुलकच्छवि. ॥५
नाम्ना जनार्दनोऽस्मीति ननाम चरणौ हरेः ।
बलभद्रं ततो देवं ववन्दे शिरसा द्विजः ॥६
दूतोऽस्मि देवदेवस्य हंसस्य डिम्भकस्य च ।
इति ब्रुवाणं विप्रेन्द्रमिदमाह स माधवः ॥७

आस्स्वेद विष्टर पूर्वं पश्चाद्ब्रूहि प्रयोजनम् ।
तथेति चाब्रवीद्विप्रो महदासनमास्थित ॥८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! ब्राह्मण श्रेष्ठ जनार्दन ने द्वारका पहुँच कर द्वारपाल को अपने आने की सूचना देने के लिये भगवान् के पास भेजा और द्वारपाल ने उनसे अनुमति लेकर जनार्दन को सुधर्मा सभा मे पहुँचा दिया ॥१॥ वहाँ जाकर उसने बलरामजी के सहित भगवान् श्रीकृष्ण को वृहद् आसन पर विराजमान देखा ॥२॥ शैनेय, सात्यकि और उग्रसेनजी उनके सामने और देवर्षि नारदजी पार्श्व में विराजमान थे ॥३॥ गन्धर्वगण गायन कर रहे थे और अप्सराएँ नृत्य कर रही थी। सूत मागध बंदीजन उनका गुण कीर्तन कर रहे थे और ब्राह्मण सामगान मे तन्मय थे। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी सभा की अलौकिक छवि देख कर विप्रवर जनार्दन का हृदय आनन्द के अतिरेक से पुलकित होगया ॥४-५॥ फिर ब्राह्मण जनार्दन ने कहा—हे प्रभो ! मैं जनार्दन नामक ब्राह्मण आपको नमस्कार करता हूँ। फिर उसने बलरामजी को भी नमस्कार किया ॥६॥ इसके पश्चात् उसने कहा—हे देवदेवेश्वर ! मैं हंस और डिम्भक द्वारा भेजा हुआ दूत हूँ। यह सुन कर भगवान् ने कहा—अच्छा, आप इस आसन पर बैठ कर अपने आने का प्रयोजन कहिये। तब ब्राह्मण जनार्दन उस श्रेष्ठ आसन पर बैठ गया ॥७-८॥

वाचा स पूज्य विप्रेन्द्रमपृच्छत्कुशल हरि ।
ब्रह्मदत्तस्य राजेन्द्र हंसस्य डिम्भकस्य च ॥६
श्रुत चापि तयोर्वीर्यं प्रयोजनमतो द्विज ।
अपि वा कुशल विप्र पितुस्तव जनार्दन ॥१०
कुशल ब्रह्मदत्तस्य पितुश्च मम केशव ।
तयोरेव जगन्नाथ हंसस्य डिम्भकस्य च ॥११
किमाहर्तुमहीपालौ तौ हंसडिम्भकौ नृपौ ।
ब्रूहि सर्वमशेषेण नात्र शङ्का द्विजोत्तम ॥१२
वाच्य वाऽप्ययवाऽवाच्य कर्तव्यमथ चेतरत् ।
श्रुत्वा तस्य विधास्यामो युक्तरूप द्विजोत्तम ॥१३

दूतोऽसि सर्वथा विप्र न वाच्यावाच्यकल्पना ।
यत्कर्म कारनिर्दिष्टं तद्वाच्यं दूतजन्मना ॥१४
नात्र शङ्का त्वया कार्या वक्तव्यस्येतरस्य च ।
अतो वद यथा प्रोक्तं ताभ्यामिह जनार्दन ॥१५

फिर भगवान् श्रीकृष्ण ने मधुर वचनों से उससे सत्कारपूर्वक ब्रह्मदत्त और उसके पुत्र हंस-डिम्भक की कुशल पूछी और बोले कि मुझे उनकी वीरता के विषय में पहिले से ही ज्ञात है, और हे विप्र ! आप अपने पिताजी की कुशल भी तो कहिये ॥९-१०॥ तब जनार्दन ने उत्तर दिया—हे जगन्नाथ ! हे केशव ! महाराज ब्रह्मदत्त, हंस, डिम्भक और मेरे पिताजी भी कुशल पूर्वक हैं ॥११॥ तदनन्तर भगवान् ने उससे पुनः पूछा—हे विप्रश्रेष्ठ ! अब हंस-डिम्भक ने जो कुछ कहा हो, वह मुझसे कहिये । जो बात यथार्थ रूप में हो उसे निःशंक भाव से कह दीजिये ॥१२॥ आपकी बातों को सुन कर ही मैं अपने कर्त्तव्य पर विचार और निर्णय करूँगा ॥ १३ ॥ हे द्विजोत्तम ! आप तो दूत हैं, इसलिये इसका विचार मत करिये कि संदेश मे जो कहा गया है, वह कहने योग्य है या नहीं, क्योंकि राजा की आज्ञा-पालन ही दूत का कर्त्तव्य है ॥१४॥ उनका कथन उचित है अथवा नहीं, इस विचार विमर्श में पड़ने की आपको आवश्यकता नहीं है, आप तो यथार्थ बात कहने के लिये स्वतन्त्र हैं ॥१५॥

केशवेनैवमुक्तस्तु प्रोवाच स जनार्दनः ।
अजानन्निव किं ब्रूषे सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान् ॥१६
न चास्ति ते परोक्षं तु जगद्वृत्तान्तमच्युत ।
सर्वं हि मनसा पश्यन्कि त्वमात्थ वदेति माम् ॥१७
विद्वद्भिर्गीयसे विष्णो त्वमेव जगतीपते ।
इच्छया सर्वमाप्नोषि दृष्टादृष्टविवेचनम् ॥१८
त्वमेवेदं जगत्सर्वं जगच्च त्वयि तिष्ठति ।
न त्वया रहितो ह्येकः पदार्थः सचराचरः ॥१९
नास्ति किंचिदवेद्यं ते सर्वगोऽसि जगत्पते ।
त्वमिन्द्रः सर्वभूतानां रुद्रः संहारकर्मकृत् ॥२०

रक्षिताऽसि सदा विष्णुः सर्वलोकस्य माधव ।
संसारस्य भवान्स्रष्टा किं त्वमात्थ वदेति माम् ॥२१

भगवान् श्रीकृष्ण के वचन सुन कर जनार्दन ने कहा—हे प्रभो ! आप सब कुछ जानते हुए भी मुझसे अनजान की भाँति क्यों पूछ रहे हैं ? ॥ १६ ॥ विश्व का कोई भी वृत्तान्त आपसे छिपा हुआ नहीं है, और आप अपने मन के द्वारा ही सब कुछ देख रहे हैं, तब मेरे मुख से क्यों कहलवाना चाहते हैं ? ॥१७॥ हे जगतीपते ! हे विष्णो ! विज्ञजन सदा आपकी महिमा गाया करते हैं और आप एक स्थान पर स्थित होकर भी संसार भर में जो कुछ होरहा है, उसे देख सकते हैं ॥१८॥ हे नाथ ! यह संसार आपका ही स्वरूप है, और जो कुछ है, वह सब आप में ही लीन रहता है, आपसे पृथक् तो इस विश्व का कोई भी पदार्थ नहीं है ॥१६॥ हे जगदीश्वर ! कोई भी पदार्थ आपके लिये अविज्ञात नहीं है, क्योंकि आप ही सब प्राणियों के इन्द्र, संहारकर्त्ता रुद्र, पालनकर्त्ता विष्णु तथा जगत्-स्रष्टा ब्रह्मा हैं । फिर उस सन्देश को मेरे मुख से क्यों कहलाना चाहते हैं ॥ २०-२१ ॥

विद्वद्भिर्गीयसे नित्यं ज्ञानात्मेति च माधव ।
प्राणं प्राणविदः प्राहुस्त्वामेव पुरुषोत्तम ॥२२
शब्दं शब्दविदः प्राहुस्त्वामेव पुरुषोत्तम ।
तथा सति हृषीकेश किं त्वमात्थ वदेति माम् ॥२३
तथापि श्रृणु देवेश चोदितोऽस्मि यतस्त्वया ।
वदेत्यसकृदेवं तत्तास्माद्वक्ष्यामि माधव ॥२४
राजसूयेन यज्ञेन ब्रह्मदत्तोऽद्य यक्ष्यते ।
तदर्थं प्रेषितस्ताभ्यां हंसेन डिम्भकेन च ॥२५
करार्थं यदुमुख्येभ्यस्तव चामन्त्रणाय हि ।
लवणं बहु देयं ते यज्ञार्थं तस्य केशव ॥२६
इत्यर्थं प्रेषितस्ताभ्यां करं देहि तदाज्ञया ।
इदं त्वमपरं ताभ्यामुक्तं श्रृणु जगत्पते ॥२७

लवणानि बहून्याशु प्रगृह्य त्वरितं भवान् ।
आगच्छतु तयो राज्ञो सेय केशव वाग्विभो ।।२८

हे माधव ! ज्ञानी पुरुषों ने आपको ज्ञानात्मा कहा है और प्राणतत्वज्ञ आपको प्राण बताते हैं ।।२२।। शब्द शास्त्री आपको 'शब्द' कहते हैं, फिर भी हे पुरुषोत्तम आप मुझ से उस सन्देश को क्यों सुनना चाहते हैं ? ।।२३।। फिर भी यदि आपका आग्रह ही है तो मैं जो निवेदन करता हूं, उस पर ध्यान दीजिये ।। २४ ।। हे प्रभो ! इस समय महाराज ब्रह्मदत्त राजसूय यज्ञ करने को उद्यत हुए हैं, उसी कार्य से हंस डिम्भक ने मुझे यहाँ भेजा है ।।२५।। मेरे यहाँ आने का मुख्य उद्देश्य यही है कि आपसे कर माँगू यज्ञ के लिये लवण प्राप्त करूँ और आपको निमन्त्रण दूँ ।।२६।। इसलिये, इस समय आप मुझे कर दें और बहुत-सा नमक लेकर यज्ञ स्थान में जाकर उपस्थित हो जाँय । यही हंस डिम्भक का आदेश है जो मैंने आपको सुना दिया है ।।२७ २८।।

इत्युक्तवति विप्रेन्दे दूते तत्र तयोर्नृप ।
प्रहस्य सुचिरं कृष्णो बभाषे दूतमीश्वरः ।।२६
शृणु दूत वचो मह्य युक्तमुक्त द्विजोत्तम ।
कर ददामि ताभ्यां तु करदोऽस्मि यतो नृपे ।।३०
धाष्टर्यमेतत्तयोर्विप्र मत्तो यस्तु करग्रह ।
अहो धाष्टर्यमहो धाष्ट्र्यं तयो क्षत्रियबीजयो ।।३१
इदमश्रुतपूर्वं मे मत्तो यस्तु करग्रह ।
इत्युक्त्वा केशवो दूतमिदमाह स्म यादव ।।३२
हास्यमेतद्यदुश्रेष्ठा मत्तो यस्तु करग्रह ।
यष्टाऽसौ राजसूयस्य ब्रह्मदत्तो महीपतिः ।।३३
तौ त याजयितारौ हि हंसो डिम्भक एव च ।
वोढा किल यदुश्रेष्ठो लवणस्य दुरात्मन ।।३४
करदो वासुदेवो हि जितोऽस्मि यदुसत्तमाः ।
हास्य हास्यमिदं भूय श्रृणुध्व यादवा वच ।।३५

हंस-डिम्भक के दूत जनार्दन की बात सुन कर भगवान् कृष्ण देर तक हँसे और फिर दूत से बोले—हे दूत ! आपकी बात मैंने सुन ली, अब आप मेरे वचन सुनिये—मैं आपके राजा को कर अवश्य ही प्रदान करूंगा, परन्तु हे विप्र ! उन क्षत्रिय-पुत्रों की यह धृष्टता विचारणीय है ॥ २९-३०-३१ ॥ आज तक मुझसे कर प्राप्त करने की कभी किसी ने इच्छा की हो, ऐसा इससे पहिले कभी भी सुनने मे नहीं आया । यह कह कर उन्होंने वहाँ उपस्थित यादवों को सम्बोधित करके कहा—हे यादवो ! इस आश्चर्यजनक बात को सुनो कि राजा ब्रह्मदत्त राजसूय यज्ञ करेंगे, इसलिये उन्होंने मुझसे कर की माँग की है ॥ ३२-३३ ॥ हंस-डिम्भक उस यज्ञ को पूर्ण करायेंगे और हमे उसके लिये नमक ढोकर ले चलना होगा ॥ ३४ ॥ हे यादवो ! मैं महाराज ब्रह्मदत्त को कर देने वाला प्रजाजन हूँ । इससे तो यही प्रतीत होता है, जैसे मुझे उसने परास्त कर दिया हो, कैसी परिहासपूर्ण वार्ता है ? ॥३५॥

इत्युक्तवति देवेशे बलभद्रपुरोगमाः ।
यादवा. सर्व एव ते हासाय समवस्थिता ॥३६
करदः कृष्ण इत्येव ब्रुवन्तः सर्वसात्वता. ।
हासं मुमुचुरत्यर्थं तलं दत्त्वा परस्परम् ॥३७
तलशब्दो हासशब्दो रोदसी पर्यपूरयत् ।
स च विप्रो नृपश्रेष्ठ निन्दयन्मित्रमात्मनः ॥३८
अहो कष्टमहो कष्टं दौत्यं यत्कृतवाहनम् ।
इति लज्जासमाविष्टस्तूष्णीमासीदवाङ्मुख. ॥३९

भगवान् श्रीकृष्ण के वचन सुन कर बलराम आदि जितने भी यादव वहाँ उपस्थित थे, वे सभी अट्टहास करने लगे ॥३६॥ इसके पश्चात् सभी ने 'भगवान् कृष्ण ब्रह्मदत्त के करदायक हैं' यह कहते हुए परिहासपूर्वक करतल ध्वनि की ॥३७॥ उनकी करतल-ध्वनि और अट्टहास से गगन मण्डल गूँजने लगा । उस समय ब्राह्मण श्रेष्ठ जनार्दन अपने मित्र की निन्दा करते हुए अपने को भी

धिक्कारने लगा और उसने विचार किया कि मुझे ही इस निकृष्ट दौत्य कर्म को करना पड़ा है। फिर उसने लज्जावश अपना मस्तक झुका लिया ।।३८-३९।।

।। भगवान कृष्ण का सात्यकि को भेजना ।।

हासं कुर्वत्सु तेष्वेव केशवः केशिसूदनः ।
उवाच वचनं दूत गच्छ मद्वचनाद्द्विज ।।१
तावित्थं हंसडिम्भकौ ब्रूहि त्वरितविक्रमः ।
बाणैर्दास्यामि निशितैः शार्ङ्गमुक्तैः शिलाशितैः ।।२
असिना वाऽथ दास्यामि निशितेन महात्मनोः ।
शिरो वा छेत्स्यते चक्रं मत्करप्रहितं बलिम् ।। ३
यो वरं दत्तवानुरुद्रो युवयोर्धाष्ट्यं कारणम् ।
स एव रक्षिता वां स्यात्तं जित्वा वां निहन्म्यहम् ।।४
देशोऽयं संविधातव्यो यत्र नः संगतिर्भवेत् ।
तत्र गन्ता तथा चास्मि सबलः सहवाहनः ।।५
भवन्तौ निर्भयौ भूत्वा गच्छेतां सबलौ नृपौ ।
पुष्करे वा प्रयागे वा मथुरायामथापि वा ।।६
तत्राहं सबलो याता नात्र कार्या विचारणा ।
अथवा मित्रभावाच्च वक्तुमेवं न ते क्षमम् ।।७
न शक्यं यत्त्वया वक्तुं तच्च वक्ष्यति सात्यकिः ।
त्वया सह ततो गत्वा साक्षिभूतो भव द्विज ।।८
इदं च जाने विप्रेन्द्र स्नेहो मम सदा त्वयि ।
तेन त्वं विजयी भूत्वा संसारे दुःखसंकुले ।
मत्कथापरमो नित्यं सदा भव जनार्दन ।।९

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! इस पर उपस्थित सभासदों के अट्टहास करने पर भगवान् बोले—हे दूत ! तुम हंस-डिम्भक से जाकर कह दो कि मैं वहाँ पहुँच कर अपने शार्ङ्ग धनुष बाणों अथवा तीखे खड्ग से उनको कर प्रदान करूँगा। उस समय मेरे द्वारा प्रेरित चक्र उनके मस्तक को काट डालेगा

॥१-३॥ जिन भगवान् शंकर के वर-प्रदान द्वारा वे ऐसे धृष्ट हुए हैं, यदि वे भी उसका पक्ष लेकर युद्ध क्षेत्र में उपस्थित होंगे तो उन्हें भी जीत लूँगा ॥४॥ वे जिस स्थान पर मुझसे युद्ध करना चाहे, उसकी सूचना मुझे दे दें। तब मैं तुरन्त ही अपनी वाहनों से सम्पन्न सेना के सहित वहाँ पहुँच जाऊँगा ॥५॥ तुम उनसे अभी जाकर यह कहना कि वे भय-रहित होकर पुष्कर प्रयाग अथवा मथुरा में मुझसे मिल लें ॥६॥ मैं भी वहाँ अवश्य पहुँच जाऊँगा, परन्तु मैं समझता हूँ कि उनसे तुम्हारी मित्रता होने के कारण तुम मेरे संदेश को उन्हें यथार्थ रूप से न सुना सकोगे, इसलिये मैं इन सब बातों को समझाने के लिये सात्यकि को तुम्हारे साथ भेज रहा हूँ। तुम तो इनके साक्षी ही हो जाना ॥७-८॥ हे प्रिय ! मैं तुम पर अधिक प्रीति रखता हूँ, इसलिये तुम इस दुःसमय जगत् को जीत कर हमारी भक्ति करते हुए आनन्द सहित अपना जीवन निर्वाह कर सकोगे ॥९॥

इत्युक्त्वा ब्राह्मणं कृष्णः सात्यकिं पुनराह सः ॥१०
गत्वा शैनेय विप्रेण ब्रूहि मद्वचनात्तयोः ।
यन्मयोक्तमशेषेण वद गत्वा तयोः पुरः ।
यथा नः संगतिर्युद्धे तथा वद बलाद्यदा ॥११
धनुरादाय गच्छ त्वं बद्धगोधाङ्गुलित्रवान् ।
एकेनाश्वेन गच्छ त्वमसहायो यदूत्तम ॥१२
सात्यकिस्तं तथेत्युक्त्वा हयमारुह्य शीघ्रगम् ।
गन्तुमैच्छत्ततो राजन्नसहायः स सात्यकिः ॥१३
जनार्दनं विसृज्याशु दूतं तं यादवेश्वरः ।
अहो धार्ष्ट्यमहो धार्ष्ट्यमित्युवाच जनार्दनः ॥१४
नमस्कृत्य तदा दूतो माधवं माधवेश्वरम् ।
स ययौ शाल्वनगरं शैनेयेन समन्वितः ॥१५

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! जनार्दन ब्राह्मण से यह कहने के पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण ने सात्यकि से कहा—हे सात्यके ! तुम इन ब्राह्मण के साथ जाकर मेरा सब संदेश उन्हें सुनादो, जिससे रण क्षेत्र में मेरी-उनकी भेंट

हो सके ॥१०-११॥ तुम अंगुली-त्राण बाँधकर धनुष धारण करो और अश्वारूढ होकर शीघ्र ही चले जाओ ॥१२॥ भगवान् की आज्ञा होते ही सात्यकि अकेले ही घोड़े पर चढ़ कर हंस-डिम्भक के पास जाने को वहाँ से चल दिये ॥१३॥ इस प्रकार सात्यकि के वहाँ से चले जाने पर वे हंस-डिम्भक के कुकृत्य की निन्दा करने लगे। तभी जनार्दन ब्राह्मण ने भी भगवान् को नमस्कार करके सात्यकि के साथ ही शाल्वनगर को प्रस्थान किया ॥१४-१५॥

ततः प्रविश्य धर्मात्मा ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः।
आसनं महदास्थाय विसृज्य यादवं पुनः ॥१६
आस्ते सुखं यदा विप्रः शनैर्येन समन्वितः।
अथ तं हंसडिम्भयोर्दर्शयामास सात्यकिम् ॥१७
दूतोऽयं सात्यकिः प्राप्तः सव्यो बाहुरयं हरेः।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा हंसः प्राह वचस्तदा ॥१८
श्रुतः समागमः पूर्वमद्य दृष्टो मया त्वसौ।
धनुर्वेदे च वेदे च शस्त्रे शास्त्रे तथैव च ॥१९
निपुणोऽयं सदा धीर इत्येवमनुशुश्रुम।
अथो दृष्टिपथं प्राप्तः प्रीतिं नौ विदधात्यसौ ॥२०
कुशलं वासुदेवस्य बलभद्रस्य वा पुनः।
कुशलाः सात्वताः सर्वे उग्रसेनपुरोगमाः ॥२१
तथेति सात्यकिः प्राह मन्दमुन्मथिताननः।
ततो जनार्दनं प्राह हंसो वाक्यविशारदः ॥२२
अपि दृष्टस्त्वया चक्री सिद्धं नः कार्यमीहितम्।
वद सर्वमशेषेण मा वृथा कालमत्यगाः ॥२३

वहाँ पहुँच कर ब्राह्मण जनार्दन ने सात्यकि के साथ ही राज-भवन में प्रवेश किया और सात्यकि को एक श्रेष्ठ आसन पर बैठा कर, स्वयं भी बैठ गया फिर उसने हंस डिम्भक से सात्यकि का परिचय कराया कि—यह सात्यकि भगवान् श्रीकृष्ण के दक्षिण हाथ हैं और उनके दूत रूप में यहाँ आये हैं। यह

सुनकर हृस बोला—मैंने इनके आने के विषय मे तो सुन लिया था, परन्तु अब इन्हे देख भी लिया। ये धनुर्वेद, शस्त्र, शास्त्र, वेद आदि मे पारगत बताये जाते हैं। इन असामान्य वीर से मिलकर मैं अत्यत प्रसन्न हुआ हूं ॥१६-२०॥ हे सात्यकि जी! वसुदेव, बलराम और उग्रसेन आदि सब यादव-गण कुशल-पूर्वक तो हैं? तब सात्यकि ने सिर हिला कर उनके सकुशल होने की पुष्टि की। फिर वाणी विशारद हृस ने जनार्दन से पूछा—हे विप्र श्रेष्ठ! अब यह बताओ कि कृष्ण से भेंट हुई या नही और कार्य सिद्ध हुआ अथवा नही। व्यर्थ समय नष्ट न करके पहिले यही सब कहो ॥२ -२३॥

॥ सात्यकि का हृस के समक्ष भाषण ॥

इत्युक्तवति हृसे च धर्मात्माऽथ जनार्द्दन ।
उवाच प्रहसन्वीर स्तुवन्नारायण तदा ॥१

अद्राक्षमद्राक्षमह जनार्द्दन हस्तस्थश ख वरचक्रधारिणम् ।
आतप्तजाम्बूनदभूषिताङ्गद स्फुरत्प्रभाद्योतितरत्नधारिणम् ॥२

अद्राक्षमेन यदुभि पुरातन स सेव्यमान मुनिवृन्दमुख्यै ।
सस्तूयमान प्रभुभि समागधै स्मितप्रवालाधरपल्लवारुणम् ॥३

अद्राक्षमेन कविभि पुरातनं विविच्य वेद्य विधिवत्सहामरै ।
प्रफुल्लनीलोत्पलशोभित श्रिया विनिद्रहेमाब्जविराजितोदरम् ॥४

भूयोऽहमद्राक्षमज जगद्गुरु प्रमोदयन्त वचनेन यादवान् ।
निरूपयन्त विधिवन्मुनीश्वरै प्रवृत्तवेदार्थविधि पुरातन ॥५

अद्राक्षमद्राक्षमह पुन पुन समस्तलोकैकहितैषिण हरिम् ।
वसन्तमस्मिञ्जगतो हिताय जगन्मय तान्परिभूय शत्रून् ॥६

भूयोऽप्यपश्य सह यादवेश्वरैर्विक्रीड्यमान च विहारकाले।
रमन्तमीड्य रमयन्तमीश्वरान्यदूत्तमान्यादवमुख्यमीश्वरम् ॥७

भूयोऽप्यपश्य सरसीरुहेक्षण समेतया भीष्मतनूजया हरिम् ।
वसन्तमम्भोनिधिशायिन विभु भक्तप्रिय भक्तजनास्पद शिवम्॥८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन्! इस के वचन सुनकर जनार्दन ब्राह्मण ने भगवान् श्रीकृष्ण की प्रशंसा करते हुए हर्षपूर्वक कहा—हे सखे! मैंने वहाँ जाकर शंख-चक्रधारी श्रीकृष्ण को विराजमान देखा। उनके सभी अंगों में स्वर्णाभूषण और रत्नादि सुशोभित थे ॥१-२॥ उनके सब ओर बैठे हुए प्रमुख यतिगण और मुनिगण उन्हीं की उपासना में तल्लीन थे। बंदीजन उनकी विरदावलि गा रहे थे और उनके पल्लवों जैसे अरुण अधरों पर मन्द मुसकान फैली हुई थी ॥३॥ बड़ी कविगण और अनेक देवगण ध्यान मग्न होकर बैठे हैं। उनकी मुख-कान्ति नीलोत्पल जैसी और स्वर्णो रत्न के समान उदर है ॥४॥ वे अपने प्रमोदमय वचनों से यादवों को प्रसन्न कर रहे थे। प्राचीन मुनि वहाँ गूढ़ तत्वों के निरूपण में मग्न थे ॥५॥ मैं उन लोक हितकारी भगवान् को बारबार देखता था, तब मेरे मन में विचार उठा कि यह विश्व के कल्याणार्थ ही इस लोक में आकर प्रतिष्ठित हुए हैं ॥६॥ तभी विहार का समय होने पर मैंने उन्हें प्रमुख यादवों के सहित क्रीडा करते हुए भी देखा और यह भी देखा कि उन मंगलमय पद्माक्ष भगवान् के साथ साक्षात् लक्ष्मी स्वरूपा रुक्मिणीजी विहार करने लगी हैं ॥७-८॥

अद्राक्षमद्राक्षमहं मुनिवृंतं पिबन्पिबं स्तस्य वपुः पुरातनम्।
नेत्रेण मीलद्विवरेण केवलं धन्योऽहमस्मीति तदा ह्यचिन्तयम् ॥९
अद्राक्षमम्भोजयुगं दधानं प्रभुं विभुं भूतमयं विभावनम्।
आद्यं ककुद्मानमुरुं विभावसुं संस्मृत्य संस्मृत्य तमेव निर्वृतः ॥१०
अद्राक्षं जगतामीशं वक्षोराजितकौस्तुभम्।
वीज्यमानं हरिं कृष्णं चामराणां शतैः सदा ॥११
युवा विद्वेषयुक्तेन चेतसा यादवेश्वरम्।
स्मरन्तं सर्वदा विष्णुं क्व चैव क्व च वेत्ति कः ॥१२
क्व च द्रक्ष्यामि तौ मन्दौ कुतो वा मत्पुरोगतौ।
ध्यायन्तमित्थं देवेशं करे शलं वहं सदा ॥१३
हसन्तमेनमद्राक्षं करदं हास्यतत्परम्।
वदन्तं नारदे वाचं दुर्वाससि यतीश्वरे ॥१४

उनके दर्शन करते ही अत्यन्त आह्लाद होने के कारण मेरे नेत्र अर्द्ध उन्मीलित से होगये और उनकी रूप-माधुरी का पान करते हुए मेरे मन में प्रतीत होने लगा कि मैं धन्य होगया हूं ॥९॥ तब उन भूतभावन, सूर्य के समान तेजस्वी और विभु भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण कर करके उस समय मुझे अत्यत आनन्द की प्राप्ति हुई ॥ १० ॥ उस समय उनके वक्षस्थल पर कौस्तुभ मणि सुशोभित और सैंकडो चमर उन पर ढोरे जारहे थे ॥११॥ उस समय मेरे मुख से कर प्रदान की बात सुनते ही उन्होंने विद्वेष बुद्धि से कहा—वे कहाँ हैं ? कहाँ मिलेंगे ? मुझे कर-प्रदान का आदेश देने वाला दुष्ट हम है किधर ? फिर वे नारदजी और दुर्वासा से यही बात कह-कह कर अट्टहास करने लगे ॥१२-१४॥

ब्रह्मसूत्रपदा वाणी दापयन्त मुनीश्वरम् ।
दृष्ट्वाऽह त हरिं देव पुन पुनरवोवदम् ॥१५
असाध्यमिदमारब्ध ताभ्यामिति नृपोत्तम ।
नारब्धव्यमिद कार्यमित प्रभृति भूमिप ॥१६
निवृत्ता सा कथा ह् साचिन्तयद्ग्रहण तव ।
तद्वृत्तमखिल सर्वं वदिष्यति हि सात्यकि ।
एतद्वचनमाकर्ण्य ह स क्रुद्धोऽब्रवीद्वच ॥१७
अरे ब्राह्मणदायाद तन्माया तव वाचि यत् ।
आवयो पुरतो वक्तु त्रैलोक्य जेतुमिच्छतो ॥१८
मायया त्वा भ्रमयति कृष्णो लीलाविधानवित् ।
त दृष्ट्वा भ्रम एवं च तव स जायते महान् ॥१९
श खचक्रगदाशार्ङ्ग वनमालाविभूषितम् ।
वृष्णिवीर समावेश्य समुच्छ्रितयशोधरम् ॥२०
सूतमागधसस्तावप्रकटद्वारबाहुकम् ।
अत्यद्भुतयशोराशि विक्रमाल्लोकमण्डनम् ॥२१
चतुर्भुज वलाकान्त वृष्णियादवस मतम् ।
अहोऽद्य भ्रम एवैष दर्शनात्तस्य चक्रिण ॥२२

तब मैं ब्रह्मसूत्र-प्रवक्ता दुर्वासा ऋषि और भगवान् श्रीकृष्ण को देख-देख कर विचार करने लगा कि मेरे मित्रों से यह कैसा अनुचित कार्य होगया

है ? हे नृपोत्तम ! यह कार्य असाध्य है, इससे अब भी विरत हो जाना उचित है ॥ १५-१६ ॥ हे मित्र ! ऐसा विचार उठने पर तुम्हारी बात को यथार्थ रूप से मैं उन्हे नही सुना पाया । ये महात्मा सात्यकि सब बात को वास्तविक रूप से कहेगे । यह सुन कर हम अत्यन्त क्रोधित होकर बोला—अरे, तू यह क्या कहने लगा ? इस समय हम दोनो भाई तीनों लोको को जीतने की तैयारी कर रहे हैं, तब इस प्रकार की बातें करने का साहस तुम मे कैसे होगया ? ॥१७-१९॥ तू उसके शख-चक्र आदि आयुधो और वनमाला के धारण, बन्दीजनो की स्तुति, यादवो द्वारा यश-कीर्तन और उसके चतुर्भुज रूप को देख कर भ्रम मे पड़ गया है ॥२०-२२॥

इदानी च महाराज भ्रामयत्येव दुर्मतिः ।
त्वामेव विप्र मन्दात्मन्निन्द्रजालिकता हि ते ॥२३
चापल्यमिदमेवैतत्तव विप्र भ्रमोद्भवम् ।
अहो हि खलु साहश्यं वक्तव्यं भवता मम ॥२४
अहमेव त्वया विप्र मर्पये प्रोदितं वचः ।
सखिभावाद्द्विजश्रेष्ठ अन्यथा कः सहेदिदम् ॥२५
गच्छ मन्दमते विप्र यथेष्टं साम्प्रतं तव ।
द्विज गच्छ यथेष्टं त्व पृथिवी पृथिवी तव ॥२६
जित्वा गोपालदायादं हत्वा यादवकान्वहून् ।
एप नः प्रथमः कल्पो जेष्याम इति यादवान् ॥२७
गच्छ गच्छेति विप्र त्व धृष्टं परुषवादिनम् ।
शत्रुपक्षस्तुतिपर सह भुक्त्वा सदा मया ॥२८

तू अपने ब्राह्मण सुलभ भोलेपन से उसकी ऐन्द्रजालिकता के चक्कर मे पड कर चकरा गया है, अन्यथा उस अधम के साथ मेरी तुलना कैसे हो सकती है ? ॥२३-२४॥ तू मेरा मित्र है, इसीलिये मैंने तेरे कुवाक्यों को सहन कर लिया है, अन्यथा इसका फल चखा देता ॥२५॥ हे मूर्ख ! यह पृथिवी तो अत्यंत विशाल इसमें तुम जहाँ कही रहना चाहो, वहीं तुरंत चले जाओ ॥२६॥ मैं प्रतिज्ञा

करता हूँ कि उस ग्वाले कृष्ण को उसके सहायकों सहित बांध करके यादवों के सम्पूर्ण ऐश्वर्य को जीत लूंगा । २७। तू चिरकाल तक मेरे साथ खाता रहा है और आज शत्रु का गुण गा रहा है । तुझे ऐसा करने मे किंचित् भी लज्जा नहीं आई ? इसलिये तू अब जहाँ चाहे, वहीं चला जा ॥२८॥

न मे विप्रवधः कार्यः कष्टादपि हि सर्वतः ।
इत्युक्त्वा ब्राह्मणं भूयो हंसः सात्यकिमब्रवीत् ॥२९
भो भो यादवदायाद किमर्थं प्राप्तवानिह ।
किमब्रवीन्नन्दसुतः किं वाऽसौ तेऽदिशत्करम् ॥३०
इदं सत्यवचो हंस शङ्खचक्रगदाभृतः ।
शरैर्निशितधाराग्रैः शार्ङ्गमुक्तैः शिलाशितैः ॥३१
दास्यामि करसर्वस्वमसिना निशितेन ते ।
शिरश्छेत्स्यामि ते हंस करदानस्य संग्रहम् ॥३२
धाष्टर्यं हि तव मन्दारमन्किमतोऽपि नृपाधम ।
देवदेवाज्जगन्नाथात्करमिच्छति यो नृपः ॥३३
तस्यैव करसंक्षेपो जिह्वाच्छेदी नराधम ।
तस्य शार्ङ्गरवं श्रुत्वा शङ्खस्य च हरेः पुनः ॥३४
को नाम जीवितं काङ्क्षेत्तिष्ठेदानीं त्वमद्य वै ।
गिरीशवरदर्पेण को ब्रूयादीदृशं वचः ॥३५

यह मैं इस कारण कहता हूँ कि घोर सकट उपस्थित होने पर भी मैं ब्राह्मण की हत्या नही करना चाहता । यह कह कर हंस ने सात्यकि से कहा— हे यादव दूत ! तेरे यहाँ आने का क्या प्रयोजन है ? कृष्ण ने क्या सन्देश भेजा है ? उसने कर दिया अथवा नही ? ॥२९-३०॥ इस पर सात्यकि ने कहा—हे हंस ! भगवान् श्रीकृष्ण का सन्देश है कि सुतीक्ष्ण बाणों एवं खड्ग द्वारा तुम्हारा सिर उड़ा कर ही कर प्रदान करूँगा ॥३१-३२॥ अरे नृपाधम ! विश्व के ईश्वर से जो कर प्राप्त करने की इच्छा रखे, उससे बढ कर धृष्ट पुरुष और कौन होगा ? ॥३३॥ अरे नराधम ! ऐसे मूर्ख की तो जिह्वा का ही उच्छेद कर

डालना चाहिये। उनके शार्ङ्ग धनुष की टकोर अथवा पाञ्चजन्य की ध्वनि सुन कर बडे-बडे वीरो के भी प्राण सकट मे पड जाते हैं, जिसमे तुम तो एक तुच्छ प्राणी हो। फिर भगवान् शंकर से वर-प्राप्ति के मद मे तुम्हारे अतिरिक्त कौन पुरुष ऐसी बात करेगा? ॥३४-३५॥

सहाया वयमेवैते बलभद्रपुरोगमाः।
प्रथमो बलभद्रोऽसौ द्वितीयोऽहं च सात्यकिः ॥३६
कृतवर्मा तृतीयस्तु चतुर्थो निशठो बली।
पञ्चमोऽथ च बभ्रुस्तु षष्ठश्चैवोत्कलः स्मृतः ॥३७
सप्तमस्तारणो धीमानस्त्रशस्त्रविशारदः।
अष्टमस्त्वथ सारङ्गो नवमो विपृथुस्तथा ॥३८
दशमश्चोद्धवो धीमान्वयमेते बलान्विताः।
त एते पुरतो गोप्तुः शंखचक्रगदाभृतः ॥३९
देवदेवस्ययुद्धेषु तिष्ठन्त्येव दिवानिशम्।
यौ हि वीरौ सुतौ तस्य नास्त्यसदृशौ बले ॥४०
तावेव मा क्षमौ युद्धे हन्तुं बलमदान्वितौ।
यो गिरीशो गिरा देवो वरं दत्त्वा स तिष्ठति ॥४१
युवां हि किवलौ युद्धे तिष्ठतः सशरं धनुः।
गृहीत्वा शत्रुभिः सार्द्धं युद्धं कर्तुं समुद्यतौ ॥४२
ईदृशेऽथ भृत्येषु युद्धं कुर्वन्तु शत्रुभिः।
त्रैलोक्यं रक्षतस्तस्मात्करमिच्छन्व्रजेत कः ॥४३

देख, बलरामजी जैसे उनके सहायक हैं, फिर मैं, कृतवर्मा, निशठ, बभ्रु, उत्कल, तारण, सारंग, विपृथु और उद्धव भी तो उनके पार्श्ववर्ती रहते हैं ॥ ३६-३६ ॥ युद्ध के उपस्थित होने पर तो हम सब दिन-रात उनके साथ रहते हैं। अश्विनीकुमार के समान श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी ही तुम मदान्धों को मारने मे समर्थ हैं। जब तुम युद्ध भूमि में पहुँचोगे तब तुम्हारे वरदायक भगवान् शंकर ही कैलाश से आकर तुम्हारी सहायता भले ही करें।

परन्तु जब भगवान् श्रीकृष्ण रणभूमि मे उतरेंगे, तब सभी यादव उनके साथ दिखाई पड़ेंगे । इसलिये हमारे रहते किस की सामर्थ्य है जो उनसे कर लेने की इच्छा कर सके ? ॥४०-४३॥

हनिष्यत्येव वां युद्धे त्रैलोक्यं यो हि रक्षति
शरेण निशितेनाजौ शार्ङ्गमुक्तेन केवलम् ॥४४
क्व नः संग्राम इत्येवं पुनराह जगत्पतिः ।
पुष्करे पुण्यदे नित्यमुत गोवर्द्धने गिरौ ॥४५
मथुरायां प्रयागे वा दर्शयन्तो बलानि मे ।
शखचक्रधरे देवे जगत्पालनतत्परे ॥४६
राजसूयं महायज्ञं कर्तुमिच्छति कः स्वयम्
यदन्वा स्वस्तिमान्मर्त्यस्त्वां विना को व्रजेत्सुखम् ॥४७
इदमिच्छसि चेन्मूढ हास्यतां यासि भूतले ।
इत्युक्त्वा सात्यकिर्वीरो हसन्निव भुवि स्थितः ॥४८

तीनो लोको की रक्षा करने वाले वे भगवान् श्रीकृष्ण जब शार्ङ्ग धनुप लेकर उससे बाण-वर्षा करेंगे, तब तुम्हारा वध करने मे वे अकेले ही समर्थ होंगे ॥४४॥ इस प्रकार हमे रणक्षेत्र मे जाने का अवसर ही नही आयेगा । भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि पुष्कर, गिरि गोवर्धन, मथुरा या प्रयाग मे से जहाँ कही भी चाहे, मेरा सामना करने के लिये आ जांय । ससार के पालनकर्त्ता भगवान् श्रीकृष्ण के रहते हुए राजसूय यज्ञ करने मे कौन समर्थ है ? ऐसा अनर्गल प्रलाप तो तुम्हारे जैसे मूर्ख ही कर सकते हैं ॥४५-४७॥ अरे मूर्ख ! तू इस प्रकार के विचार रख कर जगत् मे अपना उपहास करायेगा । यह कह कर सात्यकि कुछ हँसे और फिर मौन होगये ॥४८॥

॥ हंस डिम्भक की गर्वपूर्ण उक्ति ॥

ततः क्रुद्धो महाराज हंसो डिम्भक एव च ।
इदं वै प्रोचतुर्वाक्यं रोषव्याकुलितेक्षणौ ॥१

दिधक्षन्तौ दिशः सर्वाः सर्वान्वीक्ष्य नृपोत्तमान् ।
करेण निष्पीड्य करं स्मरन्तौ तद्वचो महत् ॥२
क्व नु क्व वा नन्दसूनुः क्व वा रामो वलोत्कटः ।
इति ब्रुवाणौ साक्षेपौ सात्यकिं सत्यसंगरम् ॥३
अरे यादवदायाद किं ब्रूषे नः पुरो गतः ।
इतो निर्गच्छ मन्दात्मन्दूतस्त्वमसि साम्प्रतम् ॥४
अन्यथा वध्य एव त्वं प्रलपन्परुषं वच. ।
सत्यं निर्लज्ज एवासि यद्ब्रूया ईदृशं वचः ॥५
आवामिदं जगत्सर्वं शासितुं संयतौ नृपौ ।
को नाम मानुषे लोके करदो नैव जीवति ॥६

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! यह सुन कर हंस-डिम्भक दोनों ही क्रोधित होगये और क्रोध से लाल हुए नेत्रों के द्वारा सात्यकि और सब उपस्थित राजाओं को इस प्रकार देखने लगे जैसे वे सब दिशाओं को जला डालेंगे । उस समय रोष के कारण हाथों को मलते हुए उन्होंने कहा—वह नन्द पुत्र ग्वाला कृष्ण और मदोन्मत्त बलराम है कहाँ ? इस प्रकार गर्व से प्रलाप करते हुए वे दोनों सात्यकि से कहने लगे—अरे यादव-दूत ! तू हमारे सामने क्या बकवाद कर रहा है ? अरे दुरात्मन् ! तू अभी यहाँ से भाग जा । क्योंकि दूत है ॥४॥ यदि दूत न होता तो क्या तू ऐसे वचन कह कर जीवित रह सकता था ? अरे, तू अत्यन्त निर्लज्ज है, तभी तो इस प्रकार के वचन कह रहा है ? ॥५॥ हम दोनो भाइयों का इस समय सम्पूर्ण विश्व पर आधिपत्य है, तब हमको कर दिये बिना कौन-सा वीर है जो पृथिवी पर जीवित रह सके ? ॥६॥

हत्वा गोपालकान्सर्वान्विद्ध्वा यादवकान्बहून् ।
गृह्णीमः करसर्वस्वं ततो गच्छ नराधम ॥७
अवध्यो दूततां प्राप्तो बहुबद्धं प्रभाषसे ।
ईश्वरो नौ वरं दाता ह्यस्त्राणामरि च प्रभुः । ८
रक्षितारौ महाभूतौ संग्रामं गच्छतोश्च नौ ।
पितरं याजयिष्यावो जित्वा गोपालकं रणे ॥९

एते प्रोषिता भृशं युद्धे कातराः सर्व एव ते ।
हत्वा तान्सबलान्युद्धे पुनर्जेष्यामि केशवम् ॥१०
संहर्तव्या महासेना प्रगृहीतशरासना ।
गृहीतप्रासमुशला गृहीतकवचा सदा ॥११
आरूढरथसाहस्रा गदापरिघसङ्कुला ।
सुप्रभूतेन्धनवतो प्रभूतवरूथ साधना ॥१२
चाल्यता वाहिनी घोरा बलाध्यक्षा समन्ततः ।
अवध्य एव गच्छ त्वं न ते मरणतो भयम् ॥१३
सग्राम पुष्करेऽस्माक श्वः परश्वोऽपि वा नृप ।
ततो ज्ञास्यामहे वीर्यं केशवस्य बलस्य च
ये त्वोक्ता नृपा. सख्ये तेषामपि च यद्बलम् ॥१४

आज मैं सब गोपो और यादवो का सहार कर उनके समस्त धनो को छीन लूँगा । परन्तु दूत को मारा नही जाता, यह जान कर ही तू ऐसी बातें करता है । क्या तू नही जानता कि भगवान् शङ्कर ने हमे वर प्रदानपूर्वक सभी प्रकार के शस्त्रास्त्र दिये हैं और वे ही हमारी रक्षा करते हैं ॥७-८॥ आज हम ग्वालो का वध करके ही अपने पिता को राजसूय यज्ञ की दीक्षा दिलायेंगे । तूने जिन यादवो का नाम लिया है, उन सभी कायरो को परास्त करके ही तुम्हारे कृष्ण को मारेंगे ॥६-१०॥ उनसे जितना हो सके उतना ही अधिक सैन्य-संग्रह करके हजारों धनुर्धरो को प्रास, मूसल, कवच आदि से सजालें तथा सहस्रो रथो पर आरूढ होकर गदा-परिघ आदि ग्रहण कर लें, बहुत सा ईंधन एकत्रित करें और वाहनो सहित सेना को अधिक से अधिक जुटा कर सब प्रकार तैयार हो जांय ॥११-१२॥ उनके महान् सेनापति अपनी भीषण सेना को लेकर आजांय । हमें तुझसे क्या करना है ? तू दूत होने के कारण अवध्य है, इसलिये जहाँ जाना चाहे, वही तत्काल भाग जा ॥ १३ ॥ कल परसो मे पुष्कर में युद्ध का प्रारम्भ होगा, उसमे तुम्हारे कृष्ण, बलराम जैसे सभी वीर राजाओं के बल का पता चल जायगा और हम मे कितना बल है ? यह भी तू जान सकेगा ॥१४॥

हंसागच्छामि वां हन्तुं श्वः परश्वोऽपि वा नृप ।
अद्यैव हि मया वध्यौ न चेद्दूतो भवाम्यहम् ॥१५
नहि श्वो वा परश्वो वा युवां कटुकभाषिणौ ।
दौत्ये हि दुःखमतुलं वहाम्येव सदा नृणाम् ॥१६
अन्यथाऽहं युवां हत्वा ततो यास्यामि निर्वृतिम् ।
स्ववीर्यं बाहुदर्पं च दर्शयन्वां नृपाधमौ ॥१७
शंखचक्रगदापाणिः शार्ङ्गधन्वा किरीटभृत् ।
नीलकुञ्चितकेशाढ्यो लम्बबाहुः श्रिया वृतः ॥१८
स सर्वलोकप्रभवो विश्वरूपः सुरूपवान् ।
दैत्यदानवहन्ताऽसौ योगिध्येयः पुरातनः ॥१९
पद्मकिञ्जल्कनयनः श्यामलः सिंहविक्रमः ।
सृष्टिस्थितिलयैककः कर्ता त्रिजगतो गुरुः ॥२०
शरेण निशितेनाजौ दर्पं वां व्यपनेष्यति ।
इत्युक्त्वा रथमारुह्य प्रययौ सात्यकिः किल ॥२१

सात्यकि ने कहा—हे हंस ! हम भी तुम दोनों का प्राण-हरण करने के लिये कल-परसों में वहीं पहुंच जायेंगे । यदि इस समय मैं दूत के रूप में न होता, तो तुम दोनों का आज ही वध कर डालता ॥१५। तुम्हारी भाषा जैसी कड़वी है, उसके देखते हुए तो तुम्हें कल या परसों तक का समय देना भी आवश्यक प्रतीत नहीं होता । परन्तु, दौत्य कर्म की कठोरता में बंधा हुआ हूं ॥१६॥ यदि यह बात न होती तो मैं आज ही अपना भुज-बल दिखा कर तुम्हें ठिकाने लगा देता तो मेरा मन अत्यंत शान्ति को प्राप्त होता। १७॥ जो शंख-चक्र गदा-शार्ङ्ग-किरीट धारी, नील कुंचित केशों से सुशोभित मस्तक और विशाल बाहु वाले, लक्ष्मीवल्लभ, सब लोकों की सृष्टि के मूल कारण, विश्वम्भर, सर्व सुन्दर, दैत्य-दानव-विध्वंसक, योगियों के ध्यान योग्य, पुराण पुरुष, कमल नेत्र, श्यामल, सिंह जैसे पराक्रमी तथा विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के कर्त्ता हैं, वे ही जगदीश्वर अपने तीक्ष्ण बाणों से तुम्हारे अहंकार को नष्ट करेंगे । यह कह कर सात्यकि अपने रथ पर चढ़कर द्वारका के लिये चल पड़े ॥१८-२१॥

।। भगवान कृष्ण की पुष्कर यात्रा ।।

प्रविश्य स पुरं विष्णोः सात्यकिः शिनिपुंगवः ।
आचचक्षेऽथ कृष्णाय यथा वृत्तं तयोस्तथा ।।१
ततः प्रभाते विमले केशवः केशिसूदनः ।
बलाध्यक्षानुवाचेदं चक्रपाणिर्गदाधरः ।।२
संनह्यतां बलं सर्वं रथकुञ्जरवाजिमत् ।
अनेकभेरीपणवं प्रासासिपरिघाकुलम् ।।३
सध्वजं सपताकं च सालकारपरिच्छदम् ।
ते तथेति प्रतिज्ञाय सर्वं चक्रुरधीनगाः ।।४
आदाय सुदृढं चापं रथमारुह्य दंशिताः ।
अग्रतो जग्मुरत्यर्थं सेनायाः पुरुषोत्तमाः ।।५
सात्यकिश्च तथा राजन्प्रगृहीतशरासनः ।
बभौ क्रोधसमायुक्तो जगामाल महाबलः ।।६
अन्ये च यादवाः शूराः प्रगृहीतमहायुधाः ।
सिंहनादं प्रकुर्वन्तो जग्मुरत्यर्थमुत्तमाः ।।७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन ! तदनन्तर सात्यकि ने द्वारकापुरी में पहुँच कर भगवान् श्रीकृष्ण को वहाँ का सब वृत्तान्त यथार्थ रूप में कहा ।।१।। दूसरे दिन रात्रि के व्यतीत होने पर नित्य-नैमित्तिक कृत्यों से निवृत्त होने के पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने सेनापतियों को बुलाकर उनसे कहा—हे वीर श्रेष्ठो ! आप अश्व रथ, गज तथा पैदलों से युक्त चतुरंगिणी सेना को तुरन्त ही सजाओ। शीघ्र ही भेरी, पणव, प्रास, खड्ग, परिघ, ध्वजा-पताका और उपयुक्त अलंकारादि को एकत्रित कर डालो। यह सुनकर उन सेनाध्यक्षों ने उनकी आज्ञा-पालन-सूचक सिर झुकाकर सहमति प्रकट की ।।३-४।। फिर वे वहाँ से जाकर युद्ध की तैयारी में लगे और कुछ ही देर में शस्त्रास्त्रों से युक्त होकर चल पड़े, उनमें जो मुख्य-मुख्य वीर थे, वे रथों में बैठ कर आगे-आगे चले ।।५।। हे राजन् ! वीरवर सात्यकि भी धनुष धारण किये हुए सबसे आग

चल रहे थे ॥६॥ अन्यान्य यादव भी आयुधों से सुसज्जित हुए सिंहनाद कर रहे थे ॥७॥

हरिस्तु रथमारुह्य संस्कृतं दारुकेण ह ।
शार्ङ्गं भारसहं घोरं गृहीत्वा सशरं धनुः ॥८
चक्रपाणिस्तदा शंखी गदाशरवरासिमान् ।
बद्धगोधांगुलित्राणः पीतवासा जनार्दनः ॥९
पद्ममालावृतोरस्को नवजीमूतसन्निभः ।
ययौ रथगतो विप्रैः स्तूयमानो मुदान्वितः ॥१०
सूतैर्मागधपुत्रैश्च गीयमानस्ततस्ततः ।
आनीय सेना सकला ययौ काष्ठामथोत्तराम् ॥११
पाञ्चजन्यं मुखे न्यस्य सर्वप्राणेन केशवः ।
दध्मौ महारवं कुर्वञ्छत्रूणां भयवर्द्धनः ॥१२
आध्मातस्तेन हरिणा स चक्रे शंखराड् ध्रुवम् ।
रवः स रोदसी राजन्पूरयामास सर्वतः ॥१३
तस्मिञ्छंखे तथाऽऽध्माते दध्मुः शंखाः सहस्रशः ।
भेर्यश्चापि समाध्माता मृदंगा बहवो नृप ॥१४

तभी पीताम्बर धारी भगवान् श्रीकृष्ण दारुक द्वारा सुसज्जित किये गये रथ पर चढ़ कर चल दिये। उस समय उन्होंने शार्ङ्ग धनु, बाण, शंख, चक्र, गदा और खड्ग हाथों में ले रखे थे। उनकी अंगुलियों में अंगुलित्राण बंधा हुआ था ॥८-९॥ उनके वक्षःस्थल में कमल पुष्पों की मालाएँ सुशोभित थीं, उनका वर्ण नवीन मेघ के समान श्याम था। जब वे युद्ध के लिये चले तब ब्राह्मण वर उनकी स्तुतियाँ करने लगे ॥१०॥ सूत, मागध और वन्दीजनों ने उनका गुण-कीर्तन किया और तब वे समस्त एकत्रित सेना के साथ उत्तर दिशा की ओर बढ़े ॥११॥ उस समय उन्होंने अपने पाञ्चजन्य शंख को मुख से फूँक कर उसकी घोर ध्वनि की ॥१२॥ हे राजन्! उस शंख-ध्वनि के होते ही समस्त नभ-मण्डल प्रतिध्वनित होने लगा ॥१३॥ उस शंख के बजते ही हजारों शंख एक साथ बज उठे और तभी अनेकों भेरी और मृदंगादि वाद्य बजने लगे ॥१४॥

नेदुरत्यर्थमतुल घर्माग्ने जलदा यथा।
अथाययुर्महाराज पुष्कर पुण्यवर्धनम् ॥१५
सरसस्तस्य राजेन्द्र पुष्करस्य नृपोत्तमा ।
प्रतीक्ष्य हसडिम्भको युद्धाय समवस्थिता ॥१६

निवेश कारयामासुर्यादवा सर्व एव हि।
स्व स्व ययु सुख राजन्प्रगृहीतकुटीमठम् ॥१७

भगवानपि गोविन्द सरो दृष्ट्वा सुशोभनम् ।
उपस्पृश्य जले तस्मिन्प्रणम्य यतिपु गवान् ॥१८
तयोरागमन लिप्सुरास्ते तीरे यथासुखम् ।
शृण्वन् वेदध्वनिं विष्णुर्ब्राह्मणाना समन्तत ॥१९

जैसे वर्षा के प्रारभ मे मेघ गभीर गर्जना करते हैं वैसे ही भेरी मृदग आदि बाजो का शब्द एक साथ गूँज उठा। उधर पुष्कर मे हस डिम्भक के आगमन की प्रतीक्षा करते हुए बहुत से राजागण अपने-अपने शिविर स्थापित करके ठहर गये ॥१५-१६॥ तभी भगवान् कृष्ण ने उस शोभा सम्पन्न पुष्कर सरोवर पर जाकर उसके दर्शन किये और आचमन लेकर तीर्थवासी मुनिजनो को प्रणाम किया तथा वेद ध्वनि श्रवण करते हुए वे भी शिविर स्थापित कर हस डिम्भक के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे तथा अन्यान्य यादव वीरो ने भी शिविर गाड कर निवास किया ॥१७ १९॥

॥ हस-डिम्भक का पुष्कर पहुँचना ॥

अथ तौ हसडिम्भकौ जग्मतु पुष्कर प्रति ।
प्रगृहीतमहाचापौ सरथौ सध्वजौ नृप ॥१
पुर सरमहाभूतौ सहस्त्राविवोल्बणौ ।
प्रकुर्वन्तौ सिहरव भस्मना परिलेपितौ ॥२
त्रिपुण्ड्रकललाटान्तौ रुद्राक्षपरिशोभितौ ।
अन्यौ द्वाविव रुद्रौ तौ लोकसहारकारकौ ॥३

ततोऽनुजग्मु शतश सैन्यानिनृपसत्तम ।
अक्षौहिण्यो दशैवासस्तयोरथ समागता ॥४

विचक्रस्तु महाराज दानवो नगसन्निभ ।
तयोरेव सखा पूर्वमासीच्च बलशालिनो ॥५

शक्रो यस्य पुर सर स्यातु शक्तो न वज्रभृत् ।
यो हि वीरो महाराज देवदैत्यसमागमे ॥६

देवान्निघ्नस्तथा राजन्देवेन्द्रमजयन्महान् ।
अकरोच्च पुरा युद्ध विष्णुना प्रभविष्णुना ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! हंस और डिम्भक भी महान् धनुषों को ग्रहण कर पृथक् पृथक् रथों के द्वारा पुष्कर के लिये चल पडे ॥१॥ उनके आगे-आगे विकराल शरीर वाले दो भूत सिंहनाद करते हुए चल रहे थे उन भूतों के मस्तक पर त्रिपुण्ड लगा था और देह पर रुद्राक्ष की माला सुशोभित थी। वे दोनों लोक-संहारार्थ अवतीर्ण दो रुद्र जैसे प्रतीत हो रहे थे ॥२३॥ फिर उन हंस डिम्भक के पीछे सैकडा सनानी तथा दस अक्षौहिणी सेना चल पडी ॥४॥ हे राजन् ! बहुत समय हुआ, तब उन दोनो का विचक्र नामक एक पर्वत के समान दानव से मैत्रि-भाव हो गया था ॥५॥ उस विचक्र के बल के सामने देवराज इन्द्र भी टिकने में समर्थ नहीं थे। जब देवासुर संग्राम हुआ था तब उस वीर ने देवताओं को बुरी तरह हराया और इन्द्र को भी जीत लिया था उसने पहिले कभी सर्वलोकेश्वर भगवान् विष्णु से भी संग्राम किया था ॥६-७॥

यो हि द्वारवतीं प्राप्य ववाधे यदुपु गवान् ।
स तदानो महाराज श्रुत्वा युद्धमुपस्थितम् ॥८

अनेकशतसाहस्रं दानवै परिवारयुधं ।
वृत समनवर्द्दैत्यो वृष्णिद्वेषान्नृपोत्तम ॥९

हंसस्य डिम्भकस्याथ साहाय्य कर्तुमुद्यत ।
विचक्रस्याथ दैत्यस्य हिडिम्बो नामसोदर ॥१०

अतीव मित्रतां यातो दद्यात्प्राणांश्च संयति ।
राक्षसैरपरैः सार्द्धं शिलाशूलासिपाणिभिः ॥११

ययौ तस्य सहायार्थं हिडिम्बः पुरुषादकः ।
अष्टाशीतिसहस्राणि राक्षसास्तस्य चाभवन् ॥१२

अनुयाता महाराज शिलापरिघबाहवः ।
तयोस्तत्र महासैन्यं गच्छतोः केशव प्रति ॥१३

मिश्रितं दैत्यसंघैश्च राक्षसैश्च समन्ततः ।
अत्यद्भुत महारौद्रं त्रैलोक्यभयदायकम् ॥१४

एक बार उसने द्वारका पर आक्रमण करके यादवों को भी त्रस्त किया था और इन युद्ध की सूचना मिलते ही यादवो के वैर का स्मरण कर कई हजार दानवो को साथ लेकर हस डिम्भक का साथ देने के लिये चल दिया। उस विचक्र की हिडिम्ब नामक एक महाराक्षस से मित्रता थी। जब मित्र के लिये प्राणोत्सर्ग कर देने वाले उस हिडिम्ब ने सुना कि विचक्र युद्ध मे जा रहा है, तब वह भी उसकी सहायता करने के विचार से शिला, शूल और तलवारों से सुसज्जित भारी सेना को साथ लेकर चल पडा, वह सेना अट्ठासी हजार थी ॥८-१२॥ हे राजन्! उसके सैनिको के बाहु परिघ के समान अत्यन्त कठोर और विशाल थे। कुछ दूर जाने पर विचक्र, हिडिम्ब और हंस-डिम्भक की सेनाएँ परस्पर मिलकर एक हो गई ॥१३॥ तब वह राक्षसो से युक्त हुई सम्पूर्ण सेना तीनों लोको के लिये घोर सकट दायिनी प्रतीत होने लगी ॥१४॥

दैत्येन सहितौ तौ हि जग्मतुः पुष्करं प्रति ।
तावेतौ हंसडिम्भकौ हन्तुं केशवमञ्जसा ॥१५

ततः श्रुत्वा जरासन्धो विग्रहं यदुभिः सह ।
नाकरोन्नृपसाहाय्यं पापं मे भवितेति ह ॥१६

गच्छतोः समिति राजन्हंसस्य डिम्भकस्य च ।
अतित्वरितविक्रान्तास्ते ययुः पुष्करं प्रति ॥१७

सिंहनाद विमुञ्चन्तः कथयन्तः परस्परम् ।
अहमेव नृपा युद्धं करोमि प्रथमं हरेः ॥१८
इत्यप्रुवन्नृपा राजञ्छतशः केशवं प्रति ।
संप्राप्तास्ते नृपश्रेष्ठाः पुष्करं पुण्यवर्द्धनम् ॥१९
मुनिजुष्टं तपोवृद्धैर्ऋषिभिश्च निषेवितम् ।
अत्यन्तभद्रं लोकेषु पुष्करं प्रथमं नृप ॥२०
पुष्करं पुण्डरीकाक्षो द्वावेव जगतीपते ।
दर्शनात्स्पर्शनाच्चैव किल्विषच्छेदिनी नृप ॥२१

उन दोनों असुरों को साथ लेकर हंस-डिम्भक ने यादवों को नष्ट करने के लिये पुष्कर क्षेत्र की ओर वेग सहित कूँच किया ॥१५॥ यादवों के साथ होने वाले इस संग्राम का समाचार जरासंध को भी मिला, परन्तु उसने ब्रह्म शाप के कारण उस युद्ध में भाग नहीं लिया ॥१६॥ हंस-डिम्भक के अनुयायी सभी राजागण सिंह गर्जन करते हुए कहते थे मैं ही सब से आगे बढ़ कर कृष्ण को युद्ध में पछाड़ूँगा । ऐसी गर्वोक्ति व्यक्त करते हुए वे राजा अत्यंत वेगपूर्वक आगे बढ़ने की होड़ करने लगे ॥१७-१८॥ यह कहते हुए वे सैकड़ों भूपाल मुनिजनों द्वारा सेवित एवं पुण्य को बढ़ाने वाले पुष्कर तीर्थ में युद्ध की इच्छा से जा पहुँचे ॥१९-२०॥ हे राजन् ! पुष्कर क्षेत्र और पुण्डरीकाक्ष भगवान् दोनों के ही दर्शन या स्पर्श से पाप दूर हो जाते हैं ॥२१॥

पुष्करं पुण्डरीकाक्षौ द्वावेव नृपसत्तम ।
सेव्यमानौ मुनिश्रेष्ठैरमरौघैर्महात्मभिः ॥२२
द्वावेव हि नृपश्रेष्ठ सर्वपापप्रणाशकौ ।
तावुभौ यत्र सहितौ तत्र ते संस्थिता नृपाः ॥२३
दृष्टवन्तौ हरिं विष्णुं विष्टरश्रवसं परम् ।
पुष्करं पुण्यनिलयं तीर्थं ब्रह्मनिषेवितम् ॥२४
ताभ्यां पुरु नमस्कारं मनसा नृपसत्तम ।
अहो निःशेषमभवत्तत्र भूयो न संशयः ॥२५

सैन्यं तत्र च संप्राप्तं दैत्यरक्षःसमाकुलम् ।
अनेकभेरीपणवझर्झरीडिण्डिमाकुलम् ॥२६
नानापणवसंमिश्रं रक्षोनादविनादितम् ।
प्रविश्य सरसस्तीरं पुष्करस्य विशांपते ।
दर्शयामास देवेशं युद्धाय समुपस्थितम् ॥२७

वहाँ तपोवृद्ध महान् तपस्वी और सामवेदाध्यायी ऋषि मुनि पुष्कर और पुण्डरीकाक्ष दोनों की आराधना में तन्मय रहते थे। उसी ब्राह्मणों द्वारा सेवित पुण्य धाम पुष्कर में भगवान् श्रीकृष्ण को शिविर डाले देखकर सब राजाओं ने अपने अपने शिविर लगा दिये ॥२२-२४॥ हे राजन्! आप भी यहीं बैठे बैठे उस पुष्कर तीर्थ और पुण्डरीकाक्ष भगवान् विष्णु को प्रणाम करिये, इससे निःसंदेह आपके सभी पापों का नाश हो जायगा ॥२५॥ फिर क्षत्रिय राजा, दैत्य, राक्षस आदि सभी भेरी, पणव, झर्झर, डिंडिम आदि बजाते और भीषण कोलाहल करते हुए जब पुष्कर सरोवर पर गये तो वहाँ भगवान् श्रीकृष्ण को वीर वेश में अपनी प्रतीक्षा करते हुए देखा ॥२६-२७॥

॥ हंस-डिम्भक और यादवों का संग्राम ॥

द्वे सेने संगते राजन्सध्वजे सपरिच्छदे ।
महापरिघसंकीर्णे गदाशक्तिसमाकुले ॥१
भेरीझर्झरसंपूर्णे डिण्डिमारावसंकुले ।
प्रगृहीतमहाशस्त्रे शूलासिवरकार्मुके ॥२
परस्परकृतोत्साहे चक्राते युद्धमुल्बणम् ।
ते शराः कार्मुकोत्सृष्टा निर्भिद्याथ शरीरिणम् ॥३
शरीराणि महाराज जग्मुर्दूरं सहस्रशः ।
भटबाहुविनिर्मुक्ताः खड्गा निर्भिद्य वक्षसि ॥४
स्फुरिताश्च तथा राजञ्छिरास्याहृत्य खं ययुः ।
परिघाश्च तथा राजा बाहुभिः परिचोदिताः ॥५

तिलशश्चक्रुरतुलं शरीरं नृपरक्षसाम् ।
दैत्याना कुर्वता नादमन्योऽन्यवधकाक्षिणाम् ॥६
दैत्या रक्षांसि राजेद्र राजानश्च समन्तत ।
अन्योऽन्य परिघैर्जघ्नुश्चापमुक्तै शिलाशितै ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! दोनो पक्ष की सेनाएँ युद्ध सामग्री और ध्वजादि के साथ तथा परिघ, गदा आदि आयुधो सहित भेरी, झर्झर, डिण्डिम आदि व जो को बजाते हुए युद्ध क्षेत्र मे पहुँच कर भिड गई और तब वीरो के धनुषों से छूटते हुए तीक्ष्ण बाण परस्पर में देहो को विदीर्ण करने लगे ॥१-३॥ तलवारो के प्रहार से हजारो योद्धाओ के हृदय और मस्तक आदि अग छिन्न-भिन्न होने लगे । परिघों के आघात से देहो के टुकडे उड गये । एक दूसरे को मारने की इच्छा से सैनिकगण घोर गर्जन करने लगे ॥४ ६॥ दैत्य, राक्षस तथा राजागण परिघो और तीक्ष्ण बाणो के प्रहार से परस्पर आघात करने लगे ॥७॥

शरैश्च भोगिभोगाभैस्तीक्ष्णमन्ये महाबल ।
राक्षसा दानवाश्चान्ये मत्तमातङ्गविक्रमा ॥८
अन्योऽन्य जघ्निरे राजश्चापमुक्तैर्महाशरै ।
नागा नागैर्महाराज हया अश्वै समन्तत ॥९
रथा रथै समाजग्मु सादिन सादिभिस्तदा ।
पट्टिशासिशरव्रातै कुन्तै सायककर्पणै ॥१०
सशक्तिपरिघप्रासपरश्वधसमाकुलै ।
भिन्दिपालैर्महारौद्रैर्जघ्नुरन्योऽन्यमाहवे ॥११
अन्योऽन्य जघ्निरे राजश्चापमुक्तै शिलाशितै ॥१२
राक्षसा दानवा राजन्क्षत्रियाश्च समन्तत ।
इतश्चेतश्च धावन्त कुर्वन्तो विस्वरं रवम् ॥१३

मदमत्त गजराज के समान बली राक्षस और दैत्य नागफन के समान विषयुक्त बाणों से वीरों को विद्ध करने लगे । हाथी हाथियों से, अश्व अश्वों से,

रथ रथो से और पदाती पदातियो से भिडे हुए थे। पट्टिश, तलवार, शर, कुन्त, कर्पण शक्ति, परिघ, प्रास, परश्वध और भिन्दिपाल आदि के प्रहारो से शरीर कट रहे थे ॥८-११॥ हे राजन् ! मत्त वायु के समान बलशाली दैत्य, क्षत्रिय और राक्षस आदि तीखे बाणो से परस्पर मे घायल करते हुए तथा भयंकर रूप से चीखते हुए घूमने लगे ॥१२-१३॥

हताः केचिन्महाराज पेतुरुर्व्यां महासिभिः ।
केचिन्मथितमस्तिष्का गदाभिर्वीर्यवत्तमाः ॥१४
भिन्नग्रीवा महाराज परिघैः परिघायुधैः ।
यमराष्ट्रं गताः केचित्केचित्स्वर्गं समाययुः ॥१५
अप्सरोभिः समासेदुः पश्यन्तः स्वकलेवरम् ।
केचित्स्वाश्च पराश्चैव हत्वा भ्रान्ता इवाभवन् ॥१६
एतस्मिन्नन्तरे राजञ्छंखा भेर्यः सहस्रश ।
सस्वनुः सर्वतः सैन्ये मृदगा बहवस्तथा । १७
मध्यंदिनगते सूर्ये ताप दधति घोरवत् ।
ततः पिशाचा विकृताः कराला विततोदराः ॥१८
राक्षसाश्च महाघोराः पिशितं केशशाद्वलम् ।
मुदिता भक्षयामासु. पिबन्तः शोणितं बहु ॥१९
सञ्चितानि शवान्यासन्कबन्धाः खंगपातिताः ।
विभज्य देशं बहुशो युद्धभूमौ शवाशिनः ॥२०

हे राजन् ! उनमे से कुछ वीर तलवार के प्रहार से छिन्न-भिन्न होकर गिर पडे, कुछ के मस्तक गदाओ के आघात से फट गये ॥१४॥ कुछ परिघधारी वीर परिघों के प्रहार से ही मारे गये, कुछ वीर यमलोक को और कुछ स्वर्गलोक को प्राप्त हुए ॥१५॥ जो लोग स्वर्ग पहुँच गये, वे अप्सराओं के साथ विहार करते हुए रण क्षेत्र मे पडे अपने मरे हुए देह को ऊपर से देखने लगे। कुछ व्यक्ति इतने उन्मत्त हो गये थे कि वे अपने पक्ष के और शत्रु पक्ष के वीरो में कुछ भेद न समझ कर दोनों पक्ष वालो को ही मारते हुए घूम रहे थे ॥१६॥

हे राजन् ! जब सूर्य आकाश के मध्य मे पहुँच कर अपनी प्रखर किरणो से घोर ताप पहुँचा रहे थे, तब सब ओर से हजारो शख, भेरी और मृदगादि बज उठे। फिर उस रणक्षेत्र मे घूमते हुए विकटाकार पिशाच और राक्षसादि अत्यन्त हर्ष पूर्वक रुधिर-मास का भक्षण करने लगे ॥१७ १८॥ बहुत से मर कर गिरे हुए वीर अथवा बिना मस्तक के देह हाथ की तलवारो को घुमा रहे थे ॥२०॥

अथ श्येना मृगाश्चैव कङ्का गृध्रास्तथा परे ।
तुण्डै शवान्विनिष्कृष्य भक्षयन्ति ततस्तत ॥२१
सप्ताशीतिसहस्राणि हता नागा नृपोत्तम ।
त्रिंशत्सहस्रमयुत निहता हयसत्तमा ॥२२
हत लक्ष महाराज रथाना रथिभि सह ।
त्रिंशत्कोट्यो हतास्तत्र सादिन सायुधा भृशम् ॥२३
मध्य दिनगते सूर्ये हता केचन निर्गता ।
केचिच्च तृषिता राजन्विविशु पुष्कर सर ॥२४
केचिद्भूमि समालिङ्ग्य भीता एत्यग्र्यवनृणे ।
मुक्तकेशा पतन्ति स्म रथान्सत्यज्य केचन ॥२५
सदष्टोष्ठपुटा केचित्सादिन पुरतो हता ।
अत्यद्भुत महायुद्धमासीत्पुष्करतीर्थके ।
यथा देवासुर युद्धमासीत्पूर्व नृपोत्तम ॥२६

उस समय कबूतर, कौआ बाज और गृध्रगण मृत शरीरो को नोंच-नोंच कर भक्षण कर रहे थे ॥२१॥ हे राजन् ! उस संग्राम में सत्तासी हजार हाथी, चालीस हजार अश्व, रथियों के सहित एक लाख रथ और तीस करोड़ शस्त्रसज्जित पैदल नष्ट हो गये ॥२२ २३॥ उस मध्याह्न काल में जो भी योद्धा युद्ध में गया वह वहाँ से नहीं लौट सका। उनमे से कुछ वीर पुष्कर सरोवर में ही गिर गये ॥२४॥ कुछ लोग पृथ्वी पर पड़े पड़े ही चीख रहे थे। कुछ योद्धा अपने टूटे हुए रथों से नीचे गिर गये ॥२५॥ कुछ अश्वारोही प्रतिपक्ष के प्रहारों द्वारा मारे गये। हे राजन् ! पुष्कर क्षेत्र में होने वाला यह संग्राम देवासुर संग्राम के समान ही भयंकर था ॥२६॥

।। श्रीकृष्ण का महान पराक्रम ।।

मतस्मिन्नन्तरे राजन्द्वन्द्वयुद्धमवर्तत ।
विचक्रं योधयामास शार्ङ्गधन्वा गदाधरः ।।१
बलभद्रोऽथ हंसेन डिम्भकेन च सात्यकिः ।
वसुदेवोग्रसेनाभ्यां हिडिम्बः पुरुषादकः ।।२
शेषाश्च शेषै राजेन्द्र चक्रुर्युद्धमदीनगाः ।
वासुदेवस्त्रिसप्तत्या दैत्य वक्षस्यताडयत् ।।३
शरैर्निशितधाराग्रैर्विस्मय दर्शयन्रणे ।
दानवो देवदेवेशं दृढेन निशितेन च ।।४
शरेणाकर्णमाकृष्य धनुःप्रवरमीश्वरम् ।
जघान स्तनमध्ये च पश्यतस्तु शचीपतेः ।।५
तेन विद्धोऽथ भगवान्वक्षोदेशे जनार्दनः ।
अवमच्छोणितं विष्णुरादिकाले यथा प्रजाः ।।६
ततः क्रुद्धो हृषीकेशः क्षुरप्रेणाहनद्ध्वजम् ।
अश्वांश्च चतुरो हत्वा सारथिं च शरैस्त्रिभिः ।।७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! इसके पश्चात् दोनों पक्षों में द्वन्द्व युद्ध होने लगा और गदा तथा शार्ङ्ग धनुधारी भगवान् श्रीकृष्ण विचक्र से, बलरामजी हंस से, सात्यकि डिम्भक से और वसुदेव, उग्रसेन दोनों ही असुरराज हिडिम्ब से लड़ने लगे ।।१-२।।अन्य सभी यादव विपक्ष के अन्यान्य योद्धाओं से भिड़े हुए थे, उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण ने तिहत्तर तीक्ष्ण बाणों से विचक्र का हृदय बींध दिया ।।३।। फिर जब विचक्र ने अपने तीखे बाणों से भगवान् का वक्षस्थल बींधा, तब उसकी वीरता देखकर सभी विस्मित हो गये ।।४।। उसके पश्चात् उसने अपने धनुष की प्रत्यंचा को कान तक ले जाकर भगवान् कृष्ण के हृदय पर एक और बाण से प्रहार किया ।।५।। उस बाण का अत्यन्त कठोर आघात हुआ, जिससे आदिकाल में उनके मुख से सृष्टि उत्पन्न होने के समान ही, इस समय रुधिर की धारा निकल पड़ी ।।६।। फिर भगवान् श्रीकृष्ण अत्यन्त

क्रोधित हो गये तब उन्होने एक सुतीक्ष्ण बाण से विचक्र के रथ की ध्वजा काट कर, उसके चारो अश्व मार डाले, फिर उसके सारथी पर तीन बाणो से प्रहार किया ॥७॥

तती दध्मौ महाशङ्ख यथा तारामये रणे ।
रथादुत्प्लुत्य सहसा दानवः क्रोधमूर्च्छित. ॥८
गदा गृह्य महाघोरा दु.सहा वीर्यशालिनीम् ।
तया जघान दैत्येन्द्र किरीटे केशवस्य ह ॥६
ललाटे च पुनर्विष्ण सिंहनाद व्यनीनदत् ।
तत. शिला च महती प्रगृह्य दनुज. किल ॥१०
भ्रामयित्वा दशगुण प्राहरत्केशवोरसि ।
तामापतन्ती स प्रेक्ष्य हस्तेनादाय केशव. ॥११
जघान च तया दैत्य स पपातार्दितः क्षितौ ।
गतासुरिव सञ्जज्ञे श्वसन्निव पपात ह ॥१२
प्राप्य सज्ञा ततो दैत्य. क्रोधाद्द्विगुणमावभौ ।
आदाय परिघ घोरमिदमाह जनार्दनम् ॥१३
अनेन तव गोविन्द दर्पजातं निहन्म्यहम् ।
विक्रमज्ञस्तदा चासि मम देवासुरे रणे ॥१४
तावेव विपुलौ वाहू स एवास्मि जनार्दन ।
तथापि युध्यसे वीर ज्ञात्वा त्व मामक बलम् ॥१५

फिर तारक युद्ध मे शख-ध्वनि करने के समान ही उन्होने घोर शंख-ध्वनि की, तभी विचक्र अपने रथ से कूद पड़ा और एक भयकर गदा लेकर भगवान् के किरीट और ललाट पर प्रहार किया तथा घोर गर्जन करने लगा। फिर उसने एक विशाल शिला ग्रहण कर उसे दस गुने वेग से घुमाई और भगवान् के हृदय पर दे मारी। यह देख कर भगवान् ने उसे बीच मे ही हाथों से पकड लिया और फिर वही शिला उन्होंने विचक्र की ओर फेंक दी ॥८-११॥ उस शिला के लगने ही विचक्र दीर्घ नि श्वास छोड़ता हुआ निष्प्राण के समान

पृथिवी पर लेट गया ॥११॥ कुछ समय पश्चात् होश आने पर दुगुने क्रोध से उठा और एक घोर परिघ ग्रहण कर भगवान् से कहने लगा—हे गोविन्द ! देवासुर संग्राम में तुम मेरे पराक्रम को भले प्रकार देख चुके हो, मैं अब इस परिघ से तुम्हारा सभी गर्व खण्डित कर डालूँगा ॥१३ १४॥ मेरे यह भुजदण्ड वही हैं, मैं भी वही हूँ इस पर भी तुम मुझसे युद्ध करने का दुःसाहस करते हो ॥१५॥

वारयैनं महाबाहो परिघं बाहुनि सृतम ।
इत्युक्त्वा देवदेवेश स खचक्रादादरम् ।
चिक्षेप दैत्यो लोकेश सर्वलोकस्य पश्यत ॥१६
त गृह्य बाहुना कृष्णो हतो ऽसीति वदन् हरि ।
खण्डश कारयामास खड्गेन निशितेनह ॥१७
उत्पाट्य वृक्ष दैत्येश शतशाख महाशिखम् ।
तेन स पोथयामास विष्टरश्रवस विभुम् ॥१८
छित्त्वा त चापि खड्गेन तिलशश्च चकार ह ।
विक्रीडय सुचिर विष्णुस्तेन दैत्येन माधव ॥१९
हन्तुमैच्छत्तदा दैत्यमादाय निशित शरम् ।
आग्नेयास्त्रेण सयोज्य जघान न महान् हरि ॥२०
सदह्य स शरो दैत्य सर्वलोकस्य पश्यत ।
यथापूर्वं जगामाशु कर भगवत पुन ॥२१
हतशिष्टास्ततो दैत्या पलायन्तो दिशो दश ।
अद्यापि न निवर्तन्ते गच्छन्तो वै महोदधिम् ॥२२

हे महाबाहो ! अब मैं इस परिघ से तुम पर प्रहार करता हूँ यदि सामर्थ्य हो तो इसे रोको। यह कह कर विवक्र ने जैसे ही अपने परिघ का प्रहार किया वैसे ही उन्होंने उस परिघ को सपट लिया और अपने खड्ग से उनके टूक-टूक कर डाले ॥१६-१७॥ फिर विवक्र ने एक सैकड़ों शाखाओं वाला विशाल वृक्ष उखाड़ कर उन पर फेंका तो उन्होंने उसे भी अपने हाथ में पकड़

कर खण्ड-खण्ड कर दिया। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण बहुत देर तक उसे खिलाते रहे ॥१८-१९॥ फिर उन्होंने उसे मारने का निश्चय कर आग्नेयास्त्र ग्रहण किया और उस दैत्यराज विचक्र पर वेग से छोड़ा ॥२०॥ तब उस भीषण आग्नेयास्त्र ने विचक्र का पूरा शरीर तुरन्त ही भस्म कर दिया और फिर वह अस्त्र भगवान् के पास ही लौट गया ॥२१॥ तब बचे हुए दैत्यगण सब दिशाओं मे भागते हुए अन्त मे समुद्र मे जाकर छिप गये और आज तक लौट कर नही आये ॥२२॥

॥ हंस और बलभद्र का भीषण युद्ध ॥

बलदेवस्तु धर्मात्मा धनुरादाय सत्वरम् ।
जघान हंसं दशभिर्बाणैर्बाणभृतां वरः ॥१
तं प्रत्यविध्यन्नाराचैर्हंसः पञ्चभिराशुगैः ।
तानन्तरे हली छित्वा नाराचैर्दशभिः पुनः ॥२
नाराचेनाशु विव्याध ललाटे हंसमोजसा ।
दृढं पतन्स नाराचस्तस्य सज्ञां समाददे ॥३
लब्ध्वा हंसः स संज्ञां तु विद्ध्वा तेन यदूत्तमम् ।
सिंहवद्व्यनदद्धं सो देवान्विस्मापयन् रणे ॥४
ततः क्रुद्धो हली विद्धस्तेन बाणेन माधवः ।
वमञ्छोणितमत्युष्णं निःश्वसश्च रणाजिरे ॥५
लोहिताविष्टगात्रस्तु कुङ्कुमार्द्र इवाभवत् ।
नाराचैः शतसाहस्रैरर्दयामास माधवः ॥६
हंसं हंसगतिं वीरं नीलवासा हलायुधः ।
ते मुक्ता निशिता घोरा नाराचाश्च सुत्राजिनः ॥७
रथे ध्वजे तथा चापे चक्रे तूणाद्वये नृप ।
पतिता सर्वतो राजन् व्यथां चैव तथा ददुः ॥८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन्! इसी समय धनुष धारण करने वालों मे श्रेष्ठ बलरामजी ने दस बाणों की म

॥१॥ तब हंस ने भी उन पर पाँच बाण छोड़े, जिन्हें बलरामजी ने बीच ही काट दिया और फिर दस बाणों से हंस के हृदय में प्रहार किया और एक बाण से उसका ललाट बींध दिया, जिसके कारण वह निश्चेष्ट होकर पृथिवी पर गिर गया ॥२-३॥ जब बहुत देर बाद उसे होश हुआ तब उसने एक बाण से बलराम जी पर प्रहार करके घोर गर्जना की। उसके उस साहस को देखकर देवता भी विस्मित हो उठे ॥४॥ उसके भयंकर आघात के कारण बलरामजी दीर्घ नि.श्वास का त्याग करते हुए मुख से रक्त वमन करने लगे ॥५॥ उनका सम्पूर्ण देह रक्त से लथपथ हो गया, जैसे वे कुंकुम के रंग में सराबोर हो गये हों। फिर नीलाम्बर धारी बलरामजी ने वज्र जैसी शक्ति वाले हंस पर एक साथ ही सात हजार बाण छोड़े, जो उसके रथ, ध्वज, छत्र और दोनों तरकशों में जाकर लगे, जिससे हंस को बहुत त्रस्त होना पड़ा ॥६-८॥

ततः क्रुद्धो महाराज हंसो वीर्यमदान्वितः ।
शरेण हलिनं विद्ध्वा ध्वजं चिच्छेद कालवित् ॥९
शरैश्चतुर्भिरश्वांश्च सूतं प्रेताधिपं ददौ ।
ततः क्रुद्धो हली तस्मै गदां गृह्य महारणे ॥१०
आपपात महाबाहुर्हंस शेष इव श्वसन् ।
तथा रथं ध्वजं चक्रमश्वान्सूतं हलायुधः ।
बभञ्ज तिलश सर्वं ननाद च पुनः पुन ॥११
भूयश्च गदया हंसं चिक्षेप च बली किल ।
सोऽपि हंसो गदां गृह्य रथात्तस्मादवापतत् ॥१२
ततस्तौ हंसहलिनौ युयुधाते महारणे ।
महारथौ महाबाहू लोके प्रथिततेजसौ ॥१३
मत्यद्भुतौ सुविक्रान्तौ परस्परवधैषिणौ ।
कृतश्रमौ महायुद्धे हंसविक्रान्तगामिनौ ॥१४
यथा देवासुरे युद्धे शक्रवृत्रौ पुराऽम्बरे ।
उभौ ससानसर्वांगौ शोणितेन महारणे ॥१५

तब बल से मदान्ध हुए हंस ने अत्यन्त क्रोध पूर्वक एक बाण से ही बलराम को बीध दिया और दूसरे बाण से उनकी ध्वजा भग कर दी ॥१॥ फिर उसने चार बाणो के प्रहार से उनके चारो अश्वो को सारथी सहित मार दिया। तब बलदेवजी ने भी गदा उठाकर अत्यत क्रोध पूर्वक श्वास लेते हुए हस पर आघात किया, जिससे उसके रथ, चक्र, जुआ और ध्वज आदि खड-खड हो गये ॥१०-११॥ तभी उन्होने हस पर गदाघात किया, जिसका प्रतिकार करने के लिये हस भी गदा ग्रहण करके रथ से नीचे आगया ॥१२॥ इस प्रकार उन दोनों प्रसिद्ध पराक्रम वाले विशाल बाहु वीरो मे घोर गदा युद्ध आरम्भ हो गया ॥१३॥ परस्पर एक दूसरे को मारने की इच्छा करते हुए वे दोनो वीर देवासुर संग्राम मे इन्द्र और वृत्र के समान युद्ध करते हुए रक्त मे भीग गये ॥१४-१५॥

अत्यन्तखेदिनौ युद्धे परस्परबलेन ह ।
ततश्च दक्षिणं मार्गं बलभद्रोऽग्रहीदथ ॥१६
सव्यं तु हंसो राजेन्द्रो व्यगृह्णात्स्वयमेव हि ।
पोथयाञ्चक्रतुर्युद्धे गदाभ्यां गजविक्रमौ ॥१७
यथाप्राणं महाबाहू जघ्नतुर्मरणाय तौ ।
अतिप्रवृद्धं संग्रामं देवासुररणोपमम् ॥१८
विदधाते महारङ्गे पश्यतां त्रिदिवौकसाम् ।
देवाश्च मुनयश्चैव विस्मयं परिजग्मिरे ॥१९
अहो खल्वीदृशं युद्धं दृष्टं पूर्वं न च श्रुतम् ।
इत्यूचुर्विस्मयवशाद्देवगन्धर्वकिन्नराः ॥२०
परस्परकृतोत्साहौ चक्रतुर्युद्धमुत्तमम् ।
अथ हंसो महारङ्गे दक्षिणं दक्षिणोत्तमः ॥२१
व्यचरन्मार्गमत्यर्थं सव्यं तु बलवान्बलः ।
निकुञ्च्य जानुनी पूर्वं चक्रतुर्गदया भृशम् ।
रणे रणविदा श्रेष्ठौ पश्यतां त्रिदिवौकसाम् ॥२२

परस्पर प्रहार करते हुए वे दोनो योद्धा मन मे खिन्न होकर लड़ रहे थे। बलरामजीने दक्षिण मण्डल और हंसने बाम मंडल बांध कर पैंतरे बदले,

उस समय वे दोनो निर्मम होकर एक दूसरे पर प्रहार कर रहे थे। इस प्रकार युद्ध मे देवासुर-सग्राम जैसी ही भयकरता थी ॥१६-१८॥ उस महायुद्ध को देखते हुए देवता, मुनि, गधर्व और किन्नरादि अत्यन्त आश्चर्य व्यक्त करते हुए परस्पर मे कहने लगे कि ऐसा युद्ध तो हमने कभी भी नही देखा और न सुना ॥१९-२०॥ परन्तु वे दोनो महान् योद्धा पूर्ण उत्साह के साथ युद्ध मे जुटे रहे, तभी दोनो ने पुनः अपने-अपने पैंतरे परिवर्तित किये। उस समय घुटनो को मोड़े हुए उन वीरो में अत्यन्त भीषण गदा युद्ध हो रहा था ॥२१-२२॥

॥ डिम्भक-सात्यकि युद्ध ॥

युद्धं चक्रतुरत्यर्थं ततो डिम्भकसात्यकी ।
तावुभौ बलिनौ वीरौ विख्यातौ क्षत्रियेषु च ॥१
कृतश्रमौ महायुद्धे सततं वृद्धसेविनौ ।
सात्यकिर्दशभिर्वीरो डिम्भकं वेदपारगम् ॥२
अविध्यन्निशितैर्बाणैस्तेन वक्त्रे तथोरसि ।
स तेन विद्धो बलिना डिम्भकः क्षत्रियोत्तमः ॥३
नाराचैः पञ्चसाहस्रैर्विव्याध युधि गर्वितः ।
तानन्तरे वृष्णिवीरो निपिद्धन्नितदन्ब्रुवन् ॥४
अथ क्रुद्धो नृपवरो विद्धः सप्तभिराशुगैः ।
पुनः शतसहस्रेण प्रत्यविध्यत सात्यकिम् ॥५
सात्यकिस्त्वथ विक्रान्तो धनुश्चिच्छेद तस्य तत्।
अर्धचन्द्रेण तीक्ष्णेन डिम्भकस्य स यादवः ॥६
आजघ्ने डिम्भको वीरश्चापमादाय चापरम् ।
क्षुरप्रेणाथ रौद्रेण तैलधौतेन विक्रमी ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन्! वृद्धजनों की सेवा करने वाले क्षत्रियों में प्रसिद्ध वीर सात्यकि और डिम्भक के मध्य जो युद्ध हो रहा था, उसमें प्रथम सात्यकि ने ही डिम्भक के मुख और हृदय पर दस सुतीक्ष्ण बाणों से प्रहार किया। तब डिम्भक ने भी एक साथ पाँच हजार बाणों की सात्यकि

पर वृष्टि की। परन्तु सात्यकि ने उन सभी बाणों को बीच में ही काट दिया और घोर गर्जना करने लगे ॥१-४॥ फिर क्रोधित हुए डिम्भक ने हजार बाणों के आघात से सात्यकि को त्रस्त कर दिया ॥५॥ तब सात्यकि ने भी अपने एक अर्द्ध चन्द्राकार बाण से डिम्भक का धनुष काट दिया ॥६॥ यह देख कर डिम्भक ने दूसरा धनुष लेकर अत्यन्त तीक्ष्ण किये गये बाण से सात्यकि पर प्रहार किया ॥७॥

स तेन विद्धो बाणेन वमञ्छोणितकं नृप ।
अबीव शुशुभे राजन्वसन्ते किंशुको यथा ॥८
धनुश्चिच्छेद भूयस्तु गृहीतं यत्पुरा धनुः ।
ततोऽन्यद्धनुरादाय डिम्भको यादवेश्वरम् ॥९
जघान निशितैर्बाणैः सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ।
स धनुः पुनरप्युग्रं चिच्छेद युधि सात्यकिः ॥१०
शरेण तीक्ष्णपुंखेन डिम्भकस्य दुरात्मनः ।
ततोऽन्यद्धनुरादाय सत्वरं स नृपोत्तमः ॥११
धनुषा तेन राजेन्द्र सात्यकिं विव्यधे पुनः ।
एवं धनूंषि राजेन्द्र शतं पञ्च च पञ्च च ॥१२
छित्वा ननाद शैनेयः सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ।
धनुषी तौ परित्यज्य वीरौ डिम्भकसात्यकी ॥१३
खड्गौ प्रगृह्य चात्युग्रौ युद्धाय समुपस्थितौ ।
तौ हि खड्गविदां श्रेष्ठौ वीरौ डिम्भकसात्यकी ॥१४

उस बाण से घायल होकर सात्यकि के मुख से रक्त बहने लगा, उस समय वे वसंतकाल में फूलने वाली किंशुक के समान प्रतीत होने लगे ॥८॥ तब उन्होंने अपने एक बाण के प्रहार से डिम्भक का वह धनुष भी काट दिया, इससे क्रोधित होकर डिम्भक ने एक अन्य धनुष पर तीक्ष्ण बाण चढा कर सात्यकि पर प्रहार किये। परन्तु, सात्यकि ने उसका वह धनुष भी काट दिया और डिम्भक ने एक और श्रेष्ठ धनुष ग्रहण किया ॥९-११॥ जिसके द्वारा सात्यकि

पर कठिन प्रहार हुए, तब सात्यकि ने उसके उस धनुष को भी काट दिया। हे राजन्! इस प्रकार सब राजाओं के देखते-देखते ही सात्यकि ने उसके पाँच सौ पाँच धनुष काट डाले और फिर घोर गर्जना की। अब उन दोनों वीरों ने भयंकर तलवारें ले-लेकर युद्ध आरम्भ किया ॥१२-१४॥

दौःशासनिर्महाभाग सोमदत्तिस्तथैव च।
अभिमन्युश्च विक्रान्तो नकुलश्च तथैव च ॥१५
एते खड्गविदां श्रेष्ठाः कीर्तिता युधि सत्तमाः।
एतेष्वेतो न पश्रेष्ठो खड्गे हि न पसत्तम ॥१६
तावेतावसिना युद्धं चक्रतुर्युद्धलालसौ।
भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धं प्रविद्धं बाहुनिःसृतम् ॥१७
आकरं विकरं भिन्नं निर्मर्यादममानुषम्।
संकोचितं कुलचितं सव्यजानु विजानु च ॥१८
आहितं चक्रकं क्षिप्तं कुसुम्वं लम्बनं धृतम्।
सर्वबाहुर्विनिर्बाहुः सव्येतरमथोत्तरम् ॥१९
शिवाहुस्तुङ्गबाहुश्च सव्योन्नतमुदासि च।
पृष्ठतः प्रथितं चैव योधिकं प्रथितं तथा ॥२०
इति प्रकारान्द्वात्रिंशच्चक्रतुः खड्गयोधिनौ।
पुनः पुनः प्रहरन्तौ न च श्रममुपेयतुः ॥२१

हे राजन्! उस समय दुःशासन का पुत्र, सोमदत्त का पुत्र, डिम्भक, सात्यकि, अभिमन्यु और नकुल—यह छः वीर तलवार के युद्ध मे प्रथम श्रेणी के समझे जाते थे। उन छः वीरो मे से भी सात्यकि और डिम्भक का इस प्रकार के युद्ध मे विशेष नाम था। ॥१५-१६॥ इस प्रकार असियुद्ध मे अत्यत प्रसिद्ध इन दोनो वीरो मे इस युद्ध का आरम्भ हुआ, उस समय उन्होने भ्रान्त, उद्भ्रान्त, अविद्ध, प्रविद्ध, बाहुनिःसृत, आकर, विकर, भिन्न, निर्मर्याद, अमानुष,

सकोचित, कुलचित, सव्यजानु, विजानु, आहित, चक्रक, क्षिप्त, कुसुम्भ, लम्बन, धृत, सर्वबाहु, विनिर्बाहु, सव्येतर उत्तर, त्रिबाहु, तुंगबाहु, सव्य, उन्नत, उदासि, पृष्ठ पयित, योधिक और प्रयित, इन बत्तीस प्रकार की असि-कलाओ के करतब दिखाये। इस प्रकार निरन्तर भीषण असियुद्ध करते हुए भी उन दोनो मे से कोई भी पीछे न हटा ॥१७-२१॥

पुष्करस्थौ महाराज युद्धाय कृतनिश्चयौ ।
ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ॥२२
तुष्टुवुस्तौ महाराज जये कृतपरिश्रमौ ।
अहो वीर्यं महो धैर्यमनयोर्बाहुशालिनो. ॥२३
एतावेव रणे शक्तौ खड्गे धनुषि पारगौ ।
एक. शिष्यो गिरीशस्य द्रोणस्यान्यो हि धीमत. ॥२४
अर्जुनः सात्यकिश्चैव वासुदेवो जगत्पतिः ।
त्रय एते महाराज प्रथिताः संगरे सदा ॥२५
डिम्भकः शक्तिभृच्छर्वस्त्रय एते महारथाः ।
प्रसिद्धा. सर्व एवैते वीर्येषु च बलेषु च ॥२६
इति ते देवगन्धर्वा सिद्धा यक्षा महोरगाः ।
दिवि स्थिता समं ब्रूयुयुद्धदर्शनलालसाः ॥२७

उन दोनो वीरो का ऐसा पराक्रम देख कर देवता, गन्धर्व, सिद्ध, यक्ष, नाग और ऋषिगण आदि परस्पर कहने लगे—देखो, यह कैसे बलवान् हैं, ये ही असियुद्ध और धनुर्वेद मे यथार्थ रूप से पारगत हैं। वास्तव मे इनके धैर्य प्रशसा के योग्य हैं ॥ २२-२३ ॥ इनमे से एक भगवान् शकर का और दूसरा द्रोणाचार्यजी का शिष्य है, जैसे अर्जुन, सात्यकि और भगवान् श्रीकृष्ण युद्ध-कला मे विशेषज्ञ हैं, वैसे ही डिम्भक, कार्तिकेय और भगवान् रुद्र भी महारथी मह् कर प्रसिद्ध हैं। इनके समान बल-वीर्य वाला भी और कोई नहीं है ॥२४-२६॥ इस प्रकार कहते हुए देवताओ और गन्धर्वादि ने उनकी रण-कुशलता की प्रशसा की ॥२७॥

॥ हिडिम्ब वध वर्णन ॥

वसुदेवोग्रसेनी च वृद्धौ युद्धे सुनिर्वृ तौ ।
जराजर्ज्जरितसर्वांगौ पलितागशिरोरुहौ ॥१
ज्ञानविज्ञानसंपन्नो राजमार्गविशारदो ।
युयुधाते महारङ्गे राक्षसेन दुरात्मना ॥२
शरै रनेकसाहस्रै रर्दयामासतू रणे ।
राक्षसेन्द्रं दुरात्मनं हिडिम्बं पुरुपादकम् ॥३
हिडिम्बो राक्षसेन्द्रस्तु भक्षयन्सर्वतो नरान् ।
अतिप्रवृद्धो दुष्टात्मा लम्बबाहुर्महाहनुः ॥४
लम्बोदरो विरूपाक्षः पिङ्गकेशो विलोचनः ।
श्येन नासो महारौद्र ऊर्ध्वरोमा महाभुजः ॥५
पर्वताकारवर्ष्मा च दीर्घदंष्ट्रः शिवाननः ।
लम्बोदरो दीर्घदन्तो जगद्ग्रासपरस्तथा ॥६
उत्तुङ्गांसो महोरस्को दीर्घग्रीवो गजोपमः ।
भक्षयन्मासपिटकं पिबञ्छोणितसंचयम् ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! वयोवृद्ध एवं रणकुशल महात्मा वसुदेवजी और महाराज उग्रसेनजी ने उस अत्यन्त दुष्ट राक्षसराज हिडिम्ब के साथ उस महायुद्ध मे युद्ध करना आरम्भ किया ॥१-२॥ उस समय उन्होने बहुत से बाणो की वृष्टि के द्वारा उस मानव मास का आहार करने वाले महा राक्षस हिडिम्ब को आहत कर दिया ॥ ३ ॥ तब भी वह राक्षस असख्य मानवो का भक्षण करता हुआ युद्ध क्षेत्र मे इधर से उधर घूमता रहा । उसके विशाल बाहु, लम्बी हनु, मोटा उदर, पिंगल वर्ण के भयावने नेत्र, पीत केश, श्येन के समान नाक और भयानक शरीर था । उसके रोंगटे खडे हुए थे, पर्वताकार भीषण देह, पर बडे-बडे दांत, स्थूल और लम्बा उदर, परन्तु मुखाकृति सुन्दर थी । उस समय वह मुख खोले हुए ऐसा प्रतीत होता था जैसे तीनो लोको को भक्षण कर लेना चाहता हो ॥४-६॥ उसका चौडा वक्ष स्थल, ऊँचा स्कध प्रदेश और हाथी

के समान विशाल कंठ था। वह बारम्बार मांस भक्षण और रुधिर पान कर रहा था ॥ ७ ॥

गजान्नागै: समाहत्य हयैरश्वान्नृपोत्तम ।
रथान् रथै: समाहत्य सादिनः सादिभिस्तथा ॥८
मनुष्यान्स्वपुरो दृष्ट्वा नास्यग्रासं चकार सः ।
कांश्चिद्धृत्वा महाराज वृष्णिपालान्समन्ततः ॥९
भक्षयामास सहसा हिडिम्बः पुरुषादकः ।
यान्पश्यन्परतो रक्षस्तान्जघान विरूपधृक् ॥१०
भक्षयन्नपरान्वृष्णीन्यादवान्राक्षसेश्वरः ।
चिक्षेप सहसा कांश्चिद्धिडिम्बः पुरुषादकः ॥११
अन्तकाले यथा क्रुद्धो रुद्रः प्राणभृतो नृप ।
क्षणेनैकेन सर्वास्तान्भक्षयामास राक्षसः ॥१२
केचिद्भीता दिशः प्रापुर्वृष्णयो वीर्यशालिनः ।
केचित्तु भक्षितास्तेन रक्षसा वृष्णिपुंगवाः ॥१३
कुम्भकर्णो यथा राजन्भक्षयामास वानरान् ।
निःशेषं वृष्णिसैन्यं तु चकार पुरुषादकः ॥१४
निश्चेष्टं वृष्णिसैन्यं तु स्थितं चित्रं पटे यथा ।
एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धौ वृद्धौ यादवपुंगवौ ।
धनुर्गृह्य महाघोरं राक्षसस्य पुरः स्थितौ ॥१५

वह हाथियों से हाथियों को मार देता, अश्वों को उठा कर उन्हीं के प्रहार से अश्वों को समाप्त कर देता। इसी प्रकार रथों से रथों को और सवारों से सवारों को मारता हुआ अपने सामने आने वाले को दोनों हाथ लेकर अपनी नासिका के छेद में खींच लेता था। इस प्रकार वृष्णियों में से जो कोई भी उसके सामने आता, उसी को वह सब के देखते-देखते पकड़ कर भक्षण कर लेता ॥८-१० ॥ हे राजन्! जिस प्रकार प्रलयकाल उपस्थित होने पर भगवान् शंकर सम्पूर्ण जीवों को उत्सादन करने लगते हैं, वैसे ही वह राक्षसराज हिडिम्ब उस

यादव-सैनिको को मार-मार कर अपने उदर मे रखने लगा ॥११-१२॥ यह देख कर बहुत-से यादव वीर वहाँ से भाग गये और बहुत से उसके द्वारा पकडे जाकर उदरस्थ होगये ॥१३॥ हे राजन् ! पूर्वकाल मे जैसे कुम्भकर्ण ने असख्य बन्दरो का भक्षण कर लिया था, वैसे ही इस युद्ध म हिडिम्ब नामक उस राक्षस ने यादवो का आहार करना आरम्भ किया ॥१४॥ इस प्रकार उसने थोडी देर मे ही सम्पूर्ण वृष्णि सेना को चित्रपट के समान निश्चेष्ट कर दिया तभी अत्यन्त कुपित हुए वसुदेव और उग्रसेन अपने अपने धनुषो को ग्रहण करके उस घोराकृति वाले राक्षस के सामने आ पहुँचे ॥१५॥

यथा क्रुद्धस्य सिंहस्य मृगौ वृद्धतमाविव ।
व्यादायास्य महारक्षस्तौ वृद्धावभ्यधावत ॥१६

चिखादिषुर्विरूपाक्ष पाताल तलसन्निभ ।
ततो रक्ष पर्यधावत्खादन्खादन्कलेवरम् ॥१७
पूरयामासतुर्वीरौ शरैर्यदुनृपौ नृप ।
हिडिम्बस्य महघोर व्यादितास्यमिवान्तकम् ॥१८

सर्वास्तान्वारयामास देवशत्रुर्विरूपधृक् ।
धावति स्म ततो रक्षो व्यादितास्य भयानकम् ॥१९
तयोर्गृहीत्वा धनुषी बभञ्ज युधि सत्वरम् ।
बाहू प्रसार्य दुष्टात्मा राक्षसो विकृतानन ॥२०

वसुदेव महीपाल राजान वृद्धसेविनम् ।
गृहीतु राक्षसश्रेष्ठो यतते नृपसत्तम ॥२१
एष वा भक्षयिष्यामि वसुदेव त्वया सह ।
उग्रसेन किमर्थं त्व तिष्ठसे मत्पुरोगम ॥२२

जैसे किसी क्रोधित सिंह के सामने दो वृद्ध हरिणो के जाकर खडे होते ही सिंह उन पर झपट पडता है वैसे ही उन्हें सामने खडा देख कर वह दैत्य मुख खोल कर उन पर झपटा ॥१६॥ उस विरूपाक्ष राक्षस का मुख पाताल-छिद्र के समान भयकर था, उस समय उन वृद्धो की ओर बढते हुए उस राक्षस

के समान विशाल कंठ था। वह बारम्बार मांस भक्षण और रुधिर पान कर रहा था ॥ ७ ॥

गजान्नागैः समाहृत्य हयैरश्वान्नृपोत्तम ।
रथान् थैः समाहृत्य सादिनः सादिभिस्तथा ॥८
मनुष्यान्स्वपुरो दृष्ट्वा नास्यग्रासं चकार सः ।
कांश्चिद्धृत्वा महाराज वृष्णिपालान्समन्ततः ॥९
भक्षयामास सहसा हिडिम्बः पुरुषादकः ।
यान्पश्यन्परतो रक्षस्तान्जघान विस्पथक् ॥१०
भक्षयन्नपरान्वृष्णीन्यादवान्राक्षसेश्वरः ।
चिक्षेप सहसा कांश्चिद्धिडिम्बः पुरुषादक. ॥११
अन्तकाले यथा क्रुद्धो रुद्रः प्राणभृतो नृप ।
क्षणेनैकेन सर्वास्तान्भक्षयामास राक्षसः ॥१२
केचिद्भीता दिशः प्रापुर्वृष्णयो वीर्यशालिनः ।
केचित्तु भक्षितास्तेन रक्षसा वृष्णिपुंगवाः ॥१३
कुम्भकर्णो यथा राजन्भक्षयामास वानरान् ।
निःशेषं वृष्णिसैन्यं तु चकार पुरुषादकः ॥१४
निश्चेष्टं वृष्णिसैन्यं तु स्थितं चित्रं पटे यथा ।
एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धौ वृद्धौ यादवपुंगवौ ।
धनुर्गृह्य महाघोरं राक्षसस्य पुरः स्थितौ ॥१५

वह हाथियों से हाथियों को मार देता, अश्वों को उठा कर उन्हीं के प्रहार से अश्वों को समाप्त कर देता। इसी प्रकार रथों से रथों को और सवारों से सवारों को मारता हुआ अपने सामने आने वाले को दीर्घश्वास लेकर अपनी नासिका के छेद में खींच लेता था। इस प्रकार वृष्णियों में से जो कोई भी उसके सामने आता, उसी को वह सब के देखते-देखते चबा कर भक्षण कर लेता ॥८-१० ॥ हे राजन्! जिस प्रकार प्रलयकाल उपस्थित होने पर भगवान् शंकर सम्पूर्ण जीवों को उदरस्थ करने लगते हैं, वैसे ही वह राक्षसराज हिडिम्ब उन

अतः शीघ्रता से मेरे मुख में आ जाओ ॥२४॥ पहिले तुम्हारे रक्त-पान से तृप्त होकर फिर तुम्हारे मास का भक्षण करूँगा, इस प्रकार मुझे अत्यन्त आनन्द की प्राप्ति होगी ॥२५॥ हे राजन्! यह कह कर वह राक्षसेन्द्र हिडिम्ब अपने मुख-विवर को फैला कर अत्यन्त वेगपूर्वक उनकी ओर झपटा ॥२६॥ उस समय वसुदेव और उग्रसेन के पास कोई अस्त्र नही था और उन्होने जैसे ही उस विकटाकार राक्षस को अपनी ओर आता देखा तो भयभीत होकर वे दोनो इधर-उधर भागने का उपक्रम करने लगे ॥२७॥ तभी बलरामजी ने उनको इस विकट स्थिति मे पडे हुए देखा तो हस के आगे बढ कर और श्रीकृष्ण को वहाँ नियुक्त कर स्वयं उस हिडिम्ब राक्षस के पास पहुँच गये और बोले ॥२८-२९॥

मा कृथाः साहसं रक्षो मुञ्च तौ राजसत्तमौ ।
स्थितोऽस्मि युध्यता रक्षो मया शत्रुं जिघासता ॥३०
अहमेव हनिष्ये त्वां का चेयं तव भीषिका।
इति ब्रुवाणं हलिनं तौ विसृज्य महारणे ॥३१
महानयमसौ दुष्टो भक्षयाम्येनमग्रतः ।
विदार्य पूर्ववद्वक्त्रं बलभद्रमुपाद्रवत् ॥३२
विसृज्य सशरं चापं रक्षसस्य पुरः स्थितः ।
मुष्टिं प्रगृह्य बलवान् स्फोटयन्बाहुमुत्तमम् ॥३३
हिडिम्बस्त्वथ दुष्टात्मा मुष्टिं कृत्वा भयानकम् ।
जघान वक्षो रामस्य व्यादितास्य इवान्तक. ॥३४
क्रुद्धोऽथ बलभद्रस्तु मुष्टिना तेन ताडित. ।
जघान मुष्टिना तेन राक्षसेशमनिन्दितः ॥३५

उन्होने कहा—अरे दुरात्मन्! वही खडा रह, शत्रुओ को मारने के लिये तो मैं ही बहुत हूँ, तू उन्हे छोड कर मेरे साथ युद्ध कर ॥३०॥ अरे, तू ऐसी विभीषिका क्यो प्रकट कर रहा है? मैं ही तुझे मारूँगा। यह सुन कर हिडिम्ब ने सोचा कि यह लम्बा-चौडा पुरुष है, प्रथम इसी का भक्षण क्यो न करूँ? यह स्थिर कर उसने उन दोनो वृद्धो को छोड़ कर बलरामजी की ओर

ने बीच में जो भी आया, उसे भक्षण कर लिया ॥१७॥ तब यादव वीर वसुदेव और उग्रसेन ने उस भीषण राक्षस के फैले हुए मुख को भीषण बाण-वर्षा करके उसका मुख भर दिया ॥१८॥ परन्तु, उन बाणों को भी उदरस्थ करता हुआ वह दानव भयानक रूप से उस रण क्षेत्र में दौड़ लगाने लगा ॥१९॥ फिर सहसा उसने वसुदेव और उग्रसेन के पास पहुँच कर उनके धनुष तोड डाले और सभी राजाओं के देखते-देखते ही अपनी विशाल भुजाओं को फैला कर उन्हें पकड़ने के लिये अग्रसर हुआ और फिर वसुदेवजी से कहने लगा—हे वसुदेव ! तुम दोनों का मैं अभी भक्षण करूँगा। हे उग्रसेन ! तुम इस प्रकार मेरे सामने क्यों स्थित हो ? ॥२०-२२॥

आगच्छ प्रविशास्यं मे ग्रासभूतौ तु वां मम ।
विधिना निर्मितो वृद्धो वसुदेवोः हरेः पिता ॥२३
बुभुक्षितः श्रमार्त एव युद्धे त्वरितविक्रमः ।
मन्मुखान्नैव गच्छेता प्रविशेतां त्वरान्वितौ ॥२४
युवयोः शोणितं पीत्वा तृप्तिं यास्यामि निर्वृतः ।
खादामि च पुनर्मांसं वृद्धयोर्युवयोः सुखम् ॥२५
इति ब्रुवंस्तथा रक्षो व्यादितास्यं महाहनुः ।
धावति स्म तदा क्षिप्रं हिडिम्बो राक्षसेश्वरः ॥२६
वसुदेवोग्रसेनौ च भीतौ विप्रेक्ष्य सर्वतः ।
दिशोऽभ्यभजतां राजन्निःशङ्कौ वृष्णिपुङ्गवौ ॥२७
एतस्मिन्नन्तरे दृष्ट्वा बलभद्रः प्रतापवान् ।
दृष्ट्वा च तौ तथाभूतौ वसुदेवोग्रसेनकौ ॥२८
वासुदेवं समादिश्य हसं यद्यन्तमीश्वरः ।
निर्गत्य चान्तरं तस्य राक्षसस्य दुरात्मनः ॥२९

देखो, विधाता ने तुम दोनों को मेरा ग्रास बना कर भेजा है, अब तुम मेरे मुख-विवर में घुस आओ ॥२३॥ अब मैं युद्ध करते-करते श्रमार्त हो गया हूँ और क्षुधा भी लग रही है, इसलिये तुम मुझसे किसी प्रकार भी बच नहीं सकते,

इस आघात को सहन न करके वह राक्षस घुटनो के बल पृथिवी पर गिरा और मरे हुए के समान लेट गया ॥३७-४०॥ फिर उसे दोनो हाथो से उठा कर बलरामजी सब उपस्थित राजाओ पर अपना पराक्रम व्यक्त करने के लिये कुछ देर वैसे ही खडे रहे और फिर उसे इतने जोर से फेंका कि वह मृत्यु को प्राप्त होता हुआ दो कोस की दूरी पर जा पडा ॥४१-४३॥

ये केचिद्राक्षसास्तत्र हतशेषा महारणे ।
बलभद्रात्ततो भीता जग्मुश्चैव दिशो दश ॥४४

अथांशुमाली भगवान् दिनेशः संहृत्य तेजांसि सहस्ररश्मिः ।
अस्तं ययौ चक्षुरपि प्रजानामीषत्तमश्चापि समाविवेश ॥४५

तस्मिन्प्रविष्टेऽथ समुद्रतोयं प्रजापतौ विश्वमुखे जगद्गुरौ ।
नक्षत्रनाथः समुपाजगाम संध्यातमोऽपि व्यनशन्नृपोराम ॥४६

प्रभातकाले नृपसत्तमो रणो गोवर्द्धने किन्नरगीतनादिते ।
इति ब्रुवन्तो नृपसत्तमास्तदा व्युपारमंस्तत्र रणोत्सवे नृप ॥४७

यह देख कर शेष बचे हुए राक्षस बलरामजी से डर कर तुरन्त ही विभिन्न दिशाओ में भाग खडे हुए ॥४४॥ तभी भगवान् सूर्यदेव ने अपनी रश्मियाँ समेट ली और उनके पश्चिमी सागर मे निमग्न होने पर अन्धकार छागया और तब कुछ भी दिखाई न देने लगा ॥४५॥ भगवान् सूर्य के अस्ताचल गामी होते ही चन्द्रमा प्रकट होगये, इस कारण रात्रि का घोर अधकार समाप्त होगया ॥४६॥ सब वहाँ उपस्थित सभी राजाओ ने उस दिन के युद्ध को समाप्त करते हुए कहा कि—कल प्रातःकाल किन्नरो के मधुर स्वरो से गूँजते हुए गोवर्धन सर्वत पर संग्राम होगा ॥४७॥

॥ हंस और श्रीकृष्ण का युद्ध ॥

उभौ तौ हंसडिम्भकौ रात्रावेव महागिरिम् ।
जग्मतुः सहितौ राजन् गोवर्द्धनमथो नृप ॥१

झपट्टा मारा ॥ ३१-३२ ॥ तब बलरामजी ने धनुष-बाण तो छोड़ दिया और मुष्टिका तान कर उसके सामने जा खड़े हुए ॥३३॥ यह देख कर राक्षस अत्यन्त क्रोधित हुआ और मुख खोले हुए उनके सामने आकर एक बड़े जोर का मुक्का बलरामजी के वक्षःस्थल पर मार दिया ॥ ३४ ॥ तब उस प्रहार को सह कर उन्होंने भी बड़े वेगपूर्वक उसके हृदय पर मुष्टिका से प्रहार किया ॥३५॥

मुष्टियुद्धं समभवन्नरराक्षसवीरयोः ।
युद्धयतोर्युद्धतोर्युद्धरस्त्वथ नरराक्षससिंहयोः ॥३६
तयोश्चटचटाशब्दः प्रादुरासीद्भयानकः ।
अथ राक्षसराजस्तु मुष्टिना राममाहवे ॥३७
जघान वक्षोदेशे तु वज्रेणेव पुरंदरः ।
अथ रामो बली साक्षान्मुष्टिं संवर्त्य यत्नतः ॥३८
हिडिम्बं ताडयामास वक्षस्यमरविद्विषम् ।
तलाभ्यामथ रामस्तु वक्त्रे हत्वा स राक्षसम् ॥३९
आहतस्तलघातेन हिडिम्बो राक्षसेश्वरः ।
जानुभ्यामपतद्भूमौ गतासुर्वीरदक्षसः ॥४०
तत उत्पाद्य रामस्तु दोर्भ्यां संगृह्य राक्षसम् ।
आदाय बाहुवेगेन भ्रामयित्वा पदात्पदम् ॥४१
व्याविध्यत्सुचिरं रामो दर्शयन्नात्मनो बलम् ।
उत्क्षिप्य राक्षसेन्द्रं तं सर्वलोकस्य पश्यतः ॥४२
गव्यूतिमात्रं चिक्षेप ततो देशाद्धलायुधः ।
गतासू राक्षसश्रेष्ठस्ततो देशान्निराक्रमत् ॥४३

इसके पश्चात् उन दोनों में घोर युद्ध होने लगा और उससे होने वाला भयंकर शब्द आकाश में गूंज उठा ॥३६॥ तभी हिडिम्ब ने एक जोर का घूंसा उनके हृदय में उसी प्रकार मारा जैसे इन्द्र अपने वज्र का प्रहार करते हैं, जिसे सह कर बलरामजी ने उस देवताओं के शत्रु हिडिम्ब पर घूंसे का जोरदार प्रहार किया और फिर उसके दोनों गालों पर एक-एक थप्पड़ भी मार दिया।

एवं ते सहिता राजंश्चक्रुर्युद्धमदीनवत् ।
अत्यद्भुतं महाघोरं यादवाः सर्व एव हि ॥१०
चक्रुस्ताभ्यां महायुद्धं वासुदेवस्य पश्यतः ।
सर्वानपि महाराज यादवान्बलदर्पितान् ॥११
तावुभौ हंसडिम्भकौ नृपांस्तान्प्रत्यविध्यताम् ।
प्रत्येकं दशभिर्विद्ध्वा बाणैर्निशितकोमलैः ॥१२
जघ्नतुश्च शरैस्तीक्ष्णैरत्यर्थं यादवेश्वरान् ।
व्यथिताः सर्व एव ते वमन्तः शोणितं बहु ॥१३
माधवे किंशुका राजन्पुष्पिता इव ते बभुः ।
भीताश्च यादवा राजन्पलायनपरायणाः ॥१४

फिर तीस बाण प्रद्युम्न ने, सात बाण साम्ब ने और इकसठ बाण अनाधृष्टि ने चला कर हंस-डिम्भक को विद्ध कर दिया ॥६॥ इस प्रकार सभी यादवों ने एक साथ प्रहार करते हुए उस संग्राम को अपने उत्साह से घोरतर बना दिया ॥ १० ॥ तब भगवान् श्रीकृष्ण एक स्थान पर खड़े होकर उस युद्ध को देख रहे थे। फिर हंस-डिम्भक ने भी दस-दस बाणोंसे यादवों पर प्रहार किया ॥११-१२॥ उस आघात ने यादवों को संत्रस्त कर दिया और वे मुख से रक्त गिराने लगे। उस समय रक्त से लथपथ उनके देह किंशुक के समान शोभा पाने लगे। हे राजन्! उस भय से डरे हुए यादव युद्ध भूमि को छोड़ कर पलायन करने लगे ॥ १३-१४ ॥

एतस्मिन्नन्तरे राजन्वसुदेवात्मजौ नृप ।
वासुदेवो हली युद्धे प्रमुखे धन्विनौ तयोः ॥१५
चक्रतुर्युद्धमतुलं स्कन्दशक्राविवाम्बरे ।
तयोरेव सगन्धर्वाः सिद्धा यक्षा महर्षयः ॥१६
विमानस्थाश्च ददृशुर्युद्धं देवासुरोपमम् ।
ततः प्रादुरभूतां तौ दूतौ भूतेश्वरौ नृप ॥१७

अथ प्रभाते विमले सूर्ये चाभ्युदिते सति ।
गोवर्द्धनं जगामाशु केशवः केशिसूदनः ॥२
शैनेयो बलभद्रश्च यादवाः सारणादयः ।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च नादितं बहुधा गिरिम् ॥३
जग्मतुः सहितौ राजन् गोवर्द्धनमथो गिरिम् ।
गायनै रथसैन्यैश्च नादितं बहुधा गिरिम् ॥४
तस्योत्तरं नृपश्रेष्ठ पार्श्वं स प्राप्य यादवाः ।
निकषा यमुना राजंस्ततो युद्धमवर्त्तत ॥५
विव्याध हंसडिम्भकौ वसुदेवश्च सप्तभिः ।
सारणः पञ्चविंशत्या दशभिः कङ्क एव च ॥६
हंसेन डिम्भकेनाथ यादवैश्च समन्ततः ।
उग्रसेनस्त्रिसप्तत्या शराणां नतपर्वणाम् ॥७
विराटस्त्रिंशता राजन्सात्यकिश्चापि सप्तभिः ।
अशीत्या विपृथू राजन्नुद्धवो दशभिः शरैः ॥८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! उस रात्रि काल की उपस्थिति में ही हंस डिम्भक ने गोवर्धन पर्वत की ओर प्रस्थान किया ॥१॥ दूसरे दिन प्रातः काल सूर्योदय होने पर भगवान् श्रीकृष्ण भी गिरि गोवर्धन पर जा पहुँचे ॥२॥ उनके साथ ही सात्यकि, बलरामजी और सारणादि सभी यादवगण गन्धर्वों और अप्सराओं से सुशोभित गोवर्धन पर्वत पर गये ॥ ३-४ ॥ इसके पश्चात् गोवर्धन पर्वत के पार्श्व भाग में स्थित यमुनाजी के किनारे दोनों पक्षों में पुनः युद्ध होने लगा ॥५॥ उस समय वसुदेवजी ने हंस डिम्भक दोनों पर सात बाणों से प्रहार किया और पच्चीस बाण सारण ने, दस बाण कङ्क ने, तिहत्तर बाण उग्रसेन ने, तीस बाण विराट ने, सात बाण सात्यकि ने, दस विपृथु ने और दस बाण ही उद्धव ने चलाये ॥६-८॥

प्रद्युम्नस्त्रिंशता राजन्साम्बश्चापि च सप्तभिः ।
अनाधृष्टिस्त्वेवषष्ट्या शराणां नतपर्वणाम् ॥९

एवं ते सहिता राजंश्चक्रुर्युद्धमदीनवत् ।
अत्यद्भुतं महाघोरं यादवाः सर्व एव हि ॥१०
चक्रुस्ताभ्यां महायुद्धं वासुदेवस्य पश्यतः ।
सर्वानपि महाराज यादवान्बलदर्पितान् ॥११
तावुभौ हंसडिम्भकौ नृपांस्तान्प्रत्यविध्यताम् ।
प्रत्येकं दशभिर्विद्ध्वा बाणैर्निशितकोमलैः ॥१२
जघ्नतुश्च शरैस्तीक्ष्णैरत्यर्थं यादवेश्वरान् ।
व्यथिताः सर्व एव ते वमन्तः शोणितं बहु ॥१३
माधवे किंशुका राजन्पुष्पिता इव ते बभुः ।
भीताश्च यादवा राजन्पलायनपरायणाः ॥१४

फिर तीस बाण प्रद्युम्न ने, सात बाण साम्ब ने और इकसठ बाण अनाधृष्टि ने चला कर हंस-डिम्भक को विद्ध कर दिया ॥९॥ इस प्रकार सभी यादवों ने एक साथ प्रहार करते हुए उस संग्राम को अपने उत्साह से घोरतर बना दिया ॥ १० ॥ तब भगवान् श्रीकृष्ण एक स्थान पर खडे होकर उस युद्ध को देख रहे थे। फिर हंस-डिम्भक ने भी दस-दस बाणोसे यादवो पर प्रहार किया ॥११-१२॥ उस आघात ने यादवों को सन्त्रस्त कर दिया और वे मुख से रक्त गिराने लगे। उस समय रक्त से लथपथ उनके देह किंशुक के समान शोभा पाने लगे। हे राजन् ! उस भय से डरे हुए यादव युद्ध भूमि को छोड कर पलायन करने लगे ॥ १३-१४ ॥

एतस्मिन्नन्तरे राजन्वसुदेवात्मजौ नृप ।
वासुदेवो हली युद्धे प्रमुखे धन्विनौ तयोः ॥१५
चक्रतुर्युद्धमतुलं स्कन्दशक्राविवाम्बरे ।
तयोरेव सगन्धर्वाः सिद्धा यक्षा महर्षयः ॥१६
विमानस्थाश्च ददृशुर्युद्धं देवासुरोपमम् ।
ततः प्रादुरभूतां तौ दूतौ भूतेश्वरौ नृप ॥१७

शूलिना प्रेषितौ युद्धे रक्षार्थं बलिनोस्तयो. ।
हंसोऽथ वासुदेवश्च युद्धं चक्रतुरीश्वरौ ॥१८
रामश्च डिम्भकश्चैव स युक्तौ युद्धकाक्षया ।
विश्रुताः सर्वे एवैते ह्यस्त्रे शस्त्रे तथा बले ॥१९
शङ्खान्दध्मुः पृथग्घाद स्वे स्वे सर्वे रथे स्थिताः ।
अथ कृष्णो हृषीकेशः पाञ्चजन्य महारवम् ॥२०
दध्मौ पद्मपलाशाक्ष. सर्वान्विस्मापयन्निव ।
अथ भूतौ महाघोरौ लम्बोदरशरीरिणौ ॥२१
दुद्रुवतुर्महाराज शूलमादाय केशवम् ।
शूलेन पोथया राजञ्चक्रतुर्यादवेश्वरम् ॥२२

यादवों को इस प्रकार भागते हुए देख कर श्रीकृष्ण और बलराम उन दोनों के सामने जा डटे। उस समय प्रतीत होने लगा कि स्वयं स्वामि कार्तिकेय और इन्द्र मैदान में आ गये हों। तब उस युद्ध को देवता, गन्धर्व, सिद्ध, महर्षि आदि आकाश मार्ग में स्थित होकर देखने लगे। तभी भगवान् शंकर के दो भूत हंस डिम्भक की रक्षा के लिये वहाँ आ उपस्थित हुए। उस समय हंस के साथ भगवान् श्रीकृष्ण और डिम्भक के साथ बलरामजी भिड़ रहे थे। ये चारों ही अपने-अपने बल-पराक्रम में प्रसिद्ध थे ॥१५-१९॥ अब यह सभी वीर अपने-अपने रथों पर चढ़कर शंख-ध्वनि करने लगे। उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण ने सब को आश्चर्य-चकित करते हुए अपने पाञ्चजन्य शंख से घोर निनाद किया। जिससे उत्तेजित हुए लम्बे पेट और विशाल देह वाले दोनों भूत त्रिशूल लेकर भगवान् श्रीकृष्ण की ओर दौड़े और वहाँ जाकर उन्होंने उन पर त्रिशूल चला दिया ॥२०-२२॥

ताभ्यां समाहतौ विष्णुर्दैत्यगन्धर्वेश निधी ।
ईषत्स्मिताधरो देव निञ्चिदुत्सृज्य सत्वरम् ॥२३
रथादवप्लुत्य हस्ताभ्यां गृह्य जनार्दन. ।
भ्रामयित्वा शतगुणमाकाशमिव वेगत. ॥२४

कैलासं च समुद्दिश्य प्रचिक्षेप ततो हरिः ।
तावुपेत्य गिरेः शृङ्गं कैलासस्य महामते ॥२५

दृष्ट्वा तत्कर्म देवस्य विस्मयं जग्मतु परम् ।
हंसश्च दृष्ट्वा तत्कर्म रोषताम्रायतेक्षणः ॥२६

उवाच वचनं हंसः शृण्वतां त्रिदिवौकसाम् ।
किमर्थं राजसूयस्य विघ्नं चरसि केशव ॥२७

ब्रह्मदत्तो महीपालो यष्टा तस्य महाक्रतो ।
करं दिश यथायोगं यदि प्राणान्हि रक्षसि ॥२८

अथवा त्वं क्षणं तिष्ठ ततो ज्ञात्वा करं बहु ।
ददासि त्वं नन्दपुत्र ततो यष्टा स मे गुरु ॥२९

ईश्वरोऽहं सदा राज्ञा देवानामिव शूलभृत् ।
एष ते वीर्यमतुलं नाशयिष्यामि संयुगे ॥३०

तब भगवान् श्रीकृष्ण ने रथ से नीचे उतर कर कुछ मुसकराते हुए दोनों भूतों को हाथ से पकड कर चक्र के समान सौ बार घुमा कर कैलाश पर्वत पर जोर से फेंक दिया । वे वहाँ गिर कर अत्यन्त आश्चर्य चकित हुए । तब भगवान् श्रीकृष्ण के इस पराक्रम से क्रोधित हुए हंस ने सभी देवताओं की उपस्थिति में कहा—हे केशव ! तुम मेरे राजसूय यज्ञ में बाधक क्यों होना चाहते हो ? इस यज्ञ को महाराज ब्रह्मदत्त अवश्य ही सम्पन्न करेंगे । यदि तुम प्राण रखने की इच्छा करते हो तो तुरन्त ही कर प्रदान कर दो ॥२३-२८॥ अन्यथा कुछ देर में ही तुम्हें मेरे पराक्रम का परिचय मिल जायगा तब स्वयं ही कर देने के लिये तत्पर हो जाओगे ॥२९॥ जैसे भगवान् शंकर देवताओं में अग्रगण्य हैं, वैसे ही मैं सब राजाओं का स्वामी हूँ और तुम्हारे पराक्रम के गर्व को मैं इसी युद्ध में नष्ट किये देता हूँ ॥३०॥

इत्युक्त्वा सशरं चापं शालतालोपमं नृप ।
आकृष्य च यथा प्राणं नाराचेन च केशवम् ॥३१

ललाटे चिक्षिपे हंसो ललाम इव सोऽभवत् ।
उवाच सात्यकिं कृष्णो रथं वाहय मे प्रभो ॥३२
दारुकं पृष्ठवाह् तं कृत्वा देशं तमीश्वर ।
अथ तेन समादिष्टः सात्यकिर्वाहयन्रथम् ॥३३
मण्डलानि बहून्याजौ दर्शयामास सत्वरम् ।
अथ विद्धो दृढं तेन शरेण हरिरीश्वर. ॥३४
आग्नेयमस्त्रं संयोज्य शरं कस्मिंश्चिदव्ययः ।
उवाच हंस राजेन्द्र सात्यकिं प्रेरयन् रणे ॥३५
अनेन त्वा दहाम्यद्य यदि शक्तोऽसि वारय ।
अलं ते बह्वबद्धेन क्षत्रियोऽसि सदा शठ ॥३६
मत्तश्चेत्करमिच्छेस्त्वं दर्शयाद्य पराक्रमम् ।
यतयो बाधिता हंस पुष्करे संस्थितास्त्वया ॥३७

यह कह कर हस ने अपने ताल वृक्ष के समान विशाल धनुष पर बाण को चढ़ाकर उससे प्रहार किया, जो उनके ललाट में लग कर अलंकार स्वरूप हो गया। तब श्रीकृष्ण ने सात्यकि से रथ चलाने को कहा और दारुक को रथ के पीछे बैठाला। इस प्रकार सात्यकि ने रथ हाँकना प्रारम्भ किया ॥३१-३३॥ अब सात्यकि ने रथ के ही अनेक पैंतरे बदले और हंस के प्रहार से व्यथित हुए भगवान् ने आग्नेयास्त्र का संधान किया और हंस से कहने लगे—अरे दुष्ट! अब अधिक युद्ध नहीं चलेगा। मैं इसी अस्त्र से तुझे भस्म किये डालता हूँ, यदि तू समर्थ क्षत्रिय है तो इसके प्रहार को रोक ॥३४-३६॥ यदि मुझसे युद्ध करने की इच्छा है तो अपने पराक्रम का प्रदर्शन कर, तू ने पुष्कर यात्रियों को बहुत त्रस्त किया था ॥३७॥

मारता त्वं यतून् विप्राणां स्थिते मयि नराधम ।
स्थिते मयि जगन्नाथे हत्वा क्षत्रियकण्टकान् ॥३८
मारणाऽप्ययो त्वां हि लोके दुष्टानां ब्रह्मविद्विषाम् ।
प्राणेन यतिमुख्यानां हत एव नृपाधम ॥३९

मृत्यवे त्वा निवेद्याद्य रक्षिता ब्राह्मणानहम् ।
इति ब्रुव स्तदस्त्र तु मुमोच युधि केशव ॥४०
तदस्त्र वारुणेनाथ हसोऽपि प्रत्यपेधयत् ।
वायव्यमथ गोविन्दो मुमोच युधि हसके ॥४१

अरे नराधम ! तू मेरे रहते हुए क्षत्रियो को नष्ट करने के स्वप्न देखता और ब्राह्मणो पर शासन करना चाहता है ? ब्राह्मणो से द्वेष करने वालो और पापात्माओ को मैं सदा दण्ड देता हूँ । प्रथम तो पुष्कर वासी मुनियो के शाप से ही तेरी मृत्यु हो चुकी है, दूसरे मैं भी अब तुझे यमराज को सौंप कर ब्राह्मणो की रक्षा करने के लिये दृढ प्रतिज्ञ हूँ । यह कह कर उन्होने अपने आग्नेयास्त्र को उस पर छोड दिया ॥३६ ४०॥ परन्तु हस ने अपने वारुणास्त्र के प्रयोग से आग्नेयास्त्र को व्यर्थ कर दिया, तब उन्होने वायव्यास्त्र का प्रयोग किया ॥४१॥

तदस्त्र वारयामास माहेन्द्रेण नृपोत्तम ।
अथ माहेश्वर कृष्णो मुमोचात्युग्रमाहवे ॥४२
रौद्रेण तत्ततो हसो वारयामास तत्क्षणात् ।
गन्धर्व राक्षस चैव पैशाचमथ केशव ॥४३
ब्रह्मास्त्रमथ कौबेरमासुर याम्यमेव च ।
चरवार्येतानि हसस्तु मुमोच युधि सत्वरम् ॥४४
वारणाथ तदस्त्राणा चतुर्णा माधवस्य ह ।
अथ ब्रह्मशिरो नाम घोरमस्त्र विनाशकम् ॥४५
मुमोच हसमुद्दिश्य देवदेवो जनार्दन ।
अस्त्र वैष्णवमादाय शरे सन्निहिते हरि ॥४६
योजयामास तद्ध से महाघोरपराक्रमम् ।
अथ भीतो महारौद्रमस्त्र दृष्ट्वा नृपोत्तम ॥४७
हसोऽपि तेन राजेन्द्र वारयामास त शरम् ।
यमुनाप उपस्पृश्य देवदेवो जनार्द्दन ॥४८

देवदेवो जगन्नाथो जगद्विस्मापयन्निव ।
प्राहरत्तं महाबाहुः पादाभ्यामथ केशवः ॥६
पादक्षेपं नृपस्तस्माल्लब्ध्वा हंसो नृपोत्तम ।
ममार च नृपश्रेष्ठः केचिदेवं वदन्ति हि ॥७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! उस वैष्णव नामक महारौद्र अस्त्र को देखते ही हंस अत्यन्त भयभीत एवं निश्चेष्ट हो गया ॥१॥ फिर वह रथ से कूद पड़ा और जहाँ श्रीकृष्ण ने कालिय नाग का दमन किया था, उस ओर भागने लगा ॥२॥ वह कालियदह अत्यन्त भयङ्कर था, उसका जल अंजन के समान नीले वर्ण का था और वह पाताल तक गहरा था ॥३॥ उसी भयंकर दह में हंस कूद पड़ा। उस समय उसके कूदने पर वैसा ही शब्द हुआ, जैसा, पहिले कभी इन्द्र के डर से पर्वतों के समुद्र में कूदने पर हुआ था। उसे दह में कूदता देख कर भगवान् श्रीकृष्ण भी अपना रथ छोड़ कर उसके पीछे पीछे उसी दह में कूद पड़े ॥४-५॥ भगवान् श्रीकृष्ण के इस महान् साहस को देख कर सभी उपस्थित जन समूह को बड़ा विस्मय हुआ। भगवान् श्रीकृष्ण ने दह में घुसकर हंस को पकड़ लिया और उसे लातें मार-मार कर पीड़ित करने लगे ॥५॥ कुछ लोगों का विचार है कि भगवान् श्रीकृष्ण की लातों के प्रहार से नृपोत्तम हंस की मृत्यु हो गई ॥७॥

अन्ये पातालमायातो भक्षितः पन्नगैरिति ।
अद्यापि नैव राजेन्द्र दृष्ट इत्यनुशुश्रुम ॥८
यथापूर्वं जगन्नाथो रथं समुपजग्मिवान् ।
हते तस्मिन्महाराज धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥९
अकरोद्राजसूयं च तव पूर्वपितामहः ।
यदि जीवेदसौ हंसः को नमस्यति तं क्रतुम् ॥१०
स च सर्वास्त्रविन्नित्यं रुद्रात्तदध्वरं प्रभो ।
क्षणादेव महाराज वार्त्तेयं गामगात्तन ॥११
हतो हंसो हतो हंसः कृष्णेन रिपुमर्दिना ।
जगुर्गन्धर्वपतयो देवलोके दिवानिशम् ॥१२

कृष्णेन लोकनाथेन विष्णुना प्रभविष्णुना ।
यमुनाया ह्रदे घोरे हंसो निहत इत्यपि ॥१३

परन्तु, कुछ जानकारो का कहना है कि हंस कालियदह के मार्ग से पाताल लोक मे जा पहुँचा और वहाँ उसे सर्पों ने डस लिया, हे राजन् ! इस वृत्तान्त को मैंने सुना ही है, देखा नहीं है ।।८।। जिस प्रकार से भी हो, हंस की मृत्यु होगई और भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ से लौट कर अपने रथ पर आ गये। हे राजन् ! उसके मर जाने पर ही तुम्हारे पूर्व पितामह महाराज युधिष्ठर ने राजसूय यज्ञ किया था। यदि हंस न मरता तो उस यज्ञ को कौन कर सकता था ? ।।९-१०।। क्योंकि प्रथम तो हंस सब शास्त्रो का ज्ञाता था, दूसरे उसे भगवान् शंकर से वर मिल चुका था। उस हंस की मृत्यु का समाचार सम्पूर्ण पृथिवी पर क्षणभर मे ही फैल गया ।।११।। शत्रु मर्दन भगवान् श्रीकृष्ण ने हंस को यमुनाजी के कालीदह मे मृत्यु के घाट उतार दिया। देवताओ की सभा मे इस कथा का गंधर्वों ने दिन-रात निरन्तर गान किया था ।।१२-१३।।

श्रुत्वा निहतमत्युग्रं भ्रातरं वीर्यशालिनम् ।
बलदेवं परित्यज्य युध्यमानं महारणे ॥१४
डिम्भको वीर्यसंपन्नो यमुनामनुजग्मिवान् ।
तमन्वधावद्वेगेन बलभद्रो हलायुधः ॥१५
हंसो हि यत्र पतितस्तत्रासौ निपपात ह ।
यमुनाया महाराज विलोक्य जलसंचयम् ॥१६
अथ क्रुद्धः स डिम्भको भ्रामयित्वा जलं बहु ।
उन्मज्ज्योन्मज्ज्य सहसा निमज्ज्य च पुनः पुनः ॥१७
न ददर्श तदा राजन्भ्रातरं वीर्यशालिनम् ।
उन्मज्ज्याथ महाबाहुर्वासुदेवं विलोक्य च ॥१८
उवाच वचनं राजन्डिम्भको वीर्यवत्तमः ।
अरे गोपकदायाद यत्रासौ हंस इति स्थितः ॥१९

वासुदेवोऽपि धर्मात्मा यमुनापृच्छ राजक ।
इत्यब्रवीत्प्रसन्नात्मा वासुदेव प्रतापवान् ॥२०
तच्छ्रुत्वा यमुना भूय प्रविश्य डिम्भक किल ।
बहुप्रकारमुद्वीक्ष्य भ्रातर भ्रातृवत्सल ॥२१

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! अपने भाई हस की मृत्यु का समाचार सुनकर महाबली डिम्भक ने भी युद्ध का परित्याग किया और यमुनाजी की ओर दौड़ पड़ा। यह देखकर बलरामजी भी उसके पीछे-पीछे चले ॥१४-१५॥ जिस दह मे कूदने पर हस की मृत्यु हुई थी, उसी दह मे डिम्भक भी कूद गया। उसके कूदने के कारण यमुना जल म हलचल सी मच गई ॥१६-१७॥ उसके बहुत कुछ प्रयत्न करने पर भी वहाँ वह अपने भाई को नही देख सका। तब वह दह से बाहर निकल आया और भगवान् श्रीकृष्ण को देखकर उनसे बोला-अरे ग्वाल-पुत्र ! मेरा भाई हस कहाँ है ? यह बता ॥१८ १९॥ यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण ने प्रसन्न होते हुए कहा—हे नृप ! इस बात को यमुनाजी से ही पूछो ॥२०॥ यह सुन कर भ्रातृवत्सल डिम्भक पुन यमुना जल मे घुस कर अपने भाई को ढूँढने लगा, परन्तु उसे उसका कही भी पता न लगा ॥२१॥

विललाप ततो राजा डिम्भको भ्रान्तमानस ।
क्व नु गच्छसि राजेन्द्र विहायैनमबान्धवम् ॥२२
कुतो भ्रातरितो गच्छे परित्यज्यैव मामिह ।
विलप्यैव नृपश्रेष्ठ डिम्भको भ्रातृवत्सल ।
आत्मत्यागे मन कुर्वन्यमुनाया महाह्रदे ।
निमज्ज्योन्मज्ज्य सहसा मरणे कृतनिश्चय ॥२४
हस्तेन जिह्वामाकृष्य भूयो भूयो विलप्य च ।
तत समूलामाकृष्य जिह्वा साहमकृत्स्वयम् ॥२५
ममारान्तर्जले राजन्डिम्भको नरकाय वै ।
एव तु निहते हसे डिम्भके वीर्यशालिनि ॥२६

आगमत्पुण्डरीकाक्षो भूतान्विस्मापयन्निव ।
ततः प्रीतः प्रसन्नात्मा वासुदेवः प्रतापवान् ॥२७
गोवर्धनेऽथ विश्रम्य वलदेवसहायवान् ।
कंचित्कं महाराज पूर्वभुक्तमुवास ह ॥२८

हंस के कहीं भी न मिलने पर डिम्भक अत्यन्त आर्त होकर विलाप करने लगा—हे राजेन्द्र ! हे हंस ! तुम मुझे इस अवस्था मे छोड कर कहाँ चले गये हो ?' यह कहता हुआ डिम्भक बारम्बार डुबकी लगाता हुआ यमुनाजी मे डूब कर आत्मघात करने के लिये उद्यत हुआ ॥२२-२४॥ फिर यह बारम्बार विलाप करने लगा और अन्त मे उसने अपनी जिह्वा को जोर लगाकर हाथ से खींचा, जिससे वह मूल सहित बाहर निकल आई, तब उसी वेदना से छटपटाते हुए डिम्भक की मृत्यु हो गई। हे राजन् ! इस प्रकार आत्मघात के पाप से डिम्भक को नरक की प्राप्ति हुई। जब हंस और डिम्भक दोनो का ही विनाश हो गया, तब भगवान् श्रीकृष्ण अत्यन्त प्रसन्न हुए और सभी उपस्थित जन उस काण्ड को देखकर विस्मय करने लगे ॥२५-२७॥ फिर वे ज्येष्ठ भ्राता बलरामजी के साथ अपने उस पूर्व क्रीडास्थल गोवर्धन पर्वत पर विश्राम करने लगे २८

॥ भगवान का नन्द-यशोदा से मिलना ॥

यशोदा नन्दगोपश्च कृष्णदर्शनलालसौ ।
गोवर्द्धनगतं श्रुत्वा वासुदेवं सहाग्रजम् ॥१
नवनीतं च दधि च पायसं कृसरं तथा ।
वन्यं पुष्पं महाराज मयूराङ्गदमेव च ॥२
वल्लवैरपरैः सार्द्धं गोपीभिश्च समन्ततः ।
जग्मतुः सहसा प्रीतो गोवर्द्धनमथो नृप ॥३
क्वचिद्वृक्षे समासन्नं कृष्णं कृष्णमृगेक्षणम् ।
ददर्श सुमहाबाहुं वासुदेवं सहाग्रजम् ॥४
प्रेम्णा सुमहृष्टो तत्र दृष्ट्वा महायशौ ।
दर्शयामासतुर्देवौ पायसानि महान्ति ॥५ च

रक्षणात्तव देवेश सदा कुलशिनो वयम् ।
सगोधन. सवत्साश्च नीरोगा इव केशव ।।१३
एकमेव सदा दु खं न त्वा द्रक्ष्यामि केशव ।
यदेतत्केवल दु खमिति धी. शीर्यते सदा ।।१४

वे रस्सियां, कील और विभिन्न प्रकार की घासें तो सब पहिले के समान ही होंगी ? हे पिताजी ! सुगन्धि से परिपूर्ण छकडे तो उतने ही होंगे ? सन्तानवती गोपियो के क्या-क्या और कितनी-कितनी सतति हुई है ? ।।८-९।। व्रज के घाट जीर्ण-शीर्ण तो नही हो गये ? गौएँ उसी प्रकार बहुत-सा दूध देती हैं न ? ।।१०।। घृत, दुग्ध आदि सब पदार्थ श्रेष्ठ रूप से तो उत्पन्न होते है ? व्रज का गोधन रोग-रहित तो है ? ।।११।। भगवान् श्रीकृष्ण के ऐसे मीठे वचन सुन कर नन्दजी ने उत्तर दिया—हे केशव ! हे यदुश्रेष्ठ ! सब कुछ कुशल-पूर्वक ही है, सब आनन्द से हैं, गोधन रोग-रहित है, गौएँ भी सकुशल हैं ।।१२।। हे देव ! हम सब अपने बालको और गोधन के सहित आपके संरक्षण के कारण रोग-रहित तथा कुशलपूर्वक ही हैं, परन्तु आपके दर्शन न कर पाने का ही हमे सदा दु ख बना रहता है, इसी से हमारी बुद्धि नष्ट होती जा रही है ।।१३-१४।।

एवमादि विलप्यन्त गच्छेत्याह स केशवः ।
यशोदा पुनरोद्देद मातर्गच्छ गृह प्रति ।।१५
ये च त्वा कीर्तयिष्यन्ति ते च स्वर्गमवाप्नुयुः ।
ये केचित्त्वा नमस्यन्ति ते मे प्रियनरा. सदा ।।१६
मद्भक्ताः सर्वदा सन्तु गच्छेत्याह च ता हरिः ।
इत्युपरत्या पितरौ देवो वासुदेव सनातनः ।।१७
गाढमालिङ्ग्य तौ प्रीतो प्रेषयामास केशवः ।
यशोदा नन्दगोपश्च जग्मतु. स्वगृह प्रति । १८
तत. कृष्णो हृषीकेशो यादवैः सह वृष्णिभिः ।
गन्तुमैच्छत्तदा विष्णु: पुरीं द्वारवतीं किल ।।१९

य एतच्छ्रृणुयान्नित्यं पठेद्वापि समाहितः ।
पुत्रबान्धनवांश्चैव अन्ते मोक्षं च गच्छति ।।२०

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! नन्दजी के इस प्रकार दुःख प्रकट करने पर भगवान् श्रीकृष्ण ने माता यशोदा के सहित उनसे कहा—हे पिताजी ! हे माताजी ! अब आप घर के लिये पधारें। जो सासारिक मनुष्य आपका नाम सकीर्तन करेंगे या आपको नमस्कार करेंगे, वे हमारे बहुत ही प्रीति-भाजन होंगे और उन्हे स्वर्ग भी मिलेगा, और वे सदा ही मेरे भक्त रहेंगे। सनातन पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण ने माता-पिता से हृदय मिल कर उन्हे विदा किया। इसके पश्चात् वे अपने घर के लिये चल पडे ।।१५-१८।। फिर सभी यादवों और वृष्णिगणों के सहित भगवान् श्रीकृष्ण ने वहाँ से द्वारकापुरी को लौटने का विचार किया ।।१९।। इस कथा को सुनने और पढने वाला मनुष्य पुत्रवान् एवं सुखी होता है तथा अन्त काल मे उसे मोक्ष की प्राप्ति होना है ।।२०।।

।। भगवान कृष्ण का द्वारका प्रत्यागमन ।।

गच्छन्नथ महाविष्णुः पुष्करं प्राप्य यादवैः ।
अपश्यन्मुनिमुख्यांस्तु पुष्करस्थान्नृपोत्तम ।।१
ते समेत्य महादेव मृषयो वीतमत्सराः ।
अर्घ्यादिसमुदाचारं कृत्वं नं यादवोत्तमम् ।।२
प्रोचुर्विश्वेश्वरं विष्णुं भूतभव्यभवत्प्रभुम् ।
अत्यद्भुतमिदं विष्णो तव वीर्यं जनार्दन ।।३
येन तौ निहतौ युद्धे हंसो डिम्भक एव च ।
यो विचक्रो दुराधर्षो देवैरपि सुदुःसहः ।।४
संगरे निहतो देव दुःसाध्य इति नो मतिः ।
क्षेमो नः सर्वकार्येषु चरतां तप उत्तमम् ।।५
निष्कल्मषा भविष्यामस्तव संस्मरणाद्धरे ।
त्वां हि सर्वस्य दुःखस्य हर्ता त्वां ध्यायतां सदा ।।६

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! द्वारका जाने के विचार से यादवो के सहित चलते हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने पुष्कर क्षेत्र मे पहुँच कर प्रमुख महर्षियो से भेंट की ।।१।। उन वीतराग मुनियो ने जैसे ही भगवान् को आते हुए देखा, वैसे ही उन्होने अर्घ्य पाद्य आदि से उनका पूजन किया ।।२।। उन भूत-भविष्य-वर्तमान के स्वामी और सम्पूर्ण ससार के ईश्वर की अर्चना के पश्चात् वे मुनि-जन कहने लगे—हे विष्णो ! हे जनार्दन ! आपके पराक्रम पर विस्मय होता है ।।३।। हे प्रभो ! जो विचक्र देवताओ द्वारा भी नही जीता जा सका, वह विचक्र, हस और डिम्भक के सहित आपके द्वारा ही नाश को प्राप्त हो सका है, यथार्थ मे यह असाध्य कार्य ही सिद्ध होगया है । अब हमारा सब प्रकार से कल्याण प्रत्यक्ष है और हम निर्विघ्न रूप से तप करने मे उद्यत हैं ।।४-५।। हे कृष्ण ! हम आपका स्मरण करते ही पाप रहित होंगे और जो आपका ध्यान करेंगे, उन्हें कभी किसी सकट की प्राप्ति नही होगी ।।६।।

त्वदनुस्मरण जन्तो सदा पुण्यप्रद प्रभो ।
त्व हि न सतत धाता विधाता तपसो हरे ।।७
त्वमोकारो वषट्कारस्त्व यज्ञस्त्व पितामह ।
त्व ज्योतिर्ब्रह्मणो मूर्तिस्त्व ब्रह्मा रुद्र एव च ।।८
प्राणस्त्व सर्वभूतानामन्तरात्मेति कथ्यते ।
उपास्य सर्वभूताना यज्ञ दानैर्जगत्पते ।।९
नमो विश्वसृजे देव नमस्ते विश्वभूतये ।
पाहि लोकमिम देव हत्वा ब्रह्मद्विष सदा ।।१०
स तथेति हरिर्विष्णुर्ययौ द्वारवती पुरीम्।
अवसद्वृष्णिभि सार्द्ध स्तूयमान समागधै ।।११
एय च देवदेवस्य चेष्टा हि जनमेजय ।
प्रोक्ता ते पृच्छते राजन् किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ।।१२

हे नाथ ! आपका वृत्तान्त समस्त जीवों के लिये पुण्य फल का देने वाला है । हमारी तपश्चर्या के मूल भी आप ही हैं ।।७।। हे प्रभो ! आप ही प्रणव,

वषट्कार, यज्ञ, पितामह, ज्योनि, ब्रह्ममूर्ति हैं तथा आप ही ब्रह्मा एवं रुद्र हैं ॥८॥ आप ही सब जीवों के अन्तर में वास करने वाले आत्मा हैं और यज्ञ तथा दानादि कर्मों के द्वारा आपकी ही आराधना की जाती है ॥ ९ ॥ हे प्रभो ! हे विश्वसृज ! हे विश्वमूर्ति ! आपको बारम्बार नमस्कार है। हे ईश्वर ! आप ब्राह्मणों के द्वेषियों का संहार कर त्रैलोक्य का रक्षण कीजिये ॥१०॥ भगवान् ने 'ऐसा ही हो' कह कर प्रस्थान किया और द्वारका जाकर बन्दीजनों की स्तुतियों को सुनते हुए सुखपूर्वक वहाँ निवास करने लगे ॥११॥ हे राजन् ! आपने भगवान् विष्णु के विषय में जो पूछा था, वह सब आप से कहा जा चुका। अब और क्या सुनने की इच्छा है, सो कहिये ॥१२॥

॥ हरिवंश श्रवण फल ॥

भगवन्केन विधिना श्रोतव्यं भारतं बुधैः ।
फलं किं के च देवाश्च पूज्या वै पारणेष्विह ॥१
देयं समाप्ते भगवन्किं च पर्वणि पर्वणि ।
वाचकः कीदृशश्चात्र एष्टव्यस्तद्ब्रवीहि मे ॥२
शृणु राजन्विधिमिमं फलं यच्चापि भारतात् ।
श्रुताद्भवन्ति राजेन्द्र यत्त्वं मामनुपृच्छसि ॥३
दिवि देवा महीपाल क्रीडार्थमवनिं गताः ।
कृत्वा कार्यमिदं चैव ततश्च दिवमागताः ॥४
हन्त यत्ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व समाहितः ।
ऋषीणां देवतानां च संभवं वसुधातले ॥५
अत्र रुद्रास्तथा साध्या विश्वेदेवाश्च शाश्वताः ।
आदित्याश्चाश्विनौ देवौ लोकपाला महर्षयः ॥६
गुह्यकाश्च सगन्धर्वा नागा विद्याधरास्तथा ।
सिद्धा धर्मः स्वयंभूश्च मुनिः कात्यायनो वरः ॥७
गिरयः सागरा नद्यस्तथैवाप्सरसां गणाः ।
ग्रहाः संवत्सराश्चैव अयनान्यृतवस्तथा ॥८

स्थावरं जङ्गमं चैव जगत्सर्वं सुरासुरम्।
भारते भरतश्रेष्ठ एकस्थमिह दृश्यते ॥९

यह सुन कर राजा जनमेजय ने कहा—हे भगवन्! इस भारत का श्रवण किस प्रकार से करे? इसके श्रवण का क्या फल है और इसके पारायण के समय किस देवता का पूजन करे? ॥१॥ पर्व की समाप्ति पर क्या दान दे? कथावाचक कैसा हो? उसका पूजन किस प्रकार करे? इस पर आप पूर्ण प्रकाश डालने की कृपा करिये ॥२॥ वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन्! अब मैं इसके पारायण और श्रवण के पूर्ण फल को कहता हूँ, आप सावधान होकर सुनिये ॥३॥ हे राजन्! स्वर्गवासी देवता पृथिवी पर क्रीडा करने की इच्छा से अवतरित होकर पुन अपने लोक को लौट गये ॥४॥ अब मैं उस कथा को कहता हूँ, जिसमें ऋषियों और देवताओं के पृथिवी पर जन्म-धारण करने का वृत्तान्त है, सुनो ॥५॥ इस ग्रन्थ में रुद्र, सिद्ध, साध्य, विश्वेदेव, आदित्य, अश्विनीकुमार, लोकपाल, महर्षि, गुह्यक, गन्धर्व, नाग, विद्याधर सिद्ध, धर्म, स्वयम्भू वात्स्यायन मुनि, गिरि, सागर, नदी, अप्सरा, ग्रह, संवत्सर, अयन, ऋतु, स्थावर-जंगम, सुर, असुर, आदि के सहित सम्पूर्ण विश्व अथवा और भी जो-जो कुछ आप देखना चाहेंगे, वही मिल जायगा ॥६-९॥

तेषां श्रुतप्रतिष्ठानं नामकर्मानुकीर्तनात् ।
कृत्वाऽपि पातकं घोरं सद्यो मुच्येत मानवः ॥१०
इतिहासमिमं श्रुत्वा यथावदनुपूर्वशः ।
संयतात्मा शुचिर्भूत्वा पारं गत्वा च भारते ॥११
तेषां शृणु त्वं देयानि श्रुत्वा भारत भारतम् ।
ब्राह्मणेभ्यो यथाशक्त्या भक्त्या च भरतर्षभ ॥१२
महादानानि देयानि रत्नानि विविधानि च ।
गावः कांस्योपदोहाश्च कन्याश्चैव स्वलङ्कृताः ॥१३
सर्वकामगुणोपेता यानानि विविधानि च ।
भाजनानि विचित्राणि भूमिर्वासांसि काञ्चनम् ॥१४

वाहनानि च देयानि हया मत्ताश्च वारणा ।
शयन शिविकाश्चैव स्यन्दनाश्च स्वलंकृता ।।१५
यद्यद्गृहे वर किंचिद्यद्यदस्ति महद्वसु ।
तत्तद्देय द्विजातिभ्य आत्मा दाराश्च सूनव ।।१६

उपरोक्त सब के प्रतिष्ठान, नाम और कर्मादि का गुणानुवाद करने पर तुरन्त ही महा पाप तक से मुक्ति हो जाती है ।। १० ।। जो मनुष्य संयत और शुद्ध मन से इसको आदि से अन्त तक सुनता है वह भवसागर से पार हो जाता है ।।११।। हे राजन् ! अब यह कहता हूँ कि भारत को सुन कर क्या दान देना उचित है ? हे राजन् ! उचित तो यह है कि उस समय पूर्ण भक्ति भाव के सहित जो अपनी सामर्थ्य हो, उसी के अनुसार दान दे ।। १२ ।। फिर अपनी सामर्थ्य भर रत्न, दूध देने वाली गाय, आभूषणों से सुसज्जित कन्या, पात्र, पृथिवी, वस्त्र, सुवर्ण, गज अश्व आदि वाहन, शय्या, शिविका आदि जो वस्तु यथेष्ठ हो वह सभी दान की जा सकती है ।।१३-१६।।

श्रद्धया परया दत्त क्रमशस्तस्य पारग ।
शक्तित सुमना हृष्ट शुश्रूषुरविकम्पन ।।१७
सत्यार्जवरतोऽत्यन्त शुचि शौचपरायण ।
श्रद्दधानो जितक्रोधो यथा सिद्ध्यति तच्छृणु ।।१८
शुचि: शीलान्विताचार शुक्लवासा यतेन्द्रिय ।
संस्कृत सर्वशास्त्रज्ञ श्रद्दधानोऽनसूयक ।।१९
रूपवान्सुभगो दान्त सत्यवादी जितेन्द्रिय ।
दानमानग्रहीता च कार्यो भवति वाचक ।।२०
अविलम्बमनायस्तमद्रुत धीरमूर्जितम् ।
असंसक्ताक्षरपद न च भावसमन्वितम् ।।२१
त्रिषष्टिवर्णसंयुक्तमष्टस्थानसमीरितम् ।
वाचयेद्वाचक स्वस्थ स्वाधीन सुसमाहित ।।२२

दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यगन्धविभूषितः ।
दिव्यागदधरो नित्यं देवलोके महीयते ॥२८

तृतीयं पारणं प्राप्य द्वादशाहफलं लभेत् ।
वसत्यमरसंकाशो वर्षाण्ययुतशो दिवि ॥२९

चतुर्थं वाजपेयस्य पञ्चमे द्विगुणं फलम् ।
उदितादित्यसंकाशं ज्वलन्तमनलोपमम् ॥३०

विमानं विबुधैः सार्द्धमारुह्य दिवि गच्छति ।
वर्षायुतानि भवने शक्रस्य दिवि मोदते ॥३१

प्रथम पारण के समाप्त होने पर ब्राह्मणो को सतुष्ट करने पर अग्निष्टोम का फल प्राप्त होता है और अन्त मे श्रोता को स्वर्ग-यात्रा के लिये अप्सराओ से परिपूर्ण दिव्य विमान मिलता है ॥२५-२६॥ जब द्वितीय पारण पूर्ण हो जाता है तब सुनने वाले को अतिरात्र का फल मिलता है और वह दिव्य वस्त्र, माला, गन्ध, अलंकार आदि को धारण कर दिव्य यान के द्वारा देवलोक को प्राप्त होकर देवताओ के लिये भी सम्माननीय हो जाता है ॥ २७-२८ ॥ तीसरे पारण की समाप्ति पर श्रोता द्वादशाह का फल प्राप्त करता है, इस फल से उसे देवताओ के समान दस हजार वर्ष तक स्वर्ग सुख भोगने का अधिकार मिल जाता है ॥ २९ ॥ चौथे पारण की पूर्णता पर वाजपेय यज्ञ का फल मिलता है और पाँचवें पारण की समाप्ति पर उससे भी दूना फल प्राप्त होता है । इसका पुण्य श्रोता को प्रदीप्त अग्नि और उदयकाल के सूर्य के समान लाल वर्ण वाले तेजोमय विमान के द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति कराता है, जहाँ वह इन्द्र के विशाल प्रासाद मे विहार करता हुआ दस हजार वर्ष तक सुखोपभोग करता है ॥ ३०-३१ ॥

षष्ठे द्विगुणमस्तीति सप्तमे त्रिगुणं फलम् ।
कैलासशिखराकारं वैदूर्यमणिवेदिकम् ॥३२

परिक्षिप्तं च बहुधा मणिविद्रुमभूषितम् ।
विमानं समधिष्ठाय कामगं साप्सरोगणम ॥३३

सर्वाल्लोकान्विचरते द्वितीय इव भास्कर ।
अष्टमे राजसूयस्य पारणे लभते फलम् ॥३४
चन्द्रोदयनिभं रम्यं विमानमधिरोहति ।
चन्द्ररश्मिप्रतीकाशैर्हयैर्युक्तं मनोजवैः ॥३५
सेव्यमानो वरस्त्रीणां चन्द्रकान्ततरैर्मुखैः ।
मेखलानां निनादेन नूपुराणां च निस्वनैः ॥३६
अङ्के परमनारीणां सुखं सुप्तो विबुध्यते ।
नवमे क्रतुराजस्य वाजिमेधस्य भारत ॥३७
काञ्चनस्तम्भनिर्व्यूहं वैदूर्यकृतवेदिकम् ।
जाम्बूनदमयैर्दिव्यैर्गवाक्षैः सर्वतो दिशम् ॥३८
सेवितं चाप्सरःसङ्घैर्गन्धर्वैर्दिविचारिभिः ।
विमानं समधिष्ठाय श्रिया परमया ज्वलन् ॥३९
दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यचन्दनभूषितः ।
मोदते दैवतैः सार्द्धं दिवि देव इवापरः ॥४०

दिव्य माला, वस्त्र और गन्ध के अनुलेपन पूर्वक बैठा हुआ श्रोता देवताओं के साथ देवलोक में भ्रमण का आनन्द लेता है ॥३६-४०॥

दशमं पारणं प्राप्य द्विजातीनभिवन्द्य च ।
किङ्किणीजालनिर्घोषं पताकाध्वजशोभितम् ॥४१
रत्नवेदिकसंकाशं वैदूर्यमणितोरणम् ।
हेमजालपरिक्षिप्तं प्रवालवलभीसुखम् ॥४२
गन्धर्वैर्गीतकुशलैरप्सरोभिनिषेवितम् ।
विमानं सुकृतावासं सुकृतावासं सुखेनैवोपपद्यते ॥४३
मुकुटेनार्कवर्णेन जाम्बूनदविभूषणः ।
दिव्यचन्दनदिग्धाङ्गो दिव्यमाल्यविभूषितः ॥४४
दिव्याँल्लोकान्प्रचरति दिव्यं भोगैः समन्वितः ।
विबुधानां प्रसादेन श्रिया परमया युतः ॥४५
अथ वर्षगणानेव स्वर्गलोके महीयते ।
ततो गन्धर्वसहितः सहस्राण्येकविंशतिः ॥४६
पुरंदरपुरे रम्ये शक्रेण सह मोदते ।
दिव्ययानविमानेषु लोकेषु विविधेषु च ॥४७
दिव्यनारीगणाकीर्णो निवसत्यमरो तथा ।
ततः सूर्यस्य भवने चन्द्रस्य भवने तथा ॥४८
शिवस्य भवने राजन्विष्णोर्याति सलोकताम् ।
एवमेतन्महाराज नात्र कार्या विचारणा ॥४९

दसवाँ पारण पूर्ण होने पर किंकणियों से अलंकृत, ध्वजा पताका से युक्त, रत्नमय वदी और मणिमय तोरण से सुशोभित, गान-विद्या युक्त गन्धर्वों और अप्सराओं से भरा हुआ स्वर्ण निर्मित यान श्रोता को उपलब्ध होता है ॥ ४१-४३ ॥ तब श्रोता के मस्तक पर स्वर्णमय और सूर्य के समान तेजोमय मुकुट सुशोभित होता है और दिव्य माला और गन्धादि के अनुलेपन पूर्वक दिव्य मनोहर रूप वाला होकर वह श्रोता देवताओं के लोक में भ्रमण करता है ॥४४-

४५।। इस प्रकार कुछ काल स्वर्ग मे विहार करके फिर गन्धर्वों द्वारा परिचर्या को प्राप्त होकर आनन्द सहित रहता है। फिर इन्द्र के समान विविध लोको मे भ्रमण करने की शक्ति प्राप्त करके इच्छित रूप से घूमता और दिव्याङ्गनाओ के मध्य मे सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करता है। फिर वह सूर्य के भवन मे, चन्द्रमा के भवन मे और भगवान् शिव के भवन मे रह कर अन्त मे भगवान् विष्णु के सायुज्य मोक्ष को प्राप्त हो जाता है। हे राजन्! मेरा सब कथन सत्य है, इसमे सन्देह के लिये किंचित् भी स्थान नही है ।।४६-४९।।

श्रद्धानेन वै श्राव्यमेवमाह गुरुर्मम ।
वाचकस्य तु दातव्य मनसा यद्यदिच्छति ।।५०
हस्त्यश्वरथयानादि वाहनं च विशेषतः ।
कटकं कुण्डले चैव ब्रह्मसूत्रं तथापरम् ।।५१
वस्त्रं चैव विचित्रं च गन्धं चैव विशेषतः ।
देववत्पूजयेत्तं तु विष्णुलोकमवाप्नुयात् ।।५२
अतः परं प्रवक्ष्यामि यानि देयानि भारते ।
वाच्यमानेऽथ विप्रेभ्यो राजन्पर्वणि पर्वणि ।।५३
जाति देशं च सत्यं च माहात्म्यं भरतर्षभ ।
धर्मवृत्ति च विज्ञाय क्षत्रियाणा नराधिप ।।५४
स्वस्ति वाच्यं द्विजानादौ ततः कार्यं प्रवर्तयेत् ।
समाप्ते पर्वणि ततः स्वशक्त्या तर्पयेद्द्विजान् ।।५५
आदौ तु वाचकं चैव वस्त्रगन्धसमन्वितम् ।
विधिवद्भोजयेद्राजन्मधुपायससयुतम् ।।५६
ततो मूलफलप्रायं पायसं मधुसर्पिषा ।
आस्तिने भोजयेद्राजन्दद्याच्चैव गुडौदनम् ।।५७

हे राजन्! मेरे गुरु का उपदेश है कि भारत का श्रवण श्रद्धा पूर्वक करे और कथा वाचक ब्राह्मण को गज, अश्व, रथ, यान, वाहन, कटक, कुण्डल, ब्रह्मसूत्र, वस्त्र, गंध आदि जिस वस्तु की भी वह इच्छा करे, वही उसे देकर

देवता के समान ही उसे पूजे । ऐसा करने वाले श्रद्धावान् श्रोता को अन्त में विष्णु लोक की प्राप्ति होती है ॥५०-५१॥ हे राजन् ! महाभारत की कथा के समय प्रत्येक पर्व पर जाति, देश, उत्साह, गौरव, धर्म आदि के अनुसार जो दान देना चाहिये, उसे कहता हूँ, सुनो ॥५३-५४॥ प्रथम स्वस्ति वाचन कराने के पश्चात् ही कथा सुनने में प्रवृत्त हो । आदि पर्व के समाप्त होने पर ब्राह्मणों को शक्ति भर दान दे ॥५५॥ हे राजन् ! पर्व के पूर्ण होने पर कथावाचक को वस्त्र और गंध आदि अर्पित करके मधु से युक्त खीर के भोजन से तृप्त करे ॥५६॥ इस प्रकार फल, मूल और घी-शहद मिश्रित खीर खिलाकर फिर उसे गुड़ मिश्रित भात का भोजन करावे ॥५७॥

अपूपैश्चैव पूपैश्च मोदकैश्च समन्वितम् ।
सभापर्वणि राजेन्द्र हविष्यं भोजयेद्द्विजान् ॥५८
आरण्यके मूलफलैस्तर्पयेच्च द्विजोत्तमान् ।
अरणीपर्व आसाद्य जलकुम्भान्प्रदापयेत् ॥५९
तर्पणानि च मुख्यानि वन्यमूलफलानि च ।
सर्वकामगुणोपेतं विप्रेभ्योऽन्नं प्रदापयेत् ॥६०
विराट्पर्वणि तथा वासांसि विविधानि च ।
उद्योगे भरतश्रेष्ठ सर्वकामगुणान्वितम् ॥६१
भोजनं भोजयेद्विप्रान्गन्धमाल्यैरलंकृतान् ।
भीष्मपर्वणि राजेन्द्र दत्वा यानमनुत्तमम् ।
ततः सर्वगुणोपेतमन्नं दद्यात्सुसंस्कृतम् ॥६२
द्रोणपर्वणि विप्रेभ्यो भोजनं परमार्चितम् ।
शराश्च देया राजेन्द्र चापान्यसिवरस्तथा ॥६३
कर्णपर्वण्यपि तथा भोजनं सार्वकामिकम् ।
विप्रेभ्यः संस्कृतं सम्यग्दद्यात्संयतमानसः ॥६४

जब सभापर्व समाप्त हो जाय, तब ब्राह्मणों को पूए, अपूप, मोदक और खीर का भोजन दे ॥५८॥ फिर वनपर्व की समाप्ति पर जल से भरे हुए कलश

प्रदान करे और फल, मूल आदि विविध प्रकार के पदार्थों से भोजन करावे ॥५९-६०॥ तदनन्तर जब विराट् पर्व समाप्त हो, तब उन्हे विविध प्रकार के वस्त्रों का दान करे और उद्योग पर्व के पूर्ण होने पर श्रेष्ठ वस्त्र आदि देकर सुरुचिपूर्ण पदार्थों से भोजन करावे ॥६१-६२॥ फिर द्रोण पर्व की समाप्ति पर ब्राह्मणो को श्रद्धा सहित भोजन करावे और उन्हे धनुष बाण एव तलवार का दान करे ॥६३॥ कर्ण पर्व समाप्त होने पर संयत चित्त से ब्राह्मणो को श्रेष्ठ भोजन से तृप्त करे ॥६४॥

शल्यपर्वणि राजेन्द्र मोदकैः सगुडौदनैः ।
अपूपैस्तर्पयेच्चैव सर्वमन्नं प्रदापयेत् ॥६५
गदापर्वण्यपि तथा मुद्गमिश्रं प्रदापयेत् ।
स्त्रीपर्वणि तथा रत्नैस्तर्पयेत्तु द्विजोत्तमान् ॥६६
घृतौदनं पुरस्ताच्च ऐषिके दापयेत्पुनः ।
ततः सर्वगुणोपेतमन्नं दद्यात्सुसंस्कृतम् ॥६७
शान्तिपर्वण्यपि गते हविष्यं भोजयेद्द्विजान् ।
अश्वमेधिकमासाद्य भोजनं सार्वकामिकम् ॥६८
तथाऽऽश्रमनिवासे तु हविष्यं भोजयेद्द्विजान् ।
मौसले सार्वगुणिकं गन्धमाल्यानुलेपनम् ॥६९
महाप्रस्थानिके तद्वत्सर्वकामगुणान्वितम् ।
स्वर्गपर्वण्यपि तथा हविष्यं भोजयेद्द्विजान् ॥७०
हरिवंशसमाप्तौ तु सहस्रं भोजयेद्द्विजान् ।
गामेकां निष्कसंयुक्तां ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥७१
तदर्द्धेनापि दातव्या दरिद्रेणापि पार्थिव ।
प्रतिपर्वसमाप्तौ तु पुस्तकं वै विचक्षण. ॥७२
सुवर्णेन च संयुक्तं वाचकाय निवेदयेत् ।
हरिवंशे पर्वणि च पायसं तत्र भोजयेत् ॥७३

शल्यपर्व के समाप्त होने पर मोदक, गुड, भात आदि के भोजन से

वाचके परितुष्टे तु शुभा प्रीतिरनुत्तमा ।
ब्राह्मणेषु च तुष्टेषु प्रसन्नाः सर्व देवताः ॥८७
ततो हि वरण कार्य द्विजानां भरतर्षभ ।
सर्व कामैर्यथान्याय साधुभिश्च यथाक्रमम् ॥८८
इत्येष विधिरुद्दिष्टो मया ते द्विपदा वर ।
श्रद्दधानेन वै भाव्य यन्मा त्व परिपृच्छसि । ८९
भारतश्रवणे राजन्पारणे च नृपोत्तम ।
सदा यत्नवता भाव्य श्रेयस्तु परमिच्छता ॥९०

इन उपरोक्त वस्तुओ के अतिरिक्त और भी जो कुछ देने की इच्छा हो, उसे उसी समय दान कर दे । कथावाचक को गुरु के समान भक्ति-भाव पूर्वक सन्तुष्ट करे । तदनन्तर सब देवताओ का तथा भगवान् नर नारायण का नाम सकीर्तन करे ॥८२॥ यदि श्रोता गन्ध, माला एव अन्यान्य उपयोगी पदार्थों के प्रदान द्वारा ब्राह्मणो को सन्तुष्ट करे तो उसे अतिरात्र यज्ञ के फल की प्राप्ति होती है ॥७३-८४॥ मधुर कण्ठस्वर वाला और स्पष्ट रूप से वर्ण-वाक्यादि के उच्चारण मे समर्थ व्यक्ति ही कथा बाँचने का अधिकारी है । इसलिये ऐसे पुरुष को ही भविष्यादि पर्वों की कथा कहनी चाहिये ॥८५॥ जब ब्राह्मण भोजन पूर्ण हो जाय, तब कथावाचक को भी भोजन करावे और उसकी विधि सहित पूजा करे, क्योकि कथावाचक के सन्तुष्ट होने से ही सब देवताओ की सन्तुष्टि होती है ॥८६-८७॥ इस प्रकार ब्राह्मणो का विधि पूर्वक वरण करे । हे राजन् ! आपने मुझसे ग्रन्थ के अध्ययन की जो विधि पूँछी थी, वह मैंने आपके प्रति कह दी है ॥८८-८९॥ अब भी जो व्यक्ति अपने कल्याण की कामना करके महाभारत को सुनना चाहते हो, उन्हे इसकी श्रवण विधि का पूर्ण रूप से पालन करना चाहिये ॥९०॥

भारत शृणुयान्नित्यं भारतं परिकीर्तयेत् ।
भारत भवने यस्य तस्य हस्तगतो जय ॥९१
भारत परमं पुण्य भारते विविधाः कथाः ।
भारत सेव्यते देवैर्भारतं परिकीर्तयेत् ॥९२

भारत सर्वशास्त्राणामुत्तम भरतर्षभ ।
भारतात्प्राप्यते मोक्षस्तत्त्वमेतद्ब्रवीमि ते ।।९३

महाभारतमाख्यान क्षिति गा च सरस्वतीम् ।
ब्राह्मण केशव चापि कीर्तयन्नावसीदति ।।९४

वेदे रामायणे पुण्ये भारते भरतर्षभ ।
आदौ चान्ते च मध्ये च हरि सर्वत्र गीयते ।।९५

मनुष्य मात्र को नित्य प्रति महाभारत कथन और श्रवण करना चाहिये, जिस घर मे यह ग्रथ सदा निवास करता है उस घर के मनुष्यो के हाथो मे विजय सदैव रहती है ।।९१।। महाभारत अत्यन्त पुनीत ग्रथ है, इसका सभी देवता सम्मान करते है तथा यह विविध प्रकार की गाथाओ से परिपूर्ण है ।।९२।। हे राजन् ! यह सभी ग्रथो मे श्रेष्ठ है और इसमे एक विशेषता यह है कि इसके द्वारा मुक्ति भी प्राप्त की जा सकती है ।।९३।। महाभारत की कथाओ के कीर्तन से पृथिवी, सरस्वती, धेनु, ब्राह्मण और भगवान् विष्णु के नामो का स्वय ही सकीर्तन हो जाता है और ऐसा करने वाले प्राणी को दुःख भी कभी व्याप्त नही होते ।।९४।। वेदत्र, रामायण, महाभारत आदि की पुण्य कथा के कथन-श्रवण के आदि, मध्य और अन्त मे भगवान् श्रीहरि के नामो का सकीर्तन करे ।।९५।।

यत्र विष्णुकथा दिव्या श्रुतयश्च सनातना ।
तच्छ्रोतव्य मनुष्येण पर पदमिहेच्छता ।।९६

एतत्पवित्र परममेतद्धर्मनिदर्शनम् ।
एतत्सर्वगुणोपेत श्रोतव्य भूतिमिच्छता ।।९७

क्रियतेऽसारससारे वाञ्छितस्यैककारणम् ।
हरिवशस्य श्रवणमिति द्वैपायनोऽब्रवीत् ।।९८
अश्वमेधसहस्रेण वाजपेयशतैस्तथा ।
यत्फल प्राप्यते पुम्भिस्तद्धरेर्वशपारणात् ।।९९
अजरममरमेक ध्येयमाद्यन्तशून्य
सगुणमगुणमाद्य स्थूलमत्यन्तसूक्ष्मम् ।

निरुपममनुमेयं योगिनां ज्ञानगम्यं
त्रिभुवनगुरुमीशं त्वांप्रपन्नोऽस्मि विष्णो ॥१००
सर्वे स्तरन्तु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु ।
सर्वेषां वाञ्छिता अर्था भवन्त्वस्य च पारणात् ॥१०१

जो पुरुष परमपद प्राप्ति की कामना करते हो, उन्हें भगवान् विष्णु की कथाओं और सनातन श्रुतियों के विशद वर्णनों से युक्त महाभारत महाग्रन्थ का सदा श्रवण करना चाहिये ॥१८॥ क्योंकि यह ग्रन्थ परम पुनीत परम धर्म तथा सभी श्रेष्ठ गुणों का घर होने से सुनने के योग्य है ॥६७॥ महर्षि व्यास देवजी का स्वयं ही यह कहना है कि इस असार संसार में हरिवंश के सुनने से ही सब मनोरथों की प्राप्ति हो सकती है ॥६८॥ जो फल सहस्रों अश्वमेध यज्ञ और सैंकड़ों वाजपेय यज्ञ करने से मिल सकता है वह फल अकेले इस हरिवंश के सुनने से प्राप्त हो जाता है ॥६६॥ हे प्रभो ? आप अजर अमर और अनन्त हैं। आप ही सगुण, निर्गुण, स्थूल, सूक्ष्म, अनुपमेय, उपमा से परे और केवल योगियों के लिये ही जानने में आने योग्य हैं। इसलिये हे विष्णो ! हे ईश्वर ! हे जगद्गुरो ! मैं आपकी शरण में हूँ ॥१००॥ इस हरिवंश के पारण से सब के संकट दूर हों, सब का कल्याण हो तथा सभी के मनोरथ पूर्ण हों ॥१०१॥

॥ त्रिपुर वध कथन ॥

अथाऽहमहं ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।
त्रयाणां पुरसञ्ज्ञानां खेचराणां समासतः ॥१
शृणु विस्तरतः सर्वं यन्मां पृच्छसि नंऽघनम् ।
दैत्यानां बाहुबलिनां सर्वप्राणिविरोधिनाम् ॥२
शङ्करेण वधं राजन् शूलैस्त्रिभिरजिह्मगैः ।
यत पुराऽसुरेन्द्राणां सर्वभूतवर्षपिणाम् ॥३
त्रिपुरं पुरुषव्याघ्र वृहद्धातुममोरितम् ।
विक्रामति नभोमध्ये मेघवृन्दमिवोत्थितम् ॥४

प्राकारेण प्रवृद्धेन काञ्चनेन विराजता ।
मणिभिश्च प्रकाशद्भिः सर्वरत्नैश्च तोरणैः ॥५

बभासे नभसो मध्ये श्रिया परमया ज्वलन् ।
गन्धर्वाणामिवोदग्रं कर्मणा साधितं परम् ॥६

वाजिनः पक्षसयुक्ता वहन्ति बलदर्पिताः ।
पुरं प्रभाकरश्रेष्ठं मनोभिः कामबृंहणैः ॥७

यह सुन कर राजा जनमेजय ने कहा—हे ब्रह्मन् ! अब मैं भगवान शंकर द्वारा त्रिपुरासुरके मारे जाने की कथा सुनना चाहता हूँ, उसे आप विस्तारपूर्वक कहिये ॥१॥ वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! तुमने लोगो का अनिष्ट करने वाले महाबली जिस त्रिपुरासुर के सहार के विषय मे जिज्ञासा की है, वह त्रिपुर भगवान् शंकर के बाणो से जिस प्रकार मृत्यु को प्राप्त हुआ था, उस कथा को तुम्हे विस्तार पूर्वक सुनाता हूँ ॥२-३॥ वह अत्यन्त पराक्रमी और बलशाली त्रिपुरासुर सहसा आकाश मे छा जाने वाले मेघो के समान नभ मंडल मे स्वच्छन्दता पूर्वक घूमता फिरता था ॥४॥ उसके पुर मे श्रेष्ठ मणियो और रत्नो से युक्त ऊँचे-ऊँचे स्वर्ण निर्मित भवन थे, जिनके तोरण भी विविध प्रकार के रत्नादि से सुसज्जित किये गये थे ॥५॥ आकाश मे उस गंधर्वनगरी के समान सजी हुई सुन्दर पुरी की विस्मय उत्पन्न करने वाली शोभा थी ॥६॥ उस पुरी को वहन करने वाले मन के समान वेग से दौडने वाले, अत्यन्त बलशाली, सूर्य के समान तेजस्वी और पख वाले उसके अश्व थे ॥७॥

धावन्ति हेषमाणास्ते विक्रमैः प्राणसंभृतैः ।
आह्वयन्त इवाकाशं खुरैः श्यामदलप्रभैः ॥८
वायुवेगसमैर्वेगैः कालयन्त इवाम्बरम् ।
असुराः समदृश्यंत चक्षुर्भिर्विदितात्मभिः ॥९
ऋषिभिर्ज्वलनप्रख्यैस्तपसा दग्धकिल्विषैः ।
गीतवादित्रबहुल गन्धर्वनगरोपमम् ॥१०

चित्रायुधसमाकीर्णैः प्रतप्तकनकप्रभैः ।
भवनैर्बहुभिश्चैव प्रांशुभिः समलंकृतैः ॥११
देवेन्द्रभवनाकारैः शुशुभे तन्महाद्युति
प्रासादाग्रैः प्रवृद्धैश्च कैलासशिखरप्रभैः ॥१२
शुशुभे दैत्यनगरं बहुसूर्यमिवाम्बरम् ।
वराट्टालकसम्पन्नं तप्तकाञ्चनसप्रभम् ॥१३
प्रदीप्तमिव तेजोभी रराजाथ महाप्रभो ।
क्ष्वेडितोत्कृष्टबहुलं सिंहनादनिनादितम् ॥१४

शब्द करते हुए वे अश्व जब अपने पूर्ण पराक्रम से भागते थे, तब उनके वायु जैसे वेग को देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि वे अपने हरे रंग के खुरों को चला कर आकाश को चुनौती दे रहे हो और उनके भय से उसका अन्तस्तल काँपने लगा हो। आत्म तत्व के ज्ञाता, प्रदीप्त अग्नि के समान तेजस्वी और वीतकाम ऋषिगण जब, जिधर देखते, तब उधर ही गायन-वादन से परिपूर्ण उस गंधर्व नगरी के समान त्रिपुर की नगरी उन्हें दिखाई पड़ती ॥८-१०॥ उसमें तपे हुए स्वर्ण के समान असंख्य तेजस्वी शस्त्रास्त्रों से परिपूर्ण बहुत-सी ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएँ विद्यमान थीं। ११॥ उनसे आभास होता था कि इन्द्र-भवन या कैलाश-शिखर ही विद्यमान हो गया हो अथवा आकाश में असंख्य सूर्य एक साथ प्रकाशित हो उठे हों। उसमें तपे हुए सोने के समान तेजोमय वर्ण वाले अनेकों भव्य प्रासाद थे। हे राजन्! वह पुरी अपने ही तेज से प्रकाशित रहती थी और उसमें कहीं ताल ठोंकने का शब्द, कहीं भर्मनामय गूँज और कहीं सिंह जैसा घोर गर्जन सुनाई पड़ता था ॥१२-१४॥

बभौ वल्गुजनाकीर्णं वनं चैत्ररथं यथा ।
समुच्छ्रितपताकं तदसिभिश्च विराजितम् ॥१५
रराज त्रिपुरं राजन्महाविद्युदिवाम्बरे ।
धूर्यनामश्च दैत्येन्द्रश्चन्द्रनामरन भारत ॥ १

तथाऽन्ये च महावीर्या दानवा बलदर्पिताः ।
ममृदुश्च बभञ्जुश्च मोहिताः परमेष्ठिना ॥१७
पन्थानं देवगमनं पितृयानं च भारत ।
तैरेवमसुराग्रैश्च प्रगृहीतशरासनैः ॥१८
दानवैर्नरशार्दूल देवयाने महापथे ।
पितृवह्निबलोपेते हृते भरतसत्तम ॥१९
ब्रह्माणमभ्यधावन्त सर्वे सुरगणास्तथा ।
विवर्णवदना दीनाश्छिन्नेव गतिकर्मणि ॥२०
अब्रुवंश्च गताः स्थित्वा स्वरेणार्त्तनिनादिना ।
हन्यामहे शत्रुगणैर्भागोच्छेदेन भागद ॥२१
तेषां चैव वधोपायं वदस्व वदतां वर ।
यं ज्ञात्वा बाहुबलिनो बाधेम समरे परान् ॥२२

उन शब्दों से प्रतीत होता था कि वह मल्लों से परिपूर्ण चैत्ररथ उद्यान हो, क्योंकि वहाँ स्थान-स्थान पर पताकाएँ और तलवारें चमकती हुई दिखाई देती थीं ॥१५॥ इससे आकाश के विद्युत् की माला से प्रकाशित हो उठने का भ्रम होने लगता था । हे राजन् ! सूर्य-नाभ और चन्द्रनाभ नामक दो दैत्यों के साथ अन्यान्य दैत्यगण ब्रह्माजी से वर प्राप्त करके अत्यन्त गर्वित और बल के कारण भ्रमित हो उठे थे । उन्होंने देवलोक और पितरलोक का आवागमन-मार्ग बीच-बीच से तोड़ दिया था और उनके धनुष-बाण की शक्ति के सामने कोई भी नहीं ठहर पाता था ॥१७-१९॥ तब सभी देवता अत्यन्त दीन, हीन, मलीन होकर ब्रह्माजी के निकट पहुँचे और आर्तस्वर में उनसे निवेदन करने लगे--हे प्रभो ! आपके द्वारा निश्चित हमारे यज्ञ-भागों को हमारे शत्रुओं ने छीन लिया है, इस लिये हम मरे के समान हो गये हैं ॥२०-२१॥ इसलिये अब आप उनके नष्ट होने का कोई उपाय करें, जिससे हम भी अपने को बल-सम्पन्न करके उन्हें मारने में तत्पर हो सकें ॥२२॥

सान्त्वयित्वा तु वरदो ब्रह्मा प्रोवाच देवताः ।
शृणुध्वं देवताः सर्वाः शत्रुप्रतिकृतिं पराम् ॥२३

अवध्या दानवाः सर्वे ऋते शंकरमव्ययम् ।
प्रतिगृह्य च तद्वाक्यं मनोभिर्वाग्भिरेव च ॥२४
भूमौ प्रपेदिरे सर्वे सह रुद्रैश्च भारत ।
विन्ध्यपादे च मेरौ च मध्ये च पृथिवीतले ॥२५
तपसोग्रेण योगज्ञाः सर्वे ते मुनयोऽभवन् ।
काश्यपेय हरं प्राप्ता जपन्तो ब्रह्मसंहिताम् ॥२६
येषां च परदाराणामभवद्वन्ध्यता जने ।
विन्यस्तदर्भनिचये ताम्रलोहं च भूषणम् ॥२७
परिधानानि चर्माणि मृदूनि च शुभानि च ।
स्वयं मृतानां कृष्णानां मृगाणां कुरुसत्तम ॥२८

देवताओं की पुकार सुन कर ब्रह्माजी ने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा—हे देवगण ! भगवान् शंकर के अतिरिक्त अन्य कोई भी उन असुरों को नष्ट करने में समर्थ नहीं है । यह सुन कर सभी देवता और रुद्रादि उन्हें प्रणाम करके वहाँ से चल दिये । अपने तपोबल अथवा योग बल के कारण विंध्य पर्वत, सुमेरु पर्वत, पृथिवी या आकाश का कोई भी स्थान उनसे अपरिचित नहीं था इसलिये वे पृथिवी पर आये और ब्रह्म संहिता को जपते-जपते उन्हें दिखाई दिया कि ताम्र और लौहमय अलंकारों से अलंकृत भगवान् शंकर अत्यन्त कोमल मृगचर्म धारण किये कुश के एक आसन पर बैठे हैं ॥२३-२८॥

गृहीतानि विमुक्तानि देहेभ्यो वनचारिणाम् ।
अन्तरिक्षमथोपेत्य विविशुर्मायया वृताः ॥२९
हरालयं सुराः सर्वे व्याघ्रचर्मनिवासिनः ।
प्रणिपत्याथ ते दीना भगवन्तं जगत्पतिम् ॥३०
सुव्यक्तेनाभिधानेन प्रभाषन्त हरं ततः ।
हविर्हृत्तमविज्ञानाद्रुद्रमन्ध्यन्नेषु वह्निषु ॥३१
वरदानं वृथाऽस्मासु भगवन्विमुखे त्वयि ।
यथादेश यथाकालं क्रियतां ब्रह्मणो वचः ॥३२

यदुक्त देवदेवेन खेचराणा समीपत ।
एव देववचोभिश्च भाविनोऽर्थस्य वं भवात् ॥३३

समनह्यन्महादेवो देवं सह सवासवं ।
आदित्यपथमास्थाय सन्नद्धा समलवृता ॥३४

सर्वे काञ्चनवर्णाभा बपुर्दीप्ता इवाग्नय ।
रुद्रेण सहिता रुद्रा दहन्त इव तेजसा ॥३५

सन्नद्धा कुशला सर्वे प्राशव पर्वता इव ।
विश्वे विश्वेन वपुषा बलिन कामरूपिण ॥३६

समनह्यन्महात्मानो दानवान्त विधित्सव ।
एभि सह धनाध्यक्षं समन्तात्परिवारित ॥३७
त्रिपुर योधयत्त्यक्ष प्रगृह्य सशर धनु ।
अथ दैत्या भिन्नदेहा पुराट्टाल गता इव ॥३८

यह देख कर उन सभी देवताओ ने भगवान् शिव को नमस्कार करके हा—हे प्रभो ! यदि आप हमे वर देकर स्वय उस वर का ध्यान न रखेंगे तो ह वरदान भस्म से ढँकी हुई अग्नि पर दी जाने वाली आहुति के समान व्यर्थ । जायगा । इसलिये, अब ब्रह्माजी ने हमसे जो कहा है, उसके अनुसार कार्य रके उनके वचनो को रखिये ॥२९-३२॥ यह सुनकर देवाधिदेव भगवान् शकर कार्य को महत्वपूर्ण समझ कर तुरन्त ही शस्त्रास्त्र ग्रहण किये और देवताओ ो भी सुसज्जित होने का आदेश दिया, जिसे सुन कर सभी देवता कवचादि ारण कर रथ पर चढ़े तब उनकी शोभा प्रदीप्त अग्नि के समान हुई ॥३३-४॥ विविध शस्त्रास्त्रों और मुकुटादि अलकारो को धारण किये हुए रुद्रगण भी र्वत के समान ऊँचे आकार वाले तथा तेज से अत्यत प्रकाशमान दिखाई देने ो ॥३५॥ दानवो को नष्ट करने की इच्छा से अनेक रूप धारण में समर्थ श्वेदेवता भी विविध शस्त्रास्त्रो से सुसज्जित होकर चल पड़े । इस प्रकार उस म्पूर्ण देव-सेना से घिरे हुए भगवान् शकर धनुष-बाण ग्रहण पूर्वक त्रिपुरासुर साथ सग्राम करने के लिये तत्पर हुए ॥३५-३८॥

न्यपतन्त विदेहास्ते विशीर्णा इव पर्वता. ।
क्षतविद्धाः सुविद्धाश्च रणमध्यगता नृप ॥३६
न्यपतन्दैत्यसघाता वज्रेणेव हता नगाः ।
असिभिश्च हता देवैः शक्तिचक्रपरश्वधैः ॥४०
बाणैश्च भिन्नमर्माणो दैत्येन्द्रो युद्धगोचरे ।
प्रपेतुः सहिता उर्व्यां छिन्नवक्षा इवाचलाः ॥४१
तत्र सज्ञा विमुञ्चन्ति दीप्यमानेन तेजसा ।
एवं तेऽन्योन्यसवाधे क्षीयन्ते क्षयकर्मणा ॥४२
नोपालभ्यन्त चक्षुर्भ्यामपि दिव्येन चक्षुपा ।
अस्त प्राप्ते दिनकरे सुरेन्द्रास्ते निशामुखे ।
छिन्नभिन्नक्षतमुखा निपेतुर्वसुधातले ॥४३

उस युद्ध में भगवान् शकर द्वारा की जाने वाली बाण वर्षा से बिंध-बिंध कर घायल हुए दैत्य धराशायी होने लगे। उस समय ऐसा प्रतीत होता था जैसे इन्द्र के वज्र से चूर्ण होकर पर्वत पृथिवी पर गिर रहे हो। उस समय किसी देवता के पास खड्ग, किसी के पास चक्र, किसी के पास परशु और किसी के पास बाण आदि थे। इन सभी शस्त्रास्त्रो के प्रहार से नितान्त पीडित हुए दैत्य पर-कटे पर्वत के समान गिर रहे थे ॥३६-४१॥ देवताओ के भारी तेज के कारण दैत्यो मे कर्त्तव्य-विचार की शक्ति नही रही और उनकी जो सेना उस युद्ध मे मारी गई, उनकी सख्या का अनुमान दिव्य दृष्टि से भी नहीं हो सकता। इस प्रकार युद्ध करते-करते सायकाल हो गया और सूर्य अस्ताचलगामी हो गये। सब देवताओ मे भी किसी का मुख और किसी का कोई अन्य अग क्षत-विक्षत हुआ दिखाई दिया। बहुत-से देवता घायल होकर पृथिवी पर पड़े हुए थे ॥४२-४३॥

अथ दैत्या जयं प्राप्ता निशाया निशितैः शरैः ।
विनेदुर्विपुलैर्नादैर्मेघा इव महारवा. ॥४४

जयंप्राप्तासुराश्चैव तेन्योऽन्यमभिजल्पिरे ।
त्रासितास्त्रिदशाः सर्वे संग्रामजयकांक्षिणः ॥४५
अस्माभिर्बलसम्पन्नैः सह प्रासासितोमरैः ।
विरेजुश्च जय प्राप्ता उशनोहव्यबोधिताः ॥४६
समरे बलसम्पन्नाः सायुधा दैत्यसत्तमाः ।
सुरैश्च सहितः सर्वे रथमास्थाय शंकरः ॥४७
दर्पितान्निनदन्दैत्यान्प्रदहन्निव तेजसा ।
युगान्तकाले वितते रश्मिवानिव निर्दहन् ॥४८
सर्वभूतानि भूताग्यः प्रलये समुपस्थिते ।
स रथो वाजिभिः शीघ्रं रुह्यमानो मनोजवैः ॥४९
विबभौ नभसो मध्ये सविद्युदिव तोयदः ।
वृषभेण ध्वजाग्रेण गर्जमानेन भारत ॥५०
भातिस्म स रथो राजन्सेन्द्रायुध इवाम्बुदः ।
ततोऽम्बरगताः सिद्धास्तुष्टुवुर्वृ षभध्वजम् ॥५१
कर्मभिः पूर्वजं पूर्वैः शुचिभिस्त्र्यम्बकं तदा ।
ऋषयश्च तप.शान्ताः सत्यव्रतपरायणाः ॥५२
अमृतप्राशिनश्चैव सुरसंघास्तथैव च ।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव गन्धर्वेण स्वरेण वै ॥५३

रात्रिकाल के उपस्थित होते ही दैत्यगण विजय-घोष करने लगे, उस समय वह घोष मेघो के गर्जन जैसा प्रतीत होने लगा ॥४४॥ इस प्रकार वे विजयोन्मत दैत्य परस्पर मे कहने लगे-देखो, विजय की इच्छा से आये हुए सब देवता हमारे पराक्रम, प्रास, तलवार और तोमर आदि शस्त्रास्त्रो को देख कर डर गये हैं। यह कहते हुए शुक्राचार्य के शिष्य वे दैत्य विजयोल्लास मे भर कर घूमने लगे। इधर भगवान् शंकर भी रथारूढ़ होकर देवताओ सहित युद्ध क्षेत्र में अग्रसर होते हुए अपने बाणो की अग्नि मे दैत्यों को उसी प्रकार भस्म करने लगे, जैसे प्रलयकाल में सूर्य अपनी तीक्ष्ण रश्मियो से प्राणियों को भस्म कर डालता है ॥४५-४८॥ मन या वायु जैसे द्रुत वेग वाले अश्व भगवान् शंकर

का रथ खीचते हुए तेजी से चल पडे तब ऐसा लगा जैसे आकाश मे विद्युत कौंध रही हो। उनके रथ की ध्वजा मे स्थित बैल की गर्जना से प्रतीत होता था जैसे इन्द्र धनुष से युक्त बादलो की हो गर्जना हो। उस समय आकाश मे स्थित हुए सिद्ध, सत्यव्रत और तपश्चर्या युक्त ऋषि और अमृत के पान करने वाले देवतागण भगवान् के शकर गुणो का सकीर्तन करते हुए उनकी स्तुति करने लगे, तभी गधर्वों ने उनकी महिमा का गान प्रारम्भ किया ॥४६-५३॥

प्रहृष्टवदना सौम्या पं श्ये स्थानान्तरे नृप।
चयाट्टालकसम्पन्ने शतघ्नीशतसकुले ॥५४
तस्मिस्तु दै त्यनगरे सर्वभूतभयावहे।
ततस्तु शरवर्षाणि मुमुचुर्दैत्यदानवा ॥५५
सुराणामरयो मध्ये तीक्ष्णाग्राणि समन्तत.।
शतघ्नीभिश्च निघ्नन्तो भल्लै शूलैश्च भारत ॥५६
ते चक्रिरे महत्कर्म दानवा युद्धकोविदा:।
गदाभिश्च गदा जघ्नुर्भल्लाश्च चिच्छिदु ॥५७
अस्त्रैरस्त्राण्यबाधन्न माया मायाभिरेव च।
ततोऽपर समुद्यम्य शरशक्तिपरश्वधान् ॥५८
अशनीश्च महाघोरान्मुक्ताञ्छतसहस्रश।
असिभिर्मायाविहितैर्मृत्योर्विषयगोचरे ॥५६

हे राजन् ! वे दैत्यगण अपनी ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओ पर चढ गये। उन अट्टालिकाओ पर तोपें लगी थी और उन्हे देखकर सभी प्राणी भयभीत होते थे, उन्ही अट्टालिकाओ से वे अपने अत्यन्त तीक्ष्ण बाणो को बरसाने लगे। उस समय शतघ्नी, भाले, शूल आदि हथियारों के प्रयोग से भयानक स्थिति हो गई और दैत्यगण देवताओ के सब प्रहारो को व्यर्थ करने लगे। उनकी गदाओ को अपनी गदाओ से, भालो को भालो से तथा अन्यान्य शस्त्रो को अपने शस्त्रो से और माया को अपनी माया से काटते हुए असख्य दैत्य बाण, शक्ति, परशु, अशनि और भयकर तलवारो से देवताओ पर भीषण प्रहार करने लगे ॥५४-५६॥

ते वध्यमाना विबुधाः शरवर्षैरवस्थिताः ।
गन्धर्वनगराकारः सोऽसीदत्सहयो रथः ॥६०
हन्यमानोऽसुरगणैः प्रासासिशरतोमरैः ।
तैश्च दैत्यप्रहरणैर्गुरुभिर्भारसाहिभिः ।
चिलैश्च बहुभिः शस्त्रैरतिष्ठत शचीपतिः ॥६१
ततो मध्ये दिव्यशब्दः प्रादुरासीन्महीपते ।
ऋषीणां ब्रह्मपुत्राणां महतामपि भारत ॥६२
स एष शंकरस्याग्रे रथो भूमिं प्रतिष्ठितः ।
अजेयो जयतां प्राप्तः सर्वलोकस्य पश्यतः ॥६३
तस्मिन्निपतिते राजन्रथानां प्रवरे रथे ।
निपेतुः सर्वभूतानि भूतले वसुधाधिप ॥६४
विचेलुः पर्वताग्राणि चेलुश्चैव महाद्रुमाः ।
विचुक्षुभुः समुद्राश्च न रेजुश्च दिशो दश ॥६५
वृद्धाश्च ब्राह्मणास्तत्र जेपुश्च परमं जपम् ।
यत्तद्ब्रह्ममयं तेजः सर्वस्य विजयैषिणाम् ॥६६
शान्त्यर्थं सर्वभूतानामिह लोके परस्य च ।
समाधायात्मनाऽऽत्मानं योगप्राप्तेन हेतुना ॥६७

उस समय देवताओं को पिटना पड़ रहा था। दैत्यों के तलवार तोमर और प्रास आदि के आघात से भगवान् शंकर का रथ भी अविचल हो गया और देवराज इन्द्र ही उस रण-क्षेत्र में अकेले खड़े रह गये ॥६०-६१॥ तभी आकाश मार्ग में अवस्थित हुए ब्रह्माजी के पुत्र ऋषिगण इस प्रकार कह उठे— भूतनाथ भगवान् के रहते हुए भी उनका रथ चेष्टा-रहित हो गया। तीनों लोकों में जिस रथ को कोई नहीं जीत सकता था, वह रथ दैत्यों ने जीत लिया ॥६२-६३॥ हे राजन्! उस रथ के पतित होते ही जगत् के सभी प्राणी धराशायी हो गये। उस समय सभी पर्वतों के शिखर कम्पित हो उठे, वृक्ष गिर पड़े, समुद्रों का जल क्षुब्ध हो गया और सभी दिशाएँ अस्पष्ट हो गईं ॥६४-६५॥ उस समय जगत् में शान्ति स्थापित करने के विचार से योगाभ्यासी विप्रगण

सामवेद के मंत्रों को जपने लगे। क्योंकि उस समय विजय चाहने वाले देवताओं को वह देवमय तेज ही बल-प्रदान कर सकता था ॥६६-६७॥

रथन्तरेण साम्नाऽथ ब्रह्मभूतेन भारत ।
तेजसा ज्वलयन्विष्णोस्त्र्यक्षस्य च महात्मनः ॥६८
सर्वेषां चैव देवानां बलिनां कामरूपिणाम् ।
ऋषीणां तपसाऽऽढ्यानां वसतां विजने वने ॥६९
अथ विष्णुर्महायोगी सर्वतोदृश्यतत्त्वतः ।
वृषरूपं समास्थाय प्रोज्जहार रथोत्तमम् ॥७०
समाक्रान्तं देवगणैः समग्रबलपौरुषैः ।
बलवांस्तोलयित्वा तु विषाणाभ्यां महाबलः ।
ननाद प्राणयोगेन मथ्यमान इवार्णवः ॥७१
तृतीयं वायुविषयं समाक्रम्य विषाणवान् ।
ननाद बलवान्नादं समुद्र इव पर्वणि ॥७२
ततो नादेन वित्रस्ता दैतेया युद्धदुर्मदाः ।
पुनस्ते कृतसन्नाहा युयुधुः सुमहाबलाः ॥७३
सर्वे वै बाहुबलिनः समर्थबलपौरुषाः ।
सुरसैन्यं प्रमर्दन्तः प्रगृहीतशरासनाः ॥७४

उन ब्राह्मणों के वेदानुष्ठान से भगवान् विष्णु, त्रिलोचन शिव, स्वेच्छा रूपधारी महाबली देवगण और निर्जन वन मे रहने वाले तपोनिष्ठ ऋषि अत्यन्त तेजस्वी हो गये ॥६८-६९॥ तब महायोगी भगवान् विष्णु ने वृषभ का रूप धारण किया और देवताओ के सहित उस अत्यन्त विशाल रथ को सीगो पर उठा लिया। उन वृषभ रूप धारी भगवान् ने रथ को उठाकर अत्यन्त घोर गर्जन किया तो जैसा घोर शब्द समुद्र मथन के समय हुआ था, वैसा ही भयंकर शब्द प्रतिध्वनित होने लगा ॥७०-७१॥ फिर उन वृषभ रूपी भगवान् ने रथ सहित आकाश में पहुँच कर पुनः घोर निनाद किया, जो पूर्वकाल मे समुद्र का गर्जन जैसा प्रतीत हुआ ॥७२॥ उस शब्द को सुन कर युद्ध मे कठिनाई से जीते

जाने वाले दैत्यगण भयभीत होकर शस्त्र ग्रहण पूर्वक युद्ध के लिये सुसज्जित हो गये ॥७३॥ तब वे भुजबल से युक्त एवं अत्यन्त पराक्रम वाले दैत्य धनुष ग्रहण करके यथाशक्ति बढ़ते हुए देवताओं को नष्ट करने लगे ॥७४॥

अग्निं संधाय धनुषि शितं बाणं सुपत्रिणम् ।
ब्रह्मास्त्रेणाभिसंयोज्य ब्रह्मदण्डं शिवोऽव्ययः ।
मुमोच दैत्यनगरे त्रिधामाम्नानुसंज्ञितम् ॥७५
तं बाणं त्रिविधं वीर्यात्संधाय मनसा प्रभुः ।
सत्येन ब्रह्मयोगेन तपसोग्रेण भारत ॥७६
मुमोच दैत्यनगरं सर्वप्राणहराञ्छरान् ।
दीप्तान्कनकवर्णाभान्सुवर्णांश्च सुनिर्मलान् ॥७७
मुक्त्वा वरशरान्घोरान्सविषानिव पन्नगान् ।
सुप्रदीप्तं स्त्रिभिर्बाणैर्वेगिभिस्तद्विदारितम् ॥७८
शरघातप्रदीप्तानि विन्ध्याग्राणीव भारत ।
गोपुराणि पुरैः सार्द्धं व्यशीर्यन्त नराधिप ॥७९
तानि वैदूर्यवर्णानि शिखराणि गिरेरिव ।
शङ्करेण प्रदग्धानि ब्रह्मास्त्रेणापतन्नृप ॥८०
हते च त्रिपुरे देवैर्वाचो हर्षात्किलेरिताः ।
सर्वाञ्जहीति शत्रूंस्त्वं प्रवृद्धान्पुरुषोत्तम ॥८१
विष्णुरेव महायोगी योगेन प्रस्मयन्निव ।
स्तूयते ब्रह्मसदृशैर्ऋषिभिः शङ्करेण च ।
ब्रह्मणा सहितं देवैः संपन्नबलपौरुषैः ॥८२

इसके पश्चात् भगवान् शङ्कर ने अपने अत्यन्त तेजोमय, स्वर्ण जैसे वर्ण वाले, स्वच्छ एवं भयङ्कर ब्रह्मास्त्र, आग्नेयास्त्र और ब्रह्मदण्ड को धनुष पर एक साथ चढ़ाकर सत्य, तप और वेद के बल से दैत्य पुरी पर चला दिये ॥७५-७७॥ उन सर्प के समान अत्यन्त भयंकर तीनों अस्त्रों के भीषण आपात से त्रिपुर के संकड़ों टुकड़े हो-होकर इधर-उधर बिखर गये ॥७८॥ उस समय ऐसा प्रतीत

होने लगा जैसे विन्ध्याचल के सभी शिखर एक साथ विचूर्ण होकर बिखर गये हो। तीनों नगरों के गिरते ही उसके सभी गोपुर गिर कर नष्ट हो गये ॥७९॥ उस समय ऐसा लगने लगा जैसे वैदूर्य मणि के समान चमचमाते हुए पर्वत शिखर पृथिवी पर गिर गये हो ॥८०॥ हे राजन्! भगवान् के ब्रह्मास्त्र की शक्ति से ही वे तीनों पुर भस्मीभूत हो गये। उस समय हर्ष के कारण गद्गद् हुए देवताओं ने भगवान् शिवजी से कहा—हे पुरुष श्रेष्ठ! आप हमारे सभी वैरियों का सहार कर डालिये ॥८१॥ फिर ब्रह्माजी, ऋषिगण, भूतनाथ भगवान् शंकर और शक्ति से सम्पन्न हुए सभी देवगण एक साथ मिलकर भगवान् विष्णु की स्तुति करने लगे ॥८२॥

॥ युग और मन्वन्तर कथन ॥

चत्वार्याहु: सहस्राणि वर्षाणां तु कृतं युगम्।
तस्य तावच्छती संध्या द्विगुणा जनमेजय ॥१
तत्र धर्मश्चतुष्पादो ह्यधर्मः पादविग्रहः।
स्वधर्मनिरताः सन्तो जयन्ते चैव मानवाः ॥२
स्थिता धर्मपरा विप्रा राजवृत्तौ स्थिता नृपाः।
कृष्यामभिरता वैश्याः शूद्राः शुश्रूषवस्तथा ॥३
सदा सत्यं तपश्चैव धर्मश्चैव विवर्धते।
सद्भिराचरितं यच्च क्रियते ख्यायते च यत् ॥४
एतत्कृतयुगे वृत्तं सर्वेषामेव भारत।
प्राणिनां धर्मबुद्धीनामपि चेन्नीचयोनिनाम् ॥५
त्रीणि वर्षसहस्राणि त्रेतायुगमिहोच्यते।
तस्य तावच्छती संध्या द्विगुणा परिकीर्तिता ॥६
द्वाभ्यामधर्मः पादाभ्यां त्रिभिर्धर्मो व्यवस्थितः।
तत्र सत्यं च सत्त्वं च कृते सर्वं प्रवर्तत ॥७

राजा जनमेजय को युग-परिवर्तन का रहस्य बतलाते हुये वैशम्पायनजी

ने कहा—सतयुग चार हजार वर्षों का होता है और उससे दुगुने वर्षों की उसके सन्ध्या तथा सध्यांश भी होते है। उस समय धर्म के चारो पैर होते हैं और अधर्म नाममात्र के लिये एक पैर पर स्थित रहता है। उस काल मे सब मनुष्य अपने अपने धर्म मे सलग्न रहते हैं और अपना कर्तव्य पालन ईमानदारी से करते हैं ॥१-२॥ उस समय ब्राह्मण पूर्णतः धर्मपरायण होते हैं और राजागण भी अपने प्रजासरक्षण का कार्य सचाई से करते हैं। वैश्य कृषि-कार्य और शूद्र सेवा-वृत्ति का यथोचित रूप से पालन करते हैं ॥३॥ इस समय मे सत्य, तपस्या और धर्म की वृद्धि होती है। सज्जनगण जिस प्रकार का आचरण करते हैं सामान्य जनता को भी उसी का उपदेश करते है। सतयुग मे छोटे बड़े सबका आचरण शुद्ध रहता है और सब प्राणी धर्म-बुद्धि से ही व्यवहार करते हैं ॥४-५॥ त्रेता का परिमाण तीन हजार वर्ष का कहा गया है और उसकी संध्या छः सौ वर्ष की होती है ॥६॥ इस समय धर्म के तीन और अधर्म के दो पैर रहते है और इस कारण सत्य तथा कर्मण्यता की प्रवृत्ति सतयुग से कुछ ही कम होती है ॥७॥

त्रेतायां विकृतिं यान्ति वर्णा लौल्येन संयुताः ।
चातुर्वर्ण्यस्य वै कृत्याद्यान्ति दौर्बल्यमाश्रिता ॥८

एष त्रेतायुगविधिर्विहितो देवनिर्मितः ।
द्वापरस्यापि या चेष्टा तामपि श्रोतुमर्हसि ॥९

द्वापरं द्वे सहस्रे तु वर्षाणां कुरुसत्तम् ।
तस्य तावच्छती संध्या द्विगुणा परिकीर्तिता ॥१०

तत्राप्यर्थपरा विप्रा ज्ञानिनो रजसाऽऽवृताः ।
शठा नैकृतिकाः क्षुद्रा जायन्ते कुरुपुङ्गव ॥११

द्वाभ्यां धर्मः स्थितः पद्भ्यामधर्मस्त्रिभिरुत्थितः ।
विपर्ययं शनैर्यान्ति कृते ये धर्मसेतवः ॥१२

ब्राह्मण्यभावा नश्यन्ति तथाऽऽस्तिक्यं विशीर्यते ।
व्रतोपवासास्त्यज्यन्ते द्वापरे युगपर्यये ॥१३

पर त्रेता मे मनुष्य की धर्म वृत्ति में न्यूनता आने लगती है और इसके

फलस्वरूप चारों वर्णों मे अनेक प्रकार के विकार उदय होने लगते हैं ॥८॥ यह त्रेता युग का लक्षण बतलाया अब द्वापर की स्थिति से विषय मे बतलाते हैं ॥६॥ द्वापर दो हजार वर्ष का होता है और उसकी सध्या इससे दुगुनी अर्थात् चार सौ वर्ष की होती है ॥१०॥ इस युग मे ब्राह्मण गण रजोगुण की वृद्धि होने से धन के लोभी, क्षुद्र और ठगपन के स्वभाव के हो जाते है। धर्म के दो ही पैर शेष रह जाते हैं और अधर्म के तीन पैर हो जाते है। लोग सतयुग के धर्म-नियम, व्रत तथा उपवास आदि को त्याग देते हैं ॥११-१२॥ इसका परिणाम यह होता है कि ब्राह्मणत्व और ईश्वर प्रणिधान का धीरे धीरे नाश होने लगता है और धर्म की वृद्धि करने वाले जो अन्य व्रतोपवास हैं उनको भी लोग त्यागने लग जाते है ॥१३॥

तथा वर्षसहस्र तु वर्षाणा द्वे शते तथा ।
स ध्यया सह स ख्यात क्रूर कलियुग स्मृतम् ॥१४
तत्राधर्मश्चतुष्पाद स्याद्धर्म पादविग्रह ।
कामनिष्ठास्तमश्छन्ना जायन्ते तत्र मानवा ॥१५
नैवोपवासकृत्कश्चिन्न च साधुर्न सत्यवाक् ।
आस्तिको ब्रह्मवक्ता वा नरो भवति वै तदा ॥१६
अहकारगृहीताश्च प्रक्षीणस्नेहबान्धवा ।
विप्रा शूद्रसमाचारा शूद्रास्त्वाचारलक्षणा ॥१७
दूपकास्त्वाश्रमाणा च वर्णाना चैव स करा ।
अगम्येष्वभिर स्यन्ते वत्स्यन्त्येव कलौ युगे ॥१८
एवं द्वादशसाहस्र तदेक युगमुच्यते ।
तदेकसप्ततिगुण मन्वन्तरमिहोच्यते ॥१९
सध्या चैव न स देहो युगान्ते जनमेजय ।
दिव्य द्वादशसाहस्र युग तु कवयो विदु ।
एतत्सहस्रपर्यन्त तदहो ब्राह्ममुच्यते ॥२०
ततोऽह्नि गते तस्मिन्सर्वेषामेव देहिनाम् ।
शरीरनिर्वृतिं दृष्ट्वा लोक स हारबुद्धिमान् ॥२१

द्वापर के पश्चात् कलियुग का आगमन होता है जिसे सबसे अधिक बुरा बतलाया गया है। वह संध्या सहित बारह सौ वर्ष का होता है ॥१४॥ इस समय अधर्म चारों चरणों पर खड़ा हो जाता है और धर्म का केवल एक चरण शेष रह जाता है। इस समय लोग काम भावना तथा अन्ध श्रद्धा से बहुत अधिक प्रेरित होने लगते हैं ॥१५॥ इस समय में व्रत और उपवास की प्रथा समाप्त-प्राय हो जाती है, सच्चे साधुओं और सत्यवादियों का अभाव हो जाता है। आस्तिक तथा ब्रह्मवादी मनुष्य ढूंढे नहीं मिलते ॥१६॥ सब लोग अहंकार से मत्त होकर बन्धु-बान्धवों की मर्यादा को भुला देते हैं। ब्राह्मण शूद्रों का सा और शूद्र ब्राह्मणों का सा आचार व्यवहार करने लगते हैं ॥१७॥ सभी लोग आश्रम धर्म से विमुख होकर वर्णसंकर बनने लगते हैं, अगम्या स्त्रियों से दुराचार करने में किसी को संकोच नहीं होता और शास्त्र-वाक्यों का महत्व नष्ट हो जाता है ॥१८॥ इस प्रकार बारह हजार वर्षों का एक महा-युग होता है और ऐसे इकहत्तर चौकड़ी युगों का एक मन्वन्तर माना जाता है ॥१९॥ हे जनमेजय! ऐसे एक मन्वन्तर का चौदह गुना समय ब्रह्मा का एक दिन होता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं ॥२०॥ ऐसे ब्रह्मा का एक दिन पूर्ण होने पर शंकर भगवान समस्त शरीर जीव धारियों का अन्त कर देते हैं अर्थात् प्रलय-काल आ जाता है ॥२१॥

देवताना च सर्वेषा ब्राह्मणाना महीपते।
दैत्याना दानवाना च यक्षगन्धर्वरक्षसाम् ॥२२
देवर्षीणा ब्रह्मर्षीणा तथा राजर्षिणामपि।
किन्नराणामप्सरसा भुजङ्गानां तथैव च ॥२३
पर्वताना नदीना च पशूनां चैव भारत।
तिर्यग्योनिगताना च सत्वानां मृगपक्षिणाम् ॥२४
महाभूतपतिर्देवः पञ्चभूतानि भूतकृत्।
जगतः हरणार्थाय कुरुते वेधसं महत्।
जगतः हरणार्थाय कुरुते वेधसं महत्। ॥२५
भूत्वा सूर्यश्चक्षुषी चाददानो भूत्वा वायुः प्राणिजातम्।
भूत्वा वह्निर्दहते सर्वलोकानमेघो भूत्वा भूय एवाभ्यवर्षत् ॥२६

हे राजन् ! ऐसा प्रलय काल आने पर देव,दानव, ब्राह्मण, दैत्य, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, देवर्षि, ब्रह्मर्षि राजर्षि कि नर, अप्सरा, सर्प पवत, नदी पशु, मृग, पक्षी तथा अय तियग योनि के जीवो आदि किसी की भी रक्षा नहीं हो पाती ।।२२ २४।। उस समय समस्त भूतो के महान अधिपति शिव भगवान समस्त जगत का सहार करने के लिये एक एक करके सब कुछ नष्ट करते चले जाते हैं। उस समय वे ही सूय रूप से दृष्टि शक्ति का अत कर डालते, वायु रूप से प्राणियो का सहार करते हैं, अग्नि रूप से सब को भस्म कर डालते है और मेघ रूप से सब को डुबाकर अन्त कर देते हैं ।।२६।।

।। एकार्णव मे विष्णु भगवान की स्थिति ।।

भूत्वा नारायणो योगी सप्तमूर्तिर्विभावसु ।
गभस्तिभि प्रदीप्ताभि स शोषयति सागरान् ।।१
पीत्वार्णवाश्च सर्वान्स नदीकूपाश्च सर्वश ।
पर्वताना च सलिल सर्व पीत्वा च रश्मिभि ।।२
भित्वा सहस्रशश्चैव मही नीत्वा रसातलम् ।
रसातलजल कृत्स्न पिवते रसमुत्तमम् ।।३
अन्सु स् जन्क्लेदमन्यद्दाति प्राणिना ध्रुवम् ।
तत्सर्वमरविन्दाक्ष आदत्ते पुरुषोत्तम ।।४
वायुश्च वलवान्भूत्वा स विधूयाखिल जगत् ।
प्राणोदय सुराणा च वायुना कुरुते हरि ।
ततो देवगणाना च सर्वेषामेव देहिनाम् ।।५
ये चेन्द्रियगणा सर्वे ये चान्ये च यतोद्भवा ।
पूय घ्राण शरीर च पृथिवीमाश्रिता गुणा ।।६
जिह्वा रसश्च क्लेदश्च स श्रिता सलिल गुणा ।
रूप चक्षुर्विपावश्च ज्योतिरेवाश्रिता गुणा ।।७
स्पर्श प्राणश्च चेष्टा च पवन स श्रिता गुणा ।
परमेष्ठिन वरेण्य च हृषीकेश समाश्रिता ।।८

श्री वैशम्पायनजी ने कहा—'हे राजन्। उस काल में वे महायोगी नारायण सात सूर्यों के तुल्य तेजोमय स्वरूप को प्रकट करके अपनी तीव्र किरणों से भूमण्डल के समस्त कूप, नदी, समुद्रों के जल को सोख लेते है। पर्वतों मे भी जल का नाम नहीं रहता ॥१-२॥ उस समय पृथ्वी के टुकडे-टुकडे होकर वह रसातल को चली जाती है और वहाँ का सब जल भी उन्हीं नारायण द्वारा शोषण कर लिया जाता है। फिर उस समय अन्यत्र शेष रहे प्राणियों के लिये अन्य रसों की सृष्टि करते हैं। अन्त में आगामी सृष्टि करने का विचार करके वे समस्त भूतों और प्राणियों को अपने मे लय कर लेते हैं ॥३-४॥ वे भगवान प्रथम वायु रूप लेकर समस्त देवताओं तथा भूमण्डल के प्राणियों की इन्द्रियों को भय कर रूप से झकझोर कर समाप्त कर देते हैं। इसके फल स्वरूप गन्ध, घ्राण और शरीर आदि पार्थिव गुण पृथ्वी को, रूप तथा नेत्र आदि आग्नेय गुण अग्नि को, जिह्वा, रस तथा क्लेद आदि जल के गुण जल को, स्पर्श, प्राण वायु और अगों की गति आदि वायु गुण वायु को अर्पित हो जाते हैं। इस प्रकार सभी तत्व और उनके गुण परमेष्ठी, वरेण्य भगवान हृषीकेश के आश्रित हो जाते हैं ॥५-८॥

ततो भगवता तस्य रश्मिभिः परिवारिता ।
वायुना घृष्यमाणाश्च रूपान्योन्यसमाश्रयात् ॥९

तेषां तु घर्षजोद्भूत पावक शतधा ज्वलन् ।
अदहन्निखिलाँल्लोकानुग्रः संवर्तकोऽनलः ॥१०

सपर्वतांस्तरुगुल्मांल्लतावल्लीस्तृणानि च ।
विमानानि च दिव्यानि पुराणि विविधानि च ॥११

आश्रमाश्च तथा पुण्यान्दिव्यान्यायतनानि च ।
यानि चाश्रयणीयानि तानि सर्वाणि सोऽदहत् ॥१२

भस्मीभूतास्ततः सर्वाल्लोकांल्लोकगुरुर्हरिः ।
भूयो निर्वापयामास जलयुक्तेन कर्मणा ॥१३

सहस्रदृङ्महातेजा भूत्वा कृष्णो महाघन ।
दिव्यतोयेन हविषा तर्पयामास मेदिनीम् ॥१४

तत क्षीरनिकाशेन स्वादुना परमाम्भसा ।
शिवेन पुण्येन मही निर्वाणमगमत्परम् ॥१५

उस समय भगवान पाँचो प्रकार के गुणों और तत्वो को एकत्र कर देते हैं। उन सबके सघर्ष महाभयकर अग्नि का उद्भव हो जाता है जो अत्यन्त भयकर वेग से जलने, लगती है। उसका नाम 'सम्बर्तक' अग्नि है। वह अग्नि अपनी हजारो विशाल लपटो से ससार के समस्त पेड पौधे,लता, वेल, घास दिव्य विमान, बडे-बडे नगर, आश्रम पुण्य तीर्थ, दिव्य स्थान सबको भस्म कर देता है ॥८-१२॥ इस प्रकार जब,सब लोक भस्म हो जाते है तो वह जल के द्वारा शान्त की जाती है। वे सहस्राक्ष भगवान ही काले महामेघ के रूप उमड पडते हैं और समस्त पृथ्वी को जल रूपी हवि से तर्पण कर देते है ॥१३-१४॥ तब भूमण्डल दूध सदृश्य सुस्वाद जल से परिपूरित हो जाता है और पृथ्वी बडा कल्याणमयी रूप धारण कर लेती है ॥१५॥

ते नगा जलस छन्ना पयस सर्वतोधरा ।
एकार्णवजला भूत्वा सर्वसत्त्वविवर्जिता ॥१६
महाभूतान्यपि च त प्रविष्टान्यमितोजसम् ।
नष्टार्क पवनाकाशे सूक्ष्मे जनविवर्जिते ॥१७
स शोषयित्वा पीत्वा च वसत्येक सनातन ।
पौराण रूपमास्थाय किमप्यमितबुद्धिमान् ॥१८
एकार्णवजले ह्यासीद्योगी योगमुपागत ।
अयुताना सहस्राणि गतान्येकार्णवेऽम्भसि ।
न च न कश्चिदव्यक्त वेदितुमर्हति ॥१९
एकार्णवविधि. कोऽय यश्चैव परिकीर्तित ।
क एप पुरुषो नाम कियोग कश्च योगवान् ॥२
एतावन्तमसो कालमेकार्णवविधि प्रति।
चरिष्यतीम भगवानिति कश्चिन्न बुध्यते ॥२१
न य माता न च द्रष्टा न ज्ञाता नैव पार्श्वग ।
ततोऽस्य ज्ञायते कश्चिद्दते त देवमीश्वरम् ॥२२

नम. क्षिति पवनमथ प्रकाशयन्प्रजापतिं भुवनचरं सुरेश्वरम्।
पितामहं श्रुतिनिलयं महामुनिं शशास भूः शयनमरोचयत्प्रभुः ॥२३

उस समय पृथ्वी के समस्त पर्वत और अन्यान्य पदार्थ उस दुग्ध सदृश जल में लीन होकर सर्वत्र जल ही जल दृष्टि गोचर होता है और किसी जीव का वहाँ चिन्ह नहीं रहता। उस अवसर पर पचभूत, सूर्य और पवन भी उन्हीं महाप्रभु में विलीन हो जाते हैं ॥१६-१७॥ उस अवस्था में वे सनातन प्रभु सब कुछ अपने भीतर लय करके उस अनन्त जलराशि के बीच अकेले ही स्थित रहते हैं ॥१८॥ इस प्रकार महायोग की दशा में उस जल पर स्थित रहते हुये उनको असंख्यों वर्ष व्यतीत हो जाते हैं, पर कोई उन अव्यक्त प्रभु के विषय में कुछ जान नहीं पाता ॥१६॥ यह सुन कर राजा जनमेजय ने प्रश्न किया कि हे ब्रह्मन्। जिस एकार्णव का आपने वर्णन किया उसका क्या रूप है? क्या उसकी कोई सीमा रहती है? फिर यदि जब अन्त में हम स्वयमेव उन महा प्रभु में लीन हो जायेंगे तब ससार में रहते हुये, अनेक प्रकार की साधन करने की क्या आवश्यकता है? और वे परम पुरुष कैसे हैं और उनका योग किस प्रकार का है? ॥२०॥ वैशम्पायनजी ने कहा—महाराज! उन महाप्रभु का कोई परिमाण या सीमा नहीं है। इसलिये उस एकार्णव की स्थिति की भी कोई सीमा नहीं बताई जा सकती। उन परम प्रभु की न कोई माता होती है, न कोई परिचित होता है और न कोई पास में रहने वाला होता है। इस लिये उनको यदि कोई जान सकता है तो वे स्वयं ही जान सकते हैं। उस समय वे आकाश, भूमि, वायु, सुरेश्वर, वेदों तथा पितामह महामुनि के आधार स्वरूप महाप्रभु उस एकार्ण व में शयन करते हैं ॥२३॥

॥ नारायण और मार्कण्डेय सम्वाद ॥

एवमेकार्णवीभूते शेते लोके महाद्युतिः।
प्रच्छाद्य सलिलं सर्वं हरिर्नारायणः प्रभुः ॥१
महतो रजसो मध्ये महार्णवसमस्य वै।
विरजस्को महाबाहुरक्षरं ब्रह्म यं विदुः ॥२

आत्मरूपप्रकाशेन तपसा संवृतः प्रभुः ।
त्रिकमास्थाय कालं तु ततः सुष्वाप सोऽव्ययः ॥३
पुरुषो यज्ञ इत्येवं यत्परं परिकीर्तितम् ।
यच्चान्यत्पुरुषाख्यं स्यात्सर्वं तत्पुरुषोत्तमः ॥४
ये च यज्ञपरा विप्रा ऋत्विजा इति संज्ञिताः ।
आत्मदेहात्पुराभूता यज्ञेभ्यः श्रूयतां तदा ॥५
ब्रह्माणं परमं वक्त्रादुद्गातारं च सामगम् ।
होतारमथ चाध्वर्युं बाहुभ्यामसृजत्प्रभुः ॥६
ब्राह्मणो ब्राह्मणत्वाच्च संप्रस्तारं च सर्वशः ।
तन्मित्र वरुणं सृष्ट्वा प्रतिप्रस्तारमेव च ॥७
उदरात्प्रतिहर्तारं पोतारं चैव भारत ।
अच्छावाकमनोरुभ्यां नेष्टारं चैव भारत ॥८
पाणिभ्यामथ चाग्नीध्रं स ब्रह्मण्यं च यज्ञियम् ।
ग्रावाणमथ बाहुभ्यामुन्नेतारं च याज्ञिकम् ॥९

वैशम्पायनजी कहने लगे—राजन्! जब समस्त विश्व इस प्रकार जलामयी हो जाता है तो उसमें एकमात्र वही महाप्रभु हरिनारायण महान श्रुति रूप में शयन करते हैं ॥१॥ वे रजोगुण रूपी महान समुद्र के बीच में रहते हैं किन्तु स्वयम् तीनों गुणों रहित होने के कारण विद्वानों द्वारा 'अक्षर-ब्रह्म' कहे जाते हैं ॥२॥ जब वे प्रभु तपस्या द्वारा आत्मरूप को प्रकट करने का विचार करते हैं और त्रिकाल व्यापक निद्रा में मग्न हो जाते हैं, उस समय उनको किसी भी अन्य विषय का स्मरण नहीं रहता ॥३॥ वे ही प्रभु परम-पुरुष, यज्ञस्वरूप और पुरुषोत्तम के नाम से कीर्तित किये जाते हैं ॥४॥ प्राचीन काल में उन्हीं के देह से यज्ञपरायण, रागद्वेष से शून्य ऋत्विजगण अविर्भूत हुये थे। उन सब के नाम तुमको सुनाता हूँ ॥५॥ ब्रह्मा, उद्गाता, होता तथा अध्वर्यु उनके मुख से; ब्राह्मण का प्रतिपादन करने वाले प्रस्तोता, मित्रावरुण तथा प्रस्थाता बाहु से, प्रतिहर्त्ता तथा पोता उदर से; अच्छावाक तथा नेष्टा उरुसे आग्नीध्र तथा

तस्योत्पन्नं भयं तीव्रं संशयश्चात्मजीविते ।
देवदर्शनसंहृष्टो विस्मयं चागमत्परम् ॥१८
स चिन्तयति मध्यस्थो मार्कण्डेयोऽतिशङ्कितः
किंस्विद्बुद्धेर्विदिय चिन्ता मोहः स्वप्नोऽनुभूयते ॥१९
व्यक्तमन्यतमो भावो ह्यातेषां भविता मम ।
न हीदृशमसंक्लिष्टमयुक्तं सत्यमर्हति ॥२०
नष्टचन्द्रार्कपवने छन्नपर्वतभूतले ।
कतमः स्यादयं लोको इति चिन्ताव्यवस्थितः ॥२१

जब वे भगवान के मुख से बाहर आये तो उनको सर्वत्र जलामयी ही दृष्टि-गोचर हुआ। भगवान की माया से उनको किसी पूर्व वृतान्त का स्मरण न रहा और सब लोकों को शून्य तथा जल से आच्छन्न देख कर उनके मन में एक अभूतपूर्व भय का संचार हो गया। तभी उन्होंने क्षीर सागर शायी भगवान को देखा जिससे उन्हें बड़ा हर्ष और साथ ही विस्मय भी हुआ ॥१६-१७॥ तब अपने मन को शान्त करके वे विचार करने लगे कि यह कौनसा लोक है जिसमें सूर्य, चन्द्र, तारागण, पर्वत, पृथिवी कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। क्या मुझे किसी प्रकार का भ्रम हो गया है अथवा मैं कोई स्वप्न देख रहा हूँ ? अन्यथा ऐसी असंगत और असम्भव बात किस प्रकार दिखाई पड़ती ॥१६-२१॥

अपश्यच्चापि पुरुषं शयानं पर्वतोपमम् ।
तोयाढ्यमिव जीमूतं मध्ये मग्नं महार्णवे ॥२२
तपन्तमिव तेजोभिर्भास्वन्तमिव वर्चसा ।
जाग्रन्तमिव गाम्भीर्याच्छ्वसन्तमिव पन्नगम् ॥२३
स देवं प्रष्टुमायाति को भवानिति विस्मयात् ।
तथैव च पुनर्भूयो मुनिः कुक्षि प्रवेशितः ॥२४
वर्षाणां शतसाहस्रं मार्कण्डेयो महामुनिः ।
विचरन्पृथिवीं कृत्स्नां न स कश्यान्तमैक्षत ॥२५

ततः कदाचिदथ वै पुनर्वक्त्राद्विनिःसृतः ।
सुप्तं न्यग्रोधशाखाया बालमेकं निरीक्षते ।।२

यथा चैकार्णवजले नीहारेण वृतान्तरे ।
अव्यक्तभीषणे लोके सर्वभूतविवर्जिते ।।२७
स भूयो विस्मयाविष्टः कौतूहलसमन्वितः ।
बालमादित्यसंकाशं न शक्नोत्युपसर्पितुम् ।।२८

इस प्रकार का विचार मन में आने पर वे चारों तरफ दृष्टिपात करने लगे तो देखा कि महान् पर्वत के समान एक प्रकाण पुरुष जल मे शयन कर रहा है। उसका वर्ण वर्षाकालीन मेघ के समान श्यामल और अत्यन्त तेजस्वी है। उसी की कान्ति से वह सब स्थान प्रकाशमान हो रहा है। वे ऐसे जोर से निश्वास परित्याग कर रहे थे जैसे कोई महारूपी श्वासोच्छ्वास कर रहा हो ।।२२-२३।। उसे देख कर मार्कण्डेय यह पूछना ही चाहते थे कि आप कौन है कि फिर उसके उदर मे प्रविष्ट हो गये ।।२४।। वहाँ अनेक वर्षो तक विविध दृश्यो को देख कर भी भगवान के उदर का अन्त नही पा सके ।।२५।। अन्त मे जब वे फिर मुख के बाहर निकले तो देखा कि बरगद के वृक्ष पर एक शिशु सो रहा है ।। २६ ।। वहाँ सर्वत्र जल ही जल था और कोहरा-सा छाया था। सब प्रकार के जीवो से रहित वहाँ का दृश्य बडी भयानक-सा लग रहा था ।।२७।। महर्षि मार्कण्डेय ऊब के वहाँ अकेला देख कर भय करने लगे और उस सूर्य मे समान प्रकाशमान बालक के समीप जाने का साहस न कर सके ।।२८।।

सोऽचिन्तयदथैकान्ते स्थित्वा सलिलसन्निधौ ।
पूर्वदृष्टमिदं नेति शङ्कितो देवमायया ।।२९
अगाधे सलिलस्तब्धे मार्कण्डेयः प्लवन्मुनिः ।
न शान्ति लभते तत्र श्रमात्संत्रस्तविक्लवः ।।३०
तथैव भगवान्हंसो गतो योगेन बालताम् ।
बभाषे मेघतुल्येन स्वरेण पुरुषोत्तम. ।।३१

माभैर्वत्स न भेतव्यमिहैवायाहि चान्तिकम् ।
मार्कण्डेय मुने धीर बालस्त्वं श्रमपीडितः ॥३२
को मां नाम्ना कीर्तयते तपः परिभवन्मम ।
बहुवर्षसहस्रायुर्द्धं पर्यश्चैव मे वयः ॥३३
न ह्येषु समुदाचारो देवेष्वपि समाहितः ।
मा ब्रह्मापि स विश्वेशो दीर्घायुरिति भाषते ॥३४
कस्तपो घोरशिरसो ममाद्य त्यक्तजीवितः ।
मार्कण्डेयेति मां प्रोक्त्वा मृत्युमीक्षितुमिच्छति ॥३५

तब वे उसी महार्णव के एक स्थान में उडे होकर विचार करने लगे कि क्या मैंने जिस पुरुष को पहले देखा था मत वही है अथवा कोई अन्य है ? इस प्रकार से देवमाया से सशकित होकर वे महासलिल मे तैर रहे थे, उनको अत्यत श्रम जान पड रहा था और चित्त भी आशान्त हो रहा था ॥२६-३०॥ वास्तव में वे बालक का रूप योगबल से हंस भगवान ने ही धारण कर रखा था । मार्कण्डेय को भयभीत देख कर वे गम्भीर वचनों से बोले—हे वत्स ! तुम अकेले होने से किसी प्रकार का भय मत करो । तुम बालक हो और श्रम करने से थक गये हो, इसलिये मेरे पास आजाओ ॥३१-३२॥ मार्कण्डेय कहने लगे—कौन मेरे हजारों वर्षों के तपस्वी-जीवन की उपेक्षा करके मुझे मार्कण्डेय के नाम से बुला रहा है । जब ब्रह्माजी भी मुझे दीर्घजी की कहते हैं तो कौन देवता अथवा मनुष्य हो जो इस प्रकार मेरी तपस्या का तिरस्कार करने का साहस कर सकता है, और अपने आप मृत्यु की कामना करता है ॥३३-३४-३५॥

एवमाभाषते क्रोधान्मार्कण्डेयो महामुनिः ।
अथैनं भगवान्भूयो बभाषे तत्परायणम् ॥३६
अहं ते जनको वत्स हृषीकेशः पिता गुरुः ।
आयुःप्रदाता पौराणः किमर्थं नोपसर्पसे ॥३७
मा पुत्रकामः प्रथमं पिता ते ह्यङ्गिरा मुनिः ।
पूर्वमाराधयामास तपस्तीव्रमुपाश्रितः ॥३८

ततस्त्वा घोरशिरसं देहनीयमतेजसम् ।
दत्तवानहमात्मेष्टं महर्षिममितायुषम् ॥३९
तत्र नोत्सहते चान्यो यो न भूतो ममात्मक ।
द्रष्टुमेकार्णवगत क्रीडन्त योगधर्मिणम् ॥४०
तत प्रसन्नवदनो विस्मयोत्फुल्ललोचन ।
मूर्ध्नि बद्धाञ्जलिपुटो मार्कण्डेयो महातपा ॥४१
नामगोत्रे तत श्रुत्वा दीर्घायुर्लोकपूजित ।
अथाकरोन्नमस्कारं प्रणतः शिरसा प्रभुम् ॥४२

जब मार्कण्डेय मुनि ने क्रोध पूर्वक ऐसे वचन कहे तो भगवान ने पुन उनको सम्बोधित करके कहा—वत्स ! मैं ही वह पुरातन पुरुष नारायण हूँ जिसने तुम्हें जीवन और आयु प्रदान की है, फिर तुम मेरे पास क्यों नहीं आते ? ॥ ३६-३७ ॥ तुम्हारे पिता अंगिरा ऋषि ने घोर तपस्या करके मुझसे पुत्र की याचना की थी । उसी के फल से तुम अग्नि के सदृश्य तेजस्वी, महान तपस्वी, महर्षि और दीर्घायु बन सके हो ॥३८-३९॥ अब जब कि मैं क्रीडा करता हुआ इस बालक रूप मे एकार्णव में शयन कर रहा हूँ तो ऐसा कोई प्राणी मेरा दर्शन नही कर सकता जो मेरी आत्मा से ही उत्पन्न नही हुआ हो ॥४०॥ वैशम्पायनजी कहने लगे—तब महा तपस्वी, लोकमान्य, दीर्घजीवी महामुनि मार्कण्डेय ने अत्यन्त प्रसन्न होकर और आश्चर्य से नेत्रों को विस्फारित करते हुये, मस्तक पर अंजलि बाँध कर भगवान को अत्यन्त विनीत भाव से प्रणाम किया ॥ ४१-४२ ॥

इच्छेऽहं तत्त्वतो मायामिमां ज्ञातुं तवानघ ।
यदेकार्णवमध्यस्य शेषे त्वं बालरूपवान् ॥४३
किंसंज्ञश्चैव भगवाल्लोके विज्ञायसेऽनघ ।
तर्कये त्वां महाभूतं न भूतमिह निष्ठति ॥४४
अहं नारायणो ब्रह्मा सम्भव सर्वदेहिनाम् ।
सर्वभूतोद्भवकर सर्वभूतविनाशन ॥४५

अहमैन्द्रं पदे शक्र ऋतूनामपि वत्सरः ।
अहं युगे युगाध्यक्षो युगस्यावर्त्त एव च ॥४६
अहं सर्वाणि सत्वानि दैवतान्यखिलानि च ।
भुजगानामहं शेषस्तार्क्ष्योऽहं सर्वपक्षिणाम् ॥४७
अहं सहस्रशीर्षा द्यौर्यः पदैरभिसवृतः ।
आदित्यो यज्ञपुरुषो देवो यज्ञमयो मखः ।
अहमग्निर्हव्यवाहो यादसां पतिरव्ययः ॥४८
यत्पृथिव्यां द्विजेन्द्राणां तपसा भावितात्मनाम् ।
यहुजन्मनिरुद्धात्मा ब्राह्मणो यतिरुच्यते ॥४९
ज्ञानवान्दृष्टविश्वात्मा योगिनां योगविद्गम ।
कृतान्त सर्वभूतानां विश्वेषां कालसंज्ञितः ॥५०

मार्कण्डेयजी कहने लगे—हे भगवन् मैं आपको तात्विक रूप से जानना चाहता हूँ, इस समय तो यहाँ पर समुद्र के अतिरिक्त और कुछ नहीं जान पड़ता और उसके बीच मे आप बालक के रूप मे शयन कर रहे हैं। मैं यह जानना चाहता हूँ कि जगत आपको किस रूप मे मानता है—आपका नाम क्या है? आप कृपा करके स्वयं ही अपनी माया के सम्बन्ध में परिचय दें ॥ ४३-४४ ॥ भगवान कहने लगे—हे मार्कण्डेय ! मैं ही नारायण हूँ, मैं ही सृष्टि का रचयिता ब्रह्मा हूँ। समस्त प्राणधारी मुझसे उत्पन्न होते हैं और मैं ही उनका विनाश करता हूँ ॥४५॥ मैं ही इन्द्र हूँ, मैं ही शक्र कहा जाता हूँ, ऋतुओं के लिये वर्ष मैं ही हूँ, युग-युगाध्यक्ष, युगावर्त भी मैं ही हूँ ॥४६॥ मैं ही समस्त जीवों मे व्याप्त हूँ और समस्त देवता भी मुझसे ही होते हैं। सर्पों मे मैं शेष नाग हूँ और पक्षियों मे मैं गरुड हूँ ॥ ४७ ॥ मैं ही सहस्रशीर्ष, सहस्रपाद, आदित्य, यज्ञपुरुष, देव, यज्ञमय नामों से प्रख्यात जाना हूँ। मैं ही हव्य-वाहक अग्नि और कभी नाश न होने वाला समुद्र हूँ ॥४८॥ पृथ्वी पर जितने बड़े-बड़े ज्ञानी तपस्या के लिये प्रसिद्ध हैं, जिनके जन्म-बन्धन नष्ट हो चुके हैं और जो आत्म ज्ञान सम्पन्न हो चुके हैं, उस ज्ञान का साक्षात् स्वरूप मैं ही हूँ। मैं समस्त योगियों मे परम

श्रेष्ठ योगी हूँ। मैं समस्त प्राणियों के लिये कृतान्त और संसार के लिये काल हूँ ॥४६-५०॥

अहं कर्म क्रिया जीवः सर्वेषां धर्मदर्शनः ।
निष्क्रियः सर्वभूतेषु स्वात्मज्योति सनातनः ॥५१
प्रधानं पुरुषो देवोऽहमाद्यस्त्वक्षयोऽव्ययः ।
प्रधानं पुरुषो देवोऽहमाद्यस्त्वक्षयोऽव्ययय: ।
अहं धर्मस्तपश्चाहं सर्वाश्रमनिवासिनाम् ॥५२
अहं हयशिरो देवः क्षीरोदे यो महार्णवे ।
ऋतं सत्यं च परममहमेकः प्रजापतिः ॥५३
अहं सांख्यमहं योगमहं तत्परमं पदम् ।
अहमिज्यो भवश्चाहमहं विद्याधिपः स्मृतः ॥५४
अहं ज्योतिरहं वायुरहं भूमिरहं नभः ।
अहमापः समुद्राश्च नक्षत्राणि दिशो दश ।
अहं वर्षमहं सोम. पर्जन्योऽहमहं रविः ॥५५
क्षीरोदः सागरश्चाहं समुद्रो वडवामुखः ।
वह्निः संवर्तको भूत्वा पिबंस्तोयमहं रविः ॥५६

मैं ही कर्म, क्रिया और समस्त जीवों के लिये धर्मसाधन स्वरूप हूँ। पर मैं कर्म-बन्धन से परे रहता हूँ और अनादिकाल से आत्म-ज्योति सम्पन्न हूँ ॥ ५१ ॥ मैं प्रधान पुरुष, आद्यदेव, अक्षय और अविनाशी हूँ। मैं ही समस्त आकाश वालों के लिये धर्म और तप हूँ ॥ ५२ ॥ मैं ही क्षीर महासागर का हयग्रीव देव हूँ और मैं ही ऋत, सत्य और परम प्रजापति हूँ ॥ ५३ ॥ मैं ही सांख्य-ज्ञान और योग-धारण का निर्देशित परमपद हूँ। लोग मेरे लिये ही यज्ञ करते हैं, मैं ही विद्यानिधान हूँ ॥ ५४ ॥ मैं प्रकाश, वायु, पृथ्वी, जल, समुद्र, नक्षत्र और दसों दिशा, सम्वतसर, सोम, पर्जन्य और सूर्य हूँ ॥ ५५ ॥ मैं ही क्षीरसागर और समुद्र का वडवानल हूँ और मैं ही सम्वर्तक अग्नि होकर समस्त जलों को शोषण कर लेता हूँ ॥५६॥

अहं पुराणं परमं तथैवेह परायणम् ।
अहं भूतस्य भव्यस्य वर्तमानस्य सम्भव ॥५७
यत्किंचित्पश्यसे चैव यच्छृणोषि च किंचन ।
यच्चानुभवसे लोके तत्सर्वं मामकं स्मृतम् ॥५८
विश्वं सृष्टं मया पूर्वं सृजेयं चाद्य पश्य माम् ।
युगे युगे च स्रक्ष्यामि मार्कण्डेयाखिलं जगत् ॥५९
तदेतदखिलं सर्वं मार्कण्डेय वधारय ।
शुश्रूषुर्मम धर्मेप्सु कुक्षौ चर सुखी भव ॥६०
मम ब्रह्मा शरीरस्थो देवाश्च ऋषिभिः सह ।
व्यक्तमव्यक्तयोगं मामवगच्छाऽपराजितम् ॥६१
अहमेवाक्षरो मन्त्रस्त्र्यक्षरश्चैव सर्वशः ।
त्रिपदश्चैव परमस्त्रिवर्गार्थनिदर्शनः ॥६२

मैं ही सबसे पुरातन परम पुरुष हूँ और भूत भविष्य और वर्तमान भी मैं ही हूँ ॥५७॥ जो कुछ तुम देखते और सुनते हो, जो कुछ अनुभव करते हो, वह, सब मुझसे ही उत्पन्न होता है ॥५८॥ । हे मार्कण्डेय ! इस समस्त संसार को मैंने ही बनाया है और आगे भी, प्रत्येक युग में मैं ही इसकी सृष्टि करने वाला हूँ ॥५९॥ यह समस्त जगत मेरा ही रूप है, मैं ही इसको धारण करता हूँ, इस लिये तुम किसी प्रकार का भय न करके सुखपूर्वक मेरे उदर में विचरत रहो ॥६०॥ मेरे ही शरीर में ब्रह्मा और अन्य सब देवगण निवास करते हैं । मैं ही व्यक्त, अव्यक्त, अपराजेय अक्षर और त्र्यक्षर मंत्र, त्रिपाद गायत्री और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि पुरुषार्थ चतुष्टय का निदर्शन हूँ ॥६१-६२॥

एवमेतत्पुराणेषु वेदान्ते च महामुनि ।
वक्त्रे व्याहृतवानाशु मार्कण्डेयं महामुनिम् ॥६३
प्रवेशयामास ततो जरठं विश्वरूपधृक् ।
ततो भगवतः कुक्षिं प्रविष्टो मुनिसत्तम ।
रराम सुखमासाद्य शुश्रूषुर्हंसमव्ययम् ॥६४

तदक्षरं विविधमथाश्रितो वपुर्महार्णवे व्यपगतचन्द्रभास्करे ।
शनैश्चरन्प्रभुरपि हंससंज्ञितोऽसृजज्जगद्विसृजति कालपर्यये ॥६५

वैशम्पायनजी कहने लगे—हे राजन् ! नारायण ने मार्कण्डेयजी के सम्मुख जो सत्य ज्ञान प्रकट किया था उसी को भगवान वेद ने व्यासजी पुराणो के रूप में प्रकाशित कर दिया ।।६३।। तब मार्कण्डेय मुनि पुनः उन्हीं विश्वरूप धारी नारायण के उदर मे प्रविष्ट हो गये और वहाँ रहते हुये सुखपूर्वक हंसयोग की साधना करने लगे ।।६४।। वे हंस नाम वाले महाप्रभु ही युग-युग मे विविध रूप धारण करते हैं और जब सूर्य-चन्द्रमा प्रलय कालीन महार्णव मे लोप हो जाते हैं तो वे महाप्रभु ही पुनः क्रम से सृष्टि रचना करके उसमे विचरण करने लगते हैं ।।६५।।

।। नारायण की नाभि से कमल की उत्पत्ति ।।

आपवः स विभुर्भूत्वा कारयामास वै तपः ।
छादयित्वात्मनो देहमात्मना कुम्भसम्भवः ।।१
ततो महात्माऽतिबलो मतिं लोकस्य सर्जने ।
महतां पञ्चभूतानां विश्वभूतो व्यचिन्तयत् ।।२
तस्य चिन्तयतस्तस्य तपसा भावितात्मनः ।
निराकाशे तोयमये सूक्ष्मे जगति गह्वरे ।।३
ईषत्संक्षोभयामास सोऽर्णवं सलिले स्थितः ।
सोऽनन्तरोर्मिणा सूक्ष्ममथ छिद्रमभूत्तदा ।।४
तस शब्दगतिर्भूत्वा मारुतद्रवसंभवः ।
स लब्ध्वान्तरमक्षोभ्यो व्यवर्द्धत समीरणः ।।५
विवर्द्धता बलवता तेन संक्षोभितोऽर्णवः ।
अन्योन्यवेगाभिहता ममन्थुश्चोर्मयो भृशम् ।।६
महार्णवस्य क्षुब्धस्य तस्मिन्नम्भसि मथ्यति ।
कृष्णवर्त्मा समभवत्प्रभुर्वैश्वानरोऽर्चिमान् ।।७

वैशम्पायनजी कहने लगे—"हे राजन्! उस एकार्णव मे भगवान अपने कुम्भसभूत रूप को गुप्त रखतेहुये 'आपव:' के रूप मे तपस्या करने लगे ।।१।। जब इस प्रकार तप करने से उनको अत्यन्त बल की प्राप्ति हो गई तो सृष्टि निर्माण के लिये पचभूतादिक की रचना का विचार करने लगे ।।२।। उनके इस प्रकार चिन्तन करने से तपोबल के प्रभाव द्वारा वहाँ एक सूक्ष्म छिद्र हो गया। तब उन्होने उस महार्णव के जल को किंचित क्षोभित कर दिया तो वही सूक्ष्म छिद्र अवकाश के रूप मे परिणित हो गया ।।३-४।। इसके पश्चात् भगवान् शब्दमय रूप धारण करके आकाश मे व्याप्त हो गये, जिससे वायु का आविर्भाव होने लग गया और वह समीर के रूप मे निरन्तर बढ़ने लगा ।।५।। आकाश और वायु का दबाव पड़ने मे समुद्र बहुत अधिक क्षुब्ध होने लगा और उसकी तरगें बडे वेग से उठने लगी। इसके कारण सम्पूर्ण जल भयकर रूप से मथने लगा और तब उससे अत्यन्त विकराल और सहारकारी अग्नि तत्व का उद्भव हुआ ।।६ ७।।

तत्र सशोषयामास पावक. सलिलं बहु ।
क्षयाज्जलनिधेश्छिद्रममवान्नि: सृतं नभ: ।।८
आत्मतेजोद्भवा: पुण्या आपोऽमृतरसोनमा: ।
आकाश छिद्रसंभूत वायुराकाशसभव: ।।९
आज्यसघर्षणोद्भूत पावक चाज्यसभवम् ।
दृष्ट्वा प्रीतियुतो देवो महाभूतादिभावन. ।।१०
दृष्ट्वा भूतानि भगवाँल्लोकसृष्ट्यर्थतत्त्व वित् ।
ब्रह्मणो जन्मसहितं बहुरूपो विचिन्वति ।।११

'वह अग्नि तीव्रता के साथ समुद्र के जल का शोषण करने लगा, जिससे उसकी गहराई बढने लगी ।।८।। इस प्रकार उन महाप्रभु ने आत्मतेज से एक विशेष पवित्र अमृत स्वरूप जल को उत्पन्न किया और फिर उससे आकाश, वायु, अग्नि जल और पृथ्वी, पाँचो तत्वों की सृष्टि क्रमश: की ।।९-१०।। उन पच भूतो को देख कर सृष्टि रचना के तत्वज्ञ भगवान् नारायण बहुत प्रसन्न हुये

और सृष्टि रचना करने के लिये ब्रह्माजी के उत्पन्न होने के सम्बन्ध मे विचार करने लगे ।११॥

चतुर्युगादिस र्यान्ते सहस्रयुगपर्यये ।
यत्पृथिव्या द्विजेन्द्राणा तपसा भावितात्मनाम् ॥१२
बहुजन्मनिष्द्धात्मा ब्राह्मणो यतिरत्तम ।
ज्ञानवान्दृष्टविश्वात्मा योगिना योगवित्तम ।।१३
त योगवन्त विज्ञेय सपूर्णैश्वर्यविक्रमम् ।
देवो ब्रह्मणि विश्वे च नियोजयति योगवित् ॥१४
ततस्तस्मिन्महातोये हविषो हरिरच्युत ।
स्वपन्क्रीडश्च विविध मोदते चैप पावकि ।।१५
पद्म नाभ्यद्भव चैक समुत्पादितवास्तदा ।
सहस्रान विरजो भास्कराभ हिरण्मयम ॥१६
हुताशन ज्वलितशिखोज्ज्वलत्प्रभ
सुगन्धिन शरदमलार्कतेजसम् ।
विराजते कमलमुदारवर्चस
महात्मनस्तनुरुहचारदर्शनम् ॥१७

इसके लिये नारायण ने प्राचीन काल मे जिन महान तपस्वी ब्राह्मणो ने ज्ञान प्राप्त के विश्व भर के रहस्य को पूर्ण रूपसे अवगत कर लिया था और जो समस्त विश्व प्रपच को अपने नेत्रो से देखते थे उन्हीं मे से जो परम ऐश्वर्यवान, पराक्रमी तथा पूजनीय थे ब्रह्मा नियुक्त करके वेद की रचना और भूमण्डल की व्यवस्था का भार सौंप दिया ॥१२-१३-१४॥ तब भगवान् नारायण निश्चिन्त होकर फिर उसी महार्णव म शयन करने लगे और ब्रह्माजी कभी सृष्टि रचना मे और कभी आनन्द से क्रीड़ा करने लगे ॥१५॥ तत्पश्चात् भगवान की नाभि से एक दैवी कमल उत्पन्न हुआ जिसकी प्रभा अत्यन्त तेजस्वी और सूर्य के समान प्रकाशमान थी तथा जिसमें सहस्रों पंखुडियाँ थीं। उसकी गन्ध बड़ी मनोहारिणी थी और उस पर धूल आदि का लेश भी नहीं था ॥१६—१७॥

।। सृष्टि-रचना के निमित्त पुष्कर का प्रादुर्भाव ।।

अथ योगविदा श्रेष्ठ सर्वभूतमनोमयम् ।
स्रष्टारं सर्वभूताना ब्रह्माणं सर्वतोमुखम् ।।१
तस्मिन्हिरण्मये पद्मे बहुयोजनविस्तृते ।
सर्वतेजोगुणमये पार्थिवैर्लक्षणैर्युते ।।२
तच्च पद्मं पुराणज्ञा पृथिवीरुहमुत्तमम् ।
नारायणाङ्गसंभूतं प्रवदन्ति महर्षयः ।।३
या तु पद्मासना देवी पृथिवी तां प्रचक्षते ।
ये गर्भसाराद्रु रतस्तान्दिव्यान्पर्वतान्विदु. ।।४
हिमवन्त च मेरुं च नीलं निषधमेव च ।
कैलास मुञ्जवन्त च यथाद्रि गन्धमादम् ।।५
पुण्य त्रिशिखर चैव कान्तं कन्दरमेव च ।
उदयं कन्दरं चैव विन्ध्यमस्तं च पर्वतम् ।।६
एते देवगणानां च सिद्धाना च महात्मनाम् ।
आश्रमाः पुण्यशीलाना सर्वकामयुताद्रयः ।।७

वैशम्पायनजी कहने लगे—हे राजन् ! भगवान नारायण ने सृष्टि-रचना के उद्देश्य से उस कमल को रच कर उसके ऊपर योगियो मे श्रेष्ठ समस्त जीवो के स्रष्टा, सर्वतोमुख श्रीब्रह्माजी के विराजमान कर दिया । वह स्वर्ण-रूप वाला कमल अनेक योजन विस्तार वाला, सूर्य के समान तेजस्वी और सुगन्धयुक्त था और उसमे समस्त पार्थिव गुण पाये जाते थे। पुराणो के ज्ञाता विद्वान उस कमल को नारायण के अंग का एक अंश ही कहते थे और वह पृथ्वी के रूप मे ही था। इस लिये उसकी जो पद्मासनी देवी थी वह पृथ्वी हो थी और उसके गर्भाकुर ही पर्वतो के रूप मे परिणित हुये ।।१-४।। हिमाचल, सुमेरु, नील, निषध, कैलास, गन्धमादन, मन्दर, विन्ध्य और पर्वत

हरिवंशे पुराणे तु श्रुते च भारतोत्तम ।
कायिकं वाचिकं चैव मनसा समुपार्जितम् ॥१२
तत्सर्वं नाशमायाति हिम सूर्योदये यथा ।
अष्टादशपुराणानां श्रवणाद्यत्फलं भवेत् ॥३
तत्फल समवाप्नोति वैष्णवो नात्र सशयः ।
श्लोकार्द्धं श्लोकपाद वा हरिवंशसमुद्भवम् ॥४
शृण्वन्ति श्रद्धया युक्ता वैष्णव पदमाप्नुयु ।
जम्बुद्वीप समाश्रित्य श्रोतारो दुर्लभा कलौ ॥५

राजा जनमेजय ने कहा—हे ब्रह्मन् ! इस हरिवंश के सुनने से क्या क्या फल मिलता है और इसके लिये कौन कौन सी वस्तुओं का दान किया जाता है ? ॥१॥ वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! जैसे सूर्योदय होते ही बरफ गल जाता है वैसे ही हरिवंश सुनने वाले मनुष्य के दैहिक, वाचिक और मानसिक सभी पाप एक साथ क्षीण हो जाते हैं। जो फल अठारह पुराणों के सुनने से मिलता है, वह फल अकेले हरिवंश के श्रवण से मिल जाता है। जो पुरुष हरिवंश के एक, आधे या चौथाई श्लोक को भी भक्ति सहित सुनते हैं, वे भगवन् विष्णु के परमपद को प्राप्त होते हैं। परन्तु, मैं यह बात सौगन्ध पूर्वक कर रहा हूँ कि कलियुग में यदि जम्बूद्वीप छान डाला जय तो भी सच्चा श्रोता एक भी मिलना दुष्कर है ॥२-५॥

भविष्यन्ति नरा राजन् सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।
स्त्रीभिश्च पुत्रकामाभि श्रोतव्य वैष्णव यश. ॥६
दक्षिणा चात्र देया वै निष्कत्रयसुवर्णकम् ।
वाचकाय यथाशक्त्या यथोक्त फलमिच्छता ॥७
स्वर्णशृङ्गी च कपिला सवत्सा वस्त्रसयुताम् ।
वाचकाय प्रदद्याद्धि आत्मन. श्रेयकांक्षया ॥८
अलंकारं प्रदद्याच्च पाण्योर्वै भरतर्षभ ।
कर्णस्याभरणं दद्याद्यान वस्त्र विशेषतः ॥९

भूमिदानं समाद्द्याद्ब्राह्मणाय नराधिप ।
भूमिदानसमं दानं न भूतं न भविष्यति ॥१०

हे राजन् ! पुत्र प्राप्ति की कामना वाली नारियों को हरिवंश का अवश्य श्रवण करना चाहिये। यदि किसी मनोरथ की सिद्धि के लिये हरिवंश का श्रवण करे तो कथा पूर्ण होने पर कथा वाचक को तीन स्वर्ण मुद्राएँ अथवा जितनी शक्ति हो, उतना धन प्रदान करे ॥६-७॥ कथा की समाप्ति पर वस्त्र से ढकी हुई, सोने से मढे हुए सीगों वाली, बछड़े से युक्त कपिला गौ का दान अवश्य करे, इससे सुनने वाले का मंगल होता है ॥८॥ हरिवंश का पारायण पूर्ण होने पर आभूषण प्रदान करे, जिनमें कान का आभूषण अवश्य दे। हाथ का आभूषण अथवा वस्त्र-दान भी अत्यन्त मंगलकारी होता है ॥९॥ हे राजन् ! हरिवंश सुनने के बाद यदि भूमि दान करे तो वह भी प्रशंसनीय होता है। क्योंकि भूमिदान से बढ़ कर कोई भी दान नहीं कहा गया ॥१०

शृणोति श्रावयेद्वापि हरिवंश तु यो नरः ।
सर्वथा पापनिर्मुक्तो वैष्णवं पदमाप्नुयात् ॥११
पितॄनुद्धरते सर्वानेकादश समुद्भवान् ।
ात्मानं ससुतं चैव स्त्रियं च भरतर्षभ ॥१२
ाशांशश्चात्र होमो वै कार्यः श्रोता नराधिप ॥
दं मया तवाग्रे च सर्वं प्रोक्तं नरर्षभ ॥१३
ास्य स्मरणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
पुत्रः पुत्रमाप्नोति अधनो धनमाप्नुयात् ॥१४
रमेधाश्वमेधाभ्यां यत्फलं प्राप्यते नरैः ।
त्फलं लभते नूनं पुराणश्रवणाद्धरे ॥१५
ह्महा भ्रूणहा गोघ्नः सुरापो गुरुतल्पगः ।
पुराणश्रवणात्पूतो भवति नान्यथा ॥१६
मया ते परिकीर्तितं महच्छ्रीकृष्णमाहात्म्यमपारमद्भुतम् ।
नन् पठन्नाप्नु समाप्नुयात्फलं यच्चापि लोकेषु सुदुर्लभं महत् ॥१७

श्रेष्ठ उदयाचल तथा अस्ताचल ये सब पर्वत बड़े पवित्र और पुण्यदायक हैं तथा देवता, महात्मा, सिद्ध तथा अन्यान्य जीवों के आश्रय स्थान हैं ।।५-७।।

एतेषामितरो देशो जम्बूद्वीप इति स्मृतः ।
जम्बूद्वीपस्य संस्थानं याज्ञिया यत्र चक्रिरे ।।८
गर्भाद्यत्स्रवते तोयं देवामृतरसोपमम् ।
दिव्यतीर्थशताढ्यास्ता दिव्याः सरितः स्मृताः ।।
यान्येतानि तु पद्मस्य केसराणि समन्ततः ।
असंख्याताः पृथिव्या तु विश्वे ते धातुपर्वताः ।।१०
यानि पद्मस्य पत्राणि भूरीण्यूर्ध्वं नराधिप ।
ते दुर्गमाः शैलचिता म्लेच्छदेशा विकल्पिताः ।।११
यान्यधः पद्मपत्राणि वासार्थं तानि भागशः ।
दैत्यानामुरगाणां च पातालं तन्महात्मनाम् ।।१२
तेषामधोगतं यत्तदुदकेत्यभिसंज्ञितम् ।
महापातककर्माणो मज्जन्ते यत्र मानवाः ।।१३
पद्मस्यान्ते कृशं यत्तदेकार्णवजलं महत् ।
प्रोषतास्ते दिक्षु संघाताश्चत्वारो जलसागराः । १४

इन पर्वतों का मध्यवर्ती स्थल ही जम्बूद्वीप के नाम से प्रसिद्ध है। यही द्वीप यज्ञों का स्थल और कर्मभूमि है। इसमें यज्ञ के निमित्त जो देवामृत के सदृश जल निकलता है, वही नदी के रूप में अनेक तीर्थों से पहुँच कर प्रकट होता है ।।८-९।। उसी नाभि कमल की जो केसर हैं, वे ही पृथ्वी के भीतर वाले धातु पर्वतों के रूप में समझने चाहिये। उस कमल के पत्र, वे छोटे-बड़े पर्वतों से व्याप्त, अत्यन्त दुर्गम स्थल हैं जो म्लेच्छों के दलों से व्याप्त थे ।।१०-११।। कमल के नीचे की तरह जो पत्ते थे वे कुछ तो दैत्यों के तथा कुछ सर्पों के निवास के निमित्त थे। यही स्थल पाताल कहा जाता है।। इनके

भी नीचे उदक नाम का स्थान है जिसे नरक कहा गया है। सबसे घोर दानकी व्यक्ति उसी मे डाले जाते है ॥१२ १३॥ नाभि कमल के चारो तरफ जो केसर थे उसी को एकार्णव कहा जाता है और उसको चारों ओर पाई जाने वाली जलराशि का चार समुद्र कहा गया है ॥१४॥

ऋषेर्नारायणस्याय महापुष्करस भव ।
प्रादुर्भावोऽप्यय तस्मान्नाम्ना पुष्करस भव ॥१५
एतस्मात्कारणात्तज्ज पुराण परमर्षिभि ।
यज्ञियैर्वेददृष्टार्थ यज्ञ पद्मविती कृत ॥१६
एव भगवता पद्मे विश्वस्य परमो विधि ।
पवनाना नदीना च देवताना च निर्मित ॥१७
विभुस्तथैवाप्रतिमप्रभाव
प्रभाकरो वै भगवान्महात्मा ।
स्वय स्वयभू शयनेऽसृजत्तदा
जगन्मय पद्मनिधि महार्णवे ॥१८

तत्वज्ञान से सम्पन्न प्राचीन महर्षियो ने भगवान नारायण के महापुष्कर प्रादुर्भाव का वृत्तान्त इसी प्रकार बतलाया है। इनका यह नाभि कमल ही ससार की उत्पत्ति का मूल होता है ॥१५ १६॥ उन भगवान के इसी नाभिकमल द्वारा पर्वत नदी और जगत के विभिन्न प्रदेशो का आविर्भाव हुआ था। जब अमित प्रभावशाली स्वयम्भू विष्णु भगवान उस अनन्त एकार्णव में शयन कर रहे थे उसी समय उन्होने उस विश्वस्वरूप सृष्टि के मूल अङ्कुर कमल को उत्पन्न किया था ॥१७ १८॥

॥ अथ श्रवण फल ॥

हरिव शो पुराण तु श्रुते मुनिवरोत्तम ।
[illegible] च दय वै तद्ब्रूहि त्व ममाग्रत ॥१

जो मनुष्य हरिवंश की कथा को सुनाता या जो कोई श्रवण करता है वह पाप से सर्वथा छूट जाता और मरणान्त में उसे विष्णु लोक की प्राप्ति होती है ॥११॥ उसकी ग्यारह पूर्व पीढ़ियाँ, स्त्री और पुत्र तक मुक्त हो जाते हैं तो अपनी मोक्ष का तो कहना ही क्या है? ॥१२॥ हरिवंश सुनने वाले को दशांश हवन करने का आवश्यक विधान है। हे राजन्! इस प्रकार मैं तुम्हें सभी कुछ बता चुका। इसके सुनने पर सम्पूर्ण पापों का नाश अवश्यभावी है। पुत्र-हीन पुरुष सुने तो पुत्रवान् और निर्धन पुरुष सुने तो उसे विपुल धन की प्राप्ति होती है ॥१३-१४॥ जिस फल की प्राप्ति नरमेध अथवा अश्वमेध यज्ञ के करने से हो सकती है, वह सम्पूर्ण फल एकमात्र हरिवंश के सुन लेने से ही मिल जाता है ॥ १५ ॥ यदि किसी पुरुष से ब्रह्म हत्या, गो हत्या गर्भपात, मदिरापान जैसा महापाप भी बन गया हो तो एकाग्र चित्त से हरिवंश के श्रवण करने पर, उन घोर पापों से उसका छुटकारा हो जाता है ॥१६॥ हे राजन्! इस प्रकार यह अत्यन्त विस्मय जनक और अत्यन्त उदार भगवान् श्रीकृष्ण का माहात्म्य मैंने तुम्हें सुना दिया। इसका स्वाध्याय करने अथवा सुनने से दुर्लभ से दुर्लभ पदार्थ भी अनायास ही प्राप्त हो सकता है ॥१७॥